परामर्श समिति

*

श्री अगरचन्द नाहटा

डॉ० कन्हैयालाल सहल

श्री सीताराम लालस

प्रो० नरोत्तम स्वामी

डॉ० मोतीलाल मेनारिया

श्री गोवर्धननन्दन बाबरा

श्री विजयसिंह सिरियारी

राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल

संपादक

नारायणसिंह भाटी

प्रकाशक

राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर

प्रकाशक
चौपासनी शिक्षा-समिति द्वारा संस्थापित
राजस्थानी शोध संस्थान
जोधपुर

परम्परा—भाग १५ १६

मूल्य — ६ रु०

मुद्रक
हरिप्रसाद पारीक
साधना प्रेस, जोधपुर

विषय - सूची

भक्ति रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हर एक प्रांत ने भव्य व उच्च कोटि का साहित्य पैदा किया है, लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य नहीं मिलता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दिया था। दक्षिण में क्रांति का नेतृत्व शिवाजी ने किया तो राजस्थान में राठौड़ दुर्गादास ने स्वाधीनता का संकल्प ले कर औरंगजेब की सेनाओं के साथ कितने ही युद्ध किये। इस समय के दौरान में शताब्दियों से संघर्ष करती रहने वाली यहां की राज्य सत्ता काफी कमजोर हो चुकी थी। इसलिये राजस्थान को दक्षिण के आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा। इसी समय दिल्ली सल्तनत की कमजोरी तथा यहां के शासकों की आपसी फूट से लाभ उठा कर अंग्रेजों ने आ दबाया। प्रारंभ से अंग्रेजों को राजस्थान में अपनी सत्ता जमाने के लिये बड़ा संघर्ष करना पड़ा। भरतपुर के घेरे में जनरल लेक को जिस प्रकार मुंहकी खानी पड़ी उसी तरह जोधपुर के महाराजा मानसिंह के साथ सन्धि करने में और फिर लगान आदि वसूल करने में अनेक राजनैतिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सन् १८५७ के स्वातंत्र्य संग्राम में भी कोटा आउवा डूंगरपुर, कोठारिया (उदयपुर) अमरकोट आदि स्थानों पर जो संघर्ष हुआ वह यहां के वीरों की वीरता और स्वातंत्र्य प्रेम का बहुत बड़ा प्रमाण है। कहने का तात्पर्य यह है कि १९वीं शताब्दी से ले कर १९वीं शताब्दी तक काफी राजनैतिक उथल-पुथल और युद्ध विग्रह चलता रहा जिसके फलस्वरूप यहां के चारण कवियों ने वीररस की भावना को जगाने तथा युद्ध भूमि में धर्म तथा देश की रक्षा के लिये प्राणों की बाजी लगा देने की प्रेरणा से ओतप्रोत वीररसात्मक साहित्य की बहुत बड़े परिमाण में रचना की। सच्चे योद्धा की वीरता को सराहना यहां के कवियों का मुख्य कर्तव्य था। उदयपुर का एक योद्धा वीरता के साथ लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ तो मारवाड़ के कवि ने अपने गीत द्वारा उसे श्रद्धांजलि अर्पित की और दूसरे ही दिन जहां मारवाड़ के वीर योद्धा ने अद्वितीय पराक्रम दिखाया तो बीकानेर में बैठे कवि ने 'नीसांणी' कह कर उस योद्धा के कुल को बिरदाया। जहां योद्धाओं ने युद्ध में प्राण त्यागे वहां उनकी पत्नियों ने अपने नश्वर शरीर को अग्नि को समर्पण कर दिया — कवि ने नारी के इस त्याग और बलिदान की दूने जोश के साथ प्रशंसा की।

इस प्रकार का बलिदान केवल भूमि की रक्षा के लिये या राजनैतिक कारणों से ही हुआ हो सो बात नहीं। हजारों योद्धाओं ने गायों मंदिरों और नारी के सम्मान की रक्षा के लिये शत्रु को ललकारा है और मरने को मंगल मान कर मृत्यु रूपी सुन्दरी का आलिंगन किया है। इस प्रकार के बलिदानों पर लिखा गया डिंगल काव्य अपनी मौलिकता और मानव के जीवन-मूल्यों की दृष्टि से बेजोड़ है। उनके सम्बन्ध में लिखे गये गीत दोहे छप्पय झूलणा नीसांणी

पवाड़े आदि शताब्दियों तक यहाँ के वातावरण में गूंजते रहे हैं। बहुत-सा मूल्यवान साहित्य अब तक लुप्त भी हो चुका है पर जो कुछ बचा है उसके अध्ययन से ही इस प्रकार के साहित्य का महत्त्व जाना जा सकता है। यह सही है कि अधिकांश कवियों ने परिपाटीबद्ध और अतिशयोक्तिपूर्ण काव्य की रचना की पर उसमें उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाओं की भी कमी नहीं है।

अतः इस प्रकार के साहित्य को केवल प्रशस्तिपरक तथा चारणों की अतिशयोक्तिपूर्ण विरुदावलि मात्र कहना न केवल अपने अज्ञान का परिचय देना है वरन् भारतीय संस्कृति के आधार-भूत सिद्धान्तों की अवहेलना करना है।

यहां की विशिष्ट परिस्थितियों में वीररसात्मक साहित्य की बहुत बड़े परिमाण में रचना होने से लोगों ने डिंगल साहित्य को वीररसात्मक साहित्य का पर्याय भी मान लिया पर यह धारणा भी सर्वथा भ्रामक है। प्राचीन राजस्थानी साहित्य में शृङ्गार रस की बहुत सुन्दर और महत्त्वपूर्ण परम्परा रही है। जीवन जहां संकटमय होता है वहां जीवन की कद्र और भी अधिक हो जाती है। इस प्रकार के निरंतर संघर्ष में से गुजरने वाले राजस्थान के शृंगाररसात्मक साहित्य को पढ़ कर यहां के लोगों की जिन्दादिली और सौन्दर्य के उपभोग की अमिट लालसा का अन्दाज लगता है। इस समय में घटने वाली प्रेम की घटनाओं का कवियों ने अपने काव्य और वार्तों में बड़ ही सरस ढंग से वर्णन किया है। जीवन की वास्तविकता के बीच प्रेम और सौन्दर्य का ऐसा चित्रण किसी भी साहित्य के लिये गौरव की वस्तु है। ढोला मारवणी जेठवा ऊजली जलाल बूबना मामजी मागवती सैणी बीजाणंद पृथ्वीराज चम्पादे आदि का प्रेम गाथाओं को ले कर लिखे गये दोहे यहां की जनता क कण्ठहार बन गये। उनका यह भावात्मक गौरव जनता के हृदय में सदा के लिये घर कर गया क्योंकि उनमें मानव भावनाओं की सही एवम् निश्छल अभिव्यक्ति है। यह काव्य प्रेम काव्य होते हुए भी नायिकाओं की श्रेणियों का शास्त्रीय वर्गीकरण नहीं है जैसा कि रीति कालीन परम्परा में पाया जाता है। इसलिये इस शृंगाररसात्मक साहित्य की सहजता यहां की नारी क हृदय में स्थित अनुराग और सौन्दर्य भावना का बहुत महत्त्वपूर्ण चित्रण है। इन प्रेम-गाथाओं ने यहां की चित्रकला को भी कितना प्रभावित किया है यह अनुमान प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में लिपिबद्ध सचित्र वार्तों को देखन से लगाया जा सकता है। मेरे ख्याल स धार्मिक आख्यानों के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर चित्रकारों ने रंगा न आकृतियों का इतना प्रयोग नहीं किया जितना इन प्रेम-गाथाओं को ले कर किया

है। इस काव्य में प्रकृति का जितना महत्त्वपूर्ण चित्रण शब्दों में हुआ उतना ही सुन्दर चित्रण चित्रों के रंगों में भी हुआ है।

इस काल में जहां वीर एवम् शृंगाररसात्मक काव्यधाराएँ अविरल गति से बहती रही हैं वहां भक्ति साहित्य की धारा भी अबाध-गति से आगे बढ़ती रही। राजस्थानी साहित्य की इस त्रिवेणी की साक्षी यहां के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'वेलि क्रिसन रुकमणि री' में देखने को मिलती है जो इस काल का प्रतिनिधि काव्य-ग्रंथ कहा जा सकता है।

जैन-धर्मावलम्बी राजस्थान और गुजरात में पहले से ही अपने धर्म प्रचार में क्रियाशील थे। इधर उत्तरी भारत में भक्ति की जो लहर उमड़ी उसने राजस्थान को भी आप्लावित कर दिया। निर्गुण तथा सगुण दोनों ही मतों के अनुयायियों ने राजस्थानी में असंख्य ग्रन्थों में भक्तिपरक साहित्य की रचना की। *निर्गुण सम्प्रदाय में जहाँ कबीर का स्वर सब से ऊपर सुनाई पड़ता था* वहाँ सगुण में मीरां की मृदु वाणी भक्तों के हृदय में गहरी उतर चुकी थी। जिस प्रकार कबीर भारत के बहुत बड़े भाग में अपनी ज्ञानभरी साखियों के लिए मान्य हुए वैसे ही मीरां अपनी प्रेम भावना के लिये करोड़ों कंठों में स्थान बना सकी। निर्गुण सम्प्रदायों में नाथ सम्प्रदाय का भी प्राचीन काल से ही यहाँ अच्छा प्रचलन था। जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी के समय में तो नाथों का महत्त्व मारवाड़ में अत्यधिक बढ़ गया था। इसके अतिरिक्त जसनाथी दादूपंथी निरंजनी रामस्नेही चरणदासी लालदासी बिश्नोई आदि अनेक सम्प्रदायों के सन्तों ने अपना ज्ञान वाणियों के माध्यम से प्रकट किया। भारतीय संत-परम्परा में यहाँ के इन संत कवियों का बड़ा भारी योग रहा है और आज भी उनकी वाणियों का प्रचलन यहाँ के जन-जीवन में है।

जहां तक सगुण भक्ति का सम्बन्ध है राम और कृष्ण सम्बन्धी विपुल साहित्य यहाँ के भक्तों ने रचा है। शक्ति-पूजा की परिपाटी भी राजस्थानी जन-जीवन की बहुत बड़ी विशेषता रही है इसलिये देवी के विभिन्न रूपों पर भी अनेक कवियों ने रचनाएँ की हैं। कृष्ण-भक्तों में मीरां का स्थान सर्वोपरि है, इनके अतिरिक्त चन्द्रसखी बख्तावर सम्मानबाई रणछोड़कुंवरि, राणी बांकावती सुन्दरकुंवरि आदि कवियित्रियों ने सरल भाषा के माध्यम से सरस पदों की रचना की। इन पदों की गेयता के कारण जन-जीवन में भी इनका प्रचार हुआ तथा स्त्री-समाज में भक्ति भावना का प्रसार करने में भी उनका बड़ा योगदान रहा। कई कवियों ने कृष्ण व रुक्मणी के सम्बन्ध को ले कर वेलियों की

रचना की जिनमें राठौड़ पृथ्वीराज की 'वेलि' सर्व-विख्यात है। सांयाजी झूला का 'रुक्मणी-हरण' भी इसी विषय का काव्य है पर उनके नागदमण' में अधिक सहजता और स्फूर्ति है। इनके अतिरिक्त अन्य कई स्फुट रचनाएँ इस सम्बन्ध में अज्ञात कवियों द्वारा लिखी हुई भी मिलती हैं।

राम भक्ति शाखा के प्रवर्तक कवियों में माधोदास दधवाड़िया का 'राम-रासा' बड़ा प्रसिद्ध ग्रंथ है। राम-कथा को ले कर पिंगळ शिरोमणि रघुनाथरूपक रघुवरजस प्रकास गुणपिंगळ प्रकास, हरिपिंगळ जैसे छन्द शास्त्र के ग्रंथों का निर्माण हुआ है। मूलतः ये ग्रंथ छंदों आदि के लक्षण प्रकट करने के लिए लिखे गये पर कई स्थलों पर कवियों की भक्ति-भावना भी बड़े सुन्दर रूप में अभिव्यक्त हुई है। अधिकांश छन्द-शास्त्रों का निर्माण राम कथा को माध्यम रख कर किया गया। इससे यहां पर प्रचलित राम भक्ति शाखा का विशिष्ट महत्त्व भी प्रकट होता है। राम भक्ति सम्बन्धी काफी काव्य रचना होने पर भी राठौड़ पृथ्वीराज की 'वेलि' के स्तर का कोई काव्य अभी तक देखने में नहीं आया।

यहां की चारण जाति में अनेकों देवियां हुई हैं जिनकी पूजा चारण जाति तो करती ही है पर राजपूतों के विभिन्न कुल उन्हें अपनी इष्ट देवी मान कर बड़ी श्रद्धा के साथ पूजते आये हैं। इन देवियों में प्रावड़जी करणीजी तेमड़ाजी आदि पर अनेकों कवियों ने काव्य रचना की है। ये रचनाएँ प्राय: विशुद्ध डिंगळ में लिखी हुई हैं और उनमें देवियों के विभिन्न चमत्कारों का वर्णन बड़ी प्रभाव पूर्ण शैली में किया गया है। यहां के इतिहास में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं जहां देवी का इष्ट रखने वाले योद्धा को सकट के समय देवी ने सहायता दी है इसलिये उनके प्रति यहां के समाज में विशेष आस्था है।

धार्मिक साहित्य में सबसे अधिक परिमाण में जैन सम्प्रदाय का साहित्य मिलता है। जैनियों की दो प्रमुख शाखायें दिगम्बर एवम् श्वेताम्बर हैं। श्वेताम्बर शाखा के साधुओं का यहां विशेष रूप से प्रभाव रहा इसलिये श्वेताम्बर शाखा की विभिन्न उपशाखाओं के आचार्यों व मुनियों ने अपने धर्म प्रचार के लिये बहुत से साहित्य की रचना सरस राजस्थानी में की। यह साहित्य मुख्यतया धार्मिक सिद्धान्तों तथा व्याख्यानों तक ही सीमित रहा पर कई प्रतिभासम्पन्न कवियों ने रास चौपाई चरित आदि सुन्दर रचनाएँ लिख कर साहित्य की अभिवृद्धि भी की। कई कवियों ने धार्मिक ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य विषयों के ग्रन्थ भी लिखे। इस प्रकार के कवियों में कुशललाभ का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाना चाहिए। जन धर्मावलंबियों ने साहित्य सृजन के अतिरिक्त लिख

सगम के साथ प्राचीन साहित्य का संग्रह मंदिरों उपासरों आदि में किया है वह उनकी इस भाषा के लिए बहुत बड़ी सेवा है। प्राचीन महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद कर के भी उन्होंने इस भाषा की समृद्धि में असाधारण योग दिया है।

वहाँ सभी प्रकार के विषयों पर इस काल में काव्य रचना हुई वहाँ छन्द शास्त्र का विषय भी अछूता नही रहा। इस काल में लिखे गये ६-७ छन्द-शास्त्र के ग्रन्थ हमें उपलब्ध हुए हैं। उनमें प्राचीन छन्द-परम्परा का सहारा लेते हुए अनेक प्रकार की नई जानकारी भी दी गई है। इन छन्द-शास्त्रों में पिंगळ-सिरोमणि कविकुळबोध रघुवरजसप्रकास तथा रघुनाथरूपक विशेष महत्त्व के हैं। इन छन्द-ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि डिंगल की काव्य रचना कितनी नियमबद्ध और सुव्यवस्थित थी।

काव्य-सृजन जहाँ इतने बड़े परिमाण में हुआ वहाँ गद्य साहित्य भी पिछड़ा हुआ नहीं रहा। राजस्थानी गद्य साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। बहुत कम भारतीय भाषाओं में इतना प्राचीन गद्य उपलब्ध होता है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक विषयों पर अनेक अज्ञात लेखकों की वातें प्राचीन ग्रन्थों में लिपिबद्ध मिलती हैं। इन वातों की भाषा-शैली सुन्दर साहित्यिक स्तर की है। वातों के अतिरिक्त वचनिकाएँ तथा अनेक ख्यातें मिलती हैं। वचनिकाओं में गद्य एवं पद्य का सुन्दर सम्मिश्रण मिलता है। राठौड़ रतनसिंह महेशदासोत की वचनिका इस काल की बड़ी प्रसिद्ध रचना है। ख्यातों में यहाँ के राज-वंशों का ऐतिहासिक वर्णन है। इतिहास की दृष्टि से उनमें चाहे अनेक त्रुटियाँ हों पर सामाजिक जानकारी राजनतिक मान्यताओं और अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं की दृष्टि से उनका महत्त्व असंदिग्ध है। मुहणोत नैणसी री ख्यात के अतिरिक्त राठौड़ां री ख्यात भाटियां री ख्यात कछवाहां री ख्यात चौहाणां री ख्यात आदि प्रसिद्ध हैं। इनकी अनेक पूर्ण-अपूर्ण प्रतिलिपियां प्राचीन पोथियों में मिलती हैं। इनके अतिरिक्त पीढ़ियों वंशावलियों बहियों तथा खतों में भी इस काल के गद्य के उदाहरण देखे जा सकते हैं। इससे यह भी प्रतीत होता है कि यहाँ का अधिकांश राज्य-कार्य तथा सामाजिक पत्र-व्यवहार आदि इसी भाषा में होता था और इसका प्रचलन यहाँ की रियासतों में था। बून्दी के कविराजा सूर्यमल के वंश भास्कर में राजस्थानी गद्य और उसी समय में लिखे गये मारवाड़ के कई पत्रों आदि में भाषा की एकरूपता इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है।

राजस्थानी में अनुवादों की परम्परा जो १४वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुई थी वह मध्य काल में आ कर और भी विस्तृत हो गई। राजस्थानी पद्य और गद्य में

अनेक संस्कृत व प्राकृत के ग्रंथों के अलावा कई फारसी के ग्रन्थों के अनुवाद भी मिलते हैं। विषय के वैविध्य की दृष्टि के इस अनुवादित साहित्य की बहुत बड़ी देन है। रामायण भागवत् पुराण, हितोपदेश, गीता और अनेक जैन ग्रंथों की टीकाएँ तथा अनुवाद आदि उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण छन्द शास्त्र सम विद्या आदि से सम्बन्धित अनेक प्राचीन ग्रंथों की भाषा टीका सकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। यहाँ के शोध संस्थान में संग्रहीत राजस्थानी के लगभग दस हजार हस्तलिखित ग्रंथों में इस प्रकार का अनुवादित साहित्य प्रचुर परिमाण में सुरक्षित है।

विद्वत् समाज में मान्यताप्राप्त और प्राचीन ग्रन्थों में लिपिबद्ध जहाँ इतना विविधतापूर्ण और समृद्ध साहित्य इस समय का उपलब्ध होता है वहाँ जन-कंठों में निवास करने वाला और पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्मृति के सहारे समय की यात्रा करने वाला बहुत बड़ा लोक-साहित्य, लोक-मानस की बहुमूल्य निधि रहा है जिसका महत्व किसी भी प्रान्त के लोक-साहित्य से कम नहीं है। असंख्य लोक-गीत पवाड़ लघु कथाएँ, कहावतें, ख्यात आदि सकड़ों वर्षों से लोक-जीवन को अनुरंजित करते रहे हैं। मध्यकाल मे आ कर उनको और भी विस्तार मिला है। इस साहित्य में जन भावना के साथ-साथ यहां की जनता की औसत चिन्तन शक्ति और अनकानेक सामाजिक मान्यताओं का पता चलता रहता है। इस साहित्य की कई चीजें तो साहित्यिक-सौन्दर्य की दृष्टि से भी बेजोड़ हैं। लोक-गीतों तथा पवाड़ों आदि के साथ संगीत का अद्भुत मेल है। अतः संगीत के अध्ययन की दृष्टि से भी उनका कम महत्व नहीं है। आधुनिक सभ्यता के तेजी के साथ बढ़ते हुए चरणों की धूमि में यह साहित्य अब ओझल होता जा रहा है जिसकी सुरक्षा परम नितान्त आवश्यक है।

इस प्रकार इस काल में वीररसात्मक शृङ्गाररसात्मक और भक्तिपरक साहित्य के अतिरिक्त गद्य अनुवादित साहित्य और लोक-साहित्य का बहुत परिमाण में निर्माण हुआ है। इसका विस्तृत विवरण यहां संकलित लेखों में विद्वानों ने दिया है। पर अभी कितना ही साहित्य अज्ञात है जिसकी खोज और सुरक्षा यहां के शोधकर्ताओं तथा संस्थाओं का पहला कर्तव्य है।

राजस्थानी साहित्य के इस महत्वपूर्ण काम पर मेरी योजना के अनुसार जिन विद्वानों ने अपने लेख भेज कर योजना को पूर्ण करने में योग दिया है उनका मैं आभारी हूँ।

आशा है हमारा यह प्रयास इस दिशा में कार्य करने वाले विद्वानों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

—नारायणसिंह भाटी

राजस्थानी साहित्य का मध्य काल

राजस्थानी मध्यकालीन भक्ति-साहित्य

श्री मनोहर शर्मा

पिछले कुछ समय से विद्वानों का ध्यान राजस्थानी साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ है और फलस्वरूप जो कुछ सामग्री प्रकाश में आई है, उसने विषय के अत्यधिक महत्व के कारण शोधवृत्ति को जाग्रत कर दिया है। परन्तु अब तक इस प्रवृत्ति के पीछे राजस्थानी इतिहास की वीरत्वानुभूति प्रधान रही है और सामान्यतया राजस्थानी साहित्य को भी वीररस का साहित्य ही माना जाता रहा है। यह लोक-धारणा यथार्थ एवं सुदृढ़ है परन्तु फिर भी एकाङ्गी है। राजस्थान में अगणित प्राचीन हस्त-प्रतियां हैं जो शोध की प्रतीक्षा में हैं। इस सामग्री का कुछ अंश प्रकाश में भी आया है और इस पर विचार करने से सहज ही प्रकट होता है कि वीरभूमि राजस्थान में भारत के अन्य प्रान्तों के समान भक्ति-रस की भी अजस्र वेगवती धारा प्रवाहित हुई है। इस विस्तृत धारा प्रवाह से राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल गौरवमय है जो सामान्यतया पन्द्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक माना जाता है। इस लेख में इसी साहित्य-सामग्री के पूरे रूप पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जाती है।

राजस्थानी मध्यकालीन साहित्य पर विचार करते समय एक बात सदैव ध्यान में रखने योग्य है कि इसे मध्यकालीन गुजराती साहित्य से सर्वथा अलग नहीं किया जा सकता। आदिकालीन राजस्थानी एवं गुजराती साहित्य-सामग्री एक ही वस्तु है और मध्यकाल में भी यह पूर्ण रूप से विभक्त न होकर काफी समय तक मिली-जुली रही है। इसी प्रकार डिंगल में काव्य-रचना करने वाले राजस्थानी तथा गुजराती कवियों को भिन्न भाषा-पंक्ति में प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता[1]। साथ ही यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि इन दोनों

---

[1] इस विषय में स्वर्गीय मेघाणीजी का वक्तव्य इस प्रकार है—

'ईसर-परमेसरा' विरचनारो मारवाड़ना ईसर बारोट इत्यादिए सोरठी राजकुलोने हारे पोतानुं महिमावंतुं स्थान मेळव्युं, ते दिवसेथी गई आज सुधी चारण अने तेना साहित्यनी महान परम्परा सोरठ अने राजस्थानी वच्चे संधाई गई छे। आम जातिने हिसाबे नहि पण साहित्यने हिसाबे सोरठ-गुजरात-राजस्थान एकज धरित्राना गूंथेला भाग बन्या छे। ए साहित्य वीर एकबीजे भारे अखंड प्रवाहे आवजा करता रह्या छे। एवी एक भीतरनी चमत्कार एवं समस्त साहित्यनुं जे वाणी वाहन छे, तेने 'डिंगळ' कहेवामां आवे छे। (चारणो अने चारणी साहित्य पृष्ठ ४०-४१)

प्रान्तों का जन-जीवन एकरस रहा है और यहां की साहित्य-सामग्री समान परम्पराओं से प्रभावित है।

इसी प्रकार राजस्थानी मध्यकालीन साहित्य पर विचार करते समय एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। यहां के मध्यकालीन साहित्य में वीर, भक्ति और शृंगार की तीनों धाराएँ मिली-जुली हैं। यहां ऐसे अनेक कवि हुए हैं जिन्होंने भक्ति रस का प्रवाह बहा दिया है और साथ ही वीररसात्मक रचना भी उच्चकोटि की प्रस्तुत की है। इसी प्रकार कई भक्त कवियों ने शृंगार रस की भी धारा प्रवाहित की है। 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोत री खिड़िया जगा री कही' वीर रस की एक अनूठी रचना है। परन्तु खिड़िया जगा कि भक्ति रस विषयक सामग्री भी असाधारण है। एक उदाहरण लीजिए —

पत राखे द्रोपदी प्रभु विरदां प्रत पाळ।
ग्रहम पता राहची बेद ध्यारे ही भाबाळ॥
पत राखे पञ्चा अंब कर मांमि उपाये।
बजपत पत राहवे अनंत सपपत बह भाये॥
करणां निधान कवियो कहै बहुनामी बहु भूमि हण।
कळजुग इसा मांहे किसन राखे पत राधा रमण[1]॥

इसी प्रकार परम भक्त ईसरदास अपनी 'हालां झालां रा कुंडळिया' रचना में वीर कवि के रूप में प्रकट हुए हैं और महाकवि पृथ्वीराज राठौड़ ने तो एक साथ ही वीर, भक्ति और शृंगार रस की धाराएँ प्रवाहित की हैं, जो सर्वविदित है।

ऐसी स्थिति में राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल को कोई विशिष्ट नाम नहीं दिया जा सकता जैसे 'वीरगाथाकाल' 'भक्तिकाल' या 'रीतिकाल' आदि। यहां मध्यकाल में अनेक प्रकार की प्रबल साहित्य-धाराएँ प्रवाहित हुई हैं। इसी प्रकार रीति-ग्रंथ भी बने हैं और उनमें बड़ी गहराई से मौलिक विवेचन हुआ है जैसा कि छंद-विधान में विशेष रूप से देखा जाता है, फिर भी इनमें ह्रास के चिन्ह नहीं हैं और उदाहरणों के रूप में भी उत्तम सामग्री तैयार हुई है। अतः इस युग का उचित नाम मध्यकाल ही है।

इस युग में राजस्थान में विरचित ग्रन्थों की भाषा शैली भी ध्यान में रखने योग्य है। यहां ब्रजभाषा पिंगल डिंगल एवं बोलचाल की भाषाशैली प्रयुक्त हुई है। नरहरिदास का 'अवतार चरित्र' भक्ति रस का एक विशाल ग्रंथ है जो ब्रज भाषा में लिखा गया है। राजस्थानी एवं ब्रज भाषा के मिले जुले रूप को सामान्यतया पिंगल नाम दिया जाता है। डिंगल राजस्थानी की विशिष्ट साहित्यिक शैली है। इस लेख में जहां तक हो सका है डिंगल तथा बोलचाल की राजस्थानी के कवियों की रचनाओं के सम्बन्ध में ही चर्चा की गई है।

---

[1] राजस्थानी सबद कोस भूमिका भाग पृ १२१

सामान्यतया भक्ति साहित्य के दो मोटे विभाग किए जाते हैं जिनमें एक निर्गुण भक्ति शाखा है और दूसरा सगुण भक्ति शाखा। निर्गुण भक्ति में निराकार ब्रह्म की उपासना की जाती है और सगुण भक्ति में भगवान के विविध अवतारों का चरित्र-गायन एवं गुणानुवाद रहता है। परन्तु राजस्थानी भाषा के भक्ति साहित्य में दुर्गा भक्ति तथा जैन भक्ति सम्बन्धी अन्य भी दो प्रमुख धाराएँ है। इस लेख में इन सभी काव्य-धाराओं पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है।

निर्गुण भक्ति--

राजस्थान में पुराने समय से नाथ पंथ का विशेष प्रभाव रहा है और यहां उनके अनेक 'आसन' हैं। जन-साधारण में भी नाथों को अच्छा सम्मान मिला है और उनके सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण कहानियां प्रचलित हैं। इस पंथ के जोगी घरों में जा कर 'गोपीचंद' 'भरथरी' एवं 'शिव ब्यावली' आदि काव्य सुनाते हैं और भेंट पाते हैं। इनके अतिरिक्त नाथ पंथ में कई विशिष्ट संत भी हो चुके हैं। जोधपुर के महाराजा मानसिंह की नाथ भक्ति तो प्रसिद्ध ही है जो स्वयं भी एक अच्छे कवि थे[1]। इसी प्रकार मध्य काल में कई दूसरे पंथ और सम्प्रदाय भी यहां प्रचलित हुए हैं जिन में जांभोजी का बिश्नोई सम्प्रदाय जसनाथी सम्प्रदाय दादू पंथ लालदासी पंथ निरंजनी सम्प्रदाय राम सनेही सम्प्रदाय चरणदासी सम्प्रदाय आदि प्रमुख हैं। इन में शिष्य प्रशिष्यों की लम्बी परम्पराएँ चली है और अनेक गद्दियां स्थापित हुई हैं। साथ ही इस संत-समाज में बहुत बड़ी संख्या में साधक एवं उपदेशक कवि हुए हैं जिन्होंने प्रचुर परिमाण में साहित्य-सामग्री तैयार की है। यदि इन सभी संत-कवियों का साधारण परिचय भी दिया जाय तो अलग ही एक विशाल ग्रंथ तैयार हो सकता है।

इन संतों की वाणी में प्रधानतया नाथ पंथ एवं कबीर पंथ की विचारधारा मिलती है। जसनाथी सम्प्रदाय को तो एक प्रकार से नाथ पंथ का ही विकसित रूप समझिए। इस पर वैष्णवी विचारधारा का भी प्रभाव है। नाथ पंथ में 'योग' को प्रधानता दी गई है परन्तु इस सम्प्रदाय में 'यज्ञ क्रिया' को भी सम्मिलित कर के समन्वय का विशिष्ट रूप प्रकट किया गया है। लगभग यही स्थिति बिश्नोई सम्प्रदाय की है। आगे विशेष विस्तार न देकर इन प्रमुख पंथों अथवा सम्प्रदायों में से कुछ संतों की वाणी नमूने के रूप में प्रस्तुत की जाती है--

[१]

नाथ रे गुरुवा तै अगम अगायो भूंय धारी तै भार ।
वा दिन तेरे होम न जाप न तप न किरिया

[1] इस सम्बन्ध में बीकानेर के सेठ रामगोपालजी मोहता द्वारा संकलित एवं सम्पादित 'मान पद्य संग्रह' तीन भाग द्रष्टव्य है।

गगन न चीन्हौं पंथ न पायौ अहुठ भई अमवार ।
ताली बैठा ताव न आम्यो ताली बैठा ठार ।
बिचै बैठा बिष्णु न जंप्यौ तातैं बहुत भई कलवार ।
चारी न जाटी देह बिसाठी थिर न पावणा पाव ।
अहनिस प्राण भटकती जावै तेरा स्वास सभी कलवार ।
या तन मन बिस्नु माहि जंप्यौ ते नर कुवरण कालू ।

(जांभोजी)

[२]

पांच मठे मठ पनरा पूरा जोगर गोरख रा बाणी ।
भावै-भावै भाखर राखा मांग मठ मठ मारगी ।
अपणी घट री निरत न जाणी क्यूं चढ़सी निरवाणी ।
पैं'डै भी भाखण विरळा पीला सो पूरा परवाणी ।
मठ बाम्छठ मैरु री पूजा गोरख मना न माणी ।
या करणी सूं नरकां जास्यो हुवो प्रेत पिराणी ।
काळ न मारे कुळ पछताणी जद पूगै सहनाणी ।
गुरु परसादे गोरख वचने सिध जसनाथ बखाणी ।

(जसनाथजी)

[१]

अम्ह घरि पाहुणा ए, आव्या आतमराम ।। टेक
बहु विधि मंगळचार, आनंद अति घणा ए ।
बरत्या जै जै कार, विरह बधावणा ए ।। १
कनक कळश रस माहि सखी भरि ल्यावज्यो ए ।
आनंद अंगि न माइ अम्हारे आविज्यो ए ।। २
भावै भगति अपार, सेवा कीजिए ए ।
सनमुख सिरजनहार, सदा सुख लीजिए ए ।। ३
धन्य अम्हारा भाग आव्या अम्ह भणी ए ।
दादू सेज सुहाग तूं त्रिभुवन धणी ए ।। ४

(दादूदयालजी)

सिद्धाचार्य जसनाथजी के सम्बन्ध में श्री सूर्यशंकर पारीक द्वारा लिखित 'सिद्ध चरित्र' नामक ग्रंथ द्रष्टव्य है ।

[४]

मन पंगिया मैं तूं बांध्यो रे भाई । उलट पेसि परम निधि पाई ।।
अगम अगाहि अंतरि अविनासी । मन निहचळ काया तन नासी ।।
अवरण वरण करम महिं माया । सूछिम ब्रह्म सूं सीतळ छाया ।।
जन हरिदास निरभै भै नाहीं । म्हारो भाग बड़ो हरि तरवर मांहीं ।।

(हरिदासजी निरंजनी)

[५]

आरति अपम पुरुष अविनासी घट घट व्यापक सकल प्रकासी ।। टेर
पहलम आरति मंदिर बुहारया राम राम रटि कर्म निवारया ।
दूसरि आरति दीपक आया हिरदै प्रेम चांदणा होया ।
तीसरि आरति कम मराया नाभि कमल सूं गगन चढ़ाया ।
चौथी आरति चौकि बिराजै जहां अनहद का बाजा बाजै ।
पांचम आरति पूरण कामा सुरति परसिया केवल रामा ।
सबद स्वामी सदा समाना रामहि राम और नहिं माना ।
र मचरण ऐसी आरति कीजै परसि अमर वर जुग जुग जीजै ।

(रामचरणजी रामसनेही शाहपुरा)

मध्यकालीन राजस्थानी गद्यवाणी पर विचार करते समय उन गानों की ओर भी ध्यान गए बिना नहीं रहता जिनकी अमूल्य वाणी मौखिक परम्परा से चली आ रही है और ऐसे गान यहां काल बड़ी मात्रा में हुए हैं। इन संतों ने राजस्थानी जन-जीवन को सदाचरण की ओर लगाए रखने में बड़ा काम किया है और जन-साधारण ने इनसे बड़ी प्रेरणा प्राप्त की है। इनकी वाणी के विषय ईश्वर जीव माया संसार की नश्वरता धर्म और जाति का भेद उपदेश साधु जीवन गुरु महिमा भक्ति प्रेम उद्बोधन आदि हैं। आगे इस विषय में कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं जिनको अपने प्रचलित रूप में ग्रहण किया गया है—

[१]

म्हारा ध्यान का अवरण निवारा गुरु थारो म्हारा मान्या ।। टेर
आत स्वारथ सब जग राख्या परमारथ गुरु राख्या, हो बाबाजी ।
कमी करी न छोडे आमें राम्ने है डीग ।। १
आद न्हा का मंदिरा पारी [illegible] बद न मादी हो बाबाजी ।
माया न बांधा मारनिया गुप गिला है डीग ।। २
हरो लिया अवरण दिखा मारदिन्ना मा गुमें या बाबाजी ।
रैगु अपेठी बाल्ने देवे आप है डीग ।। ३

भाल्यां का मेहड़ा समन्दियां में बूठ्या ओ बाबाजी ।
रतनागर में मोंघा मोती निपजै रे बीरा ॥ ४
तंवरां में टीकायत सिध रामदेव बोल्या ओ बाबाजी ।
हाथां आयो माणकियो मत खोवो रे बीरा ॥ ५

(रामदेवजी)

[२]

मांयलो जाणै या अमर म्हारी काया हो जी ॥ टेर
जळ बिच जलम्या ऊपर बस मकाणी हो जी ।
वां बिच खोज बतायो अविनाशी ॥ १
धन जोबन बादळां री छायां हो जी ।
थोड़े से जीणे खातर कांई जोड़ै माया ॥ २
सोनैं रूपा महल बणी हुवा छाजा हो जी ।
राज करै काया नगरी को राजा ॥ ३
ढह गया महल बिखर गया छाजा हो जी ।
बिलख रह्यो काया नगरी को राजा ॥ ४
लोहे री जंजीर में जकड़ बांध्यो हाथी हो जी ।
मंत्र घणी कोई संत न साथी ॥ ५
एक कुवै पर पांच पणिहारी हो जी ।
एक मेजू से भरै न्यारी न्यारी ॥ ६
सूख गयो नीर सूगरा सायी बाड़ी हो जी ।
बिलखी फिरै पांचूं पणिहारी ॥ ७
शीतल चन्द्र की शीतल छायां हो जी ।
राणी रूपादे हरी गुण गाया ॥ ८

(रूपादे)

[१]

इण सावणड़े हे सखी हे बोसस आये
एक बोल्या एक बोलसी एक बोलि सिधाये ॥ टेक
सासू बिना सिर धड़ा आपण दुख रोई ।
पच मिहारी पीव को मेरे संग न कोई ॥ १
एक अनारी कोहड़ी दूजी मेजू छोटी ।
नैन हमारे नीं भरै बैरी गागर फूटी ॥ २
आयो मिला सहेलियाँ सीज मेरा चोला ।
मैं चंदी योवन भरी साई है भोला ॥ ३
दुख आयो सीखियो दिन रैनी सवाई ।
माली कमिया से गयो हम खबरि न पाई ॥ ४

प्रतिष्ठा दी है जो परम पद के समान गौरवमय है। आपकी अनेक रचनाओं में 'हरिरस' एक अनुपम ग्रंथ है जिसमें महामनीषी कवि ने निर्गुण भक्ति एवं सगुण भक्ति का सुन्दर समन्वय करके 'एकोपासना' का दिव्य आदर्श उपस्थित किया है। इस ग्रंथ में ज्ञान भक्ति एवं कर्म की त्रिवेणी एक साथ प्रवाहित हुई है। कवि सम्प्रदाय के बन्धन से ऊँचा उठ कर इस प्रकार परम प्रभु का स्तुति-गान करता है—

पुजै पग ब्रिम्मन बेद पुराण । मछीयछ नाग सिए मघवाण ॥
रमै पग छांह मधूकर रिक्ख । ठवै पग नाग सरीखा तक्ख ॥
लिखम्मी पग्ग भरे उर नेह । रटै सिव बुद्ध पगां छठ वेह ॥
नमै पग छांह गोतम्म नारद । नवै पग गर्ग कपिल्ल वेदद ॥
सेवै पग सनक सनंदन सूर । अरज्जुण उद्धव श्री अक्रूर ॥
जपै पग कोटि कसप आवम्म । नवै सुखदेव जिसा वैसम्म ॥
प्रणम्मै पग्ग परम्म प्रवीत । गायत्री गोरि सावित्री सीत ॥
बुहारै पग्ग जिसा जयदेव । सेवक्क अनेक करै पग सेव ॥
हुवे पग छांह सदा हर हार । सोई पग छांह सुधन्न संसार ॥
रमै पग छांह जती गोरक्ख । इसा पग पावन तुज्झ अलक्ख ॥
भावे पग मोख्ख छांह अथाह । लिए पग छांह तणा फळ लाह ॥
भजै पग छांह जिसा कुळ सात । प्रणम्मै पग्ग सरम्मम सात ॥
सवै पग छांह सातु रिख स्याम । रवै पग छांह जिसा बलराम ॥
देवै पग सेव करै सुरदेव । वरन्नै पग्ग निरम्मळ भव ॥
देवै पग देव करै आदेस । बडा पग आप भरै परवेस ॥
पगा पूजै राह करै परमाण । सैवै पग सन्यासी सब आण ॥

इसके साथ ही भक्तराज की ईश्वरीय-अनुभूति का प्रत्यक्ष दर्शन कीजिए—

झलो जगी माधव घूंघट खोल । कियो मैं ठाको ठाकी ठोल ॥
मार्‍यो सो भागा भेस भळर । नही जिण मांझ तुहाळो नूर ॥
मझे जब मांहि न आप अझ्झ । गोविन्द तुम्हीणो लाधो गुज्झ ॥
मुकंद न पैस पकड़ा मांय । ठाको मैं कीधो उरमह ठांय ॥
रमै तू राव भुवा करि रंग । तु ही समंद तू ही ज तरंग ॥
मनोभ्रम माय तुहाळा अंस । हुम न संताप छतो पतो हुंस ॥
हुवा हिव स्वामी सेवक हेक । भोळपणै अतर रूप अनेक ॥
थया हिव हेक तुवो किम थाय । मिळ गो नीर मगोदक मांय ॥

महा कवि ईसरदास की काव्य-धारा के सम्बन्ध में स्वर्गीय ठा. किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य का वक्तव्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है—"ईसरदासजी श्री जगदीश्वर के उत्कृष्ट भक्त थे। वे किसी सम्प्रदाय विशेष के शिष्य न थे। उन्होंने अपने काव्यों में भगवान के चौबीसों अवतारों का गुणगान किया है। इतना ही नहीं किन्तु अपने 'निन्दास्तुति' काव्य में जहां उन्होंने भगवान पर अपने भक्तों को कष्ट देने का अपराध लगाया है वहां उन्होंने

हसन भौर हुसैन के कष्टों का भी उल्लेख किया है। इसी तरह हजरत मुहम्मद भौर उनकी स्त्री आयसा का भी यह कह कर स्मरण किया है कि वे जगद् पिता के परम भक्त थे तब भी उनको सन्तान के नाम पर एक पुत्र भी नहीं दिया। भक्तों की गणना में ईसा' को भी नहीं छोड़ा है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वे समस्त भक्तों को एक ही श्रेणी में मानते थे। हिन्दू मुसलमान ईसाई का भेदभाव उनके हृदय में न था। उनके काव्यों के अवलोकन से पता चलता है कि वे जितने उत्कृष्ट भक्त थे उतने ही उत्कृष्ट ज्ञानी भी थे। परन्तु भक्ति की भोर उनका विशेष झुकाव था[1]।

(हरिरस भूमिका भाग पृ ४५-४६)

सत्तरहवीं शताब्दी के राजस्थानी भक्त कवि का ऐसा उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण अत्यन्त श्लाघ्य एवं अभिनन्दनीय है। महा कवि ने कृष्ण भक्ति एवं साथ ही देवी पूजा के सम्बन्ध में भी रचना की है जिसकी चर्चा यथा प्रसंग आगे की जायेगी। राजस्थान के अनेक कवियों ने ईसरदासजी का स्तुति-गान किया है। भक्त कवि पीरदान लालस ने आपके प्रति गुरुभाव धारण कर के अपनी रचनाओं में लगभग आपकी ही पद्धति का अनुसरण किया है। उदाहरण देखिए—

> अमा तूझ उधारण आयो जगदीस मुरारी।
> नरहर मुज हरनाथ निमो निकलंक विहारी॥

मिन्वा स्तुति' काव्य के प्रसंग इस प्रकार हैं—

> हसन मारीयो विस दे हाथे माहिव मिळीयो देतां साथे।
> महिमदमा फुरजंद मारावै मजीज हुया पाणी रोडावै॥
> जिस्या बाळक मारतै तोना जीवदया नाई ज्वरलोना।
> पाछपी हुसेन मीर प्राणपीवे ऐहमन देवाबीयो प्रमल कीधे॥
> बडा धणी कोइ छाहरी वाता मवळी पायै सवळा जाता।
> प्रमप कृपण की बीबी आमा मिमुरो कोय चाइयो तमामा॥
> सत जिणि वास महमद साहो प्रासाही माहि कुप पामी।
> तै दीन सू कठिणाइ सापी रमूल तणी मोकादि न रापी॥

(सं १७२ की हस्तप्रति से पद्य संख्या २४७-२५

इस विषय में भक्त कवि माडण का एक डिंगल गीत द्रष्टव्य है—

> परस भली परस कहै पिन ईसर, संकर कहै पयाई मेस।
> सुर तैतीस कहै पिन ईसर ईसर रे पिन कहै धारेस॥ १
> तू ज तणी करणी मुखातण मित मित वधे अधिक मुग मूर।
> देवां वात अनोपम दुआ हरि पासे तू ज थे हजूर॥ २
> भगत महा तिलमे द विसभर, माम रा माम कवीक मिळै।
> तू सावे साणी कोइ ताळी मनमाडो पोटिए वळै॥ ३

कन्हैया कांनुड़ा तिमी निस्ढक मरेसर।
ग्वाळ मिमी ग्वाळिया साथ सार्थं धारमधर॥
राजि नां किसी परि रीझवां राजबडा राधारमण।
पीरियौ तूझ वासे प्रभू मूझ मिबाजै मद्दमहण॥

(पीरदान लालस भाराव)

राम भक्ति धारा एवं कृष्ण भक्ति धारा का विवरण प्रस्तुत करने से पूर्व मध्य राजस्थानी मध्यकालीन कुछ विशिष्ट भक्त कवियों की रचनाओं के नमूने दिये जाते हैं। इनकी वाणी में भगवान की महिमा तन्मयता उद्बोधन आदि का परमोज्ज्वल प्रकाश है—

[१]

भनि भपजस उपजम आवरै न कवै जस पंकजनयण।
रस उपजै नहीं तिणि रसना वाणि वादि भ्रखिया वयण॥
भयवत भगति कथा बस भणतां कपटी मसी उचरै कथा।
कुळीन योब्बत विणा कुरी गुण गुणि सार्थ ताइ कवे गुण॥
वेद सार तत भरम न माथे जपै कलपै भवर जंजाळ।
क्यू कासळ ध्रोई ताइ कविता पोट्ठ बांधे त्रिया पराळ॥

(चूंडोजी दधवाड़िया कृत चाणिक वेल)

[२]

फूलां मभे वासना तिल तेल बसाया
वैसन्नर भकड़ी पावाण जिम लोह लुकाया
थण मभे जिम खीर खीर उवरत कहाया
माठो थंबो मभ्र से तत पांच कहाया
गोरस चोपड़ एकठा वोय हेक देखाया
सूरिज बीम सजोइया जिम आग उपाया
जिम चेतन मनवा मन मझ मन मझे माया
माहर तांणी धप मुजो जिम बीज बवाया
वास मभे देव का जिम सबद सुणाया
पांणी हुदे प्रतीबिंब जिम दरपण छाया
वैवा वेना माहि नरा एह म्यान उपाया
विण चोग्यां पाया नहीं जोग्यां जिहा पाया।

(केसोदास गाडण गीसाणी विवेक वार्ता)

---

[1] मरुवाणी (जयपुर) वर्ष ४ अंक ५ में प्रकाशित।

[३]

जँई जळ में से जस्यो गज के जिरूदी ग्राह।
तब ततकार संभारियौ राधा नागर नाह॥
जिण साँई पैदा कियो सो मो पास सहाय।
अलख अगोचर ईसवर, सो क्यूं भळयौ जाय॥

(महाराजा अजीतसिंह गज-उद्धार)

[४]

त्रिभुवन को साम भगत को तारण
आधारण ब्रह्माण्ड इकवीस।
जण जण क्या कहा तू जावै
जाच एक दाता जगदीस॥ १
भूल म भटर भरोसे भ्रम भ्रम
क्रम क्रम भणी सुधारण काज।
मूरख मनख भगे की मांगै
मांग एक दाता महाराज॥ २
जुग सुख नहीं सुदामा ज्यूं ही
जनम जनम का मेट जंजाळ।
पुरख पुरख परतक सुधारवै
पारख एक भगत प्रतिपाळ॥ ३
भगतवछळ कहु क बिरद भण
चाव भाव कर कर गुण चाळ।
दीन वचन दूजा की दाखै
दाख माल सुख दीनदयाळ॥ ४

(मोपाजी भाटा)

[५]

वेर च्यार उथरे, भये साबर महाबळ।
बरे दाड़ मेदनी दस हिरणाक्ष सबळ दळ॥
रुद्र हेत बळ छळ बैर चित दुसरण बिभाड़े।
बड़े कम बस मीस पाण धांह कस पछाड़े॥
नी दीयण नियम ध्रम मारीयण मजेस माण मछर समर।
दस चित्र रूप दसता दळण हरन भयन कल्याण कर॥

(कवित दसां ही अवतारां रो हस्त प्रति से)

राजस्थान के मध्ययुगीन भक्ति काव्य में एकोपासना का जो व्यापक रूप प्रकट हुआ

है, वह विशिष्ट है। आगे राम भक्ति एवं कृष्ण-भक्ति शाखाओं के प्रमुख कवियों के सम्बन्ध में चर्चा की जाती है।

राम-भक्ति—

अति प्राचीन काल से राम-कथा भारतीय जन-जीवन में एकरस हो कर रमी हुई है। साथ ही इस महत् कथा ने सुदूर देशों तक की यात्रा कर के गौरव प्राप्त किया है। भारतीय प्रजा-जन अपने व्यावहारिक जीवन में राम-कथा के विविध पात्रों का आदर्श ग्रहण कर के धन्य होता है। इस प्रकार यह पावन-कथा भारतीय लोक-संस्कृति का मूल मंत्र है। यहां के मनीषी कवियों ने राम-कथा को आधार बना कर अपनी वाणी को अमरता प्रदान की है और यह परम्परा भारत में अति प्राचीन काल से चली आ रही है। किसी कवि ने राम को आदर्श पुरुष माना है तो किसी ने उसे परम ब्रह्म समझा है। भारत की समस्त भाषाओं का साहित्य राम की मर्यादापूर्ण जीवन-कथा से परिपूर्ण है। इसी प्रकार राजस्थानी भाषा का मध्यकालीन साहित्य भी राम-कथा विषयक रचनाओं से भरापूरा है।

श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ' में प्रकाशित अपने लेख में जैन विद्वानों द्वारा 'राम-कथा' के सम्बन्ध में राजस्थानी में लिखे गए लगभग बीसों ग्रंथों की सूची दी है। इनमें कई बड़े एवं कई छोटे भी हैं। सूची को देखने से स्पष्ट है कि कई कवियों ने सीता के चरित्र को प्रधानता दी है। इसके साथ ही इन ग्रंथों में वर्णन शैली की भी विविधता है। जैन समाज में राम चरित्र की दो विशिष्ट परम्पराएं हैं। इस में कोई आश्चर्य नहीं कि जैन कवियों ने उन्हीं परम्पराओं का अनुसरण किया है। फिर भी चारित्र धर्म एवं विद्याकुशल जैसे जैन विद्वानों ने अपनी रामायण के लिए वाल्मीकि की राम-कथा को आधार बनाया है। इसके अतिरिक्त कई कवियों ने जैन एवं जैनेतर परम्पराओं का समन्वय भी किया है। आगे इन रचनाओं में से कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

[१]

लंका में सीता :

जेहवी कमलनी हिम बळी तेहवी तनु विछाय।
आंगे आंसू नाखती धरती दृष्टि लगाय॥
हेम थाल मुंदड़ी करी हाकइ थाम दे हाथ।
सीताजी मुख मांगती दीठी दुख भर साथ॥

राम रावण युद्ध :

लग्गाइ बाजइ निसूरण मदन भेरि बहु बाजई।
राम रमाल्या रण मांहि नाहद अम्बर गाजई॥
सिंहनाद करइ लक्ष्मण हाक बक हुंकारा।
साने गरुड़ पहुंचा मुंगिवद मांहि सीता रण मझारा॥

पुढ माहोमांहि सबळो लागे हीर सड़ासड़ि लागी।
जोर करीनई दे मांरता सुभटे तन परि मागी॥

(समय सुंदर सीताराम चउपई)

स्वर्णमृग वर्णन

स्याम रयण सम शृङ्ग धवल गुम सोभम मंडित
पूंछ मधु छल ग्रीव मंमि द्युति सोभन मंडित।
लघल रोम सुकमाल नाभि कस्तूरि वासित
रमभि करन्ति रंगि चपल मति पवन प्रभ्यासित।
जो करी चरण सोभम मई कठ्ठ घुघरमालिका
पहुवी हिरणि देखी हिय हरखी सीत मरालिका।

राम का आगमन

भम्भई मुहरि नीसांख ढाम मद्दल मई बीणा
झग्गई भुंगलि भेरि बस बसि वाजई फीणा।
चूडाली चूमड़ी जड़ि सिर कलस वधावई,
पुहली सुर पिक कण्ठ गीत किन्नर सम गावई।

(धर्मविजय रामचंद्राख्यान)

अन्य कवियों द्वारा विरचित राम-भक्ति सम्बन्धी राजस्थानी ग्रंथों की अभी कम खोज हुई है। मध्यकाल में विरचित ऐसे ग्रंथों में से कुछ प्रमुख के नाम इस प्रकार हैं—

१ दसरथ रावउत — (पृथ्वीराज राठौड़)
२ राम रासौ — (माधोदास दधवाड़िया)
३ राघव सीता रास — (लोक गीत शैली में)
४ राम सीता रास — (लघु रचना)
५ पिंगळ सिरोमणि — (हरराज)[1]
६ रघुनाथ रूपक — (मंछ कवि)
७ रघुवर जस प्रकास — (किसनाजी आढ़ा)
८ गुण पिंगळ प्रकास — (हमीरदान रतनू)
९ हरि पिंगळ — (जोगीदास)
१० करुणा बत्तीसी — (शिवसेन)
११ सीत पुराण — (अलखनामी सम्प्रदाय)
१२ रामरास — (रघुनाथ)

---

[1] 'पिंगळ-सिरोमणि' ग्रंथ हरराज की रचना के नाम से (परम्परा भाग १३) प्रकाशित हुआ है परन्तु इसे कुशललाभ विरचित माना जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में प्रति मात्रा में साहित्य-निर्माण हुआ है। यह साहित्य-सामग्री भारत की जनता के लिए अमृत-संजीवनी सिद्ध हुई है और इससे जन जीवन विशेष रूप से सरस हुआ है। अन्य प्रान्तों के समान राजस्थान में भी कृष्ण भक्ति की भगवती धारा प्रवाहित हुई है और यहां के अनेक कृष्ण भक्त कवियों की वाणी ने वातावरण को अमृत मय बना कर सफलता प्राप्त की है। श्री कृष्ण की ब्रज लीलाएँ विशेष रूप से कवि-वाणी को मुखरित करने के लिए अनुप्रेरक बनी हैं परन्तु राजस्थानी कवियों ने उनके उत्तर जीवन को भी कम महत्व नहीं दिया है और उनके दुष्ट-दल-संहारक एवं रुक्मिणी-उद्धारक रूप का वर्णन कर के प्रचुर काव्य-रचना की है। असल में श्री कृष्ण का यह रूप मध्यकालीन राजस्थानी जन-जीवन के लिए विशेष अनुकूल रहा है। इस युग में राजस्थानी जनता भारत लक्ष्मी के उद्धार के लिए सतत बद्ध परिकर रही है और यही कारण है कि दुष्ट दल के घेरे में फँसी हुई रुक्मिणी का उद्धार करने वाले श्रीकृष्ण उनके इष्टदेव बने हैं। रुक्मिणी की यह स्थिति सीता के लगभग समान ही है अतः श्रीराम के तुल्य ही श्रीकृष्ण भी भारतीय जननायक के रूप में मार्ग-दर्शक सिद्ध हुए हैं। विशेषता यह है कि श्रीकृष्ण के इस रूप से सम्बन्धित काव्य यहां अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं। उनकी बहुत अधिक प्रतियां तैयार हुई हैं। उन पर अनेक प्रकार की टीकाएँ लिखी गई हैं और घर-घर में उनका पाठ अथवा गायन करने की पुण्यमयी परम्परा चली है। इस प्रकार की कुछ प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं।

१ वेलि क्रिसन रुकमणी री	—	(पृथ्वीराज राठौड़)
२ रुकमणी हरण[1]	—	(सायाँ झूला)
३ रुकमणी वीवाहलो	—	(पदम तेली)
४ कुण विदे ब्याह	—	(मुरारदास)
५. क्रिसनजी रो विवाहलो	—	(जसनाथी सम्प्रदाय)

आगे इन काव्यों में से कुछ चुने हुए उदाहरण दिए जाते हैं—

[१]

रुक्मिणी संदेश

कळिश बएा मूक स्याळ सिंघ कळि
प्रासै जो बीजी परणै।
कपिल धेनु दिन पात्र कसाई
तुलसी करि चण्डाळ तणै॥

(वेलि पृथ्वीराज राठौड़)

---

[1] एक अन्य 'रुकमणी हरण' काव्य की सूचना इस प्रकार है —
"कच्छमां रह वसेला कवि भूला एनी अप्रगट रचना 'रुकमणी हरण' ये सारु काव्य छे।" (चारणो अने चारणी साहित्य पृ ५६)

राजस्थान में यह परम्परा रही है कि पिंगल शास्त्र की रचना करते समय कविता के उदाहरणस्वरूप राम-कथा का गायन किया गया है। इस प्रकार विद्वानों ने 'एक पंथ दो काज' की कहावत को चरितार्थ किया है और राम-कथा का वर्णन विविध राजस्थानी छंदों में प्रकट हुआ है। पिंगळ सिरोमणि रघुनाथ रूपक रघुवरजस प्रकास गुण पिंगळ प्रकास हरि पिंगळ आदि ऐसे ही छन्द-शास्त्र विषयक ग्रंथ है। 'करुणा बत्तीसी' रामभक्ति सम्बन्धी एक लघु रचना है जो अभी शोध पत्रिका (११/२) में प्रकाशित हुई है। 'सीत पुराण' चरणदासी सम्प्रदाय की विशिष्ट रचना है।

आगे इन रचनाओं में से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

[१]

आइयो महिमा आख ताहरि रघुकुळ का तिलक।
पोत थयो पाखाणा चीलै दसरथरावउत ॥
करि अम्बाहरि करागि वर रावण मीतर वटा।
सिवी तुम्हां री साय वामिणि दसरथरावउत ॥
प्रभु ताई किया प्रवीत आइ समरपिया सखवर।
गाइ कवित्त ग्रंथ गीत हुआ दसरथरावउत ॥

(पृथ्वीराज राठौड़)

[२]

सीताहरण।

लखमण सूना झूपड़ा सीता चोर पइठ।
वर भण दीठी नाह विण वण विण नाह न दिठ ॥
तरि तरि पेख न कमपलव सर सर हंस न सोभि।
कुसळ न लखमण जानकी नदि नदि बिहुड़ न जाभि ॥
मणि मणि सीत पुभाम बन बन खिण खिण विचरतो।
ब्यापै राम विराम जळ तोई थळ माछ जिम ॥

(माधोदास रामरासो)

[३]

विभीषण शरणागति

समुद्र उतरि रघु राम ताम बभीसण आए।
अंगद सुभट सु आदि हणु तब राम मिळाए ॥
आव आव अकेस देसपति पदवी दवी।
बचन रचन करि मिळण सरण रह कुळ र न सवी ॥
रघुपति मंत्रि परवत सिखर उरत पतर जिम कमल पर।
सरवर महि मिसवार हुवत रघुवर मिसवर चढ सवर ॥

(पिंगळ सिरोमणि)

[४]

जटायु उद्धार

तरवर मन सिखर जोवतां सरतर
कर सारंभ तुणीर कर।
बर लोहा पीठो अंग रघुबर
परधर पडियो मरण धर॥ १
गत जिण मैं पूछी सहू अवगत
रत मावा किण काज रत।
सतवती सीतां वारै सत
पत हूं भिड़ियो लंक पत॥ २
करणनामी हम सुणी बिकलकरण
करण जटायू भर अंक करण।
मरण प्रिय गोद मरै पतिभिमरण
मरणभर छवरी हरम मरण॥ ३
भवतां राम मुखाण भया भव
भव दुख काटे जीव भव।
भव सागां फिर राम रसरण भव
रवबंसी हम नहीं रव॥ ४

(रघुनाथ रूपक)

राजस्थानी में विरचित राम-कथा सम्बन्धी ग्रंथों में जहाँ नाना प्रकार का छन्द-विधान एवं गीत चर्चा (जिसमें अनेक 'वेलियाँ' भी सम्मिलित हैं) मिलती हैं वहाँ अनेक परम्पराएँ एवं उनका सुन्दर समन्वय भी द्रष्टव्य है। इसके साथ ही कथानक सम्बन्धी अनेक नवीन उद्भावनाएँ भी हुई हैं। इस प्रकार राम-कथा के विस्तृत अध्ययन के लिए राजस्थानी भाषा में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रचुर सामग्री प्राप्त है। अभी तक इस दृष्टि से इस सामग्री का अध्ययन नहीं हो पाया है और ऐसा किया जाना नितांत उपयोगी तथा वांछनीय है।

इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक भक्त कवियों की फुटकर रचनाएँ भी हस्त प्रतियों में बिखरी पड़ी हैं जिन्होंने राम का गुणगान करके अपनी वाणी को धन्य किया है। यह सामग्री अत्यंत सरस एवं प्रेरणादायिनी है। इसके संकलन की आवश्यकता है। यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

[१]

सहस ज्वाण असमेध सहस सर अभिल सयवति।
सहस भादि सौं वारि सहस बेनका सवपति॥
सहस मार सोवन सहस भूमि स भौमी।
सहस सौवग सहस अरण्य स रौमी॥

अठसठि तीरथ अवगाहि अनि धर्म चाहि हेकणि घड़ै ।
श्रीराम नाम जेठो सकळ अवे वणी भरि ऊपड़ै ॥

(बारहट मांदण)

[२]

पिता धरम प्रतिपाळ बसन बनवास सीतवर ।
हरण सीत दिय चाव पाज बांधी सिरोवर ॥
बहे कम दस सीस बीस भाहुत दसहुँ दिस ।
अमर सुजस उररे आप दिण दीए सूर दिस ॥
जिण नाम पार पामै जगत मझ काळ माहे कठण ।
श्रीराम वीर रघुवंस वर, रामचंद सीतारमण ॥

(प्राचीन हस्त प्रति से)

[३]

किति किरन विधुरिय करीय अरि तिमिर निसाचर ।
कुमुद मुदित मन मलिन मुख नलिन आनंदकर ॥
अरि चकोर सतपत चपत जस चक्रवाक सुर ।
मकरन विषय छम गय असोक भयसोक त्रिविध पुर ॥
रावन उलूक मुख मूक हुव अंध नयन आसान घट ।
श्री रामचन्द्र दिनकर दरस कौसल्या प्राची प्रकट ॥

(मसूजी कविया)

ऊपर दिए गए विवरण से प्रकट है कि राजस्थानी में राम भक्ति विषयक बड़ी ही सरस एवं बलदायक रचनाएँ प्रचुर परिमाण में हुई हैं। रामचन्द्रजी ने राक्षस दल का दमन कर के 'रामराज्य' की स्थापना की थी। मध्यकालीन राजस्थानी जन-जीवन की यही एकमात्र मूल प्रक्रिया रही है। यहां की प्रजा ने अपनी गौरवमयी संस्कृति की रक्षा के लिए असाधारण त्याग एवं बलिदान किया है। इसके लिए राम चरित्र का आदर्श ग्रहण किया जाना सर्वथा स्वाभाविक है। साथ ही यहां के कई राज-वंश रामचन्द्रजी से सीधे सम्बन्धित हो कर अपने को गौरवशाली मानते रहे हैं। करणीदानजी कविया ने अपने विशाल ग्रंथ 'सूरजप्रकास' में मारवाड़ राजवंश के प्राचीन पूर्वजों का वर्णन करते हुए प्रसंगवश रामचन्द्रजी की चर्चा में एक छोटी सी रामायण ही लिख डाली है। ऐसे कई कारणों से राजस्थान के कवियों का ध्यान राम-कथा की ओर विशेष रूप से गया है। इन कवियों की वाणी द्वारा राम-चरित्र का ओज-तेज प्राप्त करने के लिए जन-साधारण को प्रबल प्रेरणा प्राप्त हुई है।

कृष्ण-भक्ति—

भारतीय प्रजा ने श्रीकृष्ण में मानवीय गुणों का चरमोत्कर्ष देख कर 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' की दृढ़निश्चयपूर्वक स्थापना की है और यहां षोडश कला के अवतार

भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में प्रति मात्रा में साहित्य-निर्माण हुआ है। यह साहित्य-सामग्री भारत की जनता के लिए अमृत-संजीवनी सिद्ध हुई है और इससे जन जीवन विशेष रूप से सरस हुआ है। अन्य प्रान्तों के समान राजस्थान में भी कृष्ण भक्ति की वेगवती धारा प्रवाहित हुई है और यहां के अनेक कृष्ण भक्त कवियों की वाणी ने वातावरण को अमृत मय बना कर सफलता प्राप्त की है। श्री कृष्ण की ब्रज लीलाएँ विशेष रूप से कवि-वाणी को मुखरित करने के लिए अनुप्रेरक बनी हैं परन्तु राजस्थानी कवियों ने उनके उत्तर जीवन को भी कम महत्व नहीं दिया है और उनके दुष्ट-दल-संहारक एवं रुक्मिणी-उद्धारक रूप का वर्णन कर के प्रचुर काव्य रचना की है। प्रसल में श्री कृष्ण का यह रूप मध्यकालीन राजस्थानी जन-जीवन के लिए विशेष अनुकूल रहा है। इस युग में राजस्थानी जनता भारत-लक्ष्मी के उद्धार के लिए सतत बद्ध परिकर रही है और यही कारण है कि दुष्ट दल के घेरे में फँसी हुई रुक्मिणी का उद्धार करने वाले श्रीकृष्ण उसके इष्टदेव बने हैं। रुक्मिणी की यह स्थिति सीता के लगभग समान ही है, अतः श्रीराम के तुल्य ही श्रीकृष्ण भी भारतीय जननायक के रूप में मार्ग-दर्शक सिद्ध हुए हैं। विशेषता यह है कि श्रीकृष्ण के इस रूप से सम्बन्धित काव्य यहां अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं। उनकी बहुत अधिक प्रतियां तैयार हुई हैं। उन पर अनेक प्रकार की टीकाएँ लिखी गई हैं और घर-घर में उनका पाठ अथवा गायन करने की पुण्यमयी परम्परा चली है। इस प्रकार की कुछ प्रमुख रचनाएँ निम्नांकित हैं।

१ वेलि क्रिसन रुकमणी री	—	(पृथ्वीराज राठौड़)
२ रुपमणी हरण[1]	—	(सायां झूला)
३ रुकमणी वीवाहलो	—	(पदम तेली)
४ पुरुष मिर्ज़ ब्याह	—	(मुरारदान)
५. किसनजी रो विवाहलो	—	(जसनाथी सम्प्रदाय)

आगे इन काव्यों में से कुछ चुने हुए उदाहरण दिए जाते हैं—

[१]

रुक्मिणी सदेश

वळिअम्मण मूझ स्याळ सिंघ वळि
प्रासे जो बीजो परणे।
कपिल धेनु दिन पात्र कसाई
तुलसी करि चण्डाळ तणे॥
(वेलि पृथ्वीराज राठौड़)

---

[1] एक अन्य 'रुपमणी हरण' काव्य की सूचना इस प्रकार है —
"कच्छरां अर बरोला कंभा झूला एनी अप्रकट रचना 'रुपमणी हरण' के साथ् नाम्य छे।" (चारणो अने चारणी साहित्य पृ २६)

[२]

देवी पूजन की यात्रा

सीकसत मेटवा देवळ दिस संचरी ।
पालखी पूज रै साज बहु पर वरी ॥
मेघमाळा चढ़ी सोमरथ सारथी ।
पीजरै मंच रै मरद री पालखी ॥

(रुकमणी हरण सायांजी झूला)

[१]

बिदाई

परिणाय गई हूँ पाई साम् रांम राखी रेख ।
वस पड़ही त्रिभुवनं भाखो वईठ खड्ग उवेख ॥
मानवी मांहि नाम राखी मोमता बरण भूर ।
सिसिपाल कंध निवंदवा परमल्पा सीमुखि सूर ॥

(विवाहलो पदम तेली)

इन ग्रंथों में महा कवि पृथ्वीराज विरचित 'वेलि' एक अनुपम रचना है। इस में भावों का चढ़ाव एवं अर्थ-गौरव आश्चर्यजनक है। इस ग्रंथ का बहुत अधिक प्रचार हुआ है और इसके सम्बन्ध में अलग ही एक साहित्य तैयार हो गया है। इसी प्रकार पदम तेली विरचित 'वीवाहलो' काव्य तो इतना लोकप्रिय हुआ कि वह राजस्थानी जन-काव्यों की श्रेणी में सम्मिलित होकर आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित हो गया है। साथ ही ध्यान रखना चाहिए कि इन ग्रंथों में नायक-नायिका के विवाह का प्रसंग उपस्थित होने के कारण इन में काव्य-परिपाटी के अनुसार शृङ्गार रस की धारा भी प्रवाहित हुई है परन्तु इसका मूलाधार भक्ति-रस ही है जैसा कि प्रारम्भ में वेलि में कवि-मुख से प्रकट हुआ है—

प्रारम्भ मैं किमो वेणि उपायी
मागण गुणनिधि हूँ निगुण ।
किरि कठपीन पूतळी जिम करि,
चीतारै कामी चित्रण ॥
जिण बीज जनम थपि मुखि दे बीड़ा
क्रिसन जु पोखण भरण करी ।

---

[1] इस विषय में विशेष जानकारी के लिए 'राजस्थान-भारती' (बीकानेर) का पृथ्वीराज राठौड़ अंक द्रष्टव्य है ।

[2] यह काव्य अपने प्राचीन मूल रूप में राजस्थान साहित्य समिति बिसाऊ से प्रकाशित हो चुका है ।

कहण तणौ तिणि तणौ कीरतन
समं कीधा बिणु केम सरै ॥
(पृथ्वीराज बेलि २७)

इसी प्रसंग में पृथ्वीराज राठौड़ के पूर्ववर्ती कवि सांखला करमसी विरचित 'किसनजी री बेलि[1]' की चर्चा भी आवश्यक है जिन्होंने अपनी लघु रचना में रुक्मिणी के 'नखसिख' मात्र का वर्णन कर के अंत में अपना मूल उद्देश्य इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है—

रूप सवरण गुण तणी रुखमणी
कहिवा सांमरथिक कुण।
जाणिया जिसा तिसा मइ जपीया
जोइज्यो राणी तणा गुण ॥

इसके साथ ही पृथ्वीराज विरचित कृष्ण-स्तुति के कुछ दोहे भी द्रष्टव्य हैं—

रच बणियौ पंजराव वामै मझ रावा वणी।
बीच ताहू रो बणाव बणियौ वसदेरावउत ॥
महारी पई मुरारि, गोविन्द तू जागी गुणां।
धुनियारबी संसार, जाणी वसदेरावउत ॥
गोविंद बिन तुझ गाव जाहि बके बदरीस बर।
जिसा सरीखा नाव वासर वसदेरावउत ॥

श्रीकृष्ण के ब्रज-जीवन सम्बन्धी राजस्थानी काव्य की चर्चा भी आवश्यक है। इस विषय में अभी शोध कम हुई है। महाकवि ईसरदास का 'बाललीला काव्य' प्रसिद्ध है। यहां उदाहरणस्वरूप सायां झूला के 'नागदमण' काव्य पर विचार किया जाता है। इस रचना में भक्ति वीर, वात्सल्य करुण आदि विविध रसों की धाराएँ प्रवाहित हुई हैं और इसे अत्यधिक लोकप्रियता भी मिली है। यह डिंगल की प्रासादिकता एवं ओज का एक सुन्दर नमूना है। काव्य के कुछ पद्य देखिए—

विहाणे नवे नाथ जागो वहेला।
हुआ दौड़िवा बैन गोपाळ हेला ॥
जमाडे जशोदा जदूनाथ जागी।
महीमाट घूमे मवे नद्र मागो ॥

×

हुई नंद री पेल गोवाळ हेळा।
मिळे बाळका जाणी भी वग मेळा ॥

---

[1] मरुवाणी (जयपुर) के वर्ष ४ अंक १२ में प्रकाशित।

करे मेर मीसार माथे प्रहट्ट ।
जिकेली उमट्टीय सामद्र उट्ट ॥

×

माल्ही भ्राकळो मामिल्यां लेभ मातो ।
रमे सग गोवाळिया रंग रातो ॥
मिळे भोट सामोसमी वोट माथे ।
हुई दूम मस्सां उसी हेळ हाथे ॥

स्थानाभाव के कारण अधिक उदाहरण नहीं दिए जा सकते । नाग-दमनकारी बालक कृष्ण का यह लीला-काव्य राजस्थानी की एक असाधारण रचना है । इसमें रसधारा का ऐसा प्रवाह है कि स्वाभाविक रूप से पाठक उस में आप्लावित होकर ब्रह्मानन्द-सहोदर काव्यानंद प्राप्त करता है । राजस्थान एवं गुजरात में यह काव्य इसी विशेषता के कारण दैनिक-पाठ की वस्तु रहा है । खेद है कि ऐसे अनुपम काव्य का अभी तक कोई सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित नहीं हो पाया है, जिसकी नितान्त आवश्यकता है । 'नागदमण' राजस्थानी का गौरव-ग्रंथ है ।

श्रीकृष्ण के ब्रज-जीवन से सम्बन्धित कुछ फुटकर रचनाओं के नमूने भी द्रष्टव्य हैं—

एकरिण एक कहे पणिहारी
इस मुरा तटि छांडि बिहारी ।
हे हिरणाखी कौतिक हारी
हाथि मरे हरि हेरण हारी ॥ १
सीच वीयंत सहेल सहेली
बारि भरे भरि हास बहेली ।
मोभ्यंत रूप विमोही पहेली
हेला कौमा सु सांभळ हेली ॥ २
सांभळ वेण मन सा बसी
बारसि आंप महु पर बसी ।
तब भग कोई बोल आवसी
भरि भरि बेर हुसी घर बसी ॥ ३
बोलंतां प्रिय कहे आवंती
भव सपूरति कूम भावंती ।
कामणि कांन्ह सरस कुळवंती
बिहुं बाट तणी इयवंती ॥ ४

(हस्त प्रति से)

पथिक नाम मथुरा कहे आवनांपती नू
आप रा मिलण नू बात उर री ।

आय गोकल मही सेर सुर मनोजा
मया कर सुणावो फेर मुरली ॥ १
सुरभियां चरावो संग सावो सखा
बैस धावो कदम तणी छांही ।
गोप हित वेस भावो चरित पेम रा
मुरळिका वजावो गोप मांही ॥ २
मटक गोपी मही वांख उचरावजे
पावजै प्रमर रस मोरधन पास ।
धर मुकट मुकट बन बीचियां भावजै
बांसरी बावजै महीरा बास ॥ ३
पुलिण रविसुता फहरावजै पीत पट
भावजे रास बळ ब्रजनाथ भाव ।
कानकवार विहरि गळी ब्रज कज री
सुम रखी कीजियै बाहसी साथ ॥ ४

(बांकीदास)

पुरानी हस्त प्रतियों में श्रीकृष्ण भक्ति विषयक अत्यधिक सरस सामग्री बिखरी पड़ी है। इसका अभी संग्रह नहीं हो पाया है। यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

[१]

पवन वास मधकर पुहप मन मानिक रसी।
मल नीर बर्दास चीर, प्रेम मैन समुझी ॥
कीट पट्ट तस मन कपट कमपतर नीची कढ़ीयौ।
मन्त मारि गुन मन विकार मळय महि विसताहि मळीयौ ॥
सोचे विचारे ओपा छह बसूहन को परगुरेह मन।
किरिण सुगति तुम्ह चीतो कहै करौं केम सेवा किसन ॥

(चूडाजी)

[२]

देवराज परि दसा न पा दूतेस मझारहि।
नाग सेस परिण मही न पा जमराज दुवारहि ॥
पुहुरवा घूमतै मह कर भैमह बाढे।
दमि गिरिवर डोगीयो पवन धूमीयो पमाढे ॥
परभुत चरित भ्रम मनरै पूरण डोप चीर को।
माणह भयो मममो भगु देख्यो नन्द महीर को ॥

(मगूजी)

[१]

कृस्न कंस निरदळण कृस्न पूतना पहारण।
कृस्न देव देवाम कृस्न गोवरधन धारण ॥
कृस्न इम्द्र बळि मथन कृस्न सिसपाल बिमाडण ।
कृस्न नाग नाथीयण कृस्न गजराज पछाडण ॥
पंडवां हेत भारथ प्रबळ बहल छेल बैराट बर ।
प्रवतार बहु प्रसरण सरण कृस्न भगत कल्याण कर ॥

(हस्त प्रति से)

बोलचाल की राजस्थानी में श्रीकृष्ण-भक्ति सम्बन्धी जो अगणित गेय पद विरचित हुए हैं अभी उनकी चर्चा नहीं की गई है। यह पदावली बड़ी ही सरस है और राजस्थानी जन-जीवन में रमी हुई है। इस पर विचार करते ही भक्ति की साक्षात् मूर्ति मीरांबाई के दर्शन होते हैं। मीरांबाई ने श्रीकृष्ण में लीन होकर परम प्रेम के जो स्वाभाविक उद्गार प्रकट किए हैं उनकी महिमा समस्त भारत के लिए गौरव की वस्तु है। मीरांबाई की पदावली के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इन संग्रहों की पदावली में मीरांबाई के अपने 'बोल' कहां तक सुरक्षित है यह एक विकट समस्या है। मीरांबाई ने पद लिखे नहीं थे उन्होंने तो गाए थे। वे अपनी सरलता के कारण जन-साधारण के कण्ठहार बन गए और समयानुसार उनमें परिवर्तन तथा परिवर्धन होता गया। इस विषय में न्यायमूर्ति हरसिद्धभाई, वजुभाई दिवेटिया महोदय की सम्मति ध्यान में रखने योग्य है—'मीरांनां पदोनी भाषा तेमा काळनी डॉक्टर टेसिटोरी जेने 'पश्चिमी राजस्थानी' कहे छे, ते हती। मेवाडनी ए विषमा गुजरातीए ते काळनी ए पश्चिम राजस्थानीमां ज पोतानां पदो गायां छे। मीरांनां प्रसिद्ध थई उपलब्ध थयेला पदो हाल हिंदीमां हिंदी-गुजरातीमां या तो गुजरातीमां छे। एक मत एवो छे के मीराए मात्र हिंदीमा ज लख्युं होय पण उत्तरवयमां अवसान पर्यंत द्वारका निवास स्वीकारी एमणे हिंदी-गुजराती या गुजरातीमां पण लख्युं होय एवो बीजो एक मत प्रचलित छे। आ बे मतनुं समाधान एम थई शके के (१) एक तो मीरां ने तेनां पदो राजस्थान अने गुजरात बन्नेमा लोकप्रिय थाये ताबे ज थयां अने (२) बीजुं गुजरातनी सीमाओ त काळ राजस्थानमां समावेस करे एटली विस्तृत हती। पश्चिम राजस्थानीना अने जूनी गुजरातीना स्वरूपनी एकरूपताना आ कारण होय। पश्चिम राजस्थानी के जूनी गुजरातीमा लखायेली मीरानी लोकप्रिय कवितानुं हिंदीओ उत्तरोत्तर हिंदीकरण अने गुजरातीओ गुजरातीकरण करता गया। मीरांबाईनी कवितानी भाषानुं आम भाषान्तर अने रूपान्तर थनुं शक्युं लागे छे।

(मीरां अने नरसिंह)

मीरांबाई के पद जिस प्रकार गुजरात में गुजराती भाषा में गाए जाते रहे हैं उसी प्रकार नरसीजी के पद राजस्थान में राजस्थानी भाषा में लोक-प्रचलित हैं परन्तु अभी तक उनका संग्रह नहीं हो पाया है। इस प्रकार नरसीजी की जीवन-गाथा और उनकी वाणी

भले ही वह परिवर्तित रूप में हो राजस्थान में प्रेम और श्रद्धा के साथ रमी हुई है।[1] राजस्थानी जन-जीवन से नरसीजी को अलग नहीं किया जा सकता भले ही साहित्य के इतिहास में उनका उल्लेख न हो। आगे मीरांबाई और नरसीजी का एक-एक पद उदाहरण स्वरूप अपने प्रचलित रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

[१]

उड ज्यावो ए म्हारी सोनचिड़ी ॥ टेक
काहे सैं मढावूं थारी प्रांख पांखड़ली काहे सैं मढावूं थारी चांचड़ली।
रूपै सैं मंढावूं थारी प्रांख पांखड़ली सोनै सैं मढावूं थारी चांचड़ली।
कहो म्हारी चिड़ी शुगन की बातां कद आवैला म्हारा स्याम धणी।
मीरांबाई गावै प्रभु गिरधर नागर, बाट जोवूं थारी कद की खड़ी।

[२]

थुरयां ना सरै नंदलाल रुस्यां ना सरै नंदलाल ॥ टेक
गाय चुवाई मैं गई रे कान्हा बछड़ा रहुपा ए रंभाय।
बामण की बैठा भई रे, बावै नंदजी को कॅवर रसाय ॥ १
ना से मैया लाकड़ी ए मैं तो ना ए चराबूं तेरी गाय।
सूखी रोटी मोम की ए मैया ने घीमो घी चिपटाय ॥ २
मक्खन भर घू बाटको रे कान्हा रोटी घू बिच लिपटाय।
नरसीलो स्वामी साथ घू रे थारी सेवा तो करैगो जग माय ॥ ३

राजस्थान में 'मीरां का प्रभु गिरधर नागर' के समान ही 'चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि' वाले पदों का भी अत्यधिक प्रचलन रहा है। चन्द्रसखीजी के नाम के पद ब्रज की अपेक्षा राजस्थान में कहीं अधिक हैं और वे जन-जीवन मे रमे हुए हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि संभवतः चन्द्रसखीजी राजस्थान में रहे हों और उन्होंने यहां की जनवाणी में भी अपनी भक्ति के उद्गार प्रकट किये हों। कालान्तर में उनकी पदावली में भी परिवर्तन एवं परिवर्धन होना स्वाभाविक है क्योंकि लोक-प्रचलित सामग्री में ऐसा होता ही रहता है। इस विषय में ऊपर दिए गए उदाहरण प्रमाणस्वरूप हैं। आगे चन्द्रसखीजी के नाम का एक पद उदाहरणस्वरूप प्रचलित रूप में दिया जाता है—

---

[1] नरसीजी के सम्बन्ध में रतना खाती द्वारा बनाया हुआ 'नानीबाई को माहेरो' नामक काव्य राजस्थान में लोक-काव्य का रूप धारण कर चुका है और उसकी कथा करवाना यहां एक पुण्य-काम समझा जाता है।

विषय की अधिक जानकारी के लिए 'मरुभारती' वर्ष १ अंक २ में प्रकाशित लेखक का 'राजस्थानी लोक-जीवन में नरसी मेहता' शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

हरि सैं प्रीत करी मन पछतावियो हे लोय ।
प्रभु सैं प्रीत करी मन पछतावियो हे लोय ॥ टेक
हे सखी मैं तो बाज्यो बेटो राव रो हे लोय ।
यो तो मौसर आयो माया रो भुलाळियो हे लोय ॥ हरि
हे सखी मैं तो बाज्यो फूल गुलाब रो हे लोय ।
यो तो मौसर आयो रोहीड़ा रो फूल हे लोय ॥ हरि
हे सखी मैं तो बाज्यो सोनो सोळवों हे लोय ।
यो तो मौसर आयो असल कथीर हे लोय ॥ हरि
हे सखी मैं तो बाज्यो पाणी पातरो हे लोय ।
यो तो मौसर आयो भूरियो बाजड़ो हे लोय ॥ हरि
हे सखी चतरसखी री आ बीनती हे लोय ।
गुण गावै थ्यां रे बैकुंठा रो वास हे लोय ॥ हरि

इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक कवियों ने बोलचाल की राजस्थानी में पद रचना कर के कृष्ण भक्ति की धारा प्रवाहित की है। उदाहरणस्वरूप पीयूषवर्षी बख्तावर का एक पद प्रस्तुत है—

थणा बिन बीस्यावी बिहारी म्हारा राज
 थोळमूं थारी आवै ॥ टेक
थोळमूं थारी आवै अन्न न भावै
 नैणां म्हांनैं नींद न आवै ॥ थणा
तनडै को काळो बडो अनभागी
 कपटीड़ो कपट चलावै ॥ थणा
जमना कै तीरां-तीरां धेन चरावै
 मुखड़ै सैं मुरली बजावै ॥ थणा
कहै बख्तावर, सुणो बजनंदजी
 थां बिन घड़ी न सुहावै ॥ थणा

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजस्थानी का श्रीकृष्ण भक्ति सम्बन्धी साहित्य बड़ा विशाल एवं अत्यन्त रसपूर्ण है। इससे राजस्थान का जन-जीवन बड़ा प्रभावित हुआ है।

दुर्गा भक्ति—

शक्तिपूजा भारतीय संस्कृति का विशिष्ट उपकरण है। राजस्थान सदा से शक्ति का पुजारी रहा है। यहां के प्राचीन देवालयों एवं शक्ति के अनेक रूपों की प्रतिमाओं से यह तथ्य स्पष्ट प्रकट होता है। यहां बहुत बड़ी संख्या में शक्ति के 'स्थान' हैं। दुर्गा-पूजा के दिनों में राजस्थानी जनता के हृदय में अपार उत्साह हिलोरें लेने लगता है। घर-घर में ज्योति के दर्शन कर के नाम धन्य होते हैं। यात्राएँ प्रारम्भ होती हैं। सब चल पड़ते हैं। गीतों से वातावरण गूंजने लगता है। यही स्थिति यहां सम्प्रदाय में भी रही है। पुराण-कथाओं में

दुर्गा के अनेक नाम एवं रूप हैं। राजस्थानी प्रजा उनकी उपासना कर के गौरवान्वित हुई है। इनके अतिरिक्त यहाँ अनेक देवियों के नए नाम भी प्रकट हुए हैं जिनकी चर्चा प्राचीन ग्रंथों में दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार जैन-समाज में भी शक्ति की उपासना कम नहीं रही है। महालक्ष्मीजी श्रीमाल जैनों की कुल देवी है। पोरवालों की कुल देवी अम्बिका है। ओसवाल लोग सचियाई देवी को अपनी कुल-देवी के रूप में पूजते हैं। इसी प्रकार अन्य भी अनेक देवियां हैं। चारण जाति तो अपने आपको शक्ति की संतान ही मानती है। इस जाति में 'चोरासी चारणी' देवियों का अवतरित होना प्रसिद्ध है। इनमें आवड़जी चाहणदे महमाय बाईराय करणीजी आदि थे कुछ नाम उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस प्रकार राजस्थान के सभी वर्गों के लोगों में शक्ति-पूजा का विशेष प्रचार रहा है।

शत्रुओं से अपनी संस्कृति की रक्षा करने के लिए तत्पर समाज के लिए शक्ति-पूजा एक आवश्यक गुण है। मध्यकालीन राजस्थानी समाज का यही गुण यहाँ के साहित्य में भी एक विशिष्ट धारा के रूप में प्रवाहित होता रहा है। राजस्थानी प्रजा अपने व्यावहारिक जीवन में शक्ति की उपासक थी तो यह स्वाभाविक है कि यहाँ के साहित्य में भी तदनुसार ही भाव-धारा उमड़ी। इस विषय में यहाँ अनेक रचनाएँ तैयार होती रही हैं भले ही वे मौलिक हों या अनुवाद रूप में हों। इनके साथ ही शक्ति के अनेक रूपों के सम्बन्ध में जो फुटकर गीत कवित्त दोहे आदि लिखे गए हैं उनकी तो अभी तक गिनती भी नहीं की जा सकी है और यह शक्तिपूर्ण साहित्य-सामग्री अनेकों हस्त प्रतियों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है।

मध्यकाल में विरचित अथवा अनूदित देवी भक्ति सम्बन्धी प्रमुख राजस्थानी रचनाओं की निम्न सूची ध्यान में रखने योग्य है—

१ सप्तशती रा छंद – (खीवर)
२ देवी सातमी – (कुशललाभ)
३ भवानी छंद – (कुशललाभ)
४ देवियाण – (ईसरदास)
५ गुण हिंगळाज रासो – (पीरदान)
६ त्रिपुर सुन्दरी री वेलि – (जसवंत)
७ माताजी रा छंद – (सबराज)
८ देवी विलास – (लघराज)
९ दुर्गापाठ भाषा – (महाराज धर्मसिंह)
१० चावण्डजी री माता[1] – (कृपाराम)
११ भवानी कवच – (रामदान)

---

[1] मरुवाणी (जयपुर) वर्ष ४ अंक १ पृ० ११ के अनुसार।
राजस्थानी सबद कोश भूमिका खण्ड पृष्ठ १५२।

[१]

माई आठमी महि निस उर अंतर, रटपाठ श्री रांणी ।
मगगु आवै आवै भाई बजबद हुए जगिणीयोणी ।।
ताग त्रिपुरा अमें तोतमा गोम उतारस गंगा ।
ताहरै भजन बिना नहि तरीस्यै तरीया सुभळ तरणा ।।
जोगी अम्बर जगत मोह आयी कनिया अकथ कहांणी ।
जागी संभु तणी घर जोगणि इंद्र वरै इंद्राणी ।।
पार कोण ताह रो पावै बेद चहूं बखांणी ।
गुणमति धार ताहरा गावै बेणी एकण वांणी ।।
माई मोठमी महि निस उर अंतर ।।
(बेणीदास री कही माजन चिमर्मसिरोमणि)

राव जैतसी द्वारा संकट के समय की गई करणीजी की स्तुति इस प्रकार है—

जैत कमंध कर जोड़ियां कीहा एह अपत ।
करनल्ल रिणमल वाचरी पाळ करो मिळपत ।।
पाळ करो मिळपता वेग मेह कीजिये ।
जैता सरणै राज उबारै लीजिये ।।
मियां संघ मब साल सकतियां मूमरां ।
आवो करना देव उबारण आपरां ।।

राजस्थानी कवियों ने देवी के रौद्र रूप के समान ही सौम्य रूप का भी स्तवन किया है। इस विषय में पार्वती सम्बंधी रचनाओं पर विचार करना आवश्यक है। राजस्थान में गौरी-पूजा (गणगौर) को विशेष महत्व दिया जाता है। पार्वती विषयक रचनाओं में शिव-विवाह का प्रसंग आता है। इस सम्बंध में यहां अनेक ग्रंथ बने हैं और वे लोकप्रिय हुए हैं। इनमें नाथपंथ का प्रभाव भी लक्षित है क्योंकि इनमें गौरी पूजा के साथ ही शिवोपासना भी है। इस विषय की लोकप्रिय रचनाओं में जोगी लोगों द्वारा गाया जाने वाला 'पारवतीजी को ब्यावलो' और जसनाथी सम्प्रदाय का 'शिवजी को ब्यावलो' अत्यंत प्रसिद्ध है। अन्य साहित्यिक ग्रंथों में 'महादेव पारवती री वेल' (किसनाजी) विशिष्ट है। उसमें पार्वती का रूप-वर्णन द्रष्टव्य है—

राजकारी ऊभी राय अंगण
करि सोळह सिणगार करि ।
सजगे तीए कंकणा पोहच
नवढी नोन्दह नगन धरि ।।

* [illegible] (न्य रा लिखा लिखी [illegible])

भरीया रंग सुरंग माझवह,
सुम्बीमा ठाद अंबर अमस।
अहर ड्रसण ओपीया अमोपम
रसण भुवीया तंबोळ रस॥

घुघतइ रंग सीस ओढी चूनडी
पहिरे कोर घुंघळ बहु प्रेम।
भृगुटि कीयउ मंगळीक तिलक भरि॥
हीवड़ मळइ चउसरउ हेम॥

'महादेव पारवती री वेल' राजस्थानी साहित्य की एक उत्तम रचना है। इसका अर्थ गौरव ऊँचा है। अभी तक राजस्थानी भाषा की इस श्रेष्ठ कृति का गुण-प्रकाशन तो अलग रहा यह छपी भी नहीं है। मरुभारती (१।३) में डॉ आनंदप्रकाश दीक्षित ने इस ग्रंथ पर एक लेख छपवा कर यह निर्णय दिया है—"कवित्व को परखते हुए हमारा विचार यही ठहरता है कि इस कृति का लेखक सिद्ध कवि न हो कर कोई साधारण कोटि का कवि ही था।" श्री दीक्षितजी का यह वक्तव्य विचारणीय है।

इसी प्रसंग में राजस्थानी कवियों द्वारा विरचित गंगा-स्तुति सम्बंधी कुछ उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—

[१]

गंगा उज्जळ मात सिर सोहै संकर तणी।
मुकुट जटा मे मात मळके तूं भागीरथी॥
सुरतरि तीरे सात मजनंरे चहुवें निगम।
तू मागीजै मात भजनें ही भागीरथी॥
तुम्ह विनाणा तोय माता हर नासइ दुर्गति।
हरि अधिकारी होय तइ भजतां भागीरथी॥
(पृथ्वीराज राठौड़ श्री गंगा स्तुति)

[२]

पाप जिता तू पलक में सुरसरि हरण समत्थ।
इता पाप ऊपर नहीं मो गुण करण समत्थ॥
जड़ अघवाहन जीवणों दूर हुवा अति दीन।
तू मपा ना जड़ लगो मा बद करमी मीन॥
दरस मनोहिर दास कभी महरां करै।
दुगन मिमेरी माय सुरदेरणी समुरी सुरी॥
(बांकीदास गंगालहरी)

आगे इन ग्रंथों में से कुछ चुने हुए अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं—

[१]

ईश्वर स्वामिनि सुगणि मात मधु कैटभ मारणि ।
महिषासुर मद हरणि असुर सेना संहारणि ॥
धोम नयन घट धरणि चंड मुण्डादिक चूरणि ।
रक्तबीज बति हरणि निशुंभ नायक घड चूरणि ॥
दुयाल कोडि दाणव दळणि सुभट शुंभ दानव करणि ।
अपार मार भंजणि भूयणि सत्व रज तामस तरणि ॥

(सप्तसती रा छंद)

[२]

ॐकार तेहिज रुपाया अकल अनेता नह अप आया ।
रमइ तिहुं लोक तू सुरराया अलख रूप तूहिज महामाया ॥
ब्रह्मसुरी सदा सुख करणी शंकर अरा तूहिज उधरणी ।
तूं अणा पीही तूहिज तरणी जोगह नह अमरह जाणणी ॥

(देवी सातसी)

[३]

देवी केकयी रूप तें कूड़ कीधा
देवी राम रै रूप वनवास लीधा ।
देवी मृग्ग रै रूप तैं सीत मोई,
देवी राम रै रूप पारध होई ।
वी बाल रै रूप तैं बाण मास्या
देवी राम रै रूप तैं बाळ मास्यो ।
देवी रूप मंदिर रै सूर गजै
देवी सूरजं रूप मंदिर सजै ।

(देवियाण)

[४]

अबै हेत हुती भजीजै भवानी
रमतां हरी राव दीजै दिवानी ।
गुरु नाथ हेमाचळ नाम सर्बी
तदै सुध मम्मो भवानी सुठर्बी ।
धुना पाय नमूं जनमूं सिवाई,
नमूं आवड़ा जोगणी जोगिमाई ।
नमूं भैरवी काळकाळी भवाई,
नमूं भूभुता मात भाभी मित्याई ।

नमूं सारदा संकरी की सुताई,
नमूं रमदेवी दुरग्गा सताई।
नमूं बाळ लीला नमूं रूप वृद्धा
नमूं खेम करं नमूं रूप सुद्धा।

(देवी विलास)

इन ग्रंथों के अतिरिक्त जहां कहीं राजस्थानी कवि को देवी की महिमा का गान करने का अवसर मिला है उसने माता के चरणों में अपनी भक्ति के पत्र-पुष्प अवश्य समर्पित किए हैं। ग्रंथ के प्रारंभ में देवी को स्मरण करने की तो प्राचीन परम्परा ही है। एक विशेष उदाहरण लीजिए। बजलोद (शेखावाटी) के कवि हरस्वरूपदास पुरोहित ने सम्वत् १८७२ में शिव प्रकाश नामक वैद्यक ग्रंथ की रचना की है। उसके प्रारम्भिक भाग में 'अथ देवी अस्तुत' के प्रसंग में ८६ छंदों में देवी-चरित्र मिलता है। उदाहरण देखिए—

नमो भवानी बळ रूप विराट
बना बड मारन राकस थाट।
सुरां नर सक्कट मेटण सार,
पसंमट दटपट पर द्वार॥
चौथाये तैं मारि सकत जिहान
मुरंगीय अंगीय देव जु मान।
मुरंगीय अंगीय ब्रह्म समांन
अपतां दिन रंगाये है मान॥
ज्वालामुखी भखीय राकस ज्वास
कालका नमो भामुरी काळ।
सिमरणां संतां देव रसाल
अगतां भूप बधावन भाल॥
भवानी मिल करै सुभ भाव
रंक नर देह करै तुव राव।
पढ़ै जो रोज तिहारो पाठ
फिर हुवे राज करै तुव पाट॥

(हस्त प्रति से)

देवी भक्ति में गढ़े हुए राजस्थानी कवियों के फुटकर पद्य अगणित हैं और वे विशेष रूप से महिमामय हैं। ये गीत कवित्त और दूहा रूप में बिखरे हुए हैं। यहां कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं —

यह सूचना लेखक को पं. श्रीमामजी मिश्र से प्राप्त हुई है।

[१]

आई ओळमी प्रहि निस उर अंतर, रुद्राळ श्री राणी ।
देवगु बांधे आवे छावे यजवड़ रूप पणियांणी ॥
तारा त्रिपुरा अनें तोतला भोम उतारण भंगा ।
ताहरै भजन बिना नहिं तरीस्य तरीया मुगळ तरंगा ॥
जोगी सरूप जगत सोहू जायो जमिया अकथ कहांणी ।
जोगी सभु तणै घर जोगणि इम वर्ई इड़ांणी ॥
पार कौण ताह री पावै बेदे चहूं बखांणी ।
गुणमति सार ताहरा गावै वेणी एकण बांणी ॥
आई ओळमी प्रहि निस उर अंतर ॥
(वेणीदास री कही माबम पिंगळसिरोमणि)

राव जैतसी द्वारा संकट के समय की गई करणीजी की स्तुति इस प्रकार है—

जैत कमध्ध कर जोड़ियां कीहा एह कपत ।
करनल्ल रिणमल्ल बाचरी पाळ करो जिसकरा ॥
पाळ करो जिसकरा देव मेंहू वीजिये ।
जैतो सरणै राव उबारै लीजिये ॥
लियां संग नव लाख सकतियां मूकरा ।
आवो करनां देव उबारण आपरां ॥

राजस्थानी कवियों ने देवी के रौद्र रूप के समान ही सौम्य रूप का भी स्तवन किया है। इस विषय में पार्वती सम्बंधी रचनाओं पर विचार करना आवश्यक है। राजस्थान में गौरी-पूजा (गणगौर) को विशेष महत्व दिया जाता है। पार्वती विषयक रचनाओं में शिव-विवाह का प्रसंग आता है। इस सम्बन्ध में यहां अनेक ग्रंथ बने हैं और वे लोकप्रिय हुए हैं। इनमें नाथपंथ का प्रभाव भी लक्षित है क्योंकि इनमें गौरी-पूजा के साथ ही शिवोपासना भी है। इस विषय की लोकप्रिय रचनाओं में जोगी लोगों द्वारा गाया जाने वाला 'पारबतीजी को ब्यावलौ' और जसनाथी सम्प्रदाय का 'सिवजी को ब्यावलौ' अत्यंत प्रसिद्ध है। अन्य साहित्यिक ग्रंथों में 'महादेव पारबती री वेल' (किसनाजी) विशिष्ट है। उसमें पार्वती का रूप-वर्णन दृष्टव्य है—

पायजाती ऊभी राय आंगण
करि सोळह सिणगार करि ।
सजणै तीए झूंटणा सोहइ
पलकी नाग्रह मसज परि ॥

करणी चरित्र (स्व. ठा. किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य)

भरीया रंग सुरंग भाजवह,
सुम्भीया ताइ अंबर असस।
अहर रसण ओपीया अनोपम
रसण सुरंगीया तंबोळ रस॥
चुनवट रच सीस ओढी चुनड़ी
पहिरे कोर गुंथळ बहु प्रेम।
भृगुटि बीचइ मंगळीक तिलक भरि॥
हीयइ मळइ चउसरउ हेम॥

'महादेव पारवती री वेल' राजस्थानी साहित्य की एक उत्तम रचना है। इसका अर्थ गौरव ऊँचा है। अभी तक राजस्थानी भाषा की इस श्रेष्ठ कृति का पूर्ण प्रकाशन तो अलग रहा यह छपी भी नहीं है। मरुभारती (६।१) में डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित ने इस ग्रंथ पर एक लेख लिखकर यह निर्णय दिया है—"कवित्व को देखते हुए हमारा विचार यही ठहरता है कि इस कृति का लेखक सिद्ध कवि न हो कर कोई साधारण कोटि का कवि ही था।" श्री दीक्षितजी का यह वक्तव्य विचारणीय है।

इसी प्रसंग में राजस्थानी कवियों द्वारा विरचित गंगा-स्तुति सम्बन्धी कुछ उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—

[१]

धवा अवळ पात सिर सोहे संकर तणी।
मुकुट जटा मे मात भळकै तू भागीरथी॥
सुरसरि तीरै वास नवसई चाहूँ निगम।
तू भागीरै मात भवनै ही भागीरथी॥
तुझ सिनान होय माता ग्या आगइ सुमति।
हरि अधिकारी होय तइ भजता भागीरथी॥

(पृथ्वीराज राठौड़ की गंगा स्तुति)

[२]

पाप विना तू पलक में सुरसरि हरण समरथ।
इण पार अमर भटी सो युग करण समरथ॥
मळ अवगाहन जीवणो दूर हुवा अघ दीन।
तू धवा ना मळ तणो मा कर करमा मीन॥
इण भागीरथ धाम अबी नहरा ऊतरै।
सुरग निसरणी माय सुरदेवी अमुधी सुरा॥

(कारीदास गंगालहरी)

[१]

तु ही रूप जम्मा कालिन्नी बिहारी
सरस्वति धर्मु लयो रूप भारी।
तु ही नस्मिका है भई तु भवैनी
नमो देवि पगे भई मुक्ति देनी॥
तु ही नर्मदा गर्व धर्व भवानी
तु ही भम्बिका चम्बि भडी मृडानी।
तु ही रूप दुर्गा दुर्गति देनी
नमो देवि नंमे भई मुक्ति देनी॥
तु ही सिंधु पुत्री भई विष्णु प्यारी
तु ही सावित्री गायत्री ब्रह्मचारी।
तु ही श्यामली रूप बत्तीस देनी,
नमो देवि नमे भई मुक्ति देनी॥
तु ही द्रोपदी रूप कैस संवारे,
हरे देह कष्ट सबै सुख भमारे।
हरे मात कारज भकाज भमैनी
नमो मात गंमे भई मुक्ति देनी॥

(सिवसिंह चैनावत)[1]

राजस्थानी कवियों ने भक्ति-साधना को अपने जीवन का अंग बनाया है यही कारण है कि उनके दुर्गा भक्ति सम्बन्धी उद्‌गार इतने स्वाभाविक एवं मर्म-गौरवान्वित हैं। यहां महाकवि ईसरदास जैसे साधकों ने चराचर में व्याप्त देवी की महिमा का प्रत्यक्ष दर्शन कर के अपनी अनुभूति को 'देवियाण' काव्य रूप में प्रकट किया है जिसकी प्रत्येक पंक्ति 'देवी' शब्द से प्रारम्भ होती है। इसके साथ ही राजस्थान के देवी भक्तों ने अनेक तेजोमयी महिलाओं के जीवन में भी शक्ति-दर्शन कर के उनको पुराण वर्णित प्राचीन देवियों की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया है और परम निष्ठापूर्वक उनकी चमत्कारपूर्ण जीवन-गाथा गाई है। यह राजस्थानी दुर्गा-भक्ति विषयक साहित्य-धारा की अपनी एक विशेषता है जो सदैव व्यातव्य है।

जैन भक्ति काव्य—

ऊपर राजस्थानी मध्यकालीन भक्ति-काव्य की चर्चा करते समय 'रामकथा' विषयक काव्यों के सम्बन्ध में कुछ जैन रचनाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। राजस्थानी भाषा का जैन भक्ति-साहित्य अति विशाल है और इसमें जैन तीर्थंकरों आचार्यों और यहां तक

---

[1] कवि के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए देखिये 'राजस्थान भारती (बीकानेर)—भाग ७ अंक १

कि तीर्थों के सम्बन्ध में भी जैन कवियों के हृदय की भक्ति के उद्‌गार प्रचुर मात्रा में प्रकट हुए हैं। इसी प्रकार उद्‌बोधन गीत भी अगणित लिखे गए हैं जिनमें शांत रस की तीव्र धारा है। हर्ष का विषय है कि यह विपुल साहित्य-सामग्री सुरक्षित है तथा इसके सम्बन्ध में शोध कार्य भी संतोषजनक रूप से हुआ है और हो रहा है। जैन भक्ति-साहित्य बड़ा मार्मिक एवं आह्लादकारी है। इस विषय पर दूसरा स्वतंत्र लेख लिखा जा रहा है अतः यहां इसके सम्बन्ध में अधिक चर्चा न कर के उदाहरणस्वरूप केवल एक पद प्रस्तुत किया जाता है—[1]

अजित जिन स्तवन—

अजित तूं अतुल बली हो मेरा प्रभु, अजित तूं अतुल बली हो।
मोह महाबल हेमइ जीतउ मदन महीपति फौज दली हो।
पूरण चन्द जिसउ मुख तेरउ दंत-पंक्ति मचकुंद कली हो।
सुन्दर नयन तारिका शोभित मानूं कमल दल मध्य अली हो।
पद लांछन विजया कउ नंदन मेटउ भव दुख भ्रांति टली हो।
समयसुन्दर कहइ तेरे अजित जिन गुण गाता मोक्ष रंगरली हो।

(महाकवि समयसुन्दर)

ऊपर राजस्थानी मध्यकालीन भक्त कवियों की रचनाओं पर प्रकाश डालते समय जहां तक हो सका विषय को संक्षिप्त करने की चेष्टा की गई है और बहुत थोड़े उदाहरण दिए गए हैं। ध्यान रखना चाहिए कि इस काव्यधारा ने जन-जीवन को आप्लावित किया है। यहां के भक्त कवियों के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण जनश्रुतियां प्रचलित हैं और जनता उनमें बड़ा रस लेती है। यदि इन जनश्रुतियों का संकलन किया जाय तो विशाल ग्रंथ तैयार हो सकता है। साथ ही यहां के भक्त कवियों के सम्बन्ध में प्रकट किए गए उद्‌गार लोक-समालोचना का रूप धारण कर के प्रचलित हुए हैं। आगे इस प्रकार के कुछ चुने हुए पद्य प्रस्तुत कर के लेख सम्पूर्ण किया जाता है—

१ पनरासी सिध्याणवें जनम्या ईसरदास।
चारण वरण चकार में उण दिन हुवो उजास॥

२ जग मांझलतो जाण धण दावानळ ऊपरा।
रचियो रोहड़ राण समंद हरी रस सूरवत॥

३ चेलो गोरखनाथ कवि चेलो कियो चकार।
सिध रूपी रहता सबर गाडण गुणा भडार॥

४ नीमाणार नीमाण केसव परमारथ कियो।
पाह स्वारथ परमारथ सी बीमोतर बरस थिर॥

---

[1] समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि (श्री अगरचन्द नाहटा)

उत्कर्ष-काल की भाषा की संज्ञा दी जाती है। उत्थान के बाद पतन और पतन के बाद उत्थान का चक्र चलता रहता है। उत्कर्ष काल के बाद ह्रास (अपकर्ष) या नये रूप में परिवर्तन होने का भी समय आ जाता है और तब कुछ नई विशेषता देख कर हम उसे आधुनिक काल कह देते हैं। राजस्थानी साहित्य को भी इसीलिये आदिकाल मध्यकाल और आधुनिककाल इन तीन विभागों में विभक्त किया गया है। कुछ समय या वर्षों की सख्या के सम्बन्ध में मतभेद होने पर भी साधारणतया प्रारम्भ से लेकर संवत् १५ के आसपास के समय को आदिकाल उसके बाद संवत् १६ तक के समय को मध्यकाल और तदुपरवर्तीकाल (साहित्य) को आधुनिक काल का नाम दिया गया है। अंग्रेजों के शासनकाल में पूर्वात्य और पाश्चात्य विचारधाराओं का संगम हुआ अतः पाश्चात्य विचार धारा जब से साहित्य में किसी भी रूप में दिखाई देने लगी उस समय से रचे जाने वाले साहित्य को आधुनिककाल का साहित्य माना जाता है। यद्यपि इस काल मे भी पुरानी परम्पराओं की रचनायें होती रही है और आज तक भी वह धारा चाहे हो वह क्षीण रूप में ही पर चालू अवश्य है।

राजस्थानी भाषा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक रहा है। राजस्थान का नाम प्रदेश का नाम और राजस्थानी भाषा का नाम तो आधुनिक युग की देन है। मध्यकाल में राजस्थान कई राज्यो में बँटा हुआ था और उन राज्यों की सीमा भी सदा एक-सी नहीं रही है। आज जिस प्रदेश को 'गुजरात' कहते हैं पुराने समय में उसे 'लाट' आदि प्रदेश के नामों से पहचाना जाता था और राजस्थान के कुछ हिस्से को गुजरात कहा जाता था। इसी तरह वर्तमान में कई ग्राम नगर जो अब पजाब प्रान्त के माने जाते हैं, वे किसी समय राजस्थान के राज्यों के अधीन होने से राजस्थान के ही अंग थे।

किसी भी शक्तिशाली व्यक्ति जाति समाज और राज्य का प्रभाव आस-पास के क्षेत्र में लोगो पर पड़े बिना नही रहता। भाषा की भी यही स्थिति है। एक प्रान्त की भाषा निकटवर्ती दूसरे प्रान्त की भाषा से प्रभावित रहती ही है क्योंकि वैवाहिक सबंध या व्यापार और तीर्थ-यात्रा आदि के प्रसग से एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त में जाते आते रहते है और उन प्रान्तों मे बस भी जाते हैं। दूसरे प्रान्त मे रहने या बसने पर भी वे अपनी भाषादि के संस्कार को जल्दी नही छोड़ पाते।

बोल चाल और साहित्य की भाषा में भी काफी अन्तर रहता है। साहित्य की भाषा कुछ समय के बाद रूढ़-सी हो जाती है अतः बोल-चाल की भाषा में काफी अन्तर आने पर भी साहित्य-रचना परम्परागत रूढ़ साहित्यिक भाषा में होती रहती है। उदाहरणार्थ—चारण कवियों की रचनाओं को ही लीजिये विगत ३००-४०० वर्षों में उनकी साहित्यिक रचनायें जिस डिंगल भाषा में होती रही है भिन्न भिन्न समय की रचनाओं की भाषा में विशेष अन्तर नहीं आ पाया और आज भी कुछ चारण उसी शैली में काव्य-निर्माण करते है जबकि बोल चाल की भाषा मे इन शताब्दियो में काफी अन्तर आता रहा है और आज तो उस साहित्यिक भाषा से जन भाषा बहुत दूर चली गई है। इसी तरह जैन विद्वानों की भी रचनाओ को ले तो १२वी शताब्दी के प्रारम्भ तक उनकी रचनाओं की भाषा में

अपभ्रंश का प्रभाव पाया जाता है जबकि जन भाषा के रूप में अपभ्रंश का प्रयोग कई शताब्दियों पूर्व ही समाप्त हो चुका था। परवर्ती जैन रचनाओं की भाषा में गुजराती का प्रभाव बराबर रहा है जिससे दोनों प्रांतों के लोग उन्हें समान रूप से समझ सकें। तेरहपंथी सम्प्रदाय का प्रचार प्रारम्भ में गुजरात में नहीं था और उसकी अधिकांश रचनायें राजस्थान में रची गई हैं फिर भी उनकी भाषा में गुजराती का कुछ प्रभाव पाया जाता है। राजस्थान का कुछ प्रदेश जो गुजरात की सीमा से लगा हुआ है वहाँ की बोली में तो गुजराती का प्रभाव और भी अधिक मिलेगा। इस तरह राजस्थानी जैन साहित्य को गुजराती साहित्य से पृथक करने में बड़ी कठिनाई होती है।

जैन मुनि निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं। धर्म-प्रचार के लिए गुजरात के मुनि राजस्थान में आते हैं राजस्थान के गुजरात में जाते हैं। एक मुनि आज यहाँ है तो कल वहाँ पहुँच जायगा। इतना ही नहीं वे तो उत्तरप्रदेश मध्यप्रदेश पंजाब और बंगाल तक धर्म प्रचार और तीर्थ-यात्रा के लिये जाते रहते हैं। राजस्थान के जैन श्रावक व्यापार-आजीविका के लिये अन्य प्रान्तों में जाते रहे हैं और क्रमशः सारे भारत में फैल गये हैं। उनको धर्मानुष्ठान कराने और उपदेश देने के लिये जैन-मुनि वहाँ भी जे श्रावक अच्छी संख्या में बस गये हैं पहुँचते रहे हैं। इसी का परिणाम है कि पंजाब सिन्ध और बंगाल बिहार तथा मध्यप्रदेश आदि में जैन-मुनियों ने जो रचनाएं कीं वे उन प्रान्तों की भाषा में न होकर अपनी और अपने अनुयायियों की मातृ भाषा राजस्थानी में ही की हैं। मालव प्रदेश में तो जो भाषा बोली जाती थी वह राजस्थानी का ही एक अंग है। इस तरह जैन मुनियों की राजस्थानी रचनाओं का क्षेत्र काफी विशाल है।

जैन-धर्म के दो प्रधान सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर और दिगम्बर। राजस्थान में बीकानेर, जोधपुर उदयपुर आदि कई राज्यों में श्वेताम्बर सम्प्रदाय का प्रभाव अधिक रहा और जयपुर आदि में दिगम्बर सम्प्रदाय का। हिन्दी भाषी क्षेत्र में दिगम्बरों के अधिक होने के कारण राजस्थान के दिगम्बर कवियों ने भी राजस्थानी की अपेक्षा हिन्दी को अधिक अपनाया। ब्रजप्रदेश और आगरा ग्वालियर आदि में हिन्दी भाषा का अधिक प्रचार रहा है और जयपुर राज्य से वह प्रदेश अधिक दूर नहीं है। इसलिये जयपुर आदि के दिगम्बर कवियों ने हिन्दी में ही अधिक रचनाएं की हैं। कुछ ही कवियों ने राजस्थानी को अपनाया है। गद्य में भी भाषा टीकाओं के रूप में दिगम्बर रचनायें काफी हैं। इनमें दूढ़ाड़ी की छाप अवश्य है पर प्रधानता हिन्दी की है जबकि श्वेताम्बर कवियों की रचनाएं हिन्दी में कम होकर राजस्थानी में ही अधिक हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी कई गच्छ हैं। इनमें से बहुत से गच्छ तो राजस्थान के स्थानों के नाम से प्रसिद्ध हुये हैं। कुछ गच्छों का अधिक प्रभाव राजस्थान में रहा इसलिये उन गच्छवाले कवियों की रचनाएं राजस्थानी प्रधान भाषा में हैं। जिन गच्छों का प्रचार गुजरात राजस्थान दोनों प्रान्तों में रहा है उन गच्छ-वालों की रचनाओं में गुजराती का प्रभाव अधिक मिलेगा। बड़गच्छ और उसकी कई शाखायें—उपकेशगच्छ, खरतरगच्छ का प्रभाव राजस्थान में और तपागच्छ का प्रभाव गुजरात में अधिक रहा है। १६वीं शताब्दी में मूर्ति-पूजा विरोधी लोंका-मत का प्रादुर्भाव

५   बूंदी जगमुख सोधियौ तत फळ चाखी ताय।
चारण जीवो चारि जुग मरी न मायोदास ॥

६   रुकमणि गुण सखरा रूप गुण रचवण
वेलि तास कुण करै वखाण।
पांचमौ वेद भाखियौ पीथल
पुणियौ उगणीसमौ पुराण ॥

७   मोपराज बैठो प्रभंग कँवरपणौ भत कीध।
मेड़तणी मीरां महल, प्रेमी भगत प्रसीध ॥

भारत के अन्य प्रान्तों के भक्तों एवं भक्त कवियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ शोध हो चुकी है और बड़े-बड़े अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। परन्तु इस दिशा में राजस्थान में अभी तक कुछ भी काम नहीं हुआ है। यह खेदजनक है। यहां बहुत अधिक मूल्यवान एवं उपयोगी सामग्री हस्त प्रतियों में पड़ी हुई प्रकाश की प्रतीक्षा कर रही है। उसके प्रकाशन से निश्चय ही जन-जीवन को विशेष बल एवं प्रकाश प्राप्त होगा। आशा है इस सम्बन्ध में साहित्य-प्रेमी भक्त-जन सचेष्ट होकर कोई योजनाबद्ध कार्य प्रारम्भ करेंगे।

मध्यकालीन राजस्थानी जैन साहित्य

श्री अगरचन्द नाहटा

संसार परिवर्तनशील है। प्रत्येक पदार्थ में परिवर्तन होता रहता है। कोई भी वस्तु सदा एक-सी नहीं रहती। इसी बात को लक्ष्य में रख कर जैन विद्वानों ने द्रव्य का लक्षण बतलाते हुए कहा है कि उत्पाद व्यय और ध्रुव इन तीनों अवस्थाओं को सत् कहते हैं, और प्रत्येक द्रव्य इन तीनों अवस्थाओं से युक्त होने से सत् है। कहा जाता है कि तीर्थंकरों को जब उनके मुख्य शिष्य जो गणधर कहलाते हैं पूछते हैं कि भगवन् तत्त्व क्या है? तो इसके उत्तर में तीर्थंकरों का प्रथम वाक्य होता है—'उप्पन्नेइवा'। इस पर गणधर विचार करते हैं कि यदि उत्पन्न होते रहना ही तत्त्व है तब तो जगत में इतने पदार्थ उत्पन्न हो जायेंगे कि उनके रहने को स्थान ही नहीं मिलेगा। इसलिए दुबारा पूछते हैं—भगवन्! और भी कोई तत्त्व है? तो जवाब मिलता है— 'विगमेइवा' अर्थात् उत्पन्न होता है वह नाश भी होता है। इससे भी प्रश्नकर्ता का समाधान पूरा नहीं हो पाता तब तीसरी बार फिर पूछते हैं—इन दो के अतिरिक्त और भी कोई तत्त्व है? और उसका उत्तर मिलता है—'किंचिद् धुवेइवा' अर्थात् कुछ समय तक विद्यमान रहना भी तत्त्व द्रव का स्वरूप है। बस इन तीनों वाक्यों से पूरा समाधान हो जाता है कि वस्तु का स्वभाव है—उत्पन्न होना नाश होना और कुछ समय तक टिके रहना।

वैसे तो प्रत्येक वस्तु में समय-समय पर कुछ न कुछ परिवर्तन होता ही रहता है अर्थात् पूर्वावस्था की प्राप्ति और थोड़े समय के बाद अवस्थान्तर में परिवर्तित हो जाना। यह उत्पाद और नाश की क्रिया सदा चलती ही रहती है। थोड़े समय पहले जो चीज जिस रूप में थी कुछ समय बाद ही उसका अवस्थान्तर प्राप्त हो जाने पर पूर्वावस्था का विनाश और नवीन अवस्था का प्रादुर्भाव हुआ माना जा सकता है। दोनों अवस्थाओं के बीच में कुछ क्षण तक या एक समय मात्र उसका जो स्वरूप विद्यमान रहता है उसे 'ध्रुव' की संज्ञा दी जाती है। स्थूल दृष्टि से हम प्रत्येक वस्तु में जो समय-समय पर सूक्ष्म परिवर्तन होता है उसका ठीक अनुभव नहीं कर पाते और जब वह परिवर्तन कुछ मोटे या बड़े रूप में हो जाता है तभी हमारी बुद्धि व दृष्टि उसे ग्रहण कर पाती है। प्रत्येक द्रव्य के दो पहलू होते हैं—मूल की नित्यता और पर्याय या अवस्था में परिवर्तन।

अन्य वस्तुओं की भांति भाषा में भी परिवर्तन होता रहता है। जब वह परिवर्तन हमारी स्थूल बुद्धि के ग्रहण योग्य हो जाता है तब हम एक नई भाषा का विकास हुआ मानने लगते हैं और जब वह भाषा प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो जाती है तब उसे मध्य या

हुआ। उसका प्रचार-केन्द्र—राजस्थान गुजरात पंजाब होने से नागोरी गुजराती और उत्तरार्धी ये लोंकागच्छ की तीन शाखायें हो गई। इसी गच्छ में से १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ढूंढिया पंथ निकला जो आगे चल कर बाईसटोला साधुमार्गी और स्थानकवासी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके भी कई टोले या भेद हो गये। संवत् १८१७ में इसी स्थानकवासी सम्प्रदाय में से भीखूजी द्वारा तेरापंथ सम्प्रदाय चला। स्थानकवासी सम्प्रदाय का प्रचार यद्यपि गुजरात काठियावाड़ और कच्छ में भी रहा है पर इस सम्प्रदाय के कवि राजस्थान में अधिक हुये हैं। तेरहपंथी सम्प्रदाय का प्रचार तो राजस्थान में सर्वाधिक रहा। इसलिये इन सम्प्रदायों का साहित्य राजस्थानी भाषा में ही अधिक रचा गया है।

उपरोक्त बातों का इतना विस्तार से विवेचन करना इसलिए आवश्यक हुआ कि आगे इस निबन्ध में मध्यकालीन राजस्थानी जैन साहित्य का जो विवरण उपस्थित किया जायगा, उसमें से कई रचनाओं में रचनास्थान का उल्लेख नहीं है अतः वे गुजरात में भी रची हुई हो सकती है। और कई कवि राजस्थान के थे पर उन्होंने गुजरात में रहते हुए भी रचनायें की है उनका उल्लेख करते समय यह ध्यान में रखा जायगा कि वे कवि किस गच्छ के थे और कहाँ के थे। अन्यथा एक-एक रचना की भाषा को राजस्थानी व गुजराती के रूप में विभक्त करना बड़ा कठिन काम है।

राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल काफी लम्बे (४ वर्षों) समय का है। और इस काल में रचनायें भी बहुत अधिक रची गई हैं। शताधिक जैन कवि इस समय में हो गये हैं और उनमें से कई कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने बहुत बड़े परिमाण में साहित्य-निर्माण किया है। इसलिये इस काल के सब जैन-कवियों और उनकी रचनाओं का परिचय देना इस निबंध में सम्भव नहीं। १६ वीं शताब्दी से मध्यकाल का प्रारम्भ होता है और उस शताब्दी की रचनाएं तो कम हैं पर १७ वीं और १८ वीं शताब्दी तो राजस्थानी साहित्य का चरमोत्कर्ष काल है अतः इस समय में राजस्थानी जैन साहित्य का जितना अधिक निर्माण हुआ अन्य किसी भी शताब्दी में नहीं हुआ। १९ वीं शताब्दी से साहित्य-निर्माण की वह परम्परा कमजोर व क्षीण होने लगती है। उत्कृष्ट कवि भी १७ वीं व १८ वीं शताब्दी में ही अधिक हुये हैं। गद्य में रचनाएँ तो बहुत थोड़े विद्वानों ने ही लिखी है। बहुत सी रचनाएं अज्ञात कवियों की ही है और ज्ञात कवियों की रचनाओं में भी किन्हीं में रचनाकाल और किसी में रचना-स्थान का उल्लेख नहीं मिलता। १६ वीं शताब्दी में तो रचना-स्थान का उल्लेख थोड़े से कवियों ने किया है। १७ वीं व १८ वीं शताब्दी के अधिकांश जैन कवियों ने रचनाकाल के साथ-साथ रचना-स्थान का भी उल्लेख कर दिया है। अन्त में जिन व्यक्तियों के अनुरोध से रचना की गई, उन व्यक्तियों का भी उल्लेख किसी-किसी रचना में पाया जाता है। कवियों ने अपनी गुरु-परम्परा का तो उल्लेख प्रायः किया है पर अपना जन्म कब एवं कहां हुआ माता पिता का नाम क्या था वे किस वंश या गोत्र के थे उनकी दीक्षा कब व कहां हुई शिक्षा किससे प्राप्त की और जीवन में क्या-क्या विशेष कार्य किये तथा स्वर्गवास कब एवं कहां हुआ इन ज्ञातव्य बातों की जानकारी उनकी रचनाओं से प्रायः नहीं मिलती। इसलिए साहित्यकारों की जीवनी पर अधिक

प्रकाश डालना सम्भव नहीं। उनकी रचनाओं को ठीक से पढ़े बिना उनकी आलोचना करना भी उचित नहीं है इसलिए प्रस्तुत निबन्ध में कवियों की संक्षिप्त जानकारी ही दी जा सकेगी।

मध्यकाल की जैन रचनाओं में चरित काव्य जिसे रास चौपई आदि की संज्ञा दी गई है ही अधिक रचे गये हैं। १४-१५ वीं शताब्दी तक के अधिकांश रास छोटे-छोटे थे। १६ वीं शताब्दी में भी उनका परिमाण मध्यम-सा रहा पर १७ वीं १८ वीं शताब्दी में तो बहुत बड़े-बड़े रास रचे गये जिनमें से कई रास तो ८-१ हजार श्लोक परिमित भी हैं। मध्यकाल में रास के स्वरूप और उसकी शैली में भी काफी परिवर्तन हो गया है। दोहा और लोक गीतों की देशियों का प्रयोग ही मध्यकाल के रासों में अधिक हुआ है। किसी किसी रास में चौपई छन्द का प्रयोग होने से उसका नाम चतुष्पदी या चौपाई रखा गया है पर आगे चल कर जब वह संज्ञा चरितकाव्यादि के लिए रूढ़ हो गई तो चौपई-छन्द का प्रयोग न होने वाली रचनाओं को भी चौपई के नाम से प्रसिद्ध कर दिया गया। एक ही रचना को किसी ने चौपाई के नाम से और किसी ने रास के नाम से सम्बोधित किया है। अर्थात् फिर रास और चौपाई में कोई खास भेद नहीं रह गया और चरित-काव्य के लिये इन दोनों नामों का खुल कर प्रयोग होने लगा। वेलि-संज्ञक काव्यों का निर्माण भी १६ वीं से प्रारम्भ होता है और सब से अधिक वेलियां १७-१८ वीं सदी में बनाई गई हैं।

अपभ्रंश काव्यों में अध्याय या सर्ग को 'संधि' कहा जाता था पर मध्यकाल में जब अपभ्रंश में रचनायें की जानी बन्द हो गईं तो 'संधि' संज्ञक कई प्रबन्ध काव्य रचे गये। इस सम्बन्ध में मेरा एक लेख राजस्थानी निबन्ध माला भाग १ में 'अपभ्रंश भाषा के संधि काव्य और उनकी परम्परा' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसमें १६ वीं शताब्दी से १८ वीं तक की ४ राजस्थानी भाषा की संधि-संज्ञक रचनाओं की सूची दी गई है। फागु काव्यों की परम्परा १६ वीं शताब्दी के बाद इतने अच्छे रूप में नहीं रही। विवाहलों की परम्परा भी १८ वीं शताब्दी से कमजोर पड़ गई। मातृका के नाम से जो परम्परा १४ वीं १५ वीं शताब्दी से चल रही थी वह १६ वीं से 'बावनी' के रूप में (नाम से) प्रसिद्ध हो गई। इस प्रकार कई काव्य रूप लुप्त होते गये और कुछ नये प्रकार या नाम चालू हुये एवं कई काव्य प्रकारों ने नया रूप धारण कर लिया। छन्दों का उपयोग कम हो गया तो ढालों का बहुत बढ़ गया। इसकी जानकारी आगे दिये जाने वाले विवरण से पाठकों को स्वयं मिलेगी।

१६ वीं शताब्दी—

राजस्थानी जैन साहित्य की एक विशेषता बहुत ही उल्लेखनीय है कि प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की जैन रचनाएं प्राप्त हैं और इनकी प्रतियां भी प्राचीनतम उपलब्ध हैं इसलिए समय-समय पर और अलग अलग स्थानों में राजस्थानी भाषा का क्या रूप रहा और उसमें कैसा परिवर्तन पाया गया? उसकी सही जानकारी मिल सकती है, जब कि अन्य भाट चारण ब्राह्मणों आदि के प्राचीन रचनाओं की समकालीन लिखी हुई प्रतियां

प्राय: नहीं मिलतीं इसलिए पीछे की प्रतियों के आधार से यह नहीं कहा जा सकता कि मूल ग्रन्थकार या कवि ने जिस रूप में वे रचनायें आज प्राप्त हैं उसी रूप में लिखी थीं।

मध्यकाल का प्रारम्भ डॉ मोतीलाल मेनारिया ने संवत् १४६ से १६ तक का माना है और सीतारामजी लालस ने भी उसी का अनुसरण किया है। मेनारियाजी ने मध्य काल को २ हिस्सों में बांट दिया है—पूर्व मध्यकाल सं १४६ से १७ और उत्तर मध्यकाल सं १७ से १६ । डॉ हीरालाल माहेश्वरी ने लिखा है 'संवत् १५ से राजस्थानी पुरानी राजस्थानी या गुजराती से अपना अलगाव कर लेती है। अद्यावधि प्राप्त रचनाओं के आधार पर सं १५ से राजस्थानी साहित्य का इतिहास प्रारम्भ होता है। इसी मान्यता पर आधारित होने से उनका शोध प्रबन्ध भी संवत् १५ से प्रारम्भ किया गया है। मैंने भी अपने 'आदिकालीन राजस्थानी जैन साहित्य नामक' लेख में सं १५ तक की रचनाओं का उल्लेख कर दिया है इसलिये यहां संवत् १५ १ से प्रारम्भ किया जाता है।

सुदर्शन श्रेष्ठिरास—

संवतोल्लेख वाली सुदर्शन श्रेष्ठि रास' या 'प्रबन्ध की रचना संवत् १५ १ में हुई है। २५५ पद्यों के इस रास के रचयिता के संबंध में प्रत्यन्तरों में पाठ-भेद पाया जाता है। श्री मोहनलाल देसाई ने इसका रचयिता तपागच्छीय मुनि सुन्दर सूरि शिष्य संघ विमल या शुभशील माना है। पर बीकानेर के बृहद् ज्ञान भंडार में इस रास की जो प्रति उपलब्ध है उसमें 'तपगच्छी गुरु गौतम समाए मा श्री मुनि सुन्दर सूरि सु के स्थान पर "चन्द्र गच्छी गोयम समाए मा श्री चन्द्रप्रभ सूरि' पाठ मिलता है। इस शताब्दी से चरित काव्य प्रचुर परिमाण में मिलने लगते हैं जिनमें से कुछ तो ऐतिहासिक हैं कुछ पौराणिक और कुछ लोक कथाओं पर आधारित है। उपरोक्त रास का चरितनायक सुदर्शन सेठ जैन समाज में अपने शील धर्म की निष्ठा के कारण बहुत ही प्रसिद्ध है। मरणान्तिक कष्ट आने पर भी वह पर-स्त्री गमन से विरत रहा। उसके शील के माहात्म्य से सूली भी सिंहासन बन गई। रास के अंत में भी कवि ने शील धर्म का माहात्म्य बतलाते हुये इस रास को समाप्त किया है।

सील सुदरिसण पाईई मा जां लगई ससि नई सूर, सु० ।
वै नर सीलई निरमला ए मा नारि नवाहिया मूल सु ।
वै करजोडी कवि कहइ ए मा हूं तीह पगनी धूलि सु । ५२
सील हि सवि सुख संपजई ये मा सील लवई नवनिधि सु ।
सीलई सुर सांनिधि करई ये मा सीलहिं सयल प्रसिद्धि सु । ५३
सीलहिं उत्तम लिणु तवा ये मा सीलहिं कोडि कल्याण सु ।
सील लगई कहीयई किसो ये मा पामीई पंचम ठाण सु । ५४
सील प्रबन्ध जे सांभलई ये मा सहूदता नरनारीय ते धन्न सु ।
सुदरिसण रिषि केवली पी मा चतुर्विध संघ प्रसन्न सुणि सुय । २५५

प्रारम्भ और रचनाकाल के उल्लेख वाला पद्य इस प्रकार है—

पहिलउ प्रणमिसु मनुक्रमीहए, जिणवर चउवीस।
पछइ सासन देवताए, तीहुं नामउ सीस।
समरीय सामणी सारदाए, सानिधि संभारउ।
भापइ पाभउं प्रतिपत्नूंए, कविसिउ एकाहरउ।
तउं तुठी ततखिणी भणइए, हउं भाविसु मंयइ।
सेठ सुदर्शन तणउ रास रचियो मनरयइ।
संवत पनर एकोतरइए मा सेठ चौथि विसुद्धि सु।
पुण्य मखत्र सुक्कवार सुए मा चरित्र ए पहुवि प्रसिद्ध सु ॥ २१

यद्यपि यह रास कहाँ रचा गया इसका उल्लेख प्रशस्ति में नहीं किया गया है पर इसकी भाषा में राजस्थानी व गुजराती का वह अन्तर स्पष्ट नहीं होता जैसा कि लावण्यसमय आदि इसी शताब्दी के अन्य कवियों की भाषा में गुजराती-पन दिखाई देता है। इस रास की हस्त लिखित प्रतियाँ भी काफी मिलती हैं। इनमें संवत् १५७१ की लिखी हुई एक प्रति का उल्लेख देशाई ने किया है। अन्य प्रति के कुछ पद्य अधिक भी मिलते हैं। यह रास सुसम्पादित हो कर प्रकाशित करने योग्य है। संवत् १५ १ के पोष वदि ११ का जीवदया के माहात्म्य पर आगममण्डीय साधु मेरु ने पुण्यसार रास १ ८ पद्यों का बनाया। जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृष्ठ ५५२ ५१ मे इस रास के आदि अन्त के पद्य छपे हैं।

कविवर देपाल—

इस शताब्दी के प्रारम्भ में देपाल नामक एक उल्लेखनीय सुकवि हुआ है जिसकी काफी रचनाएं मिलती हैं। १७ वीं शताब्दी के कवि ऋषभदास ने अपने से पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों में इसका उल्लेख किया है। कोचर व्यवहारी रास के अनुसार यह कवि दिल्ली के प्रसिद्ध देसलहरा साह समरा और सारंग का आश्रित था।

याचक देह ना पर सखउ देवक नर वाचाल।
जाणी तउ जिन सासनि कहिइ कवि देपाल ॥

शाह समरा और सारंग के समय को देखते हुये तो यह कवि १५ वीं शताब्दी का है पर इसकी जो रचनाएं उपलब्ध हुई हैं उनमें सबसे उल्लेख वाली जम्बू स्वामी चौपई संवत् १५२२ की है और बारह व्रत चौपई सं १५३४ की है। इसलिये या तो देपा देपों देपइ देपाल नाम के २ कवि हुये हों या देपाल कवि ने बहुत लम्बी उम्र पाई होगी। श्री मोहनलाल देसाई ने जैनयुग के वैशाख-जेठ १९८६ के अंक में देपाल रचित समरा सारंग नो कडखो प्रकाशित करते हुये यह शंका उठाई थी कि समरा सारंग ने शत्रुंजय तीर्थ का संघ संवत् १३७१ में निकाला था जिसका वर्णन इस कडखे में है और देपाल की रचनाएं संवत् १५ १ से १५३४ तक की हैं इसलिये १ वर्ष से भी अधिक का अन्तर पड़ जाता है। इस समस्या का समाधान उन्होंने इस रूप में किया है कि कवि देपाल समरा सारंग का आश्रित न होकर उनके वंशजों का आश्रित होगा पर यह समाधान विचारणीय है क्योंकि मुनि

पुण्यविजय के प्रबन्धसंग्रह की एक प्रति में देपाल का जो विवरण मिलता है उसके अनुसार साह समरा का एक पुत्र साधो था उसने देपाल कवि से कहा कि मेरे योग्य कोई काम हो तो कहो। तब कवि ने कहा था कि गोरीखान मंगलपुर में सुरपा ८४ बारह पुत्रियों को छिपा कर रखा है तुम उन्हें छुड़ा दो। देपाल के इस वचन से संघपति साधा ने रत्न दे कर उन्हें छुड़ा दिया। उस समय देपाल ने निम्नोक्त कवित्त कहा था—

साहां प्रति ऊमाहा रे। साधा सरिखी भेट न हुई तिहां लगि लहएि लाहां रे। आ
खाय न बोली दूध न धोमु, अमियरा नुं मन कामुं रे।
अनेक पीत लिया वहि गया एकि साधसि कीधु साधु रे। १ आ
कानि नावसा बावसियाली रूपवत छण वासी रे।
राज करे समरा ना साधा तुं प्रतपे कोडि दीवाली रे। २ आ
चौरासी बारह बासीस बोलइ, मांगलोर सर नी पालि रे।
तेह तणा ए वचन सांभली कहियां कवि देपालि रे। ३ आ

समरा सारंग के कड़खे में ही यह पद्य कुछ पाठ-भेद के साथ मिलता है। तब चार बारह पुत्रों ने निम्नोक्त पद्य कहे—

सारंग तुं सारंगधर, ति वलि वप्पो पायास।
के वालिद्द दूर कर, के बलिराय देखाडि॥ १

वखपण साहण साह बिलह को देखि नहीं।
साह तो सारंगसाह अवर सहु साउ लिया।
नदी तो गंग प्रवाह, अवर सहु वाहलिया॥ २

सारंग सोमई हंस सर बूठो यमुंन तरिण।
वंदीवान वापई हंस पिउ पिउ करता पामस्यो॥ ३

सारंग के सुरताण जीवो को तोलि नहीं।
चाविलाय री प्राण जो करि बूठं बोलीइ॥ ४

देपाल कवि की रचनाओं में तत्कालीन अनेक रचना-प्रकारों का उपयोग हुआ है। रास धूड चौपइ, धवल विवाहला भास फाग (कक्का) हुरियाली गीत कड़खा पूजा-संज्ञक रचनायें उसकी मिलती हैं। १६ वीं शताब्दी के किसी एक ही कवि की रचित रचनाओं में इतना वैविध्य नहीं मिलेगा। कवि की अधिकांश रचनायें छोटी-छोटी हैं। चन्दनबाला चौपइ जम्बू चौपइ, बारह व्रत चौपइ, श्रेणिक रास रोहणीया रास मध्यम परिमाण की हैं। प्राप्त रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१ थावड़ भावड़ रास गाथा ६१ २ रोहिणीय प्रबन्ध रास गाथा २७७ ३ चंदनबाला चौपइ गाथा १२७ ४ आद्रकुमार धवल-धूड गाथा ५ थावच्चाकुमार भास गाथा १८ ६ जम्बूस्वामी चौपइ गाथा २७१ (यह सब से अधिक प्रसिद्ध रही है) संवत् १५२२ ७ अभयकुमार श्रेणिक रास गाथा ३६८ ८ बारह व्रत चौपइ गाथा १४१ संवत् १५३४ ९ पुण्य पाप फल चौपइ (रुपी वर्णन) १ वज्रस्वामी चौपइ

संवत् १२२२ ११ बीरावला पार्श्वनाथ रास गाथा २६, प्र मरु भारती २/१
१२ स्थूलि भद्र फाक गाथा १६ १३ स्नात्र पूजा १४ समरा सारम कडखा प्र
जैनयुग वर्ष ५ १५ हरियाली गाथा १६ मनुष्य भव साम गीत गाथा ८
१७ नवकार प्रबन्ध गाथा १२ १८ कायावेड़ी सम्भ्रम मा (हमारे संग्रह में)
इनकी और भी रचनायें होंगी। बीरावला रास मैंने मरु भारती में प्रकाशित किया है।

संघकलश—

१६ वीं शताब्दी की जिन रचनाओं में रचना-स्थान राजस्थान के किसी ग्राम या नगर, का उल्लेख हो ऐसी सर्व प्रथम रचना सम्यक्त्व रास है। यह मारवाड़ के तलवाड़ा गांव में संवत् १५ ५ के मिगसर महिने में रची गई। संवत् १५३८ की लिखी हुई इसकी प्रति पाटस भंडार में है। इस रास के प्रारम्भ में कवि संघकलश ने तलवाड़ा में ४ जैन मंदिर व मूर्तियां होने का उल्लेख किया है। यथा—

मरु कोटि मारवाड़ कहीजइ, तलवाड़ो तेह मांहि भणीजइ, आणी जे सधरा भरीए।
तिहां श्री विमल जिनेसर, बीर, संति पास जिन साससधीर, ए च्यार ह
जिणवर नमांइ।

ग्रंथ में कवि ने तपागच्छीय सोमसुन्दर सूरि, मुनि सुन्दर सूरि, जयचंद्र सूरि, विशालराज रत्नशेखर सूरि और उदयनंदि सूरि को वन्दन कर के रचनाकाल का निर्देश किया है।

"संवत् पनर पंचोतरइ ए मारहुंतड मागसिर रचीउ रास सु ।
तलवाड़ा पुरि निपनुए मारहुं तड पुण्य रस कलस संकास सु ॥ ११

इसमें प्रयुक्त 'मारहुंतड' कोई लोक गीत की देशी का शब्द है। इस देशी का प्रयोग सुदर्शन रास रत्नसिंह रास श्रेणिक रास आदि कई रासों की प्राचीन ढालों में भी हुआ है। जैन गुर्जर कवियो भाग १ पृष्ठ १४४ में इस सम्यक्त्व रास को 'मरु भाषा मां' लिखा है। उसका तात्पर्य सम्भवतः मरु भाषा का न हो कर आठ ढालो में होने से है। प्राचीन रचनाओं में ढाल या देशी के लिये 'भास' या 'भाषा' शब्द प्रयुक्त होता था। संवत् ११७१ में चरित संघपति समरसिंह रास में १२ भाषा प्रयुक्त हैं और स्थूलिभद्र फाग में भी जब छन्द या ढाल बदलती है तो भास शब्द का प्रयोग किया है। उपरोक्त समरा रासु की नवमी भाषा ढाल में 'मारहुंतड' वाली देशी प्रयुक्त है।

कतिपय अन्य रचनाएं—

जैन गुर्जर कवियो में संवत् १५ २ में रचित धर्मदेव गणि कृत सुरंगाभिध नेमि फाग संवत् १५ ७ मारुद मुनि रचित बमसबमी महत्तरा भास संवत् १५ ९ गुणशील गणि रचित अपीनवित रास ज्ञानसागर कृत श्रीपाल रास संघकलश कृत मंगलकलश रास उदयधर्म कृत मलयसुंदरी रास व व्याख्यान धाउद मेरु रचित कल्पसूत्र व्याख्यान व कालक सूरि फाग आदि का उल्लेख किया है पर उनमें रचना-स्थान का निर्देश नहीं है। ईश्वर सूरि रचित ललितांग रास को मालवा के दशपुर (मंदसोर) में रचित होने से राजस्थानी की सुन्दर कृति मानी जा सकती है।

ऋषिवर्द्धन सूरि—

रचना-स्थान के उल्लेख वाली कृतियों में अंचलगच्छीय जयकीर्ति सूरि शिष्य ऋषिवर्द्धन सूरि का नल-दमयन्ती रास उल्लेखनीय है। ३३१ पद्यों के इस रास की रचना संवत् १५१२ में चित्तौड़ में हुई। नल-दमयन्ती की प्रसिद्ध कथा को इस रास में संक्षेप में पर बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त की है। प्रारम्भ और अन्त के पद्य इस प्रकार हैं—

सकल संघ सुह शांति कर, प्रणमीय शान्ति जिणेसु।
दान शील तप भावना पुण्य प्रभाव भणेसु॥१
सुकृत सुपुरिय वर चरीय श्रावइ पुण्य पवित्र।
दमवंती नलराय नूं, निसुणु चारु चरित्त॥२

अंक-संवत् पनर बारोत्तर वासे चित्रकूट गिरि नगर सुवासे श्री संघ आदर अणइ।
एह चरित जेह भणइ भणावइ, ऋद्धि वृद्धि सुख उच्छव आवइ नितु नितु मन्दिर
तस तणइ ए।

मतिशेखर—

इसके पश्चात् उपकेशगच्छीय मतिशेखर सुकवि हो गये हैं। इस कवि की कई रचनायें प्राप्त होती हैं। यद्यपि उनमें रचना-स्थान का उल्लेख नहीं है पर उपकेशगच्छ मारवाड़ के ओसियां गांव के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उसका प्रचार प्रभाव भी राजस्थान में अधिक रहा इसलिये मतिशेखर की रचनायें राजस्थान में ही रची गई होंगी। इनके रचित (१) धन्नारास संवत् १५१४ पद्य १२८ (२) मयणरेहा रास संवत् १५३७ गाथा १४७ और (३) बावनी हमारे संग्रह में प्राप्त है। इनके अतिरिक्त (४) नेमिनाथ वसंत फुलड़ा फाग गाथा १०८ (५) कुरगड़ु महर्षि रास गाथा २४५ संवत् १५३७ (६) इलापुत्र चरित्र गाथा १६५ और (७) नेमि गीत का उल्लेख जैन गुर्जर कवियो में हुआ है। मतिशेखर वाचक पद से विभूषित और अच्छे कवि थे।

रत्नचूड़ रास—

रत्नचूड़ रास नामक एक और चरित काव्य इसी समय का प्राप्त है पर उसमें रचना-स्थान का उल्लेख नहीं है और विभिन्न प्रतियों में रचना-काल और रचयिता संबंधी पाठभेद पाया जाता है। इसी तरह की और भी कई रचनायें हैं जिनका यहां उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि खरतरगच्छ और उपकेशगच्छ का प्रभाव राजस्थान में अधिक रहा इसलिये इन गच्छों के कवियों की रचनाओं में रचना-स्थान का निर्देश होने पर भी उनके राजस्थान में रचित होने की ही विशेष सम्भावना है। अतः अन्य गच्छों के उन्हीं कवियों का यहां उल्लेख किया जायगा जिनमें राजस्थान में रचे जाने का स्पष्ट उल्लेख हो। पर उपरोक्त दोनों गच्छों की रचनायें रचना-स्थान के बिना भी यह मान कर उल्लिखित की जा रही हैं कि सम्भवतः वे राजस्थान में रची गई हैं।

आज्ञासुन्दर—

संवत् १५१६ में जिनवर्द्धन सूरि के शिष्य आज्ञासुन्दर उपाध्याय रचित विद्या विलास

चरित्र चौपई ११६ पद्यों की प्राप्त है। जिनवर्द्धन सूरि से खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा प्रसिद्ध हुई थी। विद्याविलास चौपई की प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी में भी उपलब्ध है। विद्या विलास की कथा और तत्संबंधी साहित्य के विषय में 'कल्पना' में प्रकाशित हमारा लेख द्रष्टव्य है।

विवाहलो—

खरतरगच्छीय आचार्य कीर्तिरत्न सूरि की जीवनी के संबंध में उनके शिष्य कल्याणचन्द्र ने ५४ पद्यों का श्री कीर्तिरत्न सूरि विवाहलउ की रचना की। यह ऐतिहासिक कृति है। इसमें कीर्तिरत्न सूरि के जन्म से स्वर्गवास तक का संवतोल्लेख सहित वृत्तान्त दिया गया है। मध्य में दीक्षा कुंवारी (संयम श्री) के साथ कीर्तिरत्न सूरि के विवाह का रूपक वर्णित होने के कारण ही इसका नाम 'विवाहलो' रखा गया प्रतीत होता है। जब देल्हकुंवर (कीर्तिरत्न सूरि का जन्म-नाम) अपनी माँ के पास दीक्षा लेने की अनुमति मांगता है तो उसकी माता अनेक वस्तुयें देने के प्रलोभन देती है उसका वर्णन करते हुये कवि ने कहा है—

> देसु गुड़ सुखड़ा देसु घण सुखड़ा गूंदवड़ वरसउला विलास।
> खारि कुलकुलडि खाज खज्जूरड़ी दाडिम द्राख बे प्रवर नाम॥ १७
> नमण मणि भूषणा वच्छ बहु दूषणा करि सिरे कड़ि करे बहु कन्ने।
> पिहर तु कापड़ा वारम बापड़ा वेन पिक्खंति भुमरोलि भन्ने॥ १८
> रूपिहि रलिय चित मह कुडिय लमिय लावण्य गुणवंत नारी।
> लाडण परणिय विलस सम्माणिय सजम लेम पछड विचारी।

इसके बाद देल्हकुंवर का दीक्षा उत्सव विवाह की भांति ही होता है। कवि ने उसका वर्णन करते हुए लिखा है—

> ते मसे विणु संघ घणा कुंकुमिय पठावि।
> मोहिय सासण वस तणउए, विसतरि बाल बलावि॥ २८
> आपइ देसण पूत फल आगइ तणाई प्रवेसि।
> सामहणी हिव गुरु करए, घम बीवाह हरेसि॥ २९
> परा मत बावइ कामिणी ए, मम्मह केरिइ काजि।
> पाबइ गामणि कामिणी रहिउ संवर मानि॥ ३

इसी तरह का एक और भी विवाहलउ कीर्तिरत्न सूरि के शिष्य गुणरत्न सूरि के सम्बन्ध में पद्म मन्दिर गणि रचित प्राप्त हुआ है। ४१ पद्यों के इस विवाहले की रचना सं० १५४६ में हुई है। पद्म मन्दिर रचित वरकाणा पार्श्व स्तोत्र गाथा २ जालोर नव फणा पार्श्व दस भव स्तवन गाथा १२ सं० १५४१ रचित प्राप्त है। विवाहलउ के नायक गुणरत्न सूरि मारवाड़ के सभियाणा ग्राम निवासी शाहटा थे। इनका ऐतिहासिक वृत्तांत इसी विवाहलउ से प्राप्त हुआ है।

कवि पुण्यनंदि—

खरतरगच्छीय जिन समुद्र सूरि के समय में पुण्यनंदि ने रूपक माला नामक ३२ पद्यों की रचना की जिस पर कई विद्वानों ने संस्कृत और राजस्थानी में विस्तृत टीकायें लिखी

है। राजस्थानी भाषा की इस सरल व छोटी-सी रचना पर संस्कृत में भी टीकायें लिखा जाना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिन समुद्र सूरि का आचार्य-काल संवत् १५३१ से ५५ तक का है अतः इसी बीच रूपकमाला जिसमें शील की महिमा का वर्णन है रची गई है। संवत् १५८२ में रत्नरंग उपाध्याय ने इस पर बालावबोध नामक भाषा-टीका बनाई और सुप्रसिद्ध कविवर समयसुन्दर ने संवत् १६६३ में संस्कृत में चूर्णि बनाई। पुण्यनंदि कृत कुछ और भी छोटी-छोटी रचनायें हमारे संग्रह में हैं।

कल्याणतिलक—

जिनसमुद्र सूरि के शिष्य कल्याणतिलक उपाध्याय कृत धन्नारास (पद्य ९५ जैसलमेर) मृगापुत्र-संधि (पद्य ४४) और कालकाचार्य कथा की चौपइ भाषा टीका की प्रति हमारे संग्रह में है।

क्षेमराज—

इसी समय क्षेमराज नामक एक और सुकवि खरतरगच्छ में हो गये हैं जो जैसलमेर ज्ञान भण्डार के स्थापक आचार्य जिनभद्र सूरि के शिष्य सोमध्वज के शिष्य थे। इनके रचित उपदेश सप्ततिका स्वोपज्ञवृत्ति (सं १५४७ की) प्रकाशित हो चुकी है। राजस्थानी भाषा में इन्होंने निम्नोक्त रचनायें बनाईं—

१ श्रावक विधि चौपइ गाथा ७ सं १५४१ २ इषुकार चौपइ गाथा ५ ३ फलोधी पार्श्वनाथ रास गाथा २५ ४ नमिराज चौपइ गाथा ७४ ५ मेतार्य चौपइ गाथा ६८ ६ तेतली पुत्र चौपइ गाथा १ १ ७ जिनपालित जिनरक्षित चौपइ ८ चौबीसी (अपूर्ण) ९ चारित्र मनोरथ माला गाथा ५१ १ सीमंधर स्तवन ११ चौराउला स्तवन १२ वरकाणा स्तवन १३ ज्ञान पंचमी स्तवन १४ वीर स्तवन १५ समवसरण स्तवन १६ उत्तराध्ययन सज्झाय आदि कई फुटकर रचनायें प्राप्त हैं। मण्डपाचल चैत्य परिपाटी गाथा २१ जिसमें मांडवगढ़ के जैन मन्दिरों का विवरण है जैन युग वर्ष ४ में प्रकाशित हो चुकी है। कई संस्कृत स्तोत्र और द्वात्रिंशिकाएं भी क्षेमराज रचित उपलब्ध हैं।

क्षेमराज के शिष्य क्षेमकुशल रचित श्रावक विधि चौपइ, सं १५४१ में रचित हमारे संग्रह में है।

क्षमाकलश—

आगमगच्छीय कवि क्षमाकलश ने ललितांग रास संवत् १५५३ के भादवा बदि ११ रविवार को उदयपुर में बनाया। शील-धर्म की महिमा बतलाने वाला यह रास २२२ पद्यों का है। इसी कवि ने सुन्दर राजा का रास संवत् १५५१ में १११ पद्यों का बनाया। इन दोनों रासों का विवरण जैन गुर्जर कवियो भाग १ में प्रकाशित है।

नन्न सूरि—

कोरंटगच्छ के नन्न सूरि रचित विचार चौसठी (१५४४) और गजसुकमाल चोढालिया (१५५१) प्रकाश में आ गया है पर इस श्रावक बत्तीसी की रचना सं १५५१ चित्तौड़ में हुई। यथा—

बत्तीसी इस श्रावक तणी चित्रकूटि रची धर्मा भणी।
पनर त्रिपनइ प्रासाद पूरी कोरंटगच्छ भण्उ मल सूरि।

राजशील—

खरतरगच्छ के साधुहर्ष शिष्य राजशील उपाध्याय ने चित्तौड़ में संवत् १५६३ की जेठ सुदि ७ को विक्रम चरित्र चौपइ की रचना की जिसमें खापरा चोर का प्रसंग वर्णित है। २ ५ पद्यों की इस रचना के अन्त में पराई वस्तु की चोरी न करने का उपदेश दिया है।

इम सांभली पराई वस्त मवियां मन कीजै मदत्त।
चोरी पणउ निवारउ दूरी जिम चिव सम्पद पामउ पूरी ॥ १९७

रचना काल और स्थान का उल्लेख इस प्रकार किया है—

पनरसइ त्रिसठी सुविचारी जेठ मासि उज्जल पखि सारि।
चित्रकूट गढ़ वास मझारि, भणता भवियण जयजयकारि ॥
विक्रम कीति जगि बसहूमइ, भसता सुणता मफला पमइ।
गंगा न्हायियां पवित्ता थाइ तिलमी तेहनै घरि-घरि थाइ ॥ २ ५

इसी कवि ने संवत् १५९४ में अमरसेन वयरसेन नामक दो भाइयों का चरित्र जिनेश्वर की पूजा का सुफल बतलाने के लिये बनाया है।

इम जिन पूजा फल समनि वीतराग नै पूजा बली।
तिह घरि नव रिद्धि मंगल च्यार, बहु निति नित्यं जयजयकार ॥ २६१

उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययनों का संक्षेप में सारांश एक-एक गीत में कवि ने लिखा है। इस तरह के ३६ गीत जिनका परिमाण ४१६ श्लोकों का है हमारे संग्रह में प्राप्त है। इसके अतिरिक्त हरिबल चौपइ की रचना कवि ने सवत् १५६६ श्रासोज में की। सिन्दूर प्रकर बालावबोध जो गद्य में भाषा टीका के रूप में है, कवि के रचित प्राप्त है।

वाचक धर्मसमुद्र—

खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा के वाचक विवेकसिंह के शिष्य धर्मसमुद्र भी अच्छे कवि हो गये हैं। इन्होंने सुमित्रकुमार रास संवत् १५६७ जालोर में ११७ पद्यों में बनाया। दान धर्म के माहात्म्य पर इस चरित्र काव्य की रचना हुई। इस कवि ने और भी कई रास बनाये हैं जिनमें कुलध्वज कुमार रास (सवत् १५८४) स्वदारा संतोष व्रत पालन करने की प्रेरणा करते हुये १४३ पद्यों में रचा गया है। और रात्रि भोजन नहीं करने की प्रेरणा देने के लिये जयमल चौपइ जिसका दूसरा नाम रात्रि भोजन रास भी है पंचासमा स्थान में बनाया गया है।

कवि धर्मसमुद्र ने मेवाड़ के प्रजिसालापुर में संवत् १५७३ में श्रीमलशाह के आग्रह से एक नसित कथा प्रभाकर गुणाकर चौपइ की रचना की। यह चौपइ ५३ पद्यों की है।

कवि धरमोस कही एकथा मन नसित किसी सरथा।
पनर तिहुत्तरी समत सरइ, मेद पाट प्रजिमालापुरइ।
श्री मलशाह तणी आग्रही चरित्र एह गुणवत गुण गहइ ॥ ५२८

आदि जिणेसर चरण पसाइ, वर पामी ब्रह्माणी माइ।
महियपूरब नव नव छन्दी सरस कवित किधी माणंदी ॥ २२६
भणता सुणता मानइ लोक वरि सहइ सघला संजोग।
रिद्धि वृद्धि नै निरमल बुद्धि कमइ मनवांछित फल सिद्धि ॥ २३०

इनके अतिरिक्त सुप्रसिद्ध शकुन्तला कथा के सम्बन्ध में भी १ ४ पद्यों में कवि ने शकुन्तला रास बनाया है। जैन कवियों में शकुन्तला की कथा को इसी कवि ने स्पर्श किया है। जैन साहित्य संशोधक खण्ड ३ में श्री मोहनलाल देसाई ने इस रास को प्रकाशित कर दिया है। हमारे संग्रह में कवि के रचित सुदर्शन रास की भी एक प्रति है। सुदर्शन सेठ अपने शील के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। कवि ने उनका चरित्र १ ७ पद्यों में संक्षिप्त रूप से ही इस चौपइ में दिया है। अवन्ति सुकमाल सज्झाय नामक ३३ पद्यों की एक छोटी रचना कवि की और मिलती है। उपरोक्त सभी रचनाओं में से रात्रि भोजन चौपइ का सबसे अधिक प्रचार रहा है। इसकी ५ प्रतियां तो केवल हमारे संग्रह में ही हैं, जिनमें से एक प्रति में २२६ और अन्य प्रतियों में २३८ तक पद्य हैं। प्रारम्भ में कवि ने रात्रि भोजन के दोषों का विस्तार से वर्णन करते हुये लिखा है—

पणमिय भोयण गणहर राय समरिय सरसति सामिणी पाइ।
रयणी भोजन दोष विचार, बोलिसुं ते सांभलउ उदार॥ १
एहव मनि अवधारी युगति माणस ढोर किसी छै विगति।
दिवसि रात्रि जो चरतु रहइ, चरति मरति केही मन लहइ॥ २
दीह मध्या पुहर बे च्यारि, आपइ किमइ नही आहार।
तेहनउ एहव भणिउ सरूप माणस फीटि राक्षस रूप॥ ३
रवि मण्डल अस्ताचल मिलइ, अंधकार पुहवि आफलइ।
आमिस भक्ष न विहरउ कोइ एहज भक्ष्य विमासी जोइ॥ ८
रात्रि विमणा केही बुद्धि रात्रि स्नान न थाइ शुद्धि।
रातइ पितर पिंड न लहइ, रातइ तरपण को नवि कहइ॥ ११

इससे कवि की निरूपण शैली का पता चलता है। इसमें महाभारत पुराणादि ग्रन्थों का हवाला दिया है और प्रत्यक्ष से भी रात्रि भोजन से होने वाली हानि का विवेचन किया है। ऐसी रचनाओं का प्रभाव सुनने वाले पर बड़ा अच्छा पड़ता है। कवि की सफलता इसी में है।

कवि सहजसुन्दर—

उपकेश गच्छ के उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य कवि सहजसुन्दर भी इस शताब्दी के अच्छे कवियों में है। संवत् १५७ से १५९५ तक की इनकी १ रचनायें प्राप्त है। यद्यपि किसी भी रचना में कवि ने रचना-स्थान का निर्देश नहीं किया पर उपकेश गच्छ का प्रभाव राजस्थान में अधिक होने के कारण उन्हें यहां स्थान दिया जा रहा है—

१ इलाती पुत्र सज्झाय पद्य ११ सं १५७ २ गुणरत्नाकर छन्द (इसमें चार अधिकार है सं १५७२) ३ ऋषि दत्ता रास ४ रत्नसार कुमार चौपइ संवत्

१३८२ ५ आत्मराम रास सं १३८२ ६ परदेसी राजा रास पद्य २११ ७ दुकराज साङ्गली चरित्र पद्य १६७ ८ जम्बू अन्तरंग रास पद्य ६१ ६ मौवन जरा सम्वाद पद्य २५ १ तलसी मंत्री रास सं १३६१ ११ प्रमत्र चंद्र रास १२ गर्भ बेलि गाथा ४४ १३ पांच कान सम्वाद १४ सरस्वती छन्द शालिभद्र सम्झायादि। इनमें से गुण रत्नाकर छन्द सब से अधिक कवित्वपूर्ण है।

मतिलाभ व उनके शि चारचन्द्र—

खरतरगच्छ के प्रसिद्ध विद्वान् उपाध्याय जयसागर के प्रशिष्य मतिलाभ उपाध्याय भी अच्छे विद्वान् हो गये हैं जिनकी कल्पान्तरवाच्य बाल-शिक्षा आदि संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त लघु जातक नामक ज्योतिष ग्रन्थ की भाषा-टीका संवत् १३७१ बीकानेर में रचित प्राप्त है। यह राजस्थानी के अच्छे कवि भी थे यद्यपि इनकी कोई बड़ी रचना नहीं मिली पर सीमंधर स्तवन वरकाणा स्तवन जीरावला स्तवन रोहिणी स्तवन आदि कई स्तवन प्राप्त हैं। इनमें सीमंधर स्तवन का तो काफी प्रचार रहा है। मतिलाभ के शिष्य चारचन्द्र रचित उत्तमकुमार चरित्र की स्वयं लिखित प्रति हमारे संग्रह में है जो संवत् १३७२ बीकानेर में लिखी गई है। इनकी राजस्थानी रचनायें इस प्रकार हैं—

१ हरिबल चौपाइ सं १३८१ २ नंदन मणिहार सधि स १३८७ ३ रति सार केवली चौपइ ४ महाबल मलय सुन्दरी रास गाथा ५१५ ५ पंचतीर्थी स्तवन सं १३६८ ६ युगमंधर गीत आदि। इनमें स नन्दन मणिहार संधि रतिसार चौपइ, महाबल रास की प्रतियां हमारे संग्रह में

पार्श्वचन्द्र सूरि—

इस शताब्दी के अन्त में और उल्लेखनीय राजस्थानी जैन कवि पार्श्वचन्द्र सूरि हैं। इनके नाम स पार्श्वचन्द्र-गच्छ प्रसिद्ध हुआ। बीकानेर में इस गच्छ की श्री पूज्य गद्दी है। नागौर में भी इस गच्छ का प्रसिद्ध उपाश्रय है। पार्श्वचन्द्र का जन्म सिरोही राज्य के हमीर पुर के पोरवाड़ वेलगशाह की पत्नी विमला दे की कुक्षि से स १३३७ में हुआ था। ६ वर्ष की छोटी आयु में ही उन्होंने मुनि-दीक्षा स्वीकार की और जल्दी ही पढ़ लिख कर विद्वान् बन गये इसलिये केवल १७ वर्ष की आयु में उपाध्याय पद और २८ वर्ष की आयु में आचार्य पद प्राप्त किया। सवत् १६१२ में जोधपुर म इनका स्वर्गवास हुआ। गद्य और पद्य में इनकी छोटी बड़ी सैकड़ों रचनायें मिलती हैं। इनके सबंध में मेरा एक लेख शोधपत्रिका भाग १ अंक १ २ में प्रकाशित हो चुका है जिसमें इनकी १४ गद्य-बालावबोध भाषा टीकाओं और ६२ पद्य-बद्ध रचनाओं की सूची दी गई है। इनकी बहुत सी पद्य रचनायें छप भी चुकी हैं। पार्श्वचन्द्र सूरि की अधिकांश रचनाएं सैद्धान्तिक विषयक सबंधी हैं इसलिये काव्य की दृष्टि से रचनाएं संख्या में अधिक होने पर भी उतनी उल्लेखनीय नहीं। इनकी बालावबोध संज्ञक भाषा-टीकाएं तत्कालीन राजस्थानी गद्य के स्वरूप को जानने के लिये महत्व की हैं। गद्य-सूत्रों पर सबसे पहले भाषा टीकाएं इन्हीं की मिलती हैं।

विजयदेव सूरि—

इनके प्रमुख पुण्यराज के शिष्य विजयदेव सूरि का शीलरास काव्य की दृष्टि से भी (छोटा होने पर भी) महत्त्व का है और उसका प्रचार इतना अधिक रहा कि पचासों हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं यद्यपि उसमें रचना-काल का उल्लेख नहीं है पर संवत् १५११ की लिखी हुई प्रति प्राप्त है। पार्श्वचन्द्र सूरि के पट्टधर समरचन्द्र को आचार्य पद संवत् १५ ४ में मिला था और उससे पहले ही विजयदेव सूरि का स्वर्गवास हो गया इसलिये इस रचना को १६ वी शताब्दी के अन्त की ही मानी जा सकती है। इस रास की रचना जालोर में हुई थी। ८ पद्यों का यह रास प्रकाशित भी हो चुका है। शीलदेव रास की तरह इसका छन्द काफी बड़ा है। इसलिये ८ पद्यों का श्लोक परिमाण २७ पद्यों का हो जाता है। शील के माहात्म्य का बड़े सुन्दर ढंग से और सरल भाषा में कवि ने निरूपण किया है इसीलिये यह इतना लोकप्रिय हो गया। नीचे उसके कुछ पद्य दिये जा रहे हैं—

आदि– पहिलउं प्रणाम करउं जिनराय नामुनु गोयम गणधर पायं।
सद्गुरु वाणी चमी सांभलउ पूमजनु भवर भासिग्यो ठाई।
रास भणिसु रसिया मसउ ये मुणया शील हियइ थिर थाई।
कोकिला जिम कलिरवि करई, मास वसंत जिम अंब पसाई।

मध्य– सिवसी नारी म चपल होई पुण्य सबे मसा मत कहा कोई।
सही सरली महीं मंगुली चउ करएी मुख सारिखा संती।
पुरपद के घर स्त्री रमई हसी हसी परि परि पाम ठवंती।
पगतली मरल न पैसउ, हाम कीबीसयद कूप पड़ंती।

अन्त– हिवई श्री पुण्य पासचंद सगुरु सुपसाउ शीलवरइ निज निरमल भाउ।
नयर जालोरह माम सउ हिवि नेमि नमउ नितु बे कर जोडि।
भीनती ये हा जिम बीनवउं स्वामि इक लिखि मन्ह मन की नवि खोडि।

शील के आदर्श रूप में भगवान नेमिनाथ का चरित्र वर्णित होने से कई प्रतियों में इसका नाम नेमिनाथ रास भी लिखा मिलता है।

उपरोक्त विजयदेव सूरि ने जिन्हें सं १५ २ में आचार्य पद दिया उन ब्रह्म मुनि ने सुधर्मागच्छ प्रवर्तित किया। ये अच्छे कवि भी थे। इनके रचित अनेकों रचनाएं प्राप्त हैं।

वाचक विनयसमुद्र—

इस शताब्दी के अन्तिम कवि जिनकी सं १६११ तक की रचना प्राप्त है वाचक विनयसमुद्र हुए हैं जो उपकेश गच्छ के वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे। बीकानेर में रची हुई इनकी कई रचनायें प्राप्त हैं। एक जोधपुर और एक तिमरी में भी रची गई। संवत् १५ ३ से १६१४ तक में रची हुई इनकी करीब २५ रचनायें प्राप्त हुई हैं जिनमें से २ का विवरण राजस्थान भारती भाग ५, अंक १ में प्रकाशित 'वाचक विनयसमुद्र' लेख में दिया था।

१ विक्रम पचदड चौ पद्य ५६१ सं १५८१ २ आराम शोभा चौ. प २४८ सं १५८३ ३ मम्बड़ चौपई संवत् १५९९, तिंवरी ४ मृगावती चौ स १६ २ बीकानेर ५ चित्रसेन पद्मावती रास प २४७ सं १६ ४ जोधपुर ६ पद्म चरित्र (रामायण) सं १६ ४ बीकानेर ७ शीलरास पद्य ४४ संवत् १६ ४ ८ रोहिणी रास संवत् १६ ५ ९ सिंहासन बत्तीसी चौ सं १६११ बीकानेर १ पार्श्वनाथ स्तवन पद्य ३९ ११ मलयसुन्दरी रास प १ ५ सं १६१४ १२ संग्राम सूरि चौपई बीकानेर १३ चन्दनबाला रास १४ नमिराजर्षि संधि पद्य ६९ १५ साधुवन्दना पद्य १ ८ १६ ब्रह्मचरी गाथा ५५ १७ श्री मंधरस्तवन पद्य ४१ १८ सत्तरभेद मासिनकर स्तवन पद्य २७ १९ सर्तभंग पार्श्वनाथ स्तवन पद्य ११ २ इलापुत्र रास।

उपरोक्त सभी कवि प्राय जैन मुनि हैं। जैन श्रावकों में भी कुछ कवि अच्छे हो गये हैं जिनमें से देपाल कवि का विवरण आगे दिया गया है। वच्छ कवि का मृगांकलेखा रास भी काफी प्रसिद्ध रहा है पर वे कहाँ के थे यह निश्चित नहीं है। पेथो मेघी रचित पार्श्वनाथ पवस विवाहलउ नामक रचना प्राप्त है। वे जम्बू-ग्राम के निवासी जाति के श्रीमाल थे अतः सम्भवतः गुजरात के होंगे। हमारे संग्रह में जयमसीह कवि रचित शालिभद्र चतुष्पदिका १ ४ पद्यों की है और उसकी प्रति सं १५२७ की लिखी हुई है इसलिये १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध या १६ वीं के प्रारम्भ की रचना है। जयमसीह ने अपने को कवि रूप में सम्बोधित किया है, इसलिये उसकी और भी रचनायें मिलनी चाहियें। लक्ष्मण नामक कवि के रचित शालिभद्र विवाहलउ का विवरण जैन गुर्जर कवियो में छपा है, जिसकी प्रति संवत् १५६८ की लिखी हुई प्राप्त है। इस शताब्दी के अन्य कवियों के संबंध में जैन गुर्जर कवियो भाग १ १ द्रष्टव्य हैं।

१६ वीं शताब्दी के दिगम्बर कवि—

आगे जिन कवियो का परिचय दिया गया है वे सभी श्वेताम्बर कवि हैं जैसा कि पहले लिखा जा चुका है दिगम्बर कवियों का झुकाव हिन्दी की ओर ही अधिक रहा पर १६ वी शताब्दी तक जिस प्रकार राजस्थानी एवं गुजराती म समानता थी उस तरह हिन्दी और राजस्थानी में भी काफी साम्य था और राजस्थान क बागड़ प्रदेश और गुजरात में दिगम्बर भट्टारको की गद्दियां थी। उन भट्टारकों और उनके ब्रह्मचारी शिष्यों द्वारा जो लोक भाषा में रचनाय की गई उनमें ब्रह्म जिनदास की रचनाएँ सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं। यह भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य एव भाई थे। संस्कृत मे इनके ६–७ ग्रंथ मिलते हैं पर मरु गुर्जर भाषा की भी इनकी करीब ३ रचनाय प्राप्त हुई है। संवत् १५ ० से १५२५ तक का इनका रचनाकाल है। राजस्थानी में सर्वप्रथम जैन रामायण ब्रह्म जिनदास की ही मिलती है जो संवत् १५ में रची गई। डूंगरपुर क दिगम्बर जैन मंदिर में इसकी प्रति प्राप्त हुई मेरे अवलोकन मे आई थी। ब्रह्म जिनदास की रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१ हरिवंश रास स १५२ धनपाल रास ३ आदिनाथ रास ४ श्रेणिक रास ५ करकंडु रास ६ हनुमंत रास ७ समकित सार रास ८ नागकुमार रास ९ जम्बू स्वामी रास १ होली रास ११ धर्म परीक्षा रास १२ श्रेष्ठ

जिनवर रास १३ कर्म विपाक रास १४ अठाइस मूल गुण रास १५ समत वत रास १६ सुकमाल स्वामी रास १७ सुभौमचक्रवर्ती रास १८ चौरासी जाति माला १९ धर्मपच्चीसी २० परम हंस रास २१ निशामणि श्रीपाल रास २२ प्रद्युमन रास २३ आदिनाथ रास २४ व्रत कथा कोस २५ जम्बूद्वीप पूजा २६ अनंत व्रत पूजा २७ वृहद् सिद्ध चक्र पूजादि।

ठकुरसी चतरू आदि और भी कुछ दिगम्बर कवि १६ वीं शताब्दी में हो गये हैं पर वे राजस्थान के नहीं प्रतीत होते। छीहल को डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल ने राजस्थान का कवि बतलाया है। उनके रचित बावनी के अनुसार वे अग्रवाल नाथिमलगोत्रीय साधु के पुत्र थे। बावनी की रचना सं. १५८४ में हुई है। इनकी अन्य रचनाओं में गीत पंथी गीत आत्म प्रतिबोध जयमाल उदर गीत बेलि आदि छोटी-छोटी रचनायें हैं। उल्लेखनीय और प्रसिद्ध रचनाओं में पंच सहेली सं. १५७५ में रचित है और प्रकाशित हो चुकी है पर उसकी भाषा हिन्दी प्रधान है।

१६ वीं शताब्दी की गद्य रचनाएँ—

जैन विद्वानों के रचित बालावबोध एवं टब्बा आदि भाषा टीकाओं की परम्परा १५वीं शताब्दी की तरह १६ वीं शताब्दी में भी चलती रही। प्राकृत और संस्कृत के कई ग्रंथों की भाषा-टीकायें तो इस शताब्दी में हुई ही पर राजस्थानी भाषा के पद्यबद्ध रचनाओं की भाषा-टीकायें भी इस शताब्दी में रची गई। इसका कारण यह है कि वे रचनायें बहुत संक्षेप में रची गई थी अतः सर्व साधारण के लिये उनके भावार्थ को स्पष्ट करना आवश्यक था उदाहरणार्थ विजयतिलक उपाध्याय के कर्म ग्रंथ विचार-गर्भित आदिनाथ स्तवन २१ पद्यों की रचना है और इसका बालावबोध करीब ८ श्लोक परिमित है। इसी तरह रूपकमाला १२ पद्यों में है उसका बालावबोध काफी विस्तृत है। शीलोपदेश माला उपदेश माला आदि कई ग्रंथों के बालावबोधों में केवल अर्थ को ही स्पष्ट नहीं किया गया पर प्रासंगिक कथायें भी राजस्थानी गद्य में दे दी गई है। प्रश्नोत्तर आदि कई स्वतंत्र ग्रंथ भी गद्य में लिखे गये हैं और कई-एक फुटकर वर्णन भी बहुत ही सुन्दर राजस्थानी गद्य में लिखे गये हैं। 'मुत्कलानुप्रास' नामक वर्णन-संग्रह मिलता है। इस ग्रंथ की एक ही अपूर्ण प्रति प्राप्त हुई है जो १६ वीं शताब्दी की लिखी हुई है और उसमे १ ८ वर्णन । वर्णनों में तुकान्त गद्य में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। यहां उन वर्णनों में से दो छोटे वर्णन हेमन्त और बसन्त ऋतु के उद्धृत किये जा रहे हैं—

हेमन्त ऋतु—

अति वसतु आवियो रितु हेमंतु। जिहां सीय भा मर, सेवई निर्वात घर।
तुलाइए पुढीइ भली तुलाइ उढीइ। अति ही मोटी प्रसंब चोटी।
ओढि बैसइ सीयाल हुई हसइ।

बसन्त ऋतु—

विरहणी हसतु, पुहतउ वसंतु। फूलइ वणराइ नगर माहि न फिराइ।
मेल्हइ वैराग खेलइ फाग। अति सुविसाल अम्बा नी डाल।
तिहां बांधीइ हिंडोला रमइ नर भोला।

खरतरगच्छ के आचार्य जिनसमुद्र सूरि और शान्तिसागर सूरि का वर्णन जिन दो रचनाओं में हुआ है उन्हें राजस्थानी निबन्ध माला भाग २ में 'दो पद्यानुकारी प्रतियें' शीर्षक लेख में प्रकाशित की जा चुकी है। उनका कुछ नमूना नीचे दिया जा रहा है—

'तरह साख राठउडां तसी कहीजइ। तेह मांहि मोटउ श्री राठउडी रायां मांहि वडउ राउ श्री सातल विराइ मालवियां सुरताण तणउ दम भांजी कीधउ तस्त। कुदाड़-कुदाड़ तोल तोल करतउ नाठउ आतउ धराउ बाठउ माल्हाला हिरख तणा परि नाठउ। वली मालइ बाली वलि छोडावी रेख रहावी लाडइ वडउ प्रणावी नव कोटी मारमाहि भली मस्हावी। मोटउ साहस कीधउ बडउ पवाडउ पसीधउ बंदी छोडावी तउ इग्यारस तणउ पारणउ कीधउ। जिन बाहार, रिख मुक्कार। बाबा अविचल कोट कटक बन सबल।

'अम्हारा गुरु खरतरगच्छ नायक प्रागवदायक श्री शांतिसागर सूरि वणिता सांमलि। किसा-येक छे गुरु? जोधपुर इसइ नामि करी महास्थान अभिनव-देव-लोक समान। रिद्धि-तणउ निधान धनवत लोके करी प्रधान। तिहां रायाराम आयराम मल्हार कमलव-कुल भृ गार-सार रूपि करी इद्रावतार श्री सुर्य्यमलउदार।

उपरोक्त वर्णनात्मक रचनाओं में रचयिता का नाम नहीं पाया जाता। अब हम प्रसिद्ध गद्य लेखकों और उनकी रचनाओं का विवरण संक्षेप में दे रहे हैं।

वृद्ध तपागच्छ के भट्टारक रत्नसिंह सूरि-शिष्य माणिक्यसुन्दर गणी रचित भव-भावना प्रकरण बालावबोध का उल्लेख जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृष्ठ १५७१ में हुआ है। उदयपुर राज्य के देलवाड़ा (देवकुल पाटक) में इस बालावबोध की रचना संवत् १५ १ में हुई थी। मडाहड गच्छ के कमलप्रभ शिष्य मासचन्द्र रचित कल्प-सूत्र बालावबोध की प्रति बीकानेर जैन भड र में है। इस बालावबोध का परिमाण १५ ग्रंथा-ग्रंथ और इसका रचना काल सवत् १५१७ है। इसकी रचना कहां हुई, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता पर मडाहड गच्छ शिरोही राज्य के मडाहड गांव से निकला है इसलिए इसकी रचना राजस्थान में होना सम्भव है। सं १५१५ में स्व धर्मदेव ने षष्टिशतक बालावबोध बनाया।

इस शताब्दी के सब से बड़े गद्यकार खरतरगच्छ के वाचनाचार्य रत्नमूर्ति के शिष्य मेरुसुन्दर हैं जिन्होंने स्तव मथकार, स्तोत्र और जैन आगम तथा प्रकरण ग्रंथों की बालावबोध नामक भाषा-टीकायें २ के लगभग बनाई हैं। राजस्थान और मालवा इनका विहार-क्षेत्र था। सवत् १५१८ से लेकर १५३५ तक का इनका रचना-काल है। रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१ षडावश्यक स्तवन बालावबोध सवत् १५१८ मांडव दुर्ग २ भक्तामर बालावबोध ३ शीलोपदेश माला बालावबोध सवत् १५२५ मांडवगढ़ प्रा १२५ ४ पडावश्यक बालावबोध सवत् १५२५ ५ पुष्पमाला बालावबोध प्र ६ ६ पंचनिर ग्रंथी बालावबोध ७ योग-शास्त्र बालावबोध ८ कपूर प्रकरण बालावबोध

९ सूक्तिसतक बालावबोध प ७ १ भावारिवारण स्तोत्र बालावबोध ११ अजित शांति बालावबोध (स्तोत्र) १२ श्रावक प्रतिक्रमण बालावबोध १३ वृत्त रत्नाकर बालावबोध १४ संबोधसत्तरी बालावबोध १५ वाग्भट्टालंकार भाषा १६ विदग्धमुख म ्न बालावबोध ।

इनके अतिरिक्त प्रश्नोत्तर' नामक एक मौलिक गद्य ग्रंथ भी इनका प्राप्त है जिसका नाम संदेह पद प्रश्नोत्तर शतक है । इसकी रचना सवत् १५१२ में हुई थी । जैन गुर्जर कवियो, भाग १ में इनके रचित कल्प प्रकरण और योग प्रकाश बालावबोध का उल्लेख किया गया है । योगप्रकाश सम्भव है योग-शास्त्र हो । वृत्तरत्नाकर जैसे छन्द ग्रंथ और वाग्भट्टालंकार एवं विदग्ध मुख मंडन जैसे अलंकार और काव्य-ग्रन्थों की राजस्थानी गद्य टीका अन्य किसी विद्वान की नहीं मिलती ।

जिनप्रभ सूरि परम्परा—

हर्षतिलक के शिष्य राजहंस ने दशवैकालिक बालावबोध नामक भाषा टीका एवं प्रवचन सार नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाया ।

खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा के आचार्य जिनहर्ष सूरि के शिष्य कमलसंयमोपाध्याय ने सिद्धान्तसारोद्धार नामक एक मौलिक गद्य-ग्रन्थ बनाया जिसमें मूर्ति पूजा विरोधी लोंकाशाह का खण्डन और मूर्ति पूजा का मण्डन शास्त्रों का प्रमाण देकर किया है ।

सवत् १५५६ में नागौर के निकटवर्ती बीलसर ग्राम में खरतरगच्छ के वाचक सोम ध्वज के शिष्य शिवसुन्दर ने गौतमपृच्छा बालावबोध की रचना सं १५५६ में की । इसकी दो प्रतियां हमारे सग्रह में है ।

समयधर्म रचित दस दृष्टान्त बालावबोध की रचना सं १५७६ में श्रेष्ठि करण के आग्रह से हुई है । समयधर्म खरतरगच्छ के वाचक नामकुमार के शिष्य और जिनहंस सूरि के आज्ञानुयायी थे । खरतरगच्छ के कवि राजशील रचित सिन्दूरप्रकर बालावबोध का उल्लेख उनकी अन्य रचनाओं के साथ किया जा चुका है और सवत् १५८१ में रत्न-रंगोपाध्याय के रूपकमाला बालावबोध का उल्लेख भी पहले किया जा चुका है ।

समुद्र सूरि के शिष्य वाचक कल्याणतिलक ने प्राकृत भाषा में ५६ गाथाओं की कालिकाचार्य कथा बनाई जिसका उन्होंने स्वयं संक्षिप्त भावार्थ बालावबोध के नाम से लिखा है । इसकी एक मात्र प्रति हमारे सग्रह में है जिसके आधार से ही कालककथा सग्रह नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत कथा बालावबोध सहित प्रकाशित हो चुकी है । इसी तरह एक अज्ञात कवि के रचित सस्कृत कालिकाचार्य कथा बालावबोध सहित उक्त ग्रन्थ में प्रकाशित हुई है । मलधार गच्छ के भावभद्र रचित कल्पसूत्र बालावबोध का उल्लेख ऊपर किया है । उनके द्वारा लिखित कालककथा भी उपरोक्त ग्रन्थ में छप चुकी है । इसकी प्रति संवत् १५१७ की लिखी हुई है । इस कथा में कई गद्य-वर्णन भी बड़े सुन्दर है । नीचे कुछ गद्य का [illegible]

'ईणइ जि भरतक्षेत्रि बाराबाइ इसि नामि नगर छइ। तिहां वैरसिंह इसि नामि राजा राज्य प्रतिपालइ। तेह तणइ सोलासकारधारिणी मनोहारिणी प्रियाकमल सुरसुन्दरी इसि नामि प्रवर्तइ। तेह बिहु भरतार भार्या संभूत कामिक इसि नामि कुमार छइ। सर्वगुणाधार छइ।

'बीजना मनकारा सरीषउं हाथीमाना कर्ण सरीपउं राजलक्ष्मी तणउं स्वरूप जाणी तह्य सरीषा मध्य जीव छइ ज ते मनि कुपि किम पडइं।

'घूयड़ दीहि न देखइ। काग रात्रि म देखइं। पुणि कामांध पापी दीहि अनइ रात्रि न देखइं।

इस शती के विशिष्ट गद्य लेखक पार्श्वचन्द्र सूरि का उल्लेख पहले किया जा चुका है। उनके द्वारा रचित १ आचारांग २ सूत्र कृताग ३ रायपसेणी ४ प्रश्न व्याकरण ५ दशवैकालिक ६ औपपातिक सूत्र ७ तन्दुल वयाली ८ चौसरणपयन्ना ९ साधु प्रतिक्रमण तथा १ नवतत्वादि के बालावबोध प्राप्त हैं।

१७ वीं शताब्दी

राजस्थानी साहित्य के बहुत से सुकवि १७ वी शताब्दी में हुए हैं और उनकी रचनायें भी उच्च कोटि की है। बीकानेर के महाराज पृथ्वीराज राठौड़ की कृष्ण रूकमणी री वेलि जैसे राजस्थानी भाषा के उत्कृष्ट काव्य का निर्माण इसी शताब्दी में हुआ। दुरसा आढ़ा जैसे दीर्घजीवी और प्रसिद्ध कवि तथा भक्त कवि ईसरदास के द्वारा इस शताब्दी का राजस्थानी साहित्य गौरवान्वित हुआ है। बीकानेर के महाराजा रायसिंह ने शंकर बारहठ आदि कई कवियों को 'क्रोडपसाव' और 'लाखपसाव' दिये। वेलि साहित्य का निर्माण भी इसी शताब्दी से ही अधिक होने लगा। जैन कवियों के बड़े-बड़े रास रचे गये। इस शती के पचासों जैन कवियो की सैकड़ों राजस्थानी रचनाएँ उल्लेखनीय है पर उनका विवरण यहां दिया जाना सम्भव नही इसलिए कुछ प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओ का परिचय ही दिया जा रहा है।

मालदेव—

बीकानेर राज्य के भटनेर नामक स्थान जिसे संस्कृत में भट्टी नगर और आजकल हनु मानगढ़ कहते हैं वहाँ बड़ गच्छ की एक शाखा कई शताब्दियों तक प्रभावशाली रही है। इस गच्छ के आचार्य भावदेव सूरि के शिष्य वाचक मालदेव बहुत ही अच्छे कवि हुए हैं। इनके कुछ प्राकृत और संस्कृत के ग्रन्थ भी मिलते हैं पर राजस्थानी रचनाएँ संख्या और स्तर दोनों की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनके रचित पुरन्दर चौपइ का तो काफी प्रचार रहा है। विक्रम और भोज संबंधी कथाओं को लेकर इन्होंने बड़े-बड़े राजस्थानी काव्य लिखे हैं। गुजरात की ओर इनका विहार न रहने से और पंजाब से विशेष संबंध रहने के कारण इनकी भाषा हिन्दी-प्रभावित है। इनकी रचनाओं के संबंध में मेरे दो लेख शोध पत्रिका (उदयपुर) में प्रकाशित हो चुके हैं। यहां उन रचनाओं की सूची मात्र दी जा रही है। कवि ने यद्यपि अधिकांश रचनायें कथाओं को लेकर की है पर उनमें सुभाषितों का भी अच्छा

प्रयोग हुआ है। कवि के कई सुभाषितों को तो परवर्ती कवियों ने भी उद्धृत किया है। इनकी अधिकांश रचनाओं में रचना काल एवं रचना स्थान नहीं दिया है पर ये भटनेर, सरसा के आस-पास ही अधिक रहे और वीरांगद चौपई में रचना-काल संवत् १६१२ दिया है। अतः कवि का समय इसी के आसपास का माना जा सकता है।

१ पुरन्दर चौपई पद्य ३७२ २ सुरसुन्दर चौ० पद्य ६६६ ३ वीरांगद चौ० पद्य ७२८ सं० १६१२ ४ भोजप्रबन्ध करीब २००० श्लोक पंचपुरी ५ विक्रम पंचदंड चौ० (भाषा) १७२५ ६ देवदत्त चौ० पद्य ५१ ७ मनदेव पदमरथ चौ० पद्य १८४ ८ सत्य की चौ० पद्य ४४६ ९ अंजना सुन्दरी चौ० पद्य १५९ १० मृगांक पद्मावती रास पद्य ४७८ ११ पद्मावती पद्मश्री रास पद्य ८१५ १२ अमरसेन वयरसेन चौ० पद्य ४ ८ १३ कीर्तिधर सुकोशल संबंध पद्य ४३१ १४ नेमिनाथ नवभवरास पद्य २३ १५ नेमिराजुल धमाल पद्य ६५ १६ स्थूलिभद्र धमाल पद्य १ ७ १७ बृहद्गच्छीय गुर्वावली पद्य ३७ १८ महावीर पारणा १९ महावीर पंच कल्याणक स्तवन गाथा २८ २० मास विचार चौ० पद्य ६७ २१ शीलबावनी पद्य ५६।

और भी कई गीत स्तवन सज्झाय प्राप्त हैं। महावीर पारणा के अतिरिक्त महावीर लोरी को भी मैंने प्रकाशित किया है और पुरन्दर चौपई को पाठभेद सहित श्री भंवरलाल नाहटा से सम्पादित करवाया है।

पुण्यसागर—

खरतरगच्छ के अनेक कवि इस शताब्दी में हुये हैं, जिनमें सर्वप्रथम महोपाध्याय पुण्यसागर का स्थान है। इनके रचित सुबाहुसंधि की रचना संवत् १६ ४ जैसलमेर में हुई जिसकी पद्य संख्या ८९ है। इनके रचित साधु-वन्दना गाथा ८८ नमि राजर्षि गीत पद्य २४ और कई स्तवन हमारे संग्रह में है। इनके शिष्य पद्मराज भी अच्छे कवि थे। इनके रचित अभयकुमार चौपई संवत् १६५ जैसलमेर, क्षुल्लक ऋषि प्रबन्ध गाथा १४१ संवत् १६६७ सुलतान सनतकुमार रास संवत १६६९ और कई स्तवन गीत प्राप्त है। इन दोनों गुरु-शिष्यों के कई संस्कृत ग्रन्थ और टीकायें विद्वत्तापूर्ण है। पुण्यसागर महोपाध्याय ने लम्बी आयु पाई और गच्छ में एक प्रतिष्ठित विद्वान् के रूप में मान्य हुये। इनके प्रशिष्य परमानंद रचित देवराज वच्छराज चौपई संवत् १६७५ की रचना है। पद्मराज के शिष्य ज्ञानतिलक भी अच्छे शिष्य थे। गौतमकुलकवृत्ति नामक टीका के अतिरिक्त नेमिधमाल नेमिनाथ गीत शान्तिस्तवन मंदीसम फाग नामक उनकी राजस्थानी रचनायें प्राप्त हुई हैं। महोपाध्याय पुण्यसागर के अन्य शिष्य जिनसुन्दर के शिष्य परमानंद ने देवराज वच्छराज चौ० (सं० १६७५ मरोठ) की रचना की।

साधुकीर्ति—

जैसलमेर बृहद् ज्ञानभंडार के स्थापक जिनभद्र सूरि की परम्परा में अमरमाणिक्य के शिष्य उपाध्याय साधुकीर्ति अच्छे विद्वान हो गये हैं जिन्होंने संवत् १६२१ में आगरे में

सम्राट अकबर की सेवा में तपागच्छीय बुद्धिसागर से शास्त्रार्थ कर के विजय प्राप्त की थी। विशेष नाममाला संबपट्टक वृत्ति भक्तामर अवचूरी आदि संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त आपने राजस्थानी गद्य और पद्य में अनेक रचनायें की है। आपकी सर्वप्रथम रचना षष्ठसस्मरण बालावबोध संवत् १६११ की है। यह भाषा टीका बीकानेर के मंत्री करमचन्द्र बच्छावत के पिता संग्रामसिंह के आग्रह से की गई थी। इनके रचित सतरभेदी पूजा का पद्य ४ वर्षों से खतरगच्छ में खूब प्रचार रहा है। संवत् १६१८ पाटण में इसकी रचना हुई थी। इसके बाद आषाढ़ भूतिप्रबन्ध संवत् १६२४ विक्रमी मौन एकादशी स्तवन संवत् १६१५ अमरसर, नेमि राजर्षि चौपई संवत् १६१६ नागौर, शीतल जिनस्तवन सं० १६१८ अमरसर, प्रवचन वेलि गुणस्थान विचार चौपई, स्थूलिभद्र रास और बहुत से स्तवन प्राप्त हैं। गद्य रचनाओं में षष्ठ स्मरण बालावबोध के अतिरिक्त कर्मग्रन्थ टब्बा काय स्थिति बालावबोध संवत् १६२१ महिमनगर, षोयावहार बालावबोध प्राप्त हैं।

कनकसोम—

इनके गुरुभ्राता कनकसोम भी अच्छे कवि थे। इनके राजस्थानी काव्यों के नाम इस प्रकार हैं—

१ जैतपद वेलि सं० १६२५ आगरा २ जिनपालित जिनरक्षित रास सं० १६३२ नागौर ३ आषाढ़भूति धमाल सं० १६३८ खम्भात ४ हरिकेशी संधि १६४ वैराठ ५ गुणठाणा विवरण चौपई सं० १६३१ आगरा ६ आर्द्रकुमार धमाल सं० १६४४ अमरसर ७ मंगलकलश रास सं० १६४६ मुलतान ८ थावच्चा सुकोशल चरित्र सं० १६५५ नागौर ९ हरिबल संधि १० नेमिफाग ११ जिनचन्द्र सूरि गीत सं० १६२८ १२ लभर कोट पार्श्वनाथ स्तवन सं० १६१४।

और भी कई गीत स्तवन सज्झाय प्राप्त है। गद्य रचनाओं में शाश्वत जिनस्तव बालावबोध कल्पसूत्र बालावबोध उल्लेखनीय हैं। इनकी सर्वप्रथम रचना जिनदत्तसूरि कृत पांच स्तवनों की अवचूरि की प्रति सं० १६१२ में लिखी हुई मिली है। इस तरह सं० १६१२ से १६५५ तक इनका साहित्य रचनाकाल है।

कनकसोम के २-३ शिष्य भी अच्छे कवि थे। इनमें से रंगकुशल रचित अमरसेन वयर सेन सं० १६४४ सागानेर, हमारे संग्रह में है। स्थूलिभद्र रास पद्य ४८ संवत १६४४ की ६ पत्रों की प्रति मुनि जिनविजयजी के संग्रह में है। होली गीत संवत् १६६८ बीकानेर, महावीर पारणा और महावीर सत्तावीस भव (सं० १६७) आदि अन्य रचनायें प्राप्त हैं। दूसरे शिष्य लक्ष्मीप्रभ पुण्य सार चौपई ढाल १३ गाथा २९१ (सं० १६७ से १६७४ के बीच रचित) की प्रति जिनविजयजी के संग्रह में है। धर्म गीत गाथा ८७ सं० १६६४ अमरदत्त मित्रानंद रास सं० १६७६ और मृगापुत्र संधि गाथा ६२ संवत् १६७७ मुलतान चौबीस जिनस्तवन आदि प्राप्त हैं। तीसरे शिष्य कनकप्रभ रचित दशविधि यतिधर्म गीत सं० १६६४ में रचित उपलब्ध है।

विमलकीर्ति—

साधुकीर्ति उपाध्याय के शिष्य विमलतिलक के ये शिष्य थे। इनकी गद्य और पद्य बहुत-सी राजस्थानी रचनाएं और दो संस्कृत रचनायें मिलती हैं। गद्य रचनाओं में दशवैकालिक

रास संवत् १६६५ अमरसर, जोधपुर मण्डन पार्श्व स्तवन और बाहुबलि सज्झाय प्रति क्रमण विधिस्तवन सं १६६ मुलतान जस्सेलमीय हैं। भाषा टीकाओं की सूची इस प्रकार है—

१ आवश्यक बालावबोध सं १६७१ २ दण्डक बालावबोध ३ नव तत्त्व बालावबोध ४ जीव विचार बालावबोध ५ जय तिहुअण बालावबोध ६ पक्खि सूत्र बालावबोध ७ दसवैकालिक टबा ८ प्रतिक्रमण समाचारी टबा ९ गणधर सार्द्धशतक टबा (सं १६८ लि) १ उपदेशमाला टबा ११ प्रतिक्रमण टबा १२ इकीस ठाणा टबा १३ षष्टिशतक बालावबोध (इनमें आवश्यक बालावबोध सब से बड़ा है) इनके शिष्य विमलरत्न का वीरचरित्र बालावबोध संवत १७ २ सांचोर में रचित प्राप्त है। संवत १६७१ में इनसे श्राविका पैमा ने १२ व्रत ग्रहण किये जिसका रास नाहटाजी संग्रह कलकत्ता में है।

साधुकीर्ति के शिष्य महिमसुन्दर ने नेमि विवाहला सं १६६६ सरसा गाथा ३८१ और शत्रुंजय तीर्थोद्धार कल्प संवत १६६६ जैसलमेर गा ११६ बनाया। इनके शिष्य ज्ञानमेरु रचित विजय सेठ विजयाप्रबन्ध संवत १६६५ सरसा गुणावली चौ संवत १६७६ बीगमपुर, कुगुरुछत्तीसी और कालकाचार्य कथा प्राप्त है। कमलसोम—य धर्मसुन्दर के शिष्य थे। इनके रचित १२ व्रत रास सं १६२१ संका वंदन प्रतिमा मंडन रास गाथा ४६ (सिन्धु देश फतेपुर) एवं गीतादय प्राप्त है।

नयरंग—

जिनभद्र सूरि की शाखा के गुणशेखर के शिष्य नयरंग भी अच्छे विद्वान और कवि हो गये हैं। उन्होंने प्राकृत भाषा में विधिकन्दली ग्रन्थ बनाया जिसकी संस्कृत वृत्ति उन्होंने स्वयं संवत १६२५ वीरमपुर में बनाई। परमहंस-सबोध चरित्र संस्कृत में रूपक कथा संवत् १६२४ बालपताकापुर में बनाई और यह प्रकाशित भी हो चुकी है। इनकी राजस्थानी रचनायें इस प्रकार हैं—

१ मुनिपति चौ संवत् १६१५ २ सतरभेदी पूजा संवत् १६१८ ३ अर्जुन माली संधि गा संवत् १६२१ ४ कुबेरदत्ता चौ गा ७२ सं १६२१ ५ केशी-प्रदेशी संधि गा ७२ ६ गौतम पृच्छा गा ५७ ७ गौतम स्वामी छन्द गा १ ८ ८ जिनप्रतिमा छत्तीसी चौवीस जिनपदादि। इनका लिखित अगड़दत्त संधि सं १६४७ अप्राप्त प्राप्त है।

कुशललाभ—

आप खरतरगच्छीय अभयधर्म के शिष्य थे। ढोलामारु और माधवानल कामकन्दला चौपइ आपकी लोकप्रिय और प्रसिद्ध रचनायें हैं। जैसलमेर के रावल मालदेव के कुंवर

इनके शिष्य रत्नसिंह रचित विद्याविलास रास (स १६७९ नपावती) और आराम सोभा चौ स १६८७ जाइसमेर एवं कई गीत और स्तवन प्राप्त हैं।

हरराज के कौतूहल के लिये इन दोनों लोक-कथाओं सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों की आपने रचना सं १६१६ और १६१७ में की। ये दोनों ग्रंथ प्राचीन काव्य महोदधि मौक्तिकसार्थ और नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित ढोला मारू रा दूहा एवं गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज बड़ोदा से प्रकाशित माधवानल कामकन्दला नामक ग्रन्थों में प्रकाशित हो चुके हैं। हरराज के नाम से पिंगल शिरोमणि नामक छन्द ग्रंथ राजस्थानी भाषा का आपने बनाया जो परम्परा जोधपुर से भाग ११ में प्रकाशित हो चुका है। इनके अतिरिक्त तेज सार रास सं १६२४ वीरमपुर, अगड़दत्त रास संवत् १६२५ जिनपालित जिनरक्षित संधि संवत् १६२१ गाथा ८९, पुर्वी सातसई, श्री पूज्य बाहल गीत स्तंभन पार्श्वस्तवन नवकारछन्द गोड़ी पार्श्वनाथ छन्द पार्श्वनाथ दस भव स्तवन भाषा १४ संवत् १६२१ राजद्रह एवं शत्रुंजय भाषा स्तवन आदि आपकी रचनायें उपलब्ध हैं।

कविवर हीरकलश—

बीकानेर और नागौर प्रदेश में आपका अधिक विराजना हुआ। खरतरगच्छ के हर्ष प्रभ के आप शिष्य थे। प्राकृत भाषा में रचित ज्योतिषसार, जिसका अपर नाम जोइसहीर भी है की रचना आपने संवत् १६२१ नागौर में की। इससे आप अच्छे ज्योतिषी सिद्ध होते हैं। राजस्थानी भाषा में भी ९ ४ पद्यों का आपने हीरकलश—जोइस हीर नामक महत्व पूर्ण ग्रन्थ संवत् १६५७ में बनाया। सारामाई नवाब अहमदाबाद की ओर से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। राजस्थानी भाषा के ज्योतिष ग्रन्थों में यह बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त आपकी राजस्थानी रचनायें इस प्रकार हैं—१ कुमति विध्वंसन चौ स १६१७ करणपुरी २ मुनिपति चौ स १६१८ बीकानेर ३ अठारह नाता चौ गाथा ५२ सं १६१६ मोरसंबेसर ४ सोलह स्वप्न सज्झाय स १६२२ राजलदेसर ५ सम्यक्त्व कौमुदी रास सं १६२४ सेहू ६ आराधना चौपइ सं १६२३ नागौर, ७ जम्बू चौ स १६३२ देह ८ मोती कपासिया सम्वाद स १६३२ ९ रत्न चूड़ चौपइ संवत् १६३६ १ सिंहासन बत्तीसी सं १६३६ मेड़ता, ११ बीस दांत वाद सं १६४३ बीकानेर १२ हीयाली संवत् १६४३ बीकानेर १३ मुक्त वल्लिका विचार संवत् १६१५ १४ पंचाख्यान मत्त चक नालिकेर कथानक संवत् १६४९ १५ पंच सति द्रौपदी चौपइ संवत् १६२६ १६ राजसिंह रत्नावली संधि संवत् १६१२ भरनेड़ १७ गुर्वा वली संवत् १६१६ भरनेड़ संवत् १६१५ से लेकर संवत् १६५७ तक आपकी करीब ५ रचनाय प्राप्त हुई हैं। आपके सम्बन्ध में हमारा एक लेख शोध-पत्रिका भाग ७ अंक ४ में प्रकाशित हो चुका है। आपके शिष्य हेमानन्द भी अच्छे कवि थे। इनके रचित भोज चरित्र चौपइ संवत् १६३६, बैतालपचीसी चौपइ संवत् १६४६ भोज चरित्र चौपइ संवत् १६२४ भदाणई में रचित और बारह मास गाथा ५६ संवत् १६२७ रड़वड़िया ग्राम में रचित प्राप्त है।

समयनिधान —

खरतरगच्छ की सागरचन्द्र सूरि शाखा के राजचन्द्र महि के शिष्य वाचक समयनिधान भी अच्छे कवि थे। इनके रचित चौबीस जिन मन्तराकार स्तवन संवत् १६६४ अठारह

गाथा सम्बन्ध संवत् १६१६ गाथा ६१ यशोधररास संवत् १६४१ धर्मदत्त धनपति रास गाथा १२ संवत् १६४८ सम्मेत शिखर यात्रा स्तवन सं १६४९ सुरप्रिय रास गाथा १६७ सं १६६२ मुलतान कुर्मा पुत्र चौपई गाथा १२९ सं १६५९ देरावर, कामलक्ष्मी वेदविचक्षण मातृ पुत्र कथा चौ गाथा १ ५ सं १६७१ और नेमि फाग उपलब्ध है।

वाचक गुणरत्न—

खरतरगच्छ के यु जिनचन्द्र सूरि के गुरु जिनमाणिक्य सूरि की परम्परा में कई विद्वान और कवि हो गये हैं। इनमें वादि शिरोमणि गुणरत्न विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय हैं। ये जिनमाणिक्य सूरि के शिष्य विनयसमुद्र के शिष्य थे। काव्य प्रकाश सारस्वत रघुवंश मेघदूत न्यायसिद्धान्त आदि ग्रन्थों की संस्कृत टीकाओं से आपकी विद्वता का भली भांति परिचय मिल जाता है। राजस्थानी भाषा में भी इनके रचित संमति सधि संवत् १६१ और श्रीपाल चौपई उपलब्ध है। इनके शिष्य रत्नविशाल ने सं १६५२ महिमावती नगर में रत्नपाल चौपई की ४९९ पद्यों मे रचना की और मुल्तान पार्श्व स्तवन ११ पद्यों का संवत् १६८२ में बनाया।

चारित्रसिंह—

ये मतिभद्र के शिष्य थे। इनकी रचित मुनिमालिका काफी प्रसिद्ध है। इनकी कुछ संस्कृत टीकायें भी मिलती है। राजस्थानी रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१ षट्स्थान प्रकरण सधि गाथा ६१ जैसलमेर २ चतुश्शरण प्रकरण संधि संवत् १६३१ जैसलमेर ३ मुनि मालिका सं १६३६ रीणी ४ खरतरगुर्वावली गीत गाथा २१ ५ साधु गुणस्तवन गा ४२ २५ ६ अल्पाबहुत्व स्तवन शाश्वत चैत्य स्तवन गाथा १८ और गद्य में संक्षिप्त विचारस्तवन बालावबोध सं १६३३ मर्कटपुर।

धर्मरत्न—

ये वाचक कल्याणधीर के शिष्य थे। इन्होंने जयविजय चौपई की रचना सं १६४१ आगरे में की। तेरहकाठिया सज्झाय बनाई।

धर्मप्रमोद—

ये भी कल्याणधीर के शिष्य थे। संस्कृत में इनके रचित चैत्यवंदनभाष्य और लघुशांति की वृत्ति टीकाएं मिलती हैं। राजस्थानी में इन्होंने महापातक नामक संधि की रचना की।

कल्याणदेव—

ये खरतरगच्छ के चरणोदय के शिष्य थे। इन्होंने वच्छराज देवराज चौ की रचना सं १६४३ बीकानेर में की।

वीरविजय —

इनके रचित चौबीस जिन सात बोल विचारगर्भित-स्तवन गाथा २५ सं १६४१ जैसलमेर, शत्रुंजययात्रा स्तवन सं १६५२ सत्तरभेदी पूजा सं १६५६ दसदृष्टान्त भी उपलब्ध हैं।

कवि हेमरत्न सूरि—

पूर्णिमागच्छ क ज्ञानतिलक सूरि के आप शिष्य थे। आपके रचित गोरा बादल पद्मिनी चौपई बहुत प्रसिद्ध है। राजस्थानी भाषा के ये अच्छे कवियों में है। संवत् १६१८ में बीकानेर के मंत्री कर्मचन्द्र बच्छावत के आदेश से अमरकुमार चौपई की रचना की। गोरा बादल चरित्र की रचना महाराणा प्रताप के मंत्री सुप्रसिद्ध भामाशाह कावेड़या के लघु बन्धु ताराचन्द के आदेश से सं १६४५ में सादड़ी में की थी। शील के माहात्म्य को बतलाने वाली लीलावती चौपई की रचना सं १६७३ पाली नगर में हुई। जैन गुर्जर कवियो भाग १ मे आपके रचित सीता चरित्र का उल्लेख है। महिपाल चौपई स १६३६ जगदम्बा बावनी व और भी आपकी रचनायें हैं। शोध-पत्रिका भाग २, अंक १ में प्रकाशित मेरा लेख द्रष्टव्य है।

कवि सारंग—

मडाहड़ गच्छ के पद्मसुन्दर के आप शिष्य थे। इन्होंने संवत् १६७८ में सुप्रसिद्ध कृष्ण रुक्मणि री वेलि की संस्कृत टीका सुबोधमंजरी के नाम से बनाई जो वेलि के हिन्दुस्तानी अकादमी के प्रकाशित संस्करण में छप चुकी है। राजस्थानी भाषा के ये अच्छे कवि थे।

१ बिल्हण पंचाशिका की भाषा ४१२ सं १६३९ जालोर २ भोजप्रबन्ध चौपई सं १६५१ जालोर ३ वीरांगद चौपई सं १६४५ ४ भाव षटत्रिंशिका सं १६७५ जालोर, संस्कृत टीका सहित और जगदम्बा स्तुति आदि आपकी रचनायें प्राप्त हैं।

उपाध्याय जयसोम—

खरतरगच्छ क प्रमोदमाणिक्य गणि के आप शिष्य थे। अपने समय के ये प्रसिद्ध विद्वान् ग्रन्थकार हैं। कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तन नामक संस्कृत ऐतिहासिक काव्य आपने बनाया जिस पर आपके शिष्य गुणविनय की संस्कृत टीका भी उपलब्ध है। प्राकृत व संस्कृत की आपकी कई रचनाएं मिलती है। राजस्थानी गद्य और पद्य की निम्नोक्त रचनायें हैं—

१ बारह व्रत ग्रहण रास संवत् १६४७ २ बारह भावना संधि संवत् १६४६ बीकानेर ३ वयरस्वामी चौपई सं १६२१ जोधपुर ४ चौबीस जिन गणधर संख्या स्तवन संवत् १६६६ ५ सम्मेत स्तवन सं १६६७; ६ साधु वन्दना गौडी स्तवन आदि गद्य रचनाओं में २ प्रश्नोत्तर ग्रन्थों में से बड़ा ग्रन्थ छप चुका है और अष्टोत्तरीस्नात्र विधि भी प्राप्त है।

उपाध्याय गुणविनय—

उपरोक्त उ जयसोम के शिष्य उ गुणविनय बहुत बड़े विद्वान् और कवि हो गये हैं। संवत् १६४१ से लेकर १६७६ तक ३५ वर्ष आपका साहित्य-निर्माण काल है। संवतोल्लेख वाली सर्वप्रथम रचना खण्ड प्रशस्ति वृत्ति संवत् १६४१ की होने से उनका जन्म संवत् १६१०-११ और दीक्षा केवल ८-६ वर्ष की उम्र में ही होना सम्भव है। संवत् १६४८ में युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि सम्राट अकबर को प्रतिबोध देने लाहौर पधारे, उस

समय आप भी साथ थे और वहीं संवत् १६४९ फागुण सुदि २ को सूरिजी ने इन्हें वाचक-पद से विभूषित किया। नैमिदूत नल-दमयन्ती चंपू रघुवंश वैराग्यशतक संबोधसप्तति कर्मचन्द्र वंश प्रबन्ध लघुशान्ति इन्द्रिय पराजय शतक आदि १२ प्राकृत संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों की आपने संस्कृत टीकायें बनाई हैं। उनमें से नैमिदूत रघुवंश और संबोध सप्ततिवृत्ति तो बीकानेर में रहते हुये और नलचम्पू की वृत्ति बीकानेर राज्य के सेरुणा गांव तथा वंश प्रशस्ति वृत्ति फलोदी और लघुशान्ति वृत्ति बिलाड़ा में रची गई। इससे आपका विहार राजस्थान के अनेक ग्राम-नगरों में हुआ सिद्ध होता है। राजस्थानी गद्य और पद्य की आपकी अनेक रचनायें प्राप्त हैं। इनमें से ६ ग्रन्थों की भाषा-टीकायें और संवतोल्लेख वाली २५ रचनाओं की सूची शोध-पत्रिका भाग ८ अंक १ २ में प्रकाशित की गई है। यहां उनमें से उल्लेखनीय रचनाओं की सूची दी जा रही है—

१ कयवन्ना संधि सं १६५४ बीकानेर २ कर्मचन्द्र वंशावली रास सं १६५५ अमरसर ३ अंजनासुंदरी रास सं १६६२ खम्भात ४ ऋषिदत्ता चौ सं १६६३ ५ गुणसुन्दरी चौ सं १६६५ नवानगर ६ नलदमयन्ती प्रबन्ध सं १६६५ नवानगर ७ जम्बू रास सं १६७ बाड़मेर ८ धन्ना शालिभद्र चौ सं १६७४ आगरा ९ अगड़दत्त रास १० कलावती चौपई १६७३ सांगानेर ११ बारह व्रत रास सं १६५५ १२ जीवस्वरूप चौपई सं १६६४ राजनगर १३ मूलदेव चौ १६७३ सांगानेर १४ दुमुंह प्रत्येक बुद्ध चौपई १५ लुम्पक मततमो दिनकर चौ सं १६७५ सांगानेर १६ तपा इकावन बोल चौ संवत् १६७६ राजद्रह। इनके शिष्य मतिकीर्ति भी अच्छे विद्वान् और कवि थे। उनके (जिन सत्तिलाभ रास धर्मबुद्धि रास संवत् १६६७) अघटकुमार चौ संवत् १६७४ आगरा और प्रश्नोत्तर ग्रन्थ राजस्थानी गद्य में है।

महोपाध्याय समयसुन्दर—

आप युग-प्रधान आचार्य अकबर प्रतिबोधक जिनचन्द्र सूरि के शिष्य सकलचन्द्र गणि के शिष्य थे। राजस्थानी साहित्य के सब से बड़े गीतकार एवं कवि के रूप में आप प्रसिद्ध हैं। संस्कृत में भी इन्होंने कई काव्य बनाये और अनेकों ग्रन्थों की विद्वतापूर्ण टीकायें बनाई। संवत् १६४१ से १७ तक ६ वर्षों का आपका साहित्य रचना का दीर्घकाल है। संवत् १६४९ में सम्राट अकबर ने काश्मीर विजय के लिये प्रस्थान किया उस समय की विशिष्ट सभा में विद्वानों के समक्ष आपने एक ऐसा अभूतपूर्व ग्रन्थ उपस्थित किया जो विश्व साहित्य की बेजोड़ कृति है। 'राजा नो ददते सौख्यम्' इस ८ अक्षरों के वाक्य के आपने १ लाख से अधिक अर्थ करके सम्राट अकबर और समस्त सभा को चकित कर दिया। काश्मीर विजय के अनन्तर सम्राट जब लाहौर वापिस आया तब फागुण सुदि २ को जिनचन्द्र सूरि को युग-प्रधान पद वाचक मानसिंह को आचार्य पद और समयसुन्दर एवं गुणविनय को वाचक पद से अलंकृत किया। सीताराम चौपई नामक राजस्थानी जैन रामायण की एक ढाल आपने सांचोर में बनाई थी। उसमें अपना जन्म-स्थान सांचोर होने

समय आप भी साथ थे और वहीं संवत् १६४९ फागण सुदि २ को सूरिजी ने इन्हें वाचक-पद से विभूषित किया। मेघदूत नल-दमयन्ती चंपू, रघुवंश वैराग्यशतक संबोधसप्तति कर्मचन्द्र वंश प्रबन्ध लघुशान्ति इरियावही तरंग पराक्रम शतक आदि १२ प्राकृत संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों की आपने संस्कृत टीकायें बनाई हैं। उनमें से मेघदूत रघुवंश और संबोध सप्ततिवृत्ति तो बीकानेर में रहते हुये और नलचम्पू की वृत्ति बीकानेर राज्य के सेरूणा गांव तथा वंश प्रशस्ति वृत्ति फलोदी और लघुशान्ति वृत्ति बिलाड़ा में रची गई। इससे आपका विहार राजस्थान के अनेक ग्राम-नगरों में हुआ सिद्ध होता है। राजस्थानी गद्य और पद्य की आपकी अनेक रचनायें प्राप्त हैं। इनमें से ९ ग्रन्थों की भाषा-टीकायें और षड्दोत्सव आदि २१ रचनाओं की सूची शोध-पत्रिका भाग ८ अंक १ २ में प्रकाशित की गई है। यहां उनमें से उल्लेखनीय रचनाओं की सूची दी जा रही है—

१ कयवन्ना संधि सं १६५४ बीकानेर २ कर्मचन्द्र वंशावली रास सं १६५६ सतरनगर ३ मंगलमाधुकरी रास सं १६६२ खम्भात ४ ऋषिदत्ता चौ० सं १६६३ ५ गुणसुन्दरी चौ सं १६६५ नवानगर ६ नलदमयन्ती प्रबन्ध सं १६६५ नवानगर ७ जम्बू रास सं १६७ बाड़मेर ८ धन्ना शालिभद्र चौ सं १६७४ मावरा ९ धमदत्त रास १ कलावती चौपइ १६७३ सांगानेर ११ वाराहदत्त रास सं १६६३ १२ जीवस्वरूप चौपइ सं १६६४ राजनगर १३ मूलदेव चौ १६७३ सांगानेर १४ दुमुह प्रत्येक बुद्ध चौपइ १५ गुणाक महत्तमो दिनकर चौ स १६७५ सांगानेर १६ तपा इकावन बोल चौ संवत् १६७६ रायद्रह। इनके शिष्य मतिकीर्ति भी अच्छे विद्वान् और कवि थे। उनके (विद्यासागर रास धर्मबुद्धि रास संवत् १६६७) अघटकुमार चौ संवत् १६७४ मावरा और प्रश्नोत्तर ग्रन्थ राजस्थानी गद्य में है।

महोपाध्याय समयसुन्दर—

आप युग प्रधान आचार्य अकबर प्रतिबोधक जिनचन्द्र सूरि के शिष्य सकलचन्द्र गणि के शिष्य थे। राजस्थानी साहित्य के सब से बड़े गीतकार एवं कवि के रूप में आप प्रसिद्ध हैं। संस्कृत में भी इन्होंने कई काव्य बनाये और अनेकों ग्रन्थों की विशदपूर्ण टीकायें बनाई। संवत् १६४१ से १७ तक ६ वर्षों का आपका साहित्य रचना का दीर्घकाल है। संवत् १६४९ में सम्राट अकबर ने काश्मीर विजय के लिये प्रस्थान किया उस समय की विशिष्ट सभा में विद्वानों के समक्ष आपने एक ऐसा अभूतपूर्व ग्रन्थ उपस्थित किया जो विश्व साहित्य की अजोड़ कृति है। 'राजा नो ददते सौख्यम्' इस ८ अक्षरों के वाक्य के आपने १ लाख से अधिक करके सम्राट अकबर और समस्त सभा को चकित कर दिया। काश्मीर विजय के अनन्तर सम्राट जब लाहौर वापिस आया तब फाल्गुन सुदि २ को जिनचन्द्र सूरि को युग प्रधान पद वाचक मानसिंह आचार्य पद और समयसुन्दर एवं गुणविनय को वाचक पद से अलंकृत किया। सीताराम चौपइ नामक राजस्थानी जैन रामायण की एक ढाल आपने सांचोर में बनाई थी। उसमें अपना जन्म-स्थान सांचोर होने

१ दस श्रावक गीत ११ गौतमपृच्छा स्तवन १२ उपदेश सत्तरी आदि आपकी और भी बहुत सी रचनायें प्राप्त हैं। जिनराज सूरि रास हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुका है। भाणज संधि और उपदेश सत्तरी भी छप चुके हैं।

विमलमेरु—

ये खरतरगच्छ के हेमधर्म के शिष्य थे और अच्छे कवि थे। इनकी रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१ हंसराज वच्छराज प्रबन्ध सं १६६६ माहोर २ मृगांक रास १६७१ जैसलमेर ३ सुदर्शन चौ सं १६७८ सिद्धपुर ४ गुणसुन्दरी चौ १६६७ फतेहपुर ५ देवराज वच्छराज प्रबन्ध १६८४ रीणी ६ कयवन्ना चौ १६८६ बरहानपुर ७ पार्श्वनाथ विवाहलो स्तवन १६६२ सांचोर ७ द्रौपदी चौ १६६८। इनके गुरु भाई सुमति मेरु रचित रत्नदेव चौपई सं १६६८ की प्राप्त है।

वाचक सूरचन्द्र —

ये खरतरगच्छ के प्रसिद्ध कवि एवं विद्वान थे। इनके रचित स्थूलिभद्र गुणमाला चरित्र संस्कृत का महाकाव्य सं १६८ साभापेर में रचा गया। पंचतीर्थी श्लेषालंकार चित्रकाव्य और शान्तिलहरी आदि संस्कृत काव्य भी इनकी विद्वता और कवित्व शक्ति के परिचायक हैं। जैन तत्वसार नामक संस्कृत ग्रन्थ की स्वोपज्ञ विस्तृत टीका इनकी रचित है जो प्रकाशित हो चुकी है। राजस्थानी गद्य और पद्य की इनकी कुछ रचनायें प्राप्त हैं। गद्य रचनाओं में चोमासी व्याख्यान मौलिक ग्रन्थ है और पदैकविंशति नामक संस्कृत ग्रन्थ में आपने राजस्थानी भाषा के अनेक सुन्दर वर्णन प्रसंगानुसार दिये हैं। शृंगार रस माला सं १६५६ नागौर जिनसिंह सूरि रास १६६८ जिनदत्त सूरि गीत वर्ण कलापक आदि राजस्थानी पद्य रचनायें हैं। सूरचन्द्र सम्बन्धी मेरा लेख जैन सिद्धान्त भास्कर आदि में प्रकाशित हो चुका है।

जिनचन्द्र सूरि के शिष्यगण—

अकबर प्रतिबोधक युग प्रधान जिनचन्द्र सूरि के प्रशिष्य कविवर समयसुन्दर का परिचय ऊपर दिया गया है। जिनचन्द्र सूरि के कई राजस्थानी गीत और स्तवन मिलते हैं। उनके शिष्य प्रशिष्यों में कई राजस्थानी के अच्छे कवि हो गये हैं जिनमें से कुछ कवियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१ समयप्रमोद—

जिनचन्द्र सूरि के शिष्य ज्ञानविलास के ये शिष्य थे। संवत् १६४६ से १६७३ तक आपकी ८ पद्य और १ गद्य रचना प्राप्त है। जिनचन्द्र सूरि से १६४६ आराम शोभा चौपई १६५१ बीकानेर गाथा ७ चंदन राम से १६५७ विद्यासा दर्शक भद्र नवकाशिका गाथा ६३ संवत् १६६ सवानगर कयवन्ना चौपई १६६३ सगारा नेमिराजमति रास १६६३ सगारा गाथा ६७ जिनचन्द्र सूरि निर्वाण रास सं १६७ (हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित) चौपाई चौ गाथा २६ सं १६७३ पुत्र दान भव में कालकी पुत्रक रचा सं १६६१ बीरमपुर।

२ मुनिप्रभ—

ये जिनचन्द्र सूरि के शिष्य थे। दान-धर्म के महात्म्य के सम्बन्ध में इन्होंने धन-मंजन चौपइ गाथा २ ३ स १५४१ बीकानेर में बनाई।

३ समयराज उपाध्याय—

आप जिनचन्द्र सूरि के शिष्य थे। इनके रचित धर्म-मंजरी चौपइ सं १६६२ बीकानेर, यावक गुरु चतुष्पदिका गाथा ४८ अष्टोत्तर सत पार्श्वस्तवन गाथा १६ सवद् १६११ इच्छा परिमाण टीप्पण गाथा ११ सवद् १६६ और गद्य रचनाओं में कल्प-सूत्र बालावबोध के अन्तर्गत चतुर्दश स्वप्न साधु समाचारी प्राप्त है। इनके शिष्य अभयसुन्दर कृत उत्तराध्ययन बालावबोध के ११वें अध्ययन की एक प्रति सेठिया लाइब्रेरी में है। इनके प्रशिष्य राजहंस रचित विजय सेठ चौ सं १६८२ मुलतान मे रचित प्राप्त है।

४ हर्षवल्लभ—

ये भी जिनचन्द्र सूरि के शिष्य । इनके रचित मयणरेहा चौपइ गाथा १८८ सवद् १६६२ महिमावती और गद्य में उपासक दशांग बालावबोध सं १६९२ का प्राप्त है।

५ सुमति कल्लोल—

ये भी जिनचन्द्र सूरि के शिष्य थे। इनके रचित मृगा पुत्र सधि संवद् १६६१ महिम नगर, पुकराज चौपइ सवद् १६६२ बीकानेर, रत्नसार कुमार चतुष्पदिका सवद् १६७८ मुलतान (स १३११ अन्तिम पत्र ही प्राप्त) बीकानेर ऋषभस्तवन और सवैसर स्त वन और कई गीत आदि प्राप्त है। इनके शिष्य विद्यासागर ने कलावती चौपइ सवद् १६७३ नागौर में बनाई और भीमसेन चौपइ सिन्ध प्रांत के सिद्धपुर में। गद्य भाषा टीकाओं में कल्पसूत्र टबा मिला है।

६ धर्मकीर्ति—

ये जिनचन्द्र सूरि के शिष्य धर्मनिधान उपाध्याय के शिष्य थे। इनके रचित पद्य में साधु समाचारी बालावबोध स १६६१ बीकानेर और पद्य में नेमिरास संवद् १६७८, जिनसागर सूरि रास सवद् १६८१ मूलाक पद्मावती चौपइ सं १६११ लोद्रवपुर वरकाणा वाना स्तवन स १६८ और चौबीस जिन चौबीस बोल आदि प्राप्त है।

७ श्रीसुन्दर—

ये सूरिजी के शिष्य हर्षविमल के शिष्य थे। इनके रचित अगड़दत्त रास सं १६६६ और धुल्लककुमार रास प्राप्त है।

८ ज्ञानचन्द्र—

ये सूरिजी के शिष्य पुण्यप्रधान के शिष्य सुमतिसागर के शिष्य थे। इनके रचित ऋषिदत्ता चौपइ प्रदेशी चौपइ चित सम्भूति रास जिनपालित जिनरक्षित रास और चौबीसी आदि रचनाएं प्राप्त हैं।

९ जीवराज—

ये सूरिजी के शिष्य रायकलश के शिष्य थे। इनका रचित सुखमाला सती रास सं १६११ का प्राप्त है।

१ जिनसिंह सूरि—

ये सूरि जी के पट्टधर शिष्य थे। इनका रचित बावनी हमारे संग्रह में है।

इनके शिष्य हेममंदिर के शिष्य भाग्यकीर्ति का बारह व्रत रास नेमिस्तवन और कुछ पुस्त आदि प्राप्त है।

जिनसिंह सूरि के अन्य शिष्य हरिनंदन के शिष्य सामचन्द प्रमुख कवि थे। इन्होंने मौन एकादशी स्तवन स० १६६८, वव कुमार चौपइ सं १६७२ मलवर, हरिश्चन्द्र रास सं १६७१ मधाणी बीसी स १६६२ पामड़ी गांव रूपसेन चतुष्पदी सं १६६१ गाथा १११ वैराग्य बावनी सं १६६५ आदि रचनायें बनाईं।

जिनसिंह सूरि के अज्ञात नाम शिष्य रचित हरिवाहन चौपइ (अपूर्ण) प्राप्त है।

११ जिनराज सूरि—

ये जिनसिंह सूरि के पट्टधर शिष्य थे। बीकानेर के बोथरा धर्मसी की पत्नी धारलदे की कुक्षि से सं १६४७ में आपका जन्म हुआ। ६ वर्ष की छोटी सी आयु में बीकानेर में दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षा नाम राजसमुद्र था। सं १६६८ में इनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर गुरु श्री ने वाचक पद दिया और सं १६७४ में मेड़ता में इन्हें आचार्य पद मिला। इस समय इनका नाम जिनराज सूरि रखा गया। ये बहुत बड़े विद्वान और राजस्थानी भाषा के सुकवि थे। इनकी रचनाओं का संग्रह जिनराज सूरि कृति कुसुमांजली नामक ग्रंथ में हमने सम्पादित कर के प्रकाशित किया है। आपके बनाए शालिभद्र रास का जितना अधिक प्रचार हुआ अन्य किसी भी कवि के किसी भी रास का इतना प्रचार नहीं हुआ। इस रास की कई महत्वपूर्ण सचित्र प्रतियां प्राप्त हैं। स १६७८ में इसकी रचना हुई। इसके प्रति रिक्त जैन रामायण की एक अपूर्ण प्रति खरतरगच्छ ज्ञान भंडार, कोटा से मिली है और कयवन्ना रास सं १६८१ में रचे जाने का उल्लेख मिलता है। गजसुकुमाल रास सं १६९९ में रचा गया और वह आपकी शालिभद्र की एवं आपकी अन्य रचनाओं के साथ उपरोक्त जिनराज सूरि कृति कुसुमांजली में प्रकाशित हो चुका है। गद्य भाषा टीकाओं में नवतत्त्व टबा और प्रश्नोत्तर रत्नमालिका टबा की प्रतियां मिली हैं। संस्कृत ग्रन्थों में नैषध काव्य की ३६ हजार श्लोक परिमित वृत्ति उल्लेखनीय है। स्थानांग वृत्ति का केवल उल्लेख ही मिलता है।

उपाध्याय जिनविधान—

ये खरतरगच्छ के प्रसिद्ध युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि की परम्परा में हुए थे। इस शताब्दी के ये सबसे बड़े गद्य-लेखक हैं। भाषा टीकाओं के साथ-साथ स्वतंत्र कुछ मौलिक गद्य रचनाएं भी लिखी हैं—

१ कल्प सूत्र बालावबोध सं १६८ अमरसर, अष्टाह्निका व्याख्यान ६७ २ संग्रहणी बालावबोध स १६८ अमरसर, ३ कृष्ण रुक्मणि वेलि टबा ४ योगशास्त्र टबा ५ उपदेश माला टबा ६ शाश्वत स्तवन बालावबोध सं १६५२ सांभर, ७ गुण स्थान स्तवन बालावबोध सं १६६२ सांगानेर, ८ लघु विधि प्रपा—इसमें २८ विधि-विधानों का विवरण है ९ कालिकाचार्य कथा १ चौमासी व्याख्यान ।

इनके शिष्य महिमसिंह जो मान कवि के नाम से प्रसिद्ध थे—उन्होंने कीर्तिधर सुकोसल प्रबन्ध सं १६७ पुष्कर, मेतारी ऋषि चौपइ सं १६७ पुष्कर, धुसककुमार चौपइ गाथा १४९ पुष्कर हंसराज वच्छराज चौ सं १६७५ कोटडा अरहद्दास सम्बन्ध भुज्जपुर, उत्तराध्ययन छत्तीसी मीन योग बावनी उत्पत्तिनामा शिक्षाछत्तीसी और हिन्दी में रसमंजरी और गद्य भाषा टीकाओं में जीव-विचार टबा और कल्याण मंदिर बालावबोध की रचना की ।

ज्ञानविनय —

ये खरतरगच्छ के धर्मसुन्दर के शिष्य थे । उनके रचित मंदीसेन चौपइ गाथा ८६ की प्रति हमारे संग्रह में है । इसकी रचना स १६६५ नागौर में हुई है । नेमिनाथ रास गाथा ११४ और अष्टापद स्तवन भी इनका रचित मिला है । गद्य रचनाओं में उपसर्ग हर स्तोत्र बालावबोध प्राप्त है ।

विद्याकीर्ति—

ये खरतरगच्छ की क्षेमकीर्ति शाखा के पुण्यतिलक के शिष्य थे । इन्होंने नरवम् चरित्र संवत १६६६ धर्मबुद्धि मन्त्री चौपइ सं १६७२ और सुभद्रा सती चौपइ सं १६७५ में बनाई । इनमें से धर्मबुद्धि चौपइ की प्रति अभी अपूर्ण ही मिली है । इसके प्रथम खण्ड में २३ गाथायें और ११ ढालें हैं । द्वितीय खण्ड अपूर्ण मिला है । इनके रचित मतिसागर रसिक मनोहर चौ स १६७१ सरसा की प्रति हमारे संग्रह में है ।

भुवनकीर्ति—

ये भी क्षेम शाखा के ज्ञाननन्दी के शिष्य थे । राजस्थानी भाषा के ये सुकवियों में से हैं । सं १६६० स १७ ६ तक की इनकी रचनायें मिलती हैं । सूची इस प्रकार है—धनदत्त राजर्षि चौपइ स १६६७ मवेरा भरतबाहु-बली चौ सं १६७५ जैसलमेर, जम्बू स्वामी चौ स १६९१ खम्भात गाथा ११२१ गजसुकुमाल चौ सं १७ ३ खम्भात अंजना-सुन्दरी रास संवत् १७ ६ उदयपुर पार्श्वस्तवन गाथा १५३ सं १६६२ और गद्य रचनाओं में शत्रुंजयस्तवन बालावबोध स १६६२ का उपलब्ध है ।

लावण्यकीर्ति—

ये खरतरगच्छीय ज्ञानविलास के शिष्य थे । इनके रचित हरिबल चौ सं १६७१ जैसलमेर पुरोहित बलभ गजसुकुमाल चौ देवकी ६ पुत्र रास आरामानुशासन गीत के अतिरिक्त सबसे अधिक उल्लेखनीय राम-कृष्ण चौपइ है जो ६ खण्डों में रूप्यल और

बलराम के चरित्र को लेकर लिखी गई है। सं १६७७ बीकानेर में मोहवाम भणसाली बाघमल के आग्रह से इसकी रचना की गई है। इसकी ४ प्रतियां हमारे संग्रह में हैं।

रत्नलाभ—

ये खरतरगच्छ की क्षेम शाखा के क्षमारंग के शिष्य थे। इनके रचित कृष्णकुमार चौपई सं १६५५ अमरसर और श्रीपाल चौ सं १६६२। इसकी प्रति हमारे संग्रह में है।

कर्मचन्द—

ये खरतरगच्छीय गुणराज के शिष्य थे। चन्दनराजा की चौपई सं १६८७ कालपरी में इन्होंने बनाई जिसका विवरण जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृष्ठ १ १२ में छपा है।

रत्नोदय—

ये खरतरगच्छ के भुवनकीर्ति के शिष्य थे। इनके रचित रूपचन्द्रा रास की अपूर्ण प्रति पंचायती भण्डार जयपुर में है जिसमें छठ खण्ड की नवमी ढाल तक का अंश आया है। इसलिये रास काफी बड़ा होना सम्भव है। इनकी अन्य रचनाओं में मनोहर स्तवन सं १६७५, बारहमासा सं १६८६ भी मयरस्तवन उपलब्ध है। संस्कृत में इन्होंने बलिराम मार्गण सार संग्रह ग्रंथ बनाया। इसकी भी अधूरी प्रति मिली है।

भुवनचन्द—

ये सागरचन्द्र सूरि शाखा के विद्वान् ज्ञानप्रमोद के शिष्य थे जिन्होंने वाग्भट्टालंकार वृत्ति सं १६८१ में बनाई और श्री शीतलनाथ स्तवन सं १६७२ में गुणनन्दन रचित इलापुत्र रास स १६७५ में बिहार प्रदेश के बिहारपुर में रचा गया और दामनक चौ सं १६६७ सरसा में रची गई।

लब्धिरत्न—

ये खरतरगच्छ की क्षेम शाखा के धर्ममेरु के शिष्य थे। इनके रचित नारद चौपई (सं १६७६ मोहर पत्र ११३) की प्रति मोतीचन्दजी के संग्रह में है।

देवरत्न—

ये जिनभद्र सूरि शाखा के देवकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने दीपवती चौ सं १६६८ बालसीसर में बनाई।

महिमासिंह—

ये सुखनिधान के शिष्य थे। इन्होंने स १६७३ नागौर में नेमि-राजुल फाग की रचना ४ ढाल व १५ गाथाओं में की। इसकी प्रति केसरियानाथ भण्डार जोधपुर में है।

लब्धिराज—

ये धर्ममेरु के शिष्य थे। इन्होंने सं १६७६ नाहुर में शीलप्रबंध की रचना की।

कल्याणकमल—

इनके रचित चन्दनमलयागिरि चौपई (सं १६६१ मरोठ) की प्रति केसरियानाथ भण्डार, जोधपुर में है।

पद्मकुमार—

ये पूर्णचन्द्र के शिष्य थे। इनके रचित मृगाध्वज चौ० की सं० १६८४ की लिखी हुई प्रति मुनि जिनविजय जी के संग्रह में है।

कनककीर्ति—

ये जिनचन्द्र सूरि शिष्य नयनकमल के शिष्य धर्ममंदिर के शिष्य थे। इन्होंने नेमिनाथ रास सं० १६६२ बीकानेर और द्रौपदी रास सं० १६६३ जैसलमेर की प्रति हमारे संग्रह में है। इन्होंने मेघदूत की टीका भी बनाई थी।

और भी अनेक कवियों की फुटकर रचनायें मिलती हैं। उपरोक्त सभी कवि खरतर गच्छ की भट्टारकीय शाखा से सम्बन्धित है। यद्यपि इनमें से कुछ कवियों ने पीछे से जिनसागर सूरि की आचार्य शाखा और जिनरंग सूरि की रंगविजय शाखा को अपना लिया था। ये दोनों शाखायें इसी शताब्दी की देन हैं। श्रावक कवियों में सबचंद कवि उल्लेखनीय है पर इनकी दोनों रचनायें अपूर्ण मिली हैं।

सबचंद—

ये सिंधु देश के सामुही नगर के कुकड़चोपड़ा गोत्रीय धर्मनिष्ट तेजसी के पुत्र थे। इन्होंने यहां के बहुरा अमरसिंह के कहने से त्रिलोकसुन्दरी मगलकलश चौपई की रचना सं० १६६१ में की। इसका केवल अन्तिम पत्र तपागच्छ भण्डार, जैसलमेर में मिला है। मूल प्रति १२ पत्रों की थी। मृगांकलेखा रास की रचना इन्होंने संवत् १६६४ में की जिसकी २५ पत्रों की प्रति के अन्तिम २ पत्र तपागच्छ भण्डार, जैसलमेर में उपलब्ध है।

ऊपर में अधिकांश कवियों का ही परिचय दिया गया है और उनकी गद्य रचनाओं का भी उल्लेख पद्य रचनाओं के साथ ही कर दिया गया है। पर कुछ ऐसे विद्वान् भी हो गये हैं जिन्होंने केवल गद्य में भाषा टीकायें ही लिखी हैं। यहां ऐसे गद्य लेखकों का विवरण दिया जा रहा है।

धर्ममंदिर—

ये सागरचन्द्र सूरि शाखा के विद्वान थे। इनके रचित पद्मबद्ध सारस्वत लघुवृत्ति संवत् १६४६ जैसलमेर प्रकाशित हो चुकी है। प्रवचन सारोद्धार बालावबोध नामक इनकी रचित भाषा टीका सं० १६५१ की है जो ११ हजार श्लोकों की है। अन्य रचना पार्श्वनाथ दसभव बालावबोध प्राप्त है।

कमललाभ—

ये जिनचन्द्र सूरि के शिष्य उपाध्याय समयराज के शिष्य अभयसुन्दर के शिष्य थे। इनके रचित उत्तराध्ययन बालावबोध और पूजाष्टक वार्तिक (अपूर्ण) प्राप्त है।

क्षेम—

ये जिनभद्र सूरि शाखा के रत्नसमुद्र के शिष्य थे। इनका रचित क्षेत्रमास बालावबोध प्राप्त है।

गद्य लेखकों में उदयसागर जो सहजरत्न के शिष्य थे ने क्षेत्रसमास बालावबोध नामक भाषा टीका संवत् १६५६ उदयपुर में बनाई और इसकी लोकनाल बालिक भी प्राप्त है।

भावपक्षीय शाखा—

संवत् १६६४ में शान्तिसागर सूरि और जिनदेव सूरि से यह शाखा प्रगट हुई। इस शाखा के पद्मरत्न रचित प्रजापुत्र चौपइ सं १६६६ मेड़ता की प्रति भुंझनू भण्डार में है।

सुमति हंस—

ये अच्छे कवि थे। जिनहर्ष सूरि के आप शिष्य थे। गद्य में कल्पसूत्र बालावबोध और कालिकाचार्य कथा की रचना कि और पद्य में मेघकुमार चौपइ सं १६८६ पीपाड़ चौबीसी १६९७ मेड़ता जयसेन लीलावती रास—विनोद रस सं १६११ जोधपुर चन्दन मलयागिरि चौपइ सं १६११ बुरहानपुर, वैदरभी चौपइ सं १७१३ जयतारण रात्रिभोजन चौपइ सं १७२१ जयतारण आदि प्राप्त हैं।

लक्ष्मीरत्न—

इन्होंने कापड़हेड़ा तीर्थ रास सं १६८३ सोजत में बनाया। अवमन्ता मुनि सज्झाय आदि इनकी फुटकर रचनायें हैं।

दयारत्न—

ये हर्षकुशल के शिष्य थे। इनके रचित हरिबल चौपइ पद्य ५८१ सं १६११ जोधपुर की प्रति नाहटजी संग्रह कलकत्ते में है। कापड़हेड़ा रास सं १६६५ में रचित ऐतिहासिक रास संग्रह भाग ३ में छप चुका है।

केशव (कीर्तिवर्द्धन)—

ये उपरोक्त दयारत्न के शिष्य और अच्छे कवि थे। इनके रचित सदयवत्स सावलिंगा चौपइ सं १६९७ सादुल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट से प्रकाशित सदयवत्स प्रबन्ध में प्रकाशित हो रही है। सुदर्शन चौपइ सं १७ १ प्रीतछत्तीसी दीपकबत्तीसी भ्रमर बत्तीसी आदि इनकी फुटकर रचनायें हैं। चतुरप्रिया और जन्मप्रकाशिका नामक इनकी हिन्दी रचनायें भी प्राप्त हैं।

भावहर्षी शाखा—

स १६२१ में भावहर्ष उपाध्याय से यह शाखा प्रगट हुई। इसकी गद्दी बालोतरा में है। भवहर्ष स्वय अच्छे कवि थे। इनके करीब २ स्तवन और गीत तथा साधुवन्दना भाषा १६१ व १६२२ जोधपुर म चित प्राप्त हैं।

इनके शिष्य कनकार रचित जिनपालित जिनरक्षित चौढालिया संवत् १६२१ भाषा ७१ ऋषिदत्ता चौपद म १६ १ जोधपुर शान्तिनाथ रास संवत् १६२८ गिरनार चैत्य परिपाटी भाषा बीरमपुर पार्श्वनाथ भाषा २८ नमिनाथ वृहद् स्तवन सुमति चौढ आदि उपलब्ध हुए हैं।

धर्मसमुद्र—

ये भी भावहर्ष के शिष्य थे। इनके रचित भावहर्ष सूरि गीत प्रश्नोत्तर सत्र पार्श्व स्तवन शान्ति स्तवन हैं।

जिनोदय सूरि—

ये जिनतिलक सूरि के शिष्य थे। आचार्य पद से पूर्व इनका नाम आनंदोदय था तब इन्होंने कयवना चौपई(?) सं. १६१२ विद्याविलास चौ. सं. १६६२ नालोदरा और पारवनाथ दशभव स्तवन मायारास आदि की रचना की थी। आचार्य पद प्राप्ति के बाद धन्यकलश चौ. जिसका अपर नाम शुकदन्त सुमन्त्र रास है। रचना सं. १६६९ बीरपुर में की। इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना हंसराज वच्छराज रास है जिसकी रचना सं. १६८ में हुई। यह रास प्रकाशित भी हो चुका है। फुटकर रचनाओं में जिनतिलक सूरि स्तुति नववाड़ गीत चौबीस जिन स्तवन शान्ति स्तवन आदि प्राप्त हुये हैं।

मेघविधान—

ये जिनतिलक सूरि के अन्य रत्नसुन्दर सूरि के शिष्य थे। इन्होंने सं. १६८८ तिवरी में धुल्लककुमार चौ. जिनोदय सूरि के आदेश से बनाई। तिवरी पार्श्व स्तवन जोधपुर पार्श्व स्तवन नाकोड़ा पार्श्व स्तवन इनकी फुटकर रचनायें हैं।

उदयराज—

ये भद्रसार के पुत्र एवं शिष्य थे और राजस्थानी के प्रसिद्ध कवियों में हैं। इनके दोहे कवित्त आदि बहुत प्रसिद्ध हुये। भजन छत्तीसी सं. १६६७ मांडावई गुण बावनी सं. १६७६ वकेरह ५ दोहे और वैद्य विरहुली प्रबन्ध (हिन्दी) और चौबीस जिन सवये आदि प्राप्त हैं। इनका जन्म संवत् १६३१ में हुआ था। राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग २, पृष्ठ १८२ में इनका संक्षिप्त परिचय भजन छत्तीसी के उद्धरण सहित दिया गया है।

आचार्य शाखा —

संवत् १६८६ में जिनसागर सूरि से यह शाखा प्रगट हुई। जिनसागर सूरि रचित बीसी और गौड़ी स्तवन सं. १६ २ और उनके शिष्य उदयरत्न कृत चित्रसेन पद्मावती चौ. सं. १६६० और जम्बू चौ. सं. १७२ की प्राप्त हैं।

ऊपर खरतरगच्छ के कवियों का ही विशेष रूप से विवरण दिया गया है। अन्य सम्प्रदाय भाग में सारंग हेमरत्न सूरि आदि कुछ कवि ही आये हैं इसलिये यहाँ उनके अतिरिक्त जो अन्य गच्छीय कवि हो गये हैं और जिनकी रचनायें राजस्थान मारवा में रचित प्राप्त हुई हैं उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

मलसमाणिक्य

ये आगमगच्छ धीरालय शाखा के थे। इनके रचित विक्रमराज खापरा चोर रास और अम्बड़ चौपाई संवत् १६१ व ३९ में उज्जैनी में रची गई।

१ नेमिस्वर रास सं १६१५, २ हनुवंत कथा सं १६१६ ३ सुदर्शन रास सं १६२८। ४ श्रीपाल रास सं १६३ रणथंभोर ५ भविष्यदत्त कथा सं १६३३ सांगानेर ६ प्रद्युम्न रासो सं १६१८ हरसोरगढ़ ७ निर्दोषसप्तमी कथा ८ सोलह स्वप्न ६ आदित्यवार कथा १ चिन्तामणि जयमाल ११ छयालीस ठांणा १२ जम्बू स्वामी चरित्र १३ नेमिस्वर फाग १४ पंचगुरु की जयमाल १५ सील रास आदि।

कुमुदचन्द्र—

ये रत्नकीर्ति के शिष्य थे। इनके रचित ऋषभ विवाहलो सं १६ ८ भरत बाहुबली छन्द सं १६ ७ नेमिनाथ प्रिया विनती आदि रचनायें उपलब्ध हैं। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है।

सुमतिकीर्ति सूरि—

य सरस्वतीगच्छ के ज्ञानभूषण सूरि के शिष्य थे। इन्होंने सं १६२५ हासोट नगर में धर्म परीक्षा और लोकामत निराकरण चौपई की रचना की। इन पर त्रैलोक्य सार चौपई, धर्म ध्यान रास (सं १६२७ में रचित) भी प्राप्त है।

पाण्डे राजमल—

इनके रचित जम्बू चरित्र लाटी-संहिता अध्यात्म कमल मार्तण्ड और पंचाध्यायी संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। छन्दो विद्या संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी ४ भाषाओं की मिश्रित रचना है। समयसार की सबसे पहली भाषा टीका ढूंढाड़ी भाषा में इन्होंने बनाई। इसके गद्य का नमूना इस प्रकार है—"यथा कोई जीव मदिरा पीवाइ करि विकल कीजै छै, सर्वस्व छिनाई लीजै छै। पद तें भ्रष्ट कीजै छै तथा अनादि ताई लेई करि सर्व जीव राशि राग द्व ष मोह अशुद्ध परिणाम करि मतवालो हुवो छै ।

१८ वीं शताब्दी

सत्रहवीं शती राजस्थानी साहित्य का उत्कर्ष काल था। उसका प्रभाव १८ वीं के पूर्वार्द्ध तक रहा फलत पूर्वार्द्ध में कई विशिष्ट विद्वानों एवं सुकवियों के दर्शन होते हैं जिनमें से कुछ का जन्म १७ वीं में और कुछ कवियों का जन्म १७ वीं के अंत में हुआ है। ऐसे विद्वानों में तपागच्छ म उ मेघविजय विनयविजय यशोविजय एवं खरतरगच्छ में धर्मवद्ध न जिनहर्ष योगीराज आनंदघन लक्ष्मीवल्लभ जिनसमुद्र सूरि एवं उत्तरार्द्ध में श्रीमद्देवचन्द्र विशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं। इनमें से मेघविजय का विहार तो राजस्थान में रहा पर उनकी काव्यादि रचनाएँ संस्कृत में ही अधिक हैं। व्याकरण काव्य ज्योतिष सामुद्रिक मंत्र तंत्र न्याय आदि के आप प्रकाण्ड विद्वान थे। यशोविजय विनयविजय का विहार गुजरात म ही अधिक है। इनकी संस्कृत क साथ लोक भाषा की भी प्रचुर रचनाएँ प्राप्त हैं पर उनकी भाषा गुजराती है। खरतरगच्छ का प्रभाव राजस्थान—मारवाड़ म ही अधिक रहा है अत मूलत सभी विद्वान् राजस्थानी के हैं। जिनहर्ष एव देवचंद्र दो ऐसे विद्वान् हैं जिनका उत्तरकाल (जीवन) गुजरात म बीता। अत आपकी पूर्ववर्ती रच नाएँ राजस्थानी म और परवर्ती रचनाएँ गुजराती भाषा में पाई जाती हैं।

इस सदी के दो जैन कवियों ने मातृभाषा की अनुपम सेवा की है। इनकी समस्त रच नाएँ लोकभाषा की ही हैं और उनका समग्र परिमाण लाख श्लोकों के बराबर है। वे हैं— जिनहर्ष और जिनसमुद्र सूरि। वैसे धमरस सुमतिरंग धर्ममंदिर, लब्धोदय धमयसोम लाभवर्द्धन कुशलधीर, अमरविजय जिनचंद्र ज्ञानचन्द्र लक्ष्मीवल्लभ अमरविजय आदि पचासों कवियों ने राजस्थानी साहित्य के भण्डार को भरा है। प्रत्येक कवि के ग्रन्थों का अध्ययन कर प्रकाश डाला जाय तो एक बड़ा ग्रंथ तैयार हो सकता है। इन सब कवियों की रचनाओं का ठीक से पता नहीं होने के कारण ही राजस्थानी भाषा के साहित्य के परिमाण की विशालता अभी तक अज्ञात है। यहाँ पहले कतिपय बड़े सुकवियों की रचनाओं का परिचय कराया जा रहा है—फिर अन्य कवियों का संक्षिप्त विवरण दे दिया जायगा।

कविवर जिनहर्ष—

आपका नाम जसराज था और दीक्षित अवस्था का नाम जिनहर्ष है। आपकी गुरु-परम्परा खरतरगच्छ के प्रकट प्रभावी दादा श्री जिनकुशल सूरि के प्रशिष्य क्षेम कीर्ति क्षेम शाखा से सम्बन्धित है एवं परवर्ती परम्परा में बीकानेर के श्री पूज्य जिनविजयेन्द्र सूरि आज भी विद्यमान हैं। आपकी सर्वप्रथम रचना सं १७ ४ की उपलब्ध होने से जन्म सं १६७५ के लगभग होना संभव है। दीक्षा जिनराज सूरि के हाथ से सं १६६ के लगभग हुई होगी। आपका जन्म तो मारवाड़ में ही होना सुनिश्चित है क्योंकि सं १७ ४ से १७५१ तक की रचनाएँ भी आपकी मारवाड़ प्रदेश में ही रचित हैं। सं १७३६ के लगभग आपका चातुर्मास पाटण हुआ। बीच में कुछ समय राजनगरादि में पधारे पर अधिकांश पाटण ही रहे। अन्त में सम्भवतः किसी शारीरिक कारण से आप स्थायी रूप से वहीं रहने लगे और (सं १७६३ ६४ के लगभग) आपका स्वर्गवास भी वहीं हुआ। पाटण में रचित रासों की भाषा प्रारम्भ में तो राजस्थानी प्रधान रही फिर अधिक समय रहने से क्रमशः उस पर गुजराती का प्रभाव बढ़ता चला जाता है। उपाख्यानात्मक रास चौपइ की जितनी अधिक रचना आपने की है अन्य किसी कवि ने नहीं की। इनमें से शत्रुंजय माहात्म्य रास विद्याविलास रास कुमारपाल मृगावतीसुंदरी रास आदि तो काफी बड़े ग्रंथ हैं। श्रीपाल एवं चंदनमलयागिर चरित्र सम्बन्धी तो आपने दो-दो रास बनाये हैं। इनके रचित १ १२ रास प्रकाशित भी हो चुके हैं। आपकी छोटी-मोटी अत्यधिक रचनाएँ मेरे सपादित जिनहर्ष ग्रंथावली में प्रकाशित हो रही हैं।

आपके बड़े-बड़े ग्रंथों की सूची इस प्रकार है—

१ चन्दनमलयागिरी चौ सं १७ ४ २ विद्याविलास रास सं १७११ सरसा ३ मंगलकलश चौ सं १७१४ ४ मत्योदर रास स १७१८ बाड़मेर ५ शील नववाड़ सम्यक सं १७२६ ६ नंदबहुत्तरी सं १७१४ ७ गजसुकुमाल चौ सं १७१४ ८ जिनप्रतिमा हुंडी रास सं १७२५ ९ कुसुमश्री रास सं १७११ १ मृगापुत्र चौ स १७१४ सरसपुर ११ मातृका बावनी सं १७३ १२ ज्ञाताभूत सज्झाय सं १७३६ पाटण १३ समकित सत्तरी सं १७३६ १४ सुकराज रास स १७३६, पाटण १५ श्रीपाल रास सं १७४ १६ रत्नसिंह रास

सं १७४१ १७ श्रीपाल रास संक्षिप्त सं १७४२ १८ अवंती सुकुमाल सं १७४१ राजनगर, १९ उत्तमकुमार रास सं १७४५, पाटण २ कुमारपाल रास सं १७४२ पाटण २१ अमरदत्त मित्रानंद रास सं १७४९, पाटण २२ चंदन मलयागिरी चौ स १७४४ पाटण २३ हरिश्चंद्र रास सं १७४४ पाटण २४ हरिबलमच्छी रास सं १७४६, पाटण २५ बीस स्थानक रास सं १७४४ २६ मृगांक लेखा रास स १७४८ २७ सुदर्शन सेठ रास सं १७४९, २८ अजितसेन कनकावती रास सं १७५१ २९ गुणावली रास सं १७५१ ३ महाबल मलयासुन्दरी सं १७५१ ३१ शत्रु जय माहात्म्य रास सं १७५५, ३२ सत्यविजय निर्वाण रास सं १७५६ ३३ रत्न चूड़ रास स १७५७ ३४ अभयकुमार रास स १७५८ ३५ रात्रिभोजन रास सं १७५८ ३६ रत्नसार रास सं १७५९, ३७ वयरस्वामी रास सं १७५९, पाटण ३८ जम्बूस्वामी रास सं १७६ पाटण ३९ स्थूलिभद्र सज्झाय सं १७६ पाटण ४ नर्मदासुन्दरी सज्झाय सं १७६ पाटण ४१ आरामशोभा रास स १७६१ पाटण ४२ वसुदेव रास सं १७६२ पाटण ४३ जसराज बावनी रास सं १७३८ पाटण ४४ मेघकुमार चौढालिया पाटण ४५ मत्स्योदर रास स १७४७ पाटण ४६ श्रीमती रास सं १७६१ पाटण ४७ कनकावती रास ४८ उपमिति भव प्रपंच रास सं १७४५, ४९ ऋषि-दत्त रास सं १७४९ पाटण ५ शीलवती रास सं १७५८ ५१ रत्नशेखर रत्ना वती रास सं १७५९ ५२ चौबीसी (हिन्दी) सं १७३८ ५३ बीसी सं १७४५, ५४ दस वैकालिक दस गीत सं १७३७ ५५ दोहा संग्रह चौबोली कथा आदि ५६ विविध स्तवन सज्झाय आदि; ५७ पद्मसिंह चरित चौ स १७ ८ पद्य ६६ ५८ उपदेश छत्तीसी सवैया (हिन्दी) सं १७३१ सवैया ३९ ५९ बीसी सं १७२७ पौष वदि ८ गाथा १८४ ६ आहार दोष छत्तीसी सं १७२७ आषाढ़ वदि १२ गाथा ३६ ६१ वैराग्य छत्तीसी सं १७२७ गाथा ३६ ६२ आदिनाथ स्तवन स १७३८ ६४ सम्मेतशिखर गाथा स्तवन सं १७४४; ६५ अमरसेन वयरसेन रास स १७४४ ६६ चौमासी-कल्पबालावबोध स १७५१ ६७ समुच्चय गाथास्तवन सं १७५९ ६ कलावती रास सं १७५९ ६९ पूजा पंचाशिका बालावबोध सं १७६१ ७ नेमि-चरित्र (शीलोपदेशमाला—शीलतरंगिणी बोध)।

जिनसमुद्र सूरि—

आपका जन्म श्री श्रीमाल जातीय शाह हरराज की भार्या लखमादेवी की कुक्षि से हुआ। आपका जन्म-स्थान एवं संवत् अभी तक अज्ञात है। जैसलमेर-भण्डार की एक पट्टावली में लिखा है आपने ११ वर्ष साधु पद पाया। आपने सं १७११ में आचार्य पद प्राप्त किया। आपके गुरु श्री जिनचन्द्र सूरि थे। आपकी साधु अवस्था का नाम महिमसमुद्र था जो कि आपकी अनेक रचनाओं में पाया जाता है। आपकी रचनाओं से पता चलता है कि आपका विहार जैसलमेर के निकटवर्ती सिन्ध प्रान्त एवं जोधपुर राज्य आदि में ही विशेष तौर से हुआ था। सं १७११ में वेगड़ गच्छ के आचार्य जिनचन्द्र सूरि का स्वर्गवास होने पर आपको

इनके पट्टधर के रूप में आचार्य पद प्राप्त हुआ। सं १७४१ की कार्तिक सुदि १२ को वर्द्धनपुर में आप स्वर्ग सिधारे।

सर्वप्रथम रचना सं १६६७ में लिखित नेमिफाग प्राप्त है और अंतिम रचना सं १७४ में रचित सर्वार्थ-सिद्धिमणि माला (वैराग्य-शतक की वृत्ति) है। पट्टावली में लिखा है कि आपने सवा लाख श्लोक परिमाण नवीन ग्रंथ रचना की। इनके द्वारा रचित कई रासादि की बड़ी-बड़ी कई कृतियें भी खंडित अवस्था में पायी गई है जिनकी पूरी प्रतियाँ अन्वेषणीय हैं। आपके रचित फारसी भाषा के भी कई स्तवन प्राप्त है। आपकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हुई है—

१ वसुदेव चौ २ ऋषिदत्ता चौ (अपूर्ण र. क्षमासुन्दर ने पूर्ण की) ३ उत्तम कुमार (नवरस सागर) चौ (सं १७१२ काती वदि १३ बुधवार) ४ रुकमणि चरित्र ५ हरिबल चौ (सं १७ ६ ज्येष्ठ वदि पाहसपुर) ६ गुणसुन्दर चौ ; ७ इलाचीकुमार चौ (सं १७२१ आसोज सुदि १ बीरोलरामामे) ८ शत्रुंजय रास भाषा ६१ (स १७२१ वैशाख सुदि १) ९ प्रवचन रचना बेलि १ तत्व प्रबोधन नाममाला (सं १७१ काती सुदि ५ ११ सर्वार्थ-सिद्धि मणिमाला (वैराग्यशतक भाषा) सं १७४ १२ कल्पसूत्र बालावबोध १३ कालिकाचार्य कथा १४ कल्पान्तर वाच्य १५ सतरह भेदी पूजा (सं १७१८ मुरुल गाजीपुरे प्रारम्भ) १६ राठौड़ वंशा वलि। १७ मनोरथमाला बावनी १८ ईश्वरशिक्षा गाथा ५४ १९ शत्रुंजय गिरनार मंडण स्तवन गाथा ५१ (सं १७२४ आसाढ़) २ श्रीसीमन्धर स्तवन गाथा ५१ २१ आत्मकरणी संवाद गाथा १७७–४२ (रस रचना चतुष्पदिका) स १७११ मुलतान २२ गजल गाथा ४२ २३ साधुवंदना २४ शत्रुञ्जय स्तवन गाथा ४८ (सं १७१६); २५ पार्श्वनाथ रास सं १७११ गाजीपुर २६ गुणसागर प्रबोधचंद्र गुरु प्रकाश (अपूर्ण) रत्नसेन पद्मावती (अपूर्ण)।

इसी प्रकार अन्य भी कई रचनाएँ स्तवन काम छत्तीसी संज्ञक आदि जैसलमेर भंडार के एक बड़े गुटके में प्राप्त हैं।

महो लब्धोदय—

ये जिनमाणिक्यसूरि शाखा के विद्वान एवं जिनरत्न सूरि की गद्दी के आज्ञानुवर्ती थे।

जन्म-समय और दीक्षा—

कवि की सर्वप्रथम रचना पद्मिनी चरित्र चौपई सं १७ ६ में प्रारम्भ होकर सं १७ ७ चैत्री पूनम के दिन सम्पूर्ण हुई है। इस समय म गणि पद से विभूषित थे अतः उनकी आयु २७ वर्ष के लगभग होना सम्भव है। इससे इनका जन्म सं १६८ के लगभग माना जा सकता है। आपका जन्म नाम लालचंद था। उस समय दीक्षा प्रायः लघु वय में ही हुआ करती थी अत दीक्षा का समय स १६६५ क आसपास होना चाहिए। और आपका दीक्षा नाम लब्धोदय रखा गया था। य ज्ञानराज के शिष्य थे।

आपकी सर्वप्रथम रचना पद्मिनी चौ० स १७ ६ उदयपुर की है। उसमें आपने

खरतरगच्छाचार्य श्री जिनरंग सूरि की आज्ञा से उदयपुर में आने का उल्लेख किया है। उसके बाद की प्राप्त सभी रचनाएँ उदयपुर, गोगूंदा धुलेवा में रचित हैं। अतः आपका विहार मेवाड़ प्रदेश में ही अधिक हुआ प्रतीत होता है।

वाचक व उपाध्याय पद—

आपने अपनी प्रथम रचना में अपने को गणिपद से विभूषित लिखा है। उसके बाद दीर्घ काल तक कोई रचना नहीं मिलती। अतः आपको वाचक पद कब मिला नहीं कहा जा सकता पर सं १७१७ की रत्नचूड़ मणिचूड़ चौ में आपने अपने को पाठक (उपाध्याय) पद से सम्बोधित किया है। अतः इससे पूर्व आचार्यश्री द्वारा आपको उपाध्याय पद मिल चुका था। खरतरगच्छ में यह मर्यादा है कि जो सब से बड़ा हो वह महोपाध्याय कहलाता है। आपके गुरु और प्रगुरु दोनों महोपाध्याय थे अतः उनकी काफी लंबी आयु थी। आपकी मत्स्यसुन्दरी चौ में प्रौढ़ोपाध्याय पद का उल्लेख है।

शील धर्म के माहात्म्य पर पद्मिनी चरित्र मेवाड़ का राणा जगतसिंह की माता जंबुवती के मन्त्री खरतरगच्छीय कटारिया केसरी के पुत्र हंसराज और भागचंद के आग्रह से मुनि श्री लब्धोदय गणि ने पूर्व रचित कथा को देख कर बनाया। इन्होंने पद्मिनी चरित्र चौ की रचना सं १७०६ में प्रारम्भ कर (४६ ढाल व ८१६ गाथाओं में) सं १७०७ चैत्री पूनम के दिन पूर्ण की। इस से पूर्ववर्ती पद्मिनी सम्बन्धी रचना हेमरत्न की है। उसमें 'गोरा-बादल कवित्त' का उपयोग हुआ है और लब्धोदय ने तो इन दोनों ही रचनाओं का उपयोग किया है। हेमरत्न की रचना में गाथा ६३२ है और लब्धोदय की गाथा ८१६ हैं। अतः कवि ने कथा प्रसग विस्तृत किया है। पद्मिनी चौ भंवरलाल नाहटा द्वारा सपादित सा रा रि इ (बीकानेर) से प्रकाशित हो चुकी है।

इसके पश्चात् कवि ने शील चौपाइयाँ और भी रची थी पर वे अब तक अनुपलब्ध हैं। उपलब्ध रचनाओं में रत्नचूड़ मणिचूड़ चौ सं १७१७ की है जो ६वीं रचना होनी चाहिए, क्योंकि इसके बाद की मत्स्यसुन्दरी चौ में उससे पूर्व ६ चौ रचने का उल्लेख स्वयं कवि ने किया है।

रत्नचूड़ मणिचूड़ की प्राचीन कथा को दान धर्म के माहात्म्य के सम्बन्ध में कवि ने राजस्थानी पद्यो (३ ढाला) में सकलित किया है। सं १७११ बसन्त पचमी को उदयपुर में इसकी रचना हुई। पद्मिनी चरित्र चौ जिस मंत्री भागचंद के आग्रह से बनाई गई थी उसी के आदर में यह चौपाई रची गई है। इसकी प्रशस्ति में मन्त्री भागचंद के पुत्र व पौत्रो का अच्छा परिचय दिया गया है। मन्त्री भागचंद के सम्बन्ध में ६ पद्य हैं उससे उसका महत्त्व भली भाँति स्पष्ट है। उसके पुत्र दशरथ अमरथ और अमृत थे। इनमें से दशरथ के ३ पुत्र महासिंह मनोहरदास व हरिसिंह थे। दशरथ के पुत्र भास्करदास और सुजाणसिंह थे। अमृत के पुत्र गोकुलदास व हनुमाण थे। इस प्रकार मन्त्री मुकुट भागचंद का परिवार काफी बड़ा था। ७ पाट के बाद मेवाड़ मे खरतरगच्छ की पुन प्रतिष्ठा करने का श्रेय कवि ने उसे दिया है। इस रचना के समय मन्त्री भागचंद काफी वृद्ध हो चुके थे फिर भी उनकी धर्म-भावना और शास्त्र-श्रवण-प्रेम ज्यों का त्यों बना हुआ था। इस चौपाई की एक मात्र

प्रति हितवल्लभ ज्ञान मन्दिर' बाड़ेराव से अभी हमें प्राप्त हुई है। काव्य बड़ा सुन्दर और रोचक है।

कवि की छठी औ सबसे बड़ी कृति—मलयसुन्दरी चौपई है। यह भी शील-धर्म के माहात्म्य पर १४२ पद्यों में रची गई है। प्रस्तुत मलयसुन्दरी चौपई सं १७४३ माघव्य वदि १३ के दिन प्रारम्भ कर मोमूदा (मेवाड़) में धन तेरस के दिन पूर्ण की। केवल २ मास में इतने बड़े काव्य का निर्माण वास्तव में कवि की असाधारण प्रतिभा का द्योतक है। इसकी रचना कवि के प्रस्तावानुसार उनके गुरु महो ज्ञानराज द्वारा स्वप्न[1] में दी हुई प्र रणा के अनुसार की थी। सती मलयमुन्दरी की कथा जैन साहित्य एव समाज में काफी प्रसिद्ध है।

कवि की सातवी रचना गुणावली औ ज्ञान पंचमी तप के दिन माहात्म्य पर निर्मित हुई है। सं १७४५ के मिती फाल्गुन सुदि १ को उदयपुर में कटारिया मन्त्री भागचंदजी की पत्नी भावलदे के लिए यह रची गई थी। फाल्गुन व ११ को प्रारम्भ कर फा सु १ को अर्थात् केवल १२ दिन में आपने यह काव्य रच डाला था।

उपर्युक्त बड़ी रचनाओं के अतिरिक्त कवि ने बहुत सी छोटी रचनाएँ अवश्य बनाई होंगी पर हमें उनमें से केवल २ ही रचनाओं की जानकारी मिली है। प्रथम धुलेवा ऋषभ देव स्तवन १३ पद्यों का है और उसकी रचना सं १७१ ज्येष्ठ वदि २ बुधवार को हुई है। दूसरा ऋषभदेव स्तवन १५ गाथा का है जो स १७११ मि व ८ बुधवार को रचा हुआ है।

स्वर्गवास—

स १७४५ के पश्चात् आपकी कोई रचना नहीं मिलती और उस समय आपकी आयु लगभग ६५-७ वर्ष की हो चुकी थी। अत संवत् १७५ के आस-पास आपका स्वर्गवास मेवाड़—उदयपुर के आस-पास हुआ होगा।

जयरंग (जैतसी)—

खतरगच्छी शाखा में जिस कवि नयरंग एव उसके शिष्य विमलविनय की रचनाओं का परिचय दिया गया है उनमें से विमलविनय के शिष्य धर्ममंदिर के शिष्य था पुन्यकलश के आप शिष्य थे। आपका जन्म नाम जैतसी' व दीक्षा का नाम जयरंग' था। सं १७ से स १७३९ तक की आपकी रचनाएँ प्राप्त हैं। रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१ अमरसेन जयरसेन चौ १७ दीवाली जैसलमेर, २ चतुर्विध ध्यान माला स १७ जैसलमेर; ३ दश वैकालिक गीत स १७ ७ बीकानेर ४ उत्तराध्ययन गीत सं १७ ७ ५ कयवन्ना रास सं १७२१ बीकानेर; ६ जैसलमेर पार्श्व

---

[1] 'महोपाध्याय ज्ञानराज गुरु कह्यो सुपन में आय।
पांच चौपाई ब करी ए छट्ठी करो बणाय॥

वृहस्स्तवन सं १७१६ ७ चौबीस जिन स्तवन सं १७१८ सं १७१९ ८ दशश्रावक गीत पार्श्वनाथ संवादि ।

इनके शिष्य तिलकचंद ने प्रदेशी प्रबंध सं १७४१ जालोर में बनाया । आपके शिष्य चारित्रचंद ने ध्यानशतक बालावबोध सं १७६१ जैसलमेर में बनाया । सुगुणचंद योगिराज आनंदघन के पास अष्टसहस्री ग्रंथ मेड़ता में पढ़े थे ।

योगीराज आनंदघन—

आपका मूल नाम लाभानंद था । आनंदघन की रचनाएँ अनुभूतिप्रधान हैं । ये मेड़ते में काफी रहे थे । आपकी आध्यात्मिक साधना बहुत ऊँची थी इसकी साक्षी उपलब्ध स्तवनों एवं पदों से मिल जाती है । पदों में अधिकांश हिन्दी भाषा है । थोड़े राजस्थानी में है पर ऋषभदेव से नेमिनाथ तक के २२ तीर्थंकरों के स्तवन सब राजस्थानी में है । रचनाएँ थोड़ी होने पर भी उनका अपना विशेष स्थान है । साधना की गहरी छाप होने से वे अद्वितीय हैं और उनका प्रचार भी काफी है । सं १७३ में आपका मेड़ते में ही स्वर्गवास हुआ ।

अभयसोम—

ये सोमसुन्दर के शिष्य थे । जिनकी कई रचनाएँ आपने शिष्य मतिमन्दिर के लिए बनाई हैं । प्राप्त रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ वैदर्भी चौ स १७११ पौषी पूनम २ वाचेय्य कथा चौ सं १७२ नवसर ३ कयवी संधि स १७२१ ४ खापरा चोर चौ सं १७२१ सिरोही ५ विक्रम-लीलावती चौ (चौबासी चौ) सं १७२४ ६ मानतुंग मानवती चौ स १७२७ ७ वस्तुपाल तेजपाल चौ सं १७२९, ८ गुणावली चौ स १७४२ सोजत ९ फिरसकाव स १७४० १ पार्श्वनाथ स्तव ११ दादागुरु छंद ।

सोमसुन्दर के शिष्य अमर कवि रचित २४ एकादशी प्रबन्ध सं १७११ 'राजस्थानी व्रत कथाएँ' पुस्तक में प्रकाशित किया गया है ।

लब्धिमोदय—

आप जिनमाणिक्य सूरि परम्परा के लब्धिविजय के शिष्य थे । मूल नाम मेघराज था । ज्योतिष के आप बहुत अच्छे विद्वान् थे । जन्म-पत्री पद्धति ज्योतिष रत्नाकर आदि आपके संस्कृत ग्रंथ हैं । राजस्थानी में भी आपके रचित—१ गणित साठि सौ स १७११ एवं २ पंचागानयन विधि चौ स १७११ उपलब्ध है । सुप्रसिद्ध श्रीपाल कथा को लेकर आपने श्रीपाल रास स १७२२ जहानाबाद में बनाया ।

सुकवि सुमतिरंग—

आप कीर्तिरत्न सूरि शाखा के चन्द्रकीर्ति के शिष्य थे । सिन्ध व पंजाब में भी आपने कई वर्षों तक विहार किया था । तब मुलतान के आध्यात्मानुरागी श्रावकों के सम्पर्क से आपने प्रबन्धचिन्तामणि (मोह विवेक रास) योग शास्त्र चौपई नामक आध्यात्मिक ग्रन्थों का राजस्थानी में पद्यानुवाद किया । आपकी प्राप्त रचनाएँ ये हैं—

१ थंभेश्वर स्तवन सं १७२१ २ खम्भात पार्श्वनाथ स्तवन सं १७२४ ३ मुनिपति चौ सं १७२८ पाटण ४ दया-दीपिका चौ सं १७४ मुलतारण ५ मोह विवेक रास (४ खंड ६१ ढाल) सं १७४१ ६ परमात्म-प्रकाश चौ स १७४२ ७ नवकार स्तवन; ८ सुमतिनागिला सम्बन्ध चौ सं १७१८ बीकानेर ९ चवेसर स्तवन स १७४८ सोडवा स्तवनादि प्राप्त हैं।

उप व्याय लक्ष्मीवल्लभ—

ये जिनकुशल सूरि परम्परा के उ लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य थे। संस्कृत हिन्दी और राज स्थानी तीनों भाषाओं में आपकी रचनाएं मिलती हैं। कुछ स्तवन सिंधी भाषा के भी प्राप्त हैं। कल्पसूत्र उत्तराध्ययन व कुमारसंभव पर आपने संस्कृत में टीकाएँ की एवं धर्मोपदेश (श्लो ११) पर स्वयं ने टीका बनाई। पद्मकुमार चरित्र भी संस्कृत में रचित है। अपने समय के ये असाधारण विद्वान् थे। इनके राजस्थानी में फुटकर स्तवनादि तो अनेक प्राप्त हैं। यहाँ थोड़ी सी रचनाओं की ही सूची दी जाती है। विशेष जानने के लिए 'राजस्थानी' भाग २ में प्रकाशित मेरा लेख 'राजस्थानी भाषा के दो महाकवि' द्रष्टव्य है।

१ अम्यकर-श्रीमती चौ सं १७२१ २ रत्नहास चौ स १७२५ ३ विक्रम पंचदंड चौ सं १७२८ गारबदेसर; ४ रात्रि भोजन चौ सं १७३८ बीकानेर ५ अमरकुमार चौ ढाल ८ ६ महावीर गौतम स्तव ७ भरतबाहुबलि स्तव ८ देशान्तरी स्तव; ९ कुण्डलिया १ छप्पय बावनी राज (चेतन) बत्तीसी ११ वरकाणा पार्श्वनाथ स्तव १२ श्री जिनकुशल सूरि स्तव एवं स्तवनादि फुटकर कृतियाँ प्राप्त हैं।

गद्य में इन्होंने पृथ्वीराज कृत कृष्ण रुक्मणि वेलि भर्तृहरि शतकत्रय एवं सप्तपट्टक की भाषा टीकाएँ बनाई।

कमलहर्ष —

ये जिनराज सूरि शिष्य मानविजय के शिष्य थे। रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ जिनरत्न सूरि निर्वाण रास सं १७११ आगरा; २ दशवैकालिक गीत स १७२१ सोजत ३ पाण्डव रास स १७२८ मेड़ता ४ धन्ना चौ स १७२५, सोजत ५ अञ्जना चौ स १७३३ ६ कलध्वज चौ (अपूर्ण प्राप्त) ७ वीरबृहद् स्तवन गा ६ जोधपुर ८ पार्श्वनाथ बृहत्स्तवन गा ३१ ९ रात्रि भोजन चौ स १७५ सुजाणकरणसर, पार्श्वनाथ स्तवनादि।

आपके शिष्य विद्याविलास भी अच्छे विद्वान थे। अर्जुनमाली चौ स १७३८ कुलध्वज चौ स १७४२ सुजाणकरणसर अक्षर बत्तीसी दशवैकालिक सज्झाय आदि आपकी रचनाएँ प्राप्त हैं। गद्य भाषा टीकाओं में कल्पसूत्र बाला स १७२१ में बनाया।

कमलहर्ष के शिष्य उदयसमुद्र ने कुलध्वज रास स १७२८ महमदाबाद में बनाया। इसका अपर नाम रसलहरी रखा गया है।

४ राजर्षि कृत कर्म चौपइ, सं० १७२८ सोजत २ चौबीसी सं० १७२६, सोजत ३ कुसल सूरि गीत गाथा २१ और गद्य में रसिकप्रिया भाषा टीका सं० १७२४ जोधपुर एवं सभा कुतूहल नामक वर्णन संग्रह की रचना की। आपके शिष्य कुशललाभ की भी निम्न रचनाएँ प्राप्त है—

१ धर्मबुद्धि चौपइ सं० १७४८ मवलखी २ गुणसुन्दरी चौ० सं० १७४८ ३ अमरराजर्षि चौपइ, स० १७५ मटनेर, ४ मल्लिनाथ स्तवन स० १७२६ जैसलमेर गाथा ४२।

यशोवर्द्धन—

ये क्षेम शाखा के रत्नवल्लभ के शिष्य थे। इनके ४ रास प्राप्त हुए हैं—

१ रत्नहास रास चौपइ सं० १७१२ २ चंदनमलयागिरि रास सं० १७४८ रतनाम ३ जम्बूस्वामी रास सं० १७५१ ४ विद्याविलास रास सं० १७१८ बेनातट।

इनके शिष्य कुशलविनय ने नेमिराजुल त्रिलोकोव राणकपुर स्तवन सं० १७५४ में बनाया।

कविवर विनयचन्द्र—

ये महोपाध्याय समयसुन्दर की परम्परा के ज्ञानतिलकजी के शिष्य थे। काव्य रचना में इनकी स्वाभाविक गति थी। यद्यपि इनकी रचनाएँ थोड़ी ही मिली है पर वे कवित्वपूर्ण है। जैनागमो मे से ११ अङ्ग सत्रक ग्रथो के विवरण एव गुणवर्णनात्मक ११ ढालें आपकी प्रसिद्ध है। आपकी प्रस्तुत रचनाएँ गुजरात में रची जाने पर भी कवि की मातृभाषा का प्रभाव ही सर्वाधिक है।

१ उत्तमकुमारचरित्र रास सं० १७५२ पाटण २ बीसी स० १७५४ राध नगर ३ चौबीसी स० १७५५, राधनगर ४ एकादश ग्रंथ सज्झाय स० १७५५ ५ शत्रुंजय स्तवन स० १७५५।

आपकी प्राप्त समस्त रचनाएँ विनयचन्द्र कृति कुसुमांजलि में भँवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित सा० रा० रि० इ० बीकानेर से प्रकाशित कर दी गई है।

यशोलाभ—

ये सागरचन्द्र सूरि की परम्परा के गुणसेन के शिष्य थे। इनके रचित ४ रास एवं कई स्तवनादि उपलब्ध है।

१ सनतकुमार चौ० स० १७११ २ धर्मसेन चौ० स० १७४ नापासर ३ अमरदत्त मित्रानंद रास ४ विक्रमसेन पद्मावती चौ० (इन दोनो की अपूर्ण प्रतियां हमारे संग्रह में है)।

लक्ष्मीविनय—

इसी शाखा के अभयमाणिक्य शिष्य लक्ष्मीविनय रचित अभयकुमार रास सं० १७६ मरोट में रचित है। गद्य मे भुवनदीपक नामक ज्योतिष ग्रंथ की बालावबोध भाषा टीका सं० १७६७ में बनाई।

१ भावपच्चीसी सं १७११ (पा २६) २ सम्मेतशिखर स्तवन सं १७६२ फा सुदि १४ पंच सहमाया पार्श्वस्तवन सं १७६२ ३ पार्श्वस्तवन सं १७६६ ४ सिद्धाचल तीर्थ स्तवन सं १७६६ ५ पार्श्व स्तवनादि सं १७६६ ६ भरहुआ सज्झाय सं १७७ राहसर ७ मेघकुमार चौढालिया सं १७७४ बपसाऊ ८ मुच्छमाखरा कथा सं १७७५ ९ सुमनस रास सं १७७१ १ मेतार्य चौ सं १७ ६ सरसा ११ रात्रि भोजन चौ सं १७८७ नापासर १२ जैसलमेर स्तवन सं १७८७ १३ साइया स्तवन सं १७८७ १४ सुकमाल चौ सं १७६ मालपुरा १५ सुकोशल सं १७६० १६ सुप्रतिष्ठ चौ सं १७६४ मरोट १७ भरहुआ सज्झाय सं १७६६ रायपुर १८ कामलसेन चौ सं १७६७ रायपुर १६ सुदर्शन चौ सं १७६८ नापासर २ पूजा बत्तीसी सं १७६६ फलौदी २१ समकित ६६ बोल सज्झाय सं १८ २२ धर्मदत्त चौ सं १८ ३ राहसर; २३ देशी चौ सं १८ ६ पारबदेसर २४ प्रास्ताविक बत्तीसी सं १८ २५ उपदेश बत्तीसी सं १८ सबतोल्लेख रहित और भी कई स्तवनादि हैं।

१८ वीं शती के दो राजस्थानी कवि एवं विद्वान् ऐसे हैं जिनकी रचनाएँ १६वीं के पूर्वार्द्ध तक रची जाती रही हैं। वे हैं—रामविजय और रघुपति।

रामविजय—

आपका जन्म का प्रसिद्ध नाम रूपचंद था। सुकवि जिनहर्ष के शिष्य सुखवर्द्धन के शिष्य दयासिंह के आप शिष्य थे। ये ओसवाल आचरिया गोत्र के थे। जन्म सं १७४४ है। दीक्षा सं १७५१ जिनसागर सूरि २ जिनचन्द्र सूरि के हाथ से हुई थी एवं दीक्षा नाम रामविजय रखा गया। आपने पद्य की अपेक्षा राजस्थानी गद्य में भाषा टीकाएँ अधिक की थी। ये व्याकरण एवं ज्योतिष के भी अच्छे विद्वान् थे। संस्कृत में आपका गौतमीय काव्य (पद्य) और गुणमाला प्रकरण (गद्य) आदि ग्रंथ उपलब्ध हैं—

१ भर्तृहरि शतकत्रय बाला सं १७८८ सोजत २ अमरुशतक बाला सं १७६१ सोजत ३ समयसार बालावबोध सं १७६८ स्वर्णगिरि (प्रकाशित भाषा हिन्दी) ४ लघुस्तवन संस्कृत स्तोत्र बाला सं १७६८ ५ भक्तामर टबा सं १ ११ कालाऊना ६ हेम व्याकरण भाषा टीका सं १८२२ कालाऊना ७ नवतत्व भाषा टीका सं १ २१ कालाऊना सन्निपात कलिका टबा १८११ पाली ६ दुरियर स्तोत्र टबा सं १ ११ बिलाड़ा १ कल्याण मंदिर स्तोत्र टबा सं १८११ कालाऊना ११ मुहूर्त मणिमाला प्रथभाषा सं १८ १ (?) जोधी बछराज के लिए रचित १२ नवस्मृति बालावबोध ६।

आपकी राजस्थानी भाषा की कतिपय पद्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ चित्रसेन पद्मावती चौ सं १ १४ बीकानेर २ नेमिनवरसो ३ ओसवाल रास (गोत्र नामावली) ४ विवाह पडल भाषा ५ गौडी पारसनाथ छहद छन्द बाबा

११३ आबू स्तवन १ फलौदी पार्श्वनाथ स्तवनादि ७ मयणिपेक्षणादि स्तवन ८ सहस्रकूट स्तवन ९ जिनभक्ति सूरि गीत पत्ती छंद (पजाबी भाषा)। आपकी सर्व प्रथम रचना समुद्रबद्ध कवित्त सं १७९७ और अन्तिम जिनसुख सूरि मजलस (हिन्दी) सं १७७२। सं १८१४ पाली में ६ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हुआ।

सुकवि रूपपति—

खरतरगच्छाचार्य जिनसुख सूरि के शिष्य विद्यानिधान के प्राप शिष्य थे। आपकी समस्त रचनाएँ राजस्थानी भाषा में हैं। आपके फुटकर रचनाओं का एक संग्रह प्रति यति तिलोक मुनि के पास थी। उसकी प्रतिलिपि हमने कर रखी है। प्राप्त रचनाओं द्वारा आपके सुकवि होने का पता चलता है। सं १७८८ से १८४८ तक आपका साहित्य निर्माण काल है। प्राथमिक विमल जिन-स्तवन स १७८८ एवं नाकोड़ा एवं गौड़ी स्तवन सं १३६२ में रचित है। फिर रासादि बड़ी-बड़ी रचनाओं का प्रारम्भ होता है।

१ नमिश्रेण चौ सं १८ ३ केसरदेसर २ श्रीपाल चौ सं १८ ६ मड़मीसर ३ रत्नपाल चौ सं १८१४ कालू ४ सुमति चौ स १८२५, ठोमियासर ५ जैनसार बावनी सं १८ २ नापासर ६ छप्पयबावनी स १८२५, ठोमियासर, ७ कउसियाबावनी सं १८४८ करणी छंद गौड़ी ८ गौड़ी छंद १ जिनदत्त सूरि छंद ११ गुणुण बत्तीसी १२ उपदेश बत्तीसी १३ उपदेश रसाल बत्तीसी १४ उपदेशपच्चीसी आदि।

गद्य में दुरियर स्तोत्र बालावबोध भाषा टीका स १८१३ लिखित प्राप्त है।

कतिपय बड़े एवं प्रसिद्ध कवियों का परिचय ऊपर दिया है। अवशेष कवियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

भुवनसेन—

ये जिनभद्र सूरि शाखा क कनकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने सं १७ १ नवानगर में नर्मदा सुन्दरी चौ बनाई और श्रेणिक रास की भी रचना की।

सुमतिवल्लभ—

ये खरतर की आचार्य शाखा के श्री पूज्य जिनधर्म सूरि के शिष्य थे। इन्होंने भी निर्वाण रास स १७२ में बनाया जिसमें ८ ढाल हैं। जिनसागर सूरि का ऐतिहासिक वृत्तान्त इस रास में पाया जाता है। यह रास हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह मे मुद्रित है।

श्रीसोम—

ये मु जिनचन्द्र सूरि के शिष्य उपाध्याय धर्मनिधान क शिष्य समयकीर्ति क शिष्य थे। इन्होंने स १७२५ आसणीकोट में भुवनानन्दा चौ की रचना १३ ढालों में की।

कनकनिधान—

ये जिनकुशल सूरि परम्परा के उपाध्याय चारदत्त के शिष्य थे। सं १७२८ में इन्होंने रत्नचूड़ व्यवहारी रास बनाया जो भीमसी माणेक द्वारा छप चुका है।

मतिकुशल—

ये मतिवल्लभ के शिष्य थे। सं. १७२८ पचोयार में इन्होंने चन्द्रलेहा चौ. बनाई। ६२८ गाथा की इस चौ. की काफी प्रसिद्धि रही है।

रामचन्द्र—

ये पद्मरंग के शिष्य थे। इन्होंने मूलदेव चौ. की रचना सं. १७११ सोजत में की और श्री पाल चौ. सं. १७२५ बीकानेर में बनाई। दसपच्चक्खाण स्तवन सम्मेतशिखर स्तवन आदि इनकी अन्य भी राजस्थानी रचनायें हैं। हिन्दी में इन्होंने रामविनोद और वैद्यविनोद तथा सामुद्रिक भाषा की रचना सिन्ध प्रान्त में की है।

विनयलाभ—

ये विनयप्रमोद के शिष्य थे। सं. १७३ मुलतान में इन्होंने वच्छराज देवराज चौ. की रचना की और सं. १७४८ फलोदी में सिंहासन बत्तीसी चौ. बनाई। इनके रचित सवैयाबावनी और १४ स्वप्न भवन भी मिलते हैं। भर्तृहरि शतकत्रय का इन्होंने हिन्दी पद्यानुवाद किया है।

दयातिलक—

ये रत्नजय के शिष्य थे। सं. १७३६ में इन्होंने धम्मा रास १७ ढालों में बनाया।

कुशलसागर—

ये जिनभद्र सूरि शाखा के लावण्यरत्न के शिष्य थे। इनका जन्म नाम केशवदास था। सं. १७३६ में केशवबावनी और सं. १७४५ नवानगर में वीरभाण उदयभाण रास का रचना ६२ ढालों में की।

कनकविलास—

ये क्षेम शाखा के कनककुमार के शिष्य थे। इन्होंने सं. १७३८ जैसलमेर में देवराज वच्छराज चौ. ४६ ढालो मे बनाई।

जिनरत्न सूरि—

ये जिनराज सूरि के पट्टधर थे। सं. १७ में इनको आचार्य पद मिला और सं. १७११ में स्वर्गवास हो गया। सेरुणा गांव के मुखिया तिलोकसी और तारादेवी इनके पिता व माता थे। जन्म नाम रूपचन्द था। इनके रचित चौबीसी और अन्य कई स्तवन प्राप्त हैं। इनके पट्टधर जिनचन्द्र सूरि के रचित कुछ स्तवन मिलते हैं।

सोमहर्ष—

ये सागरचन्द्र सूरि शाखा के विद्वान् विशालकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने सं. १७ ४ मरोठ मे चन्दनमलयागिरि चौ. सवाबसपुर में पुण्यपाल श्रेष्ठि चौ. (पद्य ३११) और फलोधी में पार्श्वनाथ स्तवन (गाथा ७४) की रचना की।

महिमावर्धन—

ये महिमासागर के शिष्य थे। इन्होंने अरहन्नक रास सं. १७ २ (१४) चौबीसी सं.

१७१२ कुल पाक आदि स्तवन सं १७२९ तथा अन्तरीक स्तवन विमलगिरि स्तवन कल्याण मन्दिर भ पद और भक्तामर सवैया आदि की रचना की।

राजहंस —

ये कीतिरत्न सूरि शाखा के उपाध्याय ललितकीर्ति के शिष्य थे। सं १७ ३ ? (७) बीकानेर में शालभद्रा मुक्तोधन की और सं १७२४ ? (३२) हस्तवासपुर में अरहन्ना था और नेमि फाग की इन्होंने रचना की।

राजसार—

आप युग प्रधान जिनचन्द्र सूरि की परम्परा में धर्मसोम क शिष्य थे। सं १७ २ अहमदाबाद मे पुण्डरिक कुडरिक संधि स १७ ४ हाजीखानडेरा मे कुसमगकुमार रास और सं १७ ९ म धम्म चरित्र भी की रचना की।

धर्मसार—

ये भी जिनचन्द्र सूरि के प्रशिष्य धर्मकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने सं १७ ४ मुलतान में आराम सोभा भी और मारामलन्दन पद्मावती भी सं १७ ५ फतेहपुर में नीसवती रास स १७ ६ सीतपुर में अमरसेन वयरसेन भी और सं १७१ मुहाबालनगर में इला पुत्र भी की रचना की। सिन्ध प्रान्त में इनका रहना अधिक हुआ।

शिवहर्ष—

ये सागरचन्द्र सूरि शाखा के मुनि-मेरु के शिष्य थे। स १७ ८ शेरगढ़ में इन्होने पद रस भी की रचना की।

ज्ञानहर्ष—

इनके रचित सं १७ ७ पूगल में दुर्जनदमन भी आम्मत्मक भी (सं १७१ लोबा) और जिनचन्द्र सूरि गीतादि प्राप्त है।

नयप्रमोद—

ये हीरोदय के शिष्य थे। इन्होने स १७११ में अरहन्नक प्रबन्ध और सं १७ ९ जैसलमेर में चित्रसमृत सधि की रचना की।

रत्नप्रमोद—

ये ज्ञानचन्द्र क शिष्य थे। सं १७१२ मुलतान में चम्पक भी की रचना की।

पद्मचन्द्र—

ये पद्मरग के शिष्य थे। सं १७१८ मरसा नं गुड़ासाह क आग्रह स इन्होंने जम्बूरास बनाया। इनके शिष्य क रचित भवतरव वृहद् बालावबोध (प्रमाणय ३) नामक गद्य ग्रन्थ स १७६६ का प्राप्त है।

भावप्रमोद—

ये जिनराज सूरि के प्रशिष्य भावविनय क शिष्य थे। इन्होंने सं १७२६ बीकानेर में मजापुत्र भी बनाई।

समयमाणिक्य—

ये सागरचन्द्र सूरि शाखा के मतिरत्न के शिष्य थे। इनका जन्म नाम समर्थ और दीक्षा नाम समयमाणिक्य था। इन्होंने सं. १७३२ नागौर में मत्स्योदर चौ. सं. १७३६ उसी ग्राम में मल्लीनाथ पंचकल्याणक स्तवन और बावनी की राजस्थानी भाषा में रचना की और हिन्दी में रस-मंजरी चौ. और संस्कृत में रसिकप्रिया की वृत्ति भी बनाई है।

ज्ञानधर्म—

ये उपरोक्त राजसार के शिष्य थे। सं. १७१५ में इन्होंने दामन्नक चौ. की रचना की थी।

रत्नवर्द्धन—

ये यु. जिनदत्त सूरि परम्परा के वाचक रत्नजय के शिष्य थे। सं. १७१३ संबावती में शीलधर्म के माहात्म्य पर ऋषिदत्ता चौ. कोठारी पहीराज के लघु भ्राता वीरमदास के आग्रह से बनाई।

श्रीदेव—

ये ज्ञानचन्द्र के शिष्य थे। इन्होंने सं. १७४१ जैसलमेर में पावच्चा मुनिसंधि की रचना की। इनके रचित साधु-वन्दना और नागश्री चौ. भी उपलब्ध हैं।

खेता—

ये जिनराज सूरि के शिष्य दयावल्लभ के शिष्य थे। सं. १७४१ बहुरगाबाद में बावनी और जिनचन्द्र सूरि छन्द राजस्थानी भाषा में और सं. १७४८ और सं. १७५७ चित्तौड़ एवं उदयपुर की गजल इन्होंने हिन्दी में बनाई।

ज्ञानसागर—

ये जिनपद्म सूरि के शिष्य क्षमालाभ के शिष्य थे। सं. १७२९ में नलदमयन्ती चौ. और १७५४ में कयवन्ना चौ. बनाई।

खरतरगच्छ की कुछ शाखाओं के कुछ कवियों का परिचय ऊपर दिया गया है। अब अन्य शाखाओं के कवियों का विवरण दे रहे हैं—

जिनसुन्दर सूरि—

ये बेगड़ शाखा के जिनसमुद्र सूरि के पट्टधर थे। सं. १७६२ आगरे में प्रश्नोत्तर चौ. नामक छः खण्ड का वृहद् ग्रंथ ११६ ढाल और १६८१ श्लोक परिमित बनाया। इसके खण्ड १–४ सिन्ध प्रान्त के गाजीपुर में बनाये गये।

उदय सूरि—

ये बेगड़ शाखा के जिनसुन्दर सूरि के शिष्य थे। सं. १७६६ में इन्होंने सुरसुन्दरी रास बनाया।

जिनरंग सूरि—

ये जिनराज सूरि के शिष्य थे। इनके रचित प्रबोधबावनी सं. १७३१ सौभाग्यपंचमी चौ. सं. १७३ धर्मदत्त चौ. सं. १७१७ चित्तनमड़ और बहुत से स्तवन मिलते हैं। प्रबोधबावनी और रंगबहुत्तरी हिन्दी में है।

रंगविनय—

ये उपरोक्त जिनरंग सूरि के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७ ९ खम्भात में कलावती चौपइ बनाई।

जिनचन्द्र सूरि—

ये भी जिनरंग सूरि के शिष्य थे। सं १७२७ में इन्होंने मेघकुमार चौ की रचना की।

प्रीतिसागर—

ये प्रीतिसाम के शिष्य थे। इन्होंने ऋषिदत्ता चौ सं १७५२ राजनगर और समबुद्धि पापबुद्धि चौ सं १७६१ उदयपुर में बनाई।

सुमतिसेन—

ये क्षेम शाखा के रत्नसी के शिष्य थे। इन्होंने सं १७ ७ में रात्रि भोजन चौ की रचना की।

लब्धिसागर—

य जिनमाणिक्य सूरि शाखा के जयमंडन के शिष्य थे। इनका जन्म नाम मालचन्द था। सं १७७ चूहा ग्राम में ध्वजरम कुमार चौ की रचना की।

भावप्रमोद—

ये भावपक्षीय शाखा के मतिवर्द्धन के शिष्य थे। सं १७२७ जोधपुर में मौन एकादसी चौ स १७१४ सोजत म कुलध्वज चौ स १७३६ बघड़ी में कीतिधर सुकोशल चौढालिया सं १७४८। सोजत में देवराज बच्छराज चौ आदि की इन्होंने रचना की।

जिनलब्धि सूरि—

ये भावपक्षीय जिनहर्ष सूरि के शिष्य थे। स १७५ जयतारण में इनका रचित नवकार महात्म्य चौ प्राप्त है।

विद्याकुशल—चारित्रधर्म—

ये उपरोक्त भावप्रमोद के शिष्य थे। इन्होने स १७११ सूणसर में रामायण चौ की रचना की।

देवीदास—

ये भावपक्षीय शाखा के दयाराम के शिष्य थे। प्रसिद्ध भक्त चारण कवि ईसरदास के हरिरस से प्रभावित होकर इन्होंने पुण्यविलास सं १७६९ पीपाड़ में बनाया।

पुण्यविलास—

ये भावहर्षीय शाखा के विमलोदय के शिष्य थे। सं १७ १ में इन्होंने भगवद्गीता चौ बनाई।

राजसोम—

ये समयसुन्दर के प्रशिष्य जयकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने सं १७ १ जैसलमेर में कल्पसूत्रान्तर्गत बचबइ स्वप्न का विवरण राजस्थानी पद्य में लिखा। इसी तरह सं १७१५ सोझत में श्रावक आराधना भाषा तथा पंचसन्धि व्याकरण बालावबोध हरियाली मिथ्या

स्थलें बनाईं। यह रचना सज्झाय पद संग्रह नामक ग्रंथ में प्रकाशित भी हो चुकी है। उन्होंने १४ गुणस्थानक सज्झाय और भाषा टीका के रूप में कर्म-ग्रंथ बालावबोध की रचना भी की पर उनमें रचना-स्थान का निर्देश नहीं है।

विद्यारुचि और सविमरुचि—

ये दोनों उदयरुचि के शिष्य थे। इन्होंने चन्द राजा का रास ६ खण्डों में बनाया है जिसका दूसरा खण्ड सं० १७११ मीनमाल में रचा गया था और तीसरे खण्ड से छः खण्ड की रचना सं० १७१७ में सिरोही में हुई थी। १ ३ ढाल और २४ ५ गाथाओं का यह रास विद्यारुचि और सविमरुचि दोनों गुरु-भाइयों ने मिल कर बनाया था।

भावविजय—

ये जयविजय के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७१८ मोघावर में नवतत्व रास की रचना की।

मानसागर—

ये जीतसागर के शिष्य थे। इन्होंने विक्रमसेन चौ० सं० १७२४ कुकेनगर, सुरपति रास सं० १७२६, भाषाढ़भूति चौ० सं० १७३ भैरूंटी धार्द्रकुमार चौ० सं० १७३१ सुराम सुभद्रा रास सं० १७२२ कच्छराजपुर में बनाया पर कुकानगर भैरूंटी सुराम और कच्छराज पुर य कहाँ पड़ते है पूरा पता नहीं। इन्होंने सं० १७४६ में कान्हड़ कठियारा रास मार वाड़ के पचावती नगर में बनाया है और यह प्रकाशित भी हो चुका है। इसलिए सम्भव है कि इनकी अन्य रचनाएँ, जो उपरोक्त ग्राम-नगरों में बनाई गई हैं उनके रचना-स्थान भी राजस्थानी में ही हो।

उदयविजय—

ये विजयसिंह सूरि के शिष्य थे। इन्होंने ६ खण्डों में श्रीपाल रास सं० १७२८ कुशल गढ़ में बनाया। इनके रचित रोहिणी रास मतलकलश रास आदि का भी विवरण जैन गुर्जर कवियो में छपा है पर उन कृतियों में रचना स्थान का उल्लेख नहीं है। श्रीपाल रास मे ७७ ढाल और २ ५१ गाथायें है।

विवेकविजय—

ये वीरविजय के शिष्य थे। इन्होंने मृगांक लेखा रास सं० १७१ में मालवा प्रदेश के शाहपुर में बनाया। यह रास चार खण्डो का है।

तत्त्वहंस—

ये तिलकहंस के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७११ मडाहड़ में उत्तमकुमार चौ० ५१ ढालों में बनाई।

पुण्यसागर—

ये सुन्दरसागर के शिष्य थे। इन्होंने इक्षमातृ भ्रिमारत्न सुन्दरी चौ० की रचना सं० १७१२ मे रेवां नगर में की। वहाँ पर बाकेराय भवानी नामक देवी का मन्दिर है। उसकी कृपा से इस चौ० की रचना की जाने का उल्लेख प्रशस्ति में किया गया है।

देवविजय—

ये उदयविजय के शिष्य थे। इन्होंने बाणेराव नगर में चम्पक रास की रचना सं १७१४ में की जिसमें ४८ ढालें हैं।

जिनविजय—

ये कीर्तिविजय के शिष्य थे। इन्होने सं १७११ फलौधी में चौबीसी की रचना की। इनकी अन्य रचनाएं वसाड़ा और उसमापुर में बनाई गई। ये स्थान सम्भवतः गुजरात में होगे।

दौलतविजय—

ये शान्तिविजय के शिष्य थे। इनका जन्म नाम दलपत था। इन्होंने चित्तौड़ के महाराणाओ के इतिहास सम्बन्धी 'खुमाण रास' नामक ग्रंथ की रचना की जिसकी हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में बड़ी चर्चा रही है। उनमें इस ग्रंथ को देखे बिना ही इसका रचनाकाल ८ वी से १७ वी शताब्दी बतलाया जाता रहा। सर्व प्रथम मैंने ही पूना से इसकी हस्तलिखित प्रति मंगवा कर इस ग्रंथ का विवरण प्रकाशित करते हुए इसे १८ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का सिद्ध किया। अभी तक इसकी पूरी प्रति उपलब्ध नहीं हुई। इस ग्रंथ का सम्पादन और इसके सम्बन्ध में एक शोध प्रबन्ध उदयपुर के प्रो ओझियाजी ने लिखा है।

नयविजय—

ये प्रीतिविजय के शिष्य थे। सं १७७१ फलौधी में इन्होंने जयसेन कुमार चौ की रचना की।

जिनेन्द्रसागर—

ये बसन्तसागर के शिष्य थे। इनके रचित कई स्तवन प्राप्त हैं जिनमें से चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तवन स १७ १ डूंगरपुर में बनाया गया।

मोहनविमल—

ये ज्ञानविमल के शिष्य थे। इन्होने सं १७४८ देवगढ़ में वैरसिंह कुमार (बावना-चन्दन) चौ की रचना की।

कर्मसिंह—

ये वाचक प्रमोदचन्द्र के शिष्य थे। इन्होंने सं १७१ जालोर में रोहिणी चौ बनाई जो २१ ढालों में है। जैन रास संग्रह में यह प्रकाशित भी हो चुकी है।

मिहालचंद—

ये हर्षचन्द्र के गुरु भाई थे। स १७४८ में इन्होंने मालवदेवी रास बनाया जो प्रकाशित भी हो चुका है। स १७ ९ में जीवदया रास स १ ९ मे नवतत्त्व भाषा एवं हिन्दी में बयान भजन और बावनी की रचना की।

विनयशील—

ये गुणशील के शिष्य थे। स १७ १ शाहपुर में सहस्रफणा पार्श्वनाथस्तवन ४५

पद्यों में बनाया। चौबीस जिन मास नामक इनकी एक और रचना मिलती है पर उसमें रचना-स्थान का नाम नहीं है।

लावण्यचन्द्र —

ये लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य थे। सं० १७१४ सिरोही में साधु-वन्दना की रचना की।

लावरत्न—

ये राजरत्न के शिष्य थे। इनकी सं० १७७१ पद्मावती नगरी में रचित रत्नसार कुमार भी प्राप्त है।

पल्लीवालगच्छ

हीरानंद—

ये यशितदेव सूरि के शिष्य थे। इनकी रचित चौबोली चौ० की प्रति सं० १७७ की लिखी हुई प्राप्त है।

कायच्छ

तेज मुनि—

ये भीमजी के शिष्य थे। इन्होंने चन्द राज का रास सं० १७ ७ रासपुर में बनाया जो सौराष्ट्र में है पर उनकी दूसरी रचना भिखारी राजा रास सं० १७१४ सिरोही में रची गई।

हीरानंद—

ये गुजराती लोंका आचार्य तजसी के समय में हुए। इन्होंने अमृतमुखी चतुष्पदी सं० १७२७ मकसा और सागरदत्त रास सं० १७४४ जालोर में बनाया। इनमें से प्रथम रचना में १२ और दूसरी में ४२ ढालें है।

केशव—

ये श्री पूज्य दामोदर के समय में हुये है। स० १७३२ मेवाड़ बैराटगढ़ में बसा रास की इन्होने रचना की।

मार्कंड मुनि—

ये त्रिलोकसी के शिष्य थे। इन्होने सं० १७२१ नागपुर में गणितसार नामक गणित विषयक ग्रन्थ बनाया। इनका रचित हरिवंश चरित्र ४ खण्डों का रास प्राप्त है जिसकी रचना सं० १७१८ रायधनपुर में हुई।

जीवराज—

ये पूज्य गोविन्द के अनुयायी थे। सं० १७४२ बीकानेर में जिनसंमूति सज्झाय की इन्होंने रचना की।

चतुर—

ये माऊ के शिष्य थे। सं १७ १ मा १७७१ में राली नगर में इनकी रचित चन्दन मलयागिरि चौ उपलब्ध है।

उदयसिंह—

ये सवारंग के शिष्य थे। सं १७६८ किशनगढ़ में महावीर चौढ़ालिया बनाया।

ऋषिदीप—

ये वर्द्धमान के शिष्य थे। स १७५७ में गुणकरंट गुणावली चौ और सुदर्शन सेठ छप्पय तथा पंचमी चौ की रचना की। इनमें से सुदर्शनचरित्र छप्पय छन्दों की सुन्दर रचना है और प्रकाशित भी हो चुकी है।

वच्छराज—

सं १७४६ बीकानेर में सुबाहु चौढ़ालिया बनाया।

खेम—

ये गुरुव के शिष्य थे। इन्होंने सं १७४५ कल्याणपुर में अनाथी ऋषि संधि और सं १७४७ उदयपुर में इलुका चौ की रचना की।

ज्ञान मुनि—

यह नयन ऋषि के शिष्य थे। इन्होंने सं १७१६ में शान रस नामक १२१ पद्यों का ग्रंथ बनाया।

कुशलसिंह—

यह रामसिंह के शिष्य थे। इन्होंने सं १७८१ सूरत में दशार्णभद्र चौढ़ालिया बनाया। सं १७८६ मेड़ता में सनत्कुमार चौढ़ालिया की रचना की।

त्रिलोकसिंह—

ये वच्छराज जयराज के आज्ञानुवर्ती थे। इन्होंने सं १७८८ नवीनुनगर (सम्भवतः नागौर) में धर्मदत्त धर्मवती चौपई की रचना की जो ४ खण्ड और १ ढालों में है।

विजयगच्छ

तिलकसूरि—

ये श्रीमसूरि के शिष्य थे। सं १७४६ पचरोटी (चन्दनपुर हीरापुरी) में बुद्धिसेन चौ की रचना की।

लालचन्द—

इनके रचित सागरचन्द सुशीला चौ की प्रति महरचन्द भण्डार, बीकानेर में है। इसकी रचना स १७६६ चीतावेड़ा में हुई।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे कवियों की रचनायें भी मिलती हैं जिन्होंने अपने गच्छ का नामोल्लेख नहीं किया[1] और कुछ कवियों ने रचना स्थान का निर्देश नहीं किया और कई रचनायें ऐसे स्थानों पर रची गई हैं कि वे ग्राम-नगर राजस्थान में पड़ते हैं या गुजरात में इसका निश्चय नहीं हो पाया। उपरोक्त सभी रचनायें जैन मुनियों की रचित हैं। श्वे० जैन श्रावकों में कवि बहुत कम हैं। इस शताब्दी के बच्चो श्रावक के रचित कुमति रास ११ पद्यों का मिला है जिसमें जिन प्रतिमा की पूजा का मण्डन किया गया है। सं० १७१८ में इसकी रचना हुई। बच्चो ने अपनी जाति पिपाड़ो और निवास-स्थान सोजत बतलाया है।

१९वीं शताब्दी

१७वीं शताब्दी के स्वर्णयुग की साहित्य-धारा १८वीं शताब्दी तक ठीक से चलती रही पर १९वीं शताब्दी से उसकी गति मन्द पड़ गई। यद्यपि ५-७ कवि इस शताब्दी में भी महत्वपूर्ण हुए हैं पर उन्हें पूर्ववर्ती कवियों की टक्कर में नहीं रखा जा सकता। रचनाओं की *विपुलता विविधता और गुणवत्ता सभी दृष्टियों से १९वीं शताब्दी को अवनत काल* ही कहा जा सकता है।

हिन्दी का प्रभाव वैसे १७वीं शताब्दी से ही जैन कवियों पर अधिक रूप से पड़ने लगा था। १८वीं १९वीं शताब्दी से वह और भी अधिक दिखाई देता है। दिगम्बर कवियों ने तो विशेष रूप से हिन्दी को ही अपना लिया था। यद्यपि उनकी गद्य भाषा टीकाओं की भाषा 'ढूढाड़ी' कही जाती है और ढूढाड़ वास्तव में राजस्थान का ही अंग है। पर ढूढाड़ी भाषा पर हिन्दी का प्रभाव ही ज्यादा है। केवल 'छ' आदि शब्द प्रयोग के कारण ही उस ढूढाड़ी की संज्ञा दी गई है। वास्तव में वह बोलचाल की ढूढाड़ी भाषा नहीं हो कर हिन्दी प्रधान साहित्यिक भाषा है। राजस्थानी गद्य रचनायें जैन विद्वानों की लिखी हुई मिलती तो बहुत है पर उनमें रचयिताओं के नामों का निर्देश नहीं है अतः वे जैन विद्वानों द्वारा रचित हैं या केवल उनकी नकल की हुई है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अब १९वीं शताब्दी के खरतरगच्छीय कवियों का विवरण दिया जा रहा है।

ज्ञानसार—

ये कविवर समयसुन्दरजी एवं जिनचंद्रजी की परम्परा में पासुकरणजी के शिष्य थे। कई वर्षों तक आप मुर्शिदाबाद में रहे थे। रचनाएं इस प्रकार हैं—

१ मौनएकादशी चौ० सं० १८१४ मुर्शिदाबाद २ जीवविचार स्तवन भाषा ११५, सं० १८१५, मुर्शिदाबाद ३ कैलाशप्रतिमा स्तवन सं० १८१७ ४ सम्यक्त्वकौमुदी चौ० सं० १८२२ मुर्शिदाबाद।

---

[1] उदाहरणार्थ महेश मुनि ने सं० १७२५ उदयपुर में अधरवतीसी बनाई पर उसमें कवि ने अपने गच्छ और गुरु का उल्लेख नहीं किया।

रत्नविमल—

ये क्षेमकुशल शाखा के कनकसागर के शिष्य थे। आपकी रचित ४ चौ. हमें प्राप्त हुई है—

१ पुरन्दर चौ. सं० १८२७ कामवना; २ ममलकलश चौ. सं. १८३२, बेनातट ३ तत्त्वसार चौ. सं. १८३४ बाकड़ीपुर ४ इलापुत्र रास सं. १८३६, राजनगर।

ज्ञानसार—

ये राजमान्य आध्यात्मिक यशस्वी विद्वान व कवि थे। सं. १८ १ में आपका जन्म जांगलू (नागौर) के सांड उदयकरण के यहाँ हुआ था। सं. १८२१ में आपने दीक्षा ली थी। मूल नाम नारायण या नारायण था। दीक्षा नाम ज्ञानसार था। जिनलाभ सूरि के शिष्य रत्नराज गणि के आप शिष्य थे। प्रारम्भिक कुछ वर्षों तक विहार मारवाड़ ढूंढाड़ गुजरात में कर के पूर्व देश की ओर चल गये और वहाँ से लौटने पर किशनगढ़ जयपुर में कई चौमासे कर सं. १८७ से अंत तक बीकानेर में रहे। सं. १८६८ के द्वि. आश्विन बदि ३ को ९८ वर्ष की दीर्घायु में आपका स्वर्गवास हुआ। जयपुर महाराजा प्रतापसिंह उदयपुर के महाराणा जैसलमेर के रावल और किशनगढ़ नरेश आपको बहुत आदर देते थे। बीकानेर नरेश सूरतसिंहजी तो आपको नारायण का अवतार ही मानते थे। आपकी रचनाओं को हमने दो भागों में सम्पादित किया है जिनमें से प्रथम भाग विस्तृत जीवन चरित्र के साथ प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी में भी आपने माला पिंगल चन्द्र चौपई समालोचना शिकार, कामोद्दीपन पूर्वदेश चर्या छत्तीसियाँ आदि कई रचनाएँ की हैं। राजस्थानी भाषा के गद्य एवं पद्य उभय प्रकार की आपकी रचनाएँ प्राप्त हैं। सूची इस प्रकार है—

१ आनन्दघनजी की चौबीसी एवं पदों पर बड़ी गम्भीर टीका ३७ वर्षों के चिन्तन से लोक भाषा में की है। आपके अध्यात्म गीता टीका जिन प्रतिमा स्थापना आदि गद्य ग्रंथ भी उल्लेखनीय हैं।

२ पद्य में चौबीसी (१८७५ बीकानेर)। बीसी सं. १८७८ बीकानेर ४० बोल गर्भित चौबीसी सं. १८५८ प्रबोध बावनी सं. १८५८ नवपद पूजा एवं स्तवनादि उपलब्ध हैं। हिन्दी की आपने विशेष सेवा की है। विशेष जानने के लिए ज्ञानसार ग्रन्थावली नामक हमारा ग्रंथ देखना चाहिए।

लालचंद—

ये खरतरगच्छ के रत्नकुशल के शिष्य थे। दीक्षा नाम लावण्यकमल था। इनके रचित दशविध स्तवन सं. १ ११ श्रीपाल रास सं. १८१७ मक्षीसमंज बीकानेर, ऋषभदेव स्तवन सं. १ ११ बीकानेर प्राप्त है।

उपाध्याय क्षमाकल्याण—

१९वीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रसिद्ध खरतरगच्छ के ये विशिष्ट विद्वान् थे। बीकानेर राज्य के केसरदेसर गांव में ओसवंश के मालू गोत्र में सं. १८ १ में आपका जन्म हुआ।

११ वर्ष की छोटी सी आयु में ही आपने जैन मुनि की दीक्षा ग्रहण करली। आपके गुरु का नाम वाचक अमृतधर्म और विद्यागुरु उपाध्याय रामविजय और राजसोम थे। सं० १८२९ से १८७१ तक आप निरन्तर साहित्य रचना करते रहे। संस्कृत में मुग्धानुवृत्ति गौतमीय काव्यवृत्ति तर्कसंग्रह फक्किका श्रीपाल चरित्रवृत्ति सूक्तिरत्नावली छोटवृत्ति आदि टीकायें और यशोधर चरित्र आत्मप्रबोध खरतरगच्छ पट्टावली प्रश्नोत्तर सार शतक आदि गद्य और चैत्यवन्दन चौबीसी विज्ञानचन्द्रिका सूक्तिरत्नावली आदि पद्य रचनायें एवं कुछ हिन्दी रचनाओं के अतिरिक्त राजस्थानी में भी गद्य और पद्य में आपने काफी रचनायें की हैं। राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात बिहार, बंगाल और मध्यप्रदेश में धर्म प्रचारार्थ तीर्थ यात्रा के लिये आप घूमे थे। सं० १८७१ के पौष कृष्णा १४ को बीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ। बीकानेर के रेलदादाजी में आपका स्तूप और चरणपादुकायें विद्यमान हैं। राजस्थानी भाषा के चैत्यवन्दन स्तवन पद आदि का संग्रह चैत्यवन्दन स्तवन संग्रह नामक पुस्तक में सं० १९८२ में प्रकाशित हो चुका है। चैत्यवन्दन चौबीसी सं० १८२१ में रचित है। भावक विधिप्रकाश (सं० १८३८ जैसलमेर) आदि आपकी और भी कई रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। बावचा चौ० (सं० १८४७ महिमापुर) प्रश्नोत्तर सार्द्धशतक भाषा (सं० १८२७ बीकानेर) पंचकचरित्र प्रतिक्रमण हेतव साधुविधिप्रकाश आदि राजस्थानी भाषा की गद्य और पद्य रचनायें अभी अप्रकाशित हैं। आपके रचित अष्टाह्निका अक्षय तृतिया होलिका मेरुतेरस आदि संस्कृत पर्व व्याख्यानों का इतना अधिक प्रचार है कि उनके राजस्थानी व हिन्दी अनुवाद भी किये गये। आपकी शिष्य परम्परा में भी कई अच्छे विद्वान् और कवि हो गये हैं और आज भी इनकी परम्परा के साधु और अनेकों साध्वियां जैन धर्म का सर्वत्र प्रचार कर रही हैं।

मतिलाभ—

इनका जन्म नाम मयाचन्द था। खरतरगच्छीय जयकिर्त्तिवल्लभ के ये शिष्य थे। सं० १८१२ मुलतान में इन्होंने नवतत्व स्तवन ४२ पद्यों में बनाया। मयाचन्द की सवा सौ सीख सज्झाय या बुद्धिरास १४१ पद्यों का प्राप्त है।

कुशालचन्द—

ये खरतरगच्छीय जयराम के शिष्य थे। इनकी उपदेशछत्तीसी सं० १८११ सवाई माधोपुर में रचित प्राप्त है।

उदयकमल—

ये रत्नकुशल के शिष्य थे। इन्होंने सं० १८२१ कमालपुर में विजय सेठ विजया सेठानी चौ० बनाई।

हितधीर—

ये कुशलभक्त के शिष्य थे। इन्होंने सं० १८२६ सूरतगढ़ में धन्ना चौ० की रचना की।

सुखमल—

इन्होंने सं० १८२५ में साह सुगालचन्द के संघ के साथ समेतशिखर तीर्थ की यात्रा की और वहां १७ बोल गर्भित चौबीस जिन स्तवन की रचना की।

धर्मवर्द्ध—

इन्होंने सं १८१२ में सरसा में चौबीस जिन स्तवन बनाया।

चारित्रसुंदर—

ये कीर्तिरत्न सूरि शाखा के कवि थे। इनके रचित सम्प्रति चौ की ११ पत्रों की अपूर्ण प्रति मिली है। सं १८२४ मकसूदाबाद (बंगाल) में इन्होंने स्थूलिभद्र चौ बनाई जिसकी स्वय लिखित प्रति अभयचन्द्र के भण्डार में है।

जिनलाभ सूरि—

ये बीकानेर निवासी बोथरा साहु पंचायनदास के पुत्र थे। माता पद्मादेवी की कुक्षि से सं १७८४ में आपका जन्म बापेऊ गांव में हुआ। जन्म नाम लालचन्द था। सं १७९६ में जैसलमेर में आपने जैन मुनि दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम लक्ष्मीलाभ रखा गया। सं १८ ४ माण्डवी में आपको आचार्य पद मिला और स १८३४ गुढा गांव में आपका स्वर्गवास हुआ। ये अच्छे विद्वान् और कवि थे। इनके रचित आबू, राणकपुर, वरकाणा लोद्रवा जैसलमेर, सखेश्वर, गौडी पार्श्वनाथ आदि तीर्थों के स्तवन और सूरत के सहस्रफणा और शीतलनाथ आदि की प्रतिष्ठा का स्तवन तथा नवपद स्तवन पार्श्व स्तवन दादाजी स्तवन के अतिरिक्त दो चौबीसियां भी प्राप्त हैं और वा प्रकाशित भी हो चुकी है।

शिवचन्द्र—

ये क्षेमकीर्ति शाखा के कवि जिनहर्ष और महो रूपचन्द्र की परम्परा में समयसुन्दर के शिष्य थे। प्रद्युम्न लीलाप्रकाश भावनाप्रकाश विंशति पदप्रकाश मौनएकादशी व्याख्यान आदि आपकी संस्कृत रचनायें हैं। राजस्थानी भाषा में इन्होंने बीस स्थानकपूजा स १८७१ अजीमगंज इक्कीस प्रकार की पूजा सं १८७८ ऋषिमण्डल पूजा सं १८७९ जयपुर और समवसरण, श्री मंधर स्तवन आदि अनेक रचनाय की। सर्वप्रथम रचना मूलराज गुणवर्णन स १८५१ जैसलमेर में रचित है।

अमरसिन्धुर—

ये क्षेम शाखा के जयसार के शिष्य थे। इनका जन्म नाम अमरा या अमरचन्द था। स १८८ जैसलमेर में इनकी दीक्षा हुई। स १८७७ से १८९१ तक आप अधिकांश बम्बई में रहे थे वहां इनके उपदेश से चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर और उपाश्रय का निर्माण हुआ जो आज भी विद्यमान है। इनके रचित नवपद प्रकारी पूजा सं १८८८ अरणी चौ स १ ९२ कुशल सूरि स्थान नाम गर्भित स्तवन सं १८९२, सामुद्र स्वप्न चौढा-लिया और करीब २ स्तवन पद गीत आदि प्राप्त हैं जो हमारे सम्पादित बम्बई चिन्ता मणि पार्श्वनाथादि स्तवन संग्रह में प्रकाशित हो चुके हैं।

आपके गुरु जयसार रचित श्रणिक चौ सवत् १८३६ की लिखित प्राप्त है।

साधुरत्न—

इनके रचित समवसरण रास सं १८८ और देवराज वच्छराज चौ (अपूर्ण पत्र मात्र प्राप्त) उपलब्ध है।

उदयरत्न—

ये कीर्तिरत्न सूरि शाखा के यति विद्याहेम के शिष्य थे। इनके रचित जिनपालित जिन रक्षित रास सं० १८६३ बीकानेर, भीमचर स्तवन सं० १८२७ जिनकुशल सूरि निशाणी सं० १८७४ और संबक चौढालिया सं० १८८३ देशनोक की प्रति उपलब्ध है।

गुमानचन्द—

ये कुशालचन्द के शिष्य थे। इनके रचित केशी गौतम चौढालिया सं० १८९७ जयपुर की प्रति भाचार्य शाखा भण्डार में है।

जयरंग—

ये समरथचन्द के शिष्य थे। सं० १८७२ लखनऊ में इन्होंने भृगु प्रोहित चौ० की २१ ढालों में रचना की जिसकी प्रति हमारे संग्रह में है।

लालकुमार—

ये सागरचन्द्र सूरि शाखा के दर्शनलाभ के शिष्य थे। हिन्दी में इन्होंने रत्नपरीक्षा की रचना सं० १८४५ राजगंज में की। इनकी राजस्थानी रचना श्रीपाल चौ० प्रकाशित हो चुकी है।

गिरधरलाल—

ये क्षेम शाखा के थे। सं० १८३२ जोधपुर में इन्होंने पदमसी रासो बनाया जिसकी प्रति बृहद् ज्ञान भण्डार में है।

जगन्नाथ—

ये कीर्तिरत्न सूरि शाखा के दयासिन्धुर के शिष्य थे। सं० १८२२ साचौर में चम्पकमाला चौ० की ४७ ढालों में रचना की जिसकी ७ पत्रों की प्रति सेवर पुस्तकालय सुजानगढ़ में उपलब्ध है।

क्षमाप्रमोद—

ये रत्नसमुद्र के शिष्य थे। सं० १८२६ जैसलमेर में धर्मदत्तधन्न चौप चौ० बनाई, जिसकी स्वयं लिखित प्रति यति वृद्धिचन्द्र संग्रह जैसलमेर में थी। इसके अतिरिक्त निर्मोद विचार गीत भाषा ४८ सत्यपुर महावीर स्तवन आदि उपलब्ध हैं। इनके शिष्य धर्मोपचन्द ने मोदी पार्श्वनाथ बृहद् स्तवन सं० १८२५ में बनाया।

जयचन्द—

ये कपूरचन्द के शिष्य थे। सं० १८७८ मामोड़ाह में प्रतिमा रास ९ ढालों में बनाया। सम्मेदी मुखपत्ता चर्चा इनकी एक रचना और भी मिलती है।

हेमविलास—

ये ज्ञानकीर्ति के शिष्य थे। सं० १८७१ कुचेरा में रचित इनका ढूंढक रास हमारे संग्रह में है।

दयामेरु—

१८वीं शताब्दी के कवि अमरविजय के प्रशिष्य थे। सं० १८८ मालमसर में इन्होंने ब्रह्मसेन चौ० की रचना की जिसकी २ प्रतियां अभयजैन भंडार बीकानेर में है।

अमरचन्द्र—

ये हर्षचन्द्र के शिष्य थे। इन्होंने श्री अमर चौढालिया सं० १८९४ रामपुर में बनाया। इनके अतिरिक्त और भी कई कवि हो गये हैं। ये सभी कवि खरतरगच्छ की भट्टारक शाखा के अनुयायी थे। आचार्य शाखा के जिनकीर्ति सूरि रचित चौबीसी सं० १८ ८ बीकानेर की प्राप्त है। इन्होंने पार्श्वनाथ वृद्धस्तवन भी बनाया। इसी शाखा के भीमराज रचित धन जय उद्धार रास सं० १८९६ का रचित प्राप्त है।

गद्य लेखकों में आलमचन्द्र रत्नधीर चैनसुख क्षमामाणिक्य विद्याहेम देवधीर, शिष्यचन्द्र चरित्रसागर, कस्तूरचन्द आदि की जैन एवं वैद्यक ग्रन्थों की भाषा टीकायें उपलब्ध हैं।

१९वीं सदी के खरतरगच्छीय कवियों एवं विद्वानों की रचनाओं की कुछ झांकी ऊपर कराई गई है। अब तपागच्छ, पार्श्वचन्द्रगच्छ, लोकागच्छ, स्थानकवासी तेरापंथी सम्प्रदाय के राजस्थानी कवियों का परिचय दिया जा रहा है—

तपागच्छ—सुज्ञानसागर १ रामरास ज्ञानमञ्जरी (९ खण्ड) सं० १८२२, (श्यामसागर शिष्य) २ चौबीसी ३ अनागत चौबीसी स्तवन उदयपुर में रचित फतेन्द्रसागर १ अष्टप्रकारी पूजा रास सं० १८५ बगड़ी में प्रारम्भ।

जिनेन्द्रसागर—

ये प्रधानसागर के शिष्य थे। पोहकाड़ में इन्होंने २४ जिनचरित्र नामक बड़ा काव्य सं० १८७१ में बनाया। इससे पूर्व सं० १८५१ राधनपुर में चौबीसी की रचना की। इनका मानतुंगी स्तवन भी मिलता है।

पार्श्वचन्द्रगच्छ—देवीचन्द रायसिंह चौ० सं० १८२७ मकसूदा।

लोंकागच्छीय कवि—

१६वीं शताब्दी में लोंकाशाह के नाम पर लोंकागच्छ प्रवर्तित हुआ और उसकी नागोरी और गुजराती २ प्रधान शाखायें हैं। इन दोनों शाखाओं का कुछ विवरण नीचे दिया जा रहा है।

रूपचन्द—

गुजराती लोंकागच्छ के कृष्ण मुनि के शिष्य थे। सं० १८५६ से सं० १८८ तक की इनकी कुछ रचनायें बंगदेशीय मुर्शिदाबाद के अजीमगंज में रचित प्राप्त हैं पर उनकी भाषा हिन्दी प्रभावित राजस्थानी है। राजस्थान प्रान्त के कवि प्रतीत होते हैं। उनकी रचनायें निम्नोक्त हैं—

१ श्रीपाल चौ० ४१ ढाल और १२ श्लोक परिमित। इस काव्य की रचना सं० १ ५६ में अजीमगंज में हुई २ धर्मपरीक्षा रास सं० १८६ अजीमगंज ३

पचेन्द्री चौ सं १८७३ मुर्शिदाबाद ४ फिरसीराग्ये ? श्री रूपसेन चौ सं १८७८ मकीमगज ३४ ग्राम १ सम्यक् रास स १८८० मकीमगंज गाथा २१६ ग्राम ११ और सम्यक्त्व कौमुदी चौ की अपूर्ण प्रति प्राप्त है। अठाई लब्धि पूजा सं १८८८ मुर्शिदाबाद में भी रचित है।

प्रेम मुनि—

ये नरसिंह के शिष्य थे। सं १८५८ जोधपुर कटालिया में इनकी रचित हरिश्चन्द्र चौ प्राप्त है।

फकीरचन्द—

सं १८१६ में रचित बूढ़ा रास नामक इनकी रचना प्रकाशित हो चुकी है। इसमें वृद्ध विवाह के दुष्परिणाम का बड़ा ही रोचक वर्णन है। समाजसुधार सबधी जैन मुनि की यह रचना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवि ने अपने गच्छ एवं गुरु आदि का परिचय इस रास की प्रशस्ति में नहीं दिया है पर यह लोंकागच्छ का होना विशेष सम्भव है।

लोंकागच्छ की उत्तराधी शाखा में भी कई कवि पजाब में हो गये हैं। इनमें स मेघ कवि की मेघविनोद आदि कई रचनायें हिन्दी में प्राप्त हैं। पंजाब के भण्डारा में खोज करने पर इधर के कई कवियों की राजस्थानी रचनाये भी मिलमी। इसी तरह नागोरी लोंक गच्छ के भण्डार मुझानगढ़ आदि स्थानों में पड़े हैं जिनकी अभी खोज नहीं हो पाई। उनमें इस शाखा के कई कवियो की रचनाये मिलमी। लोंकागच्छ के अनुयायी कुछ ओसवाल श्रावक व्यापारादि के लिये बगाल में पहुँचे विशेषतः मकीमगज में इनकी सख्या अधिक होने से वहाँ इस गच्छ के मुनियो ने चौमासे किये और रचनायें बनाईं।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के कवि—

मूर्ति-पूजा के निषेध या खण्डन मे लोंकाशाह ने १६वी शताब्दी में जो बात उठाई थी वह कुछ दिनो के बाद ही धीमी पड़ती गई और अन्तत उन्ही के नाम से प्रचलित लोंकागच्छ के अनुयायियों ने मूर्तिपूजा का विरोध करना छोड़ दिया और आगे चल कर मूर्तिपूजा को तो स्वीकार भी कर लिया। लोंकागच्छ कई शाखाओं में विभक्त हो गया और आवश्यक अनुशासन की कमी आदि के कारण इस गच्छ के मुनियों में आचार-शैथिल्य भी आ गया इसलिये १८वी शताब्दी म एक नया मत या पथ उदित हुआ जो प्रथमत ढूढिया फिर साधुमार्गी बाईसटोला स्थानकवासी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। १६वी शताब्दी में इस सम्प्रदाय म कई अच्छे कवि हो गये है जिनकी बहुत सी रचनाये प्राप्त और प्रसिद्ध हैं। इन कवियो का अधिकतर विहार राजस्थान म ही होता रहा है और इसी स्थानकवासी सम्प्रदाय में स तेरह पंथी सम्प्रदाय का भी इसी शताब्दी में प्रादुर्भाव हुआ। अब यहाँ कुछ कवियो और उनकी कुछ रचनाओं का सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है—

जयमल्ल—

पाबिया ग्राम के समदड़िया मोहता मोहणदास की पत्नी मेहमादे के आप पुत्र थे। विद्याध्ययन करा के विवाह कर दिया गया। एक बार व्यापार के निमित्त मेड़ता आने पर मुनि

भूधर से मिलना हुआ और उनके उपदेश से प्रभावित होकर सं १७८८ मि म २ को २२ वर्ष की अवस्था में आपने मेड़ता में दीक्षा ग्रहण की। गुरु श्री के साथ बीकानेर आ कर आपने सिद्धांतो का अध्ययन किया। १६ वर्ष तक एकान्तर उपवास तप किया। ११ वर्ष तक गुरु के साथ विचरे। आपका विहार जोधपुर, जयपुर, दिल्ली आगरा चूरू फतेपुर, बीकानेर, किशनगढ़ मारवाड़ और मेवाड़ प्रान्तो मे हुआ। स १८४ में आप नागौर आये। सं १८५२ मे आपके शरीर में व्याधि उत्पन्न हुई और सं १८५३ में नागौर में संथारा कर के स्वर्ग सिधार गये। अपने गुरु के स्वर्गवास के बाद ५ वर्ष तक लेट कर नहीं सोये। सं १८ २ से लेकर सं १८२७ तक की संवतोल्लेख वाली बहुत सी रचनाये मिलती है और रचना-काल के निर्देश बिना की भी काफी रचनाये है। उनमें से कुछ बड़ी रचनाओं का ही यहाँ उल्लेख किया जाता है जैसे स्तुति सज्झाय उपदेशी पचुपचीसी बत्तीसी छत्तीसी और चरित काव्य और सवासतक ७१ रचनायें सन्मति ज्ञानपीठ आगरा से प्रकाशित 'जयवाणी' नामक ग्रंथ में प्रकाशित हो चुकी है। सुबाहुकुमार रास स १८ २ बिलाड़ा ८ ढाल २ नेमिनाथ चौ ढाल ३३ पाली १ ४ ३ धर्ममहिमा सं १८ ५, ४ साधु वन्दना स १८ ७ नागोर, ५ परदेसी चौ सं १ ७ ढाल ३१ ६ सवक ऋषि चौ स १८११ लाडनू ढाल ७ वीर वीहरमान स्तवन स १८२४ मेड़ता ८ देवदत्ता चौ १८२५ नागोर ९ तेतली पुत्र चौ सं १८२१ नागोर, १ सम्यास पुत्र चौ १८२१ नागोर, ११ अर्जुन माली चौ १८२७ १२ मृषा लोढ़ा अधिकार सं १८१२, १३ जयवन्ति सुकमाल चौढालिया स १८२५ नागोर १४ नेमिस्तवन स १८४४ तथा बिना संवतोल्लेख की भृगु पुरोहित छढालिया देवकी चोपई उदयराज चौ मेघकुमार, कार्तिक सेठ सती-द्रोपदी महाशतक श्रावक अम्बड़ चौढालिया दरिद्र लक्ष्मी सम्वाद मूर्ख पच्चीसी जीवपच्चीसी पर्यटन सुप्तविधिका उपदेश तीसी उपदेश बत्तीसी वैराग्य बत्तीसी ज्ञान प्रतिबोध चौवीसी पुण्य छत्तीसी आत्मिक छत्तीसी सत्य छत्तीसी दीक्षा बयालिसी चार मंगल सिद्धान्त बावनी (विशेष जानने के लिए देखें 'जयवाणी')।

रायचन्द्र—

ये जयमलजी के शिष्य और पट्टधर थे। अपने गुरु की तरह इन्होंने भी बहुत सी रचनाये की है। स १८१७ से लेकर १८५६ तक की इनकी पचासों रचनाये मिलती है।

१ मृगावती चौढालिया सं १८१७ २ सुभद्रा चौ स० १८२ सोजत ३ बाइस परिषह चौ स १८२६ तिमरी ४ गौतम स्वामी सज्झाय सं १ २७ जोधपुर ५ श्रीमन्धर स्तवन स १ ३१ बीकानेर, ६ आठ कर्म चौ सं १८३१ से पूर्व रचित ७ सुमाधिपचीसी स १ ३३ मेड़ता ८ मद रकी सज्झाय सं १८३३ मेड़ता ९ गौतम स्वामी रास स १८३४ बीकानेर, १ कलावती चौ सं १८३७ मेड़ता ११ मेतारज चौ सं १ ४२ नागोर, १२ मृगलेखा चौ सं १८३८ जोधपुर, १३ ऋषभचरित सं १८४ पीपाड़ १४ पुष्पमाला चौ सं १८४७ जोधपुर, १५ नर्मदा सती चौ स १ ४१ जोधपुर, १६ सुगुरु सम्प्रदाय सं १ ४५ जोधपुर, १७ आषाढ़ मुनि पचढालिया सं १८३६ नागोर, १८ सम्यक्त्व चौढालिया सं १८३३

पीपाड़ १९ महावीर चौढालिया सं १८३६ नागोर ६ जोबन बत्तीसी सं १८४० जोधपुर, २१ ज्ञानपचीसी स १८३२ जोधपुर, २२ सोमपचीसी स १८१४ बीकानेर, २३ सीमन्धरस्वामी विनती १८१४ बुंसी २४ मानतापाड़ा सज्झाय सं १८३८ नागोर, २२ समकित सज्झाय सं १८४ तिंवरी २६ शिवपुर नगर सज्झाय सं १८२ फलोदी २७ बीकानेर स्तवन स १८४७ मेड़ता २८ उस रावण हाल सं १८३३ मेड़ता २९ देवकी ढाल सं १८३८ नागोर, ३ मदन मणिहार चौ सं १८२१ नागोर, ३१ प्रवचनमाला ढाल स १८२१ जोधपुर, ३२ धन्ना चौढालिया सं १८२ तिंवरी ३३ हरिचंदी चौ सं १८२८ बीकानेर, ३४ ज्ञान गुणमाला स १८३१ मेड़ता ३५ धना ७ ढालिया सं १८३६ विलपुर, ३६ राजमती रहनेमि चौढालिया स १८३४ ३७ मल्लिनाथ चरित्र सं १८२४ सोजत ३८ आरामशोभा सं १८३३ ३९ तपोधन प्रणमार ढाल सं १८४२ नागोर, ४ गणधरसज्झाय तिंवरी ४१ गुणपचीसी मेड़ता ४२ कृपणपचीसी जोधपुर, ४३ मिथ्यामत-सज्झाय ४४ कुगुरुसज्झाय ४५ साधुसज्झाय ४६ अजितस्तवन जालोर ७ चतुर प्राणी सज्झाय ढाल ४ ४८ पुण्यफल की ढाल। सीखामणबीसी १८३६ नागोर पुण्य पचीसी आदि।

ग्यानकरण—

यह उपरोक्त रायचन्द्र के शिष्य एवं पट्टधर थे। इनके रचित धन्ना सतढालिया सं १८३६ नागोर की प्रति जैन रत्न पुस्तकालय जोधपुर में है। जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृष्ठ ३३३ में रायचन्द्र शिष्य ग्यानकरण रचित नेमि राजुल चुनड़ी ढाल स १८४१ का उल्लेख है।

सबलदास—

ये उपरोक्त ग्यानकरण के शिष्य और पट्टधर थे। पोकरण के मुणियाँ आणदराम की पत्नी सुन्दर बाई की कुक्षि से स १८२१ के भादवा में जन्म हुआ। अपनी भूआजी से मिलने जोधपुर जाने पर ग्यानकरणजी से सम्पर्क हुआ और १२ वर्ष की आयु में ही आपने उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। स १८७२ में ग्यानकरणजी के दिवगत होने पर जोधपुर में आपको आचार्य पद मिला। स १९ २ के वैसाख सुदि ६ को जोधपुर में आपका स्वर्गवास हुआ। इनके रचित शीलसज्झाय स १८ ७ नागोर जिनवाणी पत्रिका वर्ष १९ अक ११ में प्रकाशित हुई है। जैन रत्न पुस्तकालय जोधपुर में इनके रचित धन्ना चौ ढाल ६२ स १ ६ नागोर और बल्कलचीरी चौ स १ ६ बीलाड़ पुर की प्रतियाँ है और बीकानेर के पूनमचन्द्र पुस्तकालय में उनकी जिनदासमुनकी ढाल (स १८६२) पुरानी की प्रति प्राप्त है।

कुशलचन्द—

ये उपरोक्त ऋषि रायचन्द्र के शिष्यों में थे। स १८७१ नागोर में इन्होंने मन्दसार चौपई की रचना की।

ऋषि जयमाल—

इन्होंने सं १८१८ जोधपुर में जम्बुकुमार चौ बनाई ।

गुणचन्द—

ये सूरजमल के शिष्य थे । सं १८२ बीकानेर में चन्द्रगुप्त चौढालिया बनाया ।

विनयचन्द—

आप ऋषि मनोपचन्द के शिष्य थे । सं १८७ से १८८५ तक की आपकी रचनायें करीब पन्द्रह हजार श्लोक परिमित मिलती हैं । उनमें से महिपाल चौ सबसे बड़ी है ।

१ मानवती मानतुंग रास स १८७ जयपुर २ मयणरेहा छढालियो सं १८७ जयपुर ३ सुभद्रा पंचढालियो सं १८७ ४ महिपाल चौ स १८८७ बहादरपुर (अलवर) (ढाल १४१ पत्र १४१ की प्रति तेरापंथी सभा में है) ५ मत्य राय वैरोचन चौ स १८७१ जयपुर ६ पावच्चा चौढालिया सं १८८५, ७ मंडुक चौ स १८८५, शाहजहानाबाद ८ चन्दनबाला चौढालिया स १८८२ ९ मयणा चौ ११ ढाल १ राहिणी चौढालिया शाहजहानाबाद ११ जयती चौढालिया १२ दयानन्द चौढालिया बीकानेर, १३ होलिका चौढालिया १४ नन्दीषेण चौढालिया १५ पद्मिनी पंचढालिया १६ दोहा री ढाल १७ पुष्पवती ७ ढाल (शीलोपदेशमाला के आधार से) १८ आषाढभूति चौ १९ सम्यक्त्वकौमुदी चौ सं १८८५, आनन्दी ढाल ५२ ।

सांवत ऋषि—

ये विनयचन्द के शिष्य थे । इनकी निम्नलिखित चार रचनायें मिलती हैं ।

१ गुणमाला चौ स १८८३, दिल्ली २ सती विजय सं १९ ७ लस्कर, ३ शील वती (मदनसेन चित्रसेन चौढालिया स १८७ ४ मदनसेन चौढालिया सं १८१८ बीकानेर ।

शिवलाल—

ये विनयचन्द के गुरुभाई पन्नालालजी के शिष्य थे । इनके रचित नामदी चौढालिया सं १८७७ और सीता वनवास चौ सं १८८२ बीकानेर, प्राप्त है ।

रत्नचन्द्र—

ये नागौर निवासी गंगाराम छाजेडी के यहाँ कुड गाँव से गोद आये थे । पूज्य गुमान चन्दजी के उपदेश से वैराग्य पाकर स १ ४८ मण्डोर में दीक्षा ग्रहण की । सं १ १४ में आपका जन्म हुआ था । स १८८२ मे आचार्य पद मिला और स ११ २ में जेठ सुदि १४ को जोधपुर में स्वर्गवास हुआ । स १८५२ मे १ ९१ तक की निम्नोक्त रचनायें प्राप्त हैं—

१ चन्दन बाला चरित्र ढाल १४ स १८५२ पाली (मारवाड़) २ चन्दन मलयागिरी चरित्र ढाल १६ स १८५४ पाली ३ निर्मोही ढाल ५ स १८७४ पाली ४ गजसुकुमाल चरित्र ढाल ७ स १८७५, नागौर ५ आषाढ भूति ढाल ९ सं १८८१ फलौदी ६ दामनक स १८९१ ढाल रणसी गाँव ७ वैदरता ढाल ८, सं १८९१ रणसी गाँव ८ बकचूल ढाल ६ सं १ ९१ रणसी गाँव ९ श्रीमती ढाल ६ की चौ १ स्तवन उपदेशी (छोटी व बड़ी फुटकर कविता) ।

जीवमल—

इनका जन्म सं १८ में मंवास गांव में हुआ था। मलमह गोत्रीय रामचन्द्र इनके पिता और गुमानबाई माता थीं। मुनि अमीचन्द के पास सं १८१ मे मुनि-दीक्षा ग्रहण की। सं १८८ मेड़ता में आपका स्वर्गवास हुआ। राजस्थानी भाषा के ये अच्छे कवि थे। रामायण और महाभारत जैसे बड़े राजस्थानी काव्य भी इन्होंने बनाये। इनकी रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१ रामायण रचना काल सं १८६२ जोधपुर २ महाभारत (ढाल सागर) ढाल १६१ सं १८६६ नागौर ३ श्रीपालचरित्र सं १८६२ पीपाड़ ४ जम्बूचरित्र सं १८६२ जोधपुर ५ ऋषिदत्ता ढाल ५७ सं १८६४ देवगढ़ (मेवाड़) ६ धनावा सेठ की ढाल पैतारण ७ रहनेमी राजेमती ढाल सं १८६२ पीपाड़ ८ जयवन्ती की ढाल स १८२१ बगड़ी ९ चौदह श्रोतामों की ढाल सं १८५२, पीपाड़ १ वामली तापस चरित्र पैतारण ११ जिनरिख जिनपाल १२ सेठ सुदर्शन १३ नन्दन मणिआर, १४ मिथ पथि चर्चा १५ समाधान की चर्चा १६ समतकुमार चौढालिया पीपाड़ १७ समधाप चौ स १८६२ चन्द्रावल स्तुति पद्यादि (मुनि शार्दूलसिंह के उपाश्रय में)।

इनके अतिरिक्त कई और भी कवियों की रचनायें मिलती हैं पर यहाँ उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं। राजस्थान के अतिरिक्त कुछ स्थानकवासी मुनि पंजाब में भी विचरते रहे हैं। उनकी रचनाओं की भाषा में राजस्थानी और हिन्दी का मिश्रण-सा है। इनमें से एक कवि नन्दराम की रचनाओं का ही यहाँ उल्लेख किया जा रहा है। उनकी सर्व प्रथम रचना रुक्मणि मंगल चौ सं १८७६ होशियारपुर में रची गई। इसके बाद प्रद्युम्न चौ स १८११ फरीदकोट तदनन्तर भीमकुमार चौ सं ११ १ होशियारपुर भक्तिप्रकाश चौ स ११ ३ कपूरथला ज्ञानप्रकाश सं ११ ६ कपूरथला और बावनी प्राप्त हुई हैं।

तेरहपंथी सम्प्रदायप्रवर्तक भीखणजी—

इनका जन्म मारवाड़ के कंटालिया ग्राम में स १७८३ में हुआ था। संकलेचा बलूजी इनके पिता और दीपाबाई इनकी माता थी। स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य रघुनाथजी के पास २१ वर्ष की उम्र में सं १ ८ म दीक्षा ली। ८ वर्ष तक उनके साथ रहे, फिर कुछ मत भेद को लेकर १८१७ में इन्होंने अपना स्वतन्त्र मत स्थापित किया जो तेरहपंथ के नाम से प्रसिद्ध है। सं १ ६ में इनका स्वर्गवास हुआ। राजस्थानी भाषा में इन्होंने बहुत सी रचनायें की हैं जिनमें से १४ और २१ कुल ३५ पद्यबद्ध रचनायें भि ुग्रन्थ रत्ना कर खण्ड १–२ में प्रकाशित हो चुकी है। तीसरे खण्ड में गद्य रचनाओं का संग्रह प्रकाशित होने वाला है। प्रथम खण्ड ६१ और द्वितीय खण्ड ७१२ पृष्ठों का डबल क्राउन अठ-पेजी बड़े साइज में है। तेरहपंथी द्विशताब्दी समारोह के अवसर पर जैन श्वेताम्बर तेरह पंथी महा सभा कलकत्ते से ये ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। प्रथम खण्ड में सैद्धान्तिक रचनायें हैं और द्वितीय खण्ड में चरित्र काव्य हैं। प्रकाशित समस्त रचनाओं का संक्षिप्त विवरण भी दोनों खण्डों के प्रारम्भ में दे दिया गया है।

भीखणजी के ४ राजस्थानी जीवन चरित्र भी रचे गये हैं जो आचार्य चरितावली प्रथम खण्ड में प्रकाशित होने वाले हैं। इस ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में भीखणजी के शिष्य एवं पट्टधर भारीमालजी का बखाण तेरह ढालों में मुनि हेमराजजी रचित प्रकाशित हुआ है, जिसकी रचना सं० १८७९ पीपाड़ शहर में हुई थी। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण राजस्थानी काव्य है। इसके साथ आचार्य रायचन्दजी जीतमलजी और मघराजजी के बखाण भी छपे हैं पर वे २० वीं शताब्दी के हैं। २० वीं शताब्दी में इस सम्प्रदाय के आचार्य जीतमलजी जो जयाचार्य के नाम से विख्यात हैं राजस्थानी भाषा के बहुत बड़े कवि हो गये हैं। उन्होंने भगवती सूत्र को ५०१ ढालों में राजस्थानी पद्य-बद्ध किया जिसका परिमाण ६० हजार श्लोकों का बताया जाता है। राजस्थानी भाषा में इतने विशाल परिमाण का यह एक ही ग्रंथ है। जीतमल की समस्त रचनायें करीब ३ लाख श्लोक की हैं। तेरहपंथी सम्प्रदाय में और भी राजस्थानी बहुत से कवि हुए हैं और आज भी विद्यमान हैं।

उपसंहार—

राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल बहुत ही उल्लेखनीय रहा है जैन कवियों का योग दान भी बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। अधिकतर उन्होंने चरित्र काव्यों के निर्माण में योग दिया क्योंकि कथायें धर्म प्रचार का बहुत ही महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

जैन कवियों का एक बहुत ही उल्लेखनीय काम यह रहा कि उन्होंने लोक-संगीत को भी अपने चरित्र-काव्यों में पूर्ण रूप से अपनाया। १६ वीं शताब्दी से लोक गीतों की देशियों को रास या चौपई की ढालों में विशेष रूप से अपनाया जाने लगा। एक-एक रास में १०-२०-५० और शताधिक ढालें भी होती हैं। प्रत्येक ढाल के पहले कुछ दोहे लिखे जाते हैं और ढाल भिन्न भिन्न लोक-गीतों की देशियों की चाल या लय में बनाई गई हैं। जहाँ तक सम्भव हुआ है प्रत्येक ढाल नये-नये तर्ज पर गाई जाने योग्य रखी गई है। इसके द्वारा प्राचीन लोक-गीतों की प्रारम्भिक पंक्तियाँ व कहीं-कहीं एक दो गाथायें भी उन राग गीत स्तवन सज्झाय आदि के प्रारम्भ में उद्धृत पाई जाती हैं। उनके द्वारा बहुत से प्रचलित या लुप्त लोक गीतों का पता चलता है। साथ ही उन लोक गीतों की प्राचीनता और लोकप्रियता का भी अनुमान लगाया जा सकता है। जैन कवियों की रचनाओं के अन्त में कवियों ने अपने नाम के साथ-साथ अपने गच्छ और गुरु-परम्परा के नाम और रचना कब एवं कहाँ तथा किसके लिए की गई इसका भी उल्लेख कर दिया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है। कहीं-कहीं रचना स्थान के साथ वहाँ के शासक का भी नाम दे दिया है। बहुत सी ऐतिहासिक रचनायें भी जैन कवियों ने बनाई हैं। भक्ति-काव्य भी प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। इस प्रकार जैन साहित्य भी और भी अधिक विशाल है।

मध्यकालीन राजस्थानी दोहा-साहित्य

डॉ॰ ओमानन्द स० सारस्वत

राजस्थानी दोहों के इतिहास का काल-विभाजन करते समय मध्यकाल का सं १५ से सं १९५ तक निर्धारित किया गया है।[1] इस मध्यकाल के तीन स्थूल एवं स्पष्ट विभाजन निम्न लिखित किये जा सकते हैं—

एक विकास एवं विकसित काल सं १५० से सं १६५ तक।
दो पूर्व मध्यकाल सं १६५ से सं १८ तक।
तीन उत्तर मध्यकाल सं १८ से सं १९५ तक।

इन तीनों कालों में दोहाकारों का संक्षिप्त वृत्तादि यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

विकास एवं विकसित काल

सं १५ से सं १६५ तक के डेढ़ सौ वर्षों का समय ही वस्तुतः दोहा-साहित्य का प्रामाणिक क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने का प्रारम्भ काल है। इस काल में अनेक नई परम्पराएँ तथा विविध विषयों के समृद्ध दोहा-साहित्य की उपलब्धि होती है।

राजनीतिक दृष्टि से राजस्थान को इस विकास काल में अनेकों युद्धों में जूझना पड़ा है। मुगल बादशाहत का हौवा या दोस्ती दोनों ही इस काल की साहित्यिक परिस्थिति पर कुछ अर्थों तक प्रभाव डाले है। चारणी-साहित्य की अधिकता होते हुए भी अन्य लोगों द्वारा रचित साहित्य भी इस काल में प्रबल है। हमीर, प्रताप पाबू जोगा बाघजी आदि अनेक व्यक्ति चारण शैली के दोहा के केन्द्र हैं। चारणों ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों में दोहों का सबल और प्रचुर प्रयोग किया है। राष्ट्रीयता (जिसे कुछ लोग प्रादेशिकता कहना चाहेंगे !) से ओतप्रोत दोहों का प्रारम्भ भी इसी युग से हुआ क्योंकि कवियों ने स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का सच्चा मूल्य महाराणा प्रताप की दृढ़ता से सीख लिया था। हिन्दी साहित्य की अन्य बोलियों या उपभाषाओं में भक्ति-काव्य की एक स्वर्णिम धारा समानान्तर बह रही थी अतः राजस्थानी दोहों में भी भक्ति को लेकर अनेक मुक्तक एवं

---

[1] परम्परा (जोधपुर) 'राजस्थानी साहित्य का आदिकाल' अंक में प्रकाशित मेरा लेख।

प्रबन्ध रचनाओं का सृजन हुमा। इन दोहों मे पौराणिक एवं धार्मिक कथाओं से प्रेरणा प्राप्त की गई। दूसरी ओर संत-दोहाकारों ने निर्गुण भक्ति का भी प्रचार प्रसार किया। उनके दोहे मस्खड़ टीके एवं व्यग्य के साथ-साथ उपदेश नीति और सदाचार की भावनाओं को लिये हुए हैं।

लोक साहित्य में ढोलामारू के अनुकरण पर इस युग में जेठवा नागजी बीमा तथा अन्य प्रेम-कथाओं को लेकर मुक्त शृंगार का बड़ा रसमय वर्णन हुमा है। यौवन और प्रेम को लेकर इस काल में अनेक दोहे प्रज्ञातनाम दोहाकारों द्वारा रचे गये। लोक साहित्य के लम्बे-लम्बे प्रबन्धों—यथा रासो चौपाई ब्यावलो माहेरी आदि में भी दोहों का प्रचुर प्रयोग हुमा।

जैन दोहाकारों का योगदान भी इस काल को अभूतपूर्व है। फागु, बारहमासा नीति शिक्षा टीका शकुन आदि विषयों को लेकर हजारों दोहों का निर्माण हुमा। इन जैन दोहाकारों ने अपने दोहों में भाषा का सरस और लोक-प्रचलित रूप अपना कर आने वाले दोहाकारों के लिए एक नई शैली को जन्म दिया जो डिंगल या चारण-शैली से भिन्न कही जा सकती है।

इस काल में गद्य की भी अनेक रचनाएँ प्राप्त होती है और उनमें भी दोहों के प्रयोगों को देखा जा सकता है। कहना न होगा कि सभी प्रकार के साहित्यिक रूपों में कवियों ने दोहों को कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में अपना ही लिया है। साहित्यिक रचनाओं को देखने पर स्पष्ट कहा जा सकता है कि इस काल मे राजस्थानी दोहे की लोकप्रियता पूर्ववर्ती साहित्य की अपेक्षा बढी ही है।

इस काल में दोहों द्वारा सवादों के सफल प्रयोग हीरकलश नामक जैन कवि ने प्रारम्भ कर दिये थे। आदिकालीन व्यक्ति-सबोधन की प्रवृत्ति इस काल में अनेक दोहाकारों द्वारा अपनाई गई है। जैन कवि मालदेव समयसुन्दर आदि दोहाकारों ने बावनी छत्तीसी इत्यादि सख्यावाचक दोहा ग्रन्थों का निर्माण कर एक नई प्रवृत्ति का राजस्थानी दोहों में प्रारम्भ किया।

इस प्रकार इस काल में अनेकानेक प्रवृत्तियों का विकास स्पष्ट देखा जा सकता है। इस काल के दोहाकारो का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

पद्मनाभ

पद्मनाभ की एकमात्र कृति 'कान्हड़दे प्रबन्ध' का परिचय साहित्य संसार को है। डॉ दसरथ शर्मा ने इसको बीसल नगरा नागर कवि माना है। इसका रचनाकाल स

---

[1] शोध-पत्रिका ३।२, पृष्ठ ११ पर डॉ शर्मा का लेख प्रा रा गीत भाग ६ पृ १ १।

१२१२ है क्योंकि यही रचनाकाल कवि ने अपने काव्य में स्पष्ट रूप से दिया है। प्रबन्ध में दोहा छंद भी है, यथा—

> *जिणि यमुनाजलि पाहिउं जिणि नाथीउ भुयंग ।*
> वासुदेव सूरि बीनवूं जिम पामूं मन रंग ॥

महविवर्द्धन सूरि

इनका रचनाकाल सं. १२१२ है। धांधलमन्त्र-नामक जयकीर्ति सूरि के ये शिष्य थे। 'नव चर्चरी रास' नामक रचना प्रसिद्ध है। एक दोहा द्रष्टव्य है—

> सयल सघ सुह संति कर, पमणिय सीति जिणेसु ।
> दान सील तप भावना पुण्य प्रभाव भणेसु ॥

दामो[1]

इनकी रचित 'लखमसेन पद्मावती कथा' मिलती है, जिसका लिपिकाल सं. १६६६ है। कवि के कथनानुसार इस रचना का प्रारम्भ ज्येष्ठ वदि बुधवार सं. १५१६ ठहरता है। कवि का जीवन वृत्त प्राप्त नहीं है किन्तु अनुमानतः ये गुजराती या राजस्थानी रहे होंगे। कथा के मध्य में अनेक दोहों का प्रयोग है। यथा—

> सरस सकोमल कुच कठिण गय गति लंक विसाल ।
> हंसा चंचल कनक थंम नड़ी भुयंगा भाल ॥

कल्लोल[2]

कल्लोल नामक एक कवि का अनुमान 'ढोला मारू रा दूहा' के रचनाकार के रूप में लगाया जाता है जो वस्तुतः उचित नहीं। सं. १५३ के लगभग कल्लोल ने सम्भव है, इन दोहों का संग्रह किया हो क्योंकि ये दोहे सं. ११ की रचना हम सिद्ध कर चुके हैं। यह भी सम्भव है कि इन दोहों का संग्रह करते हुए इस कवि ने कुछ दोहे अपने भी जोड़ दिये हों।

भावनसी

ओखा मण्डल के भावउसी बारठ द्वारा हम्मो नामक चावड़ा जाति के एक राजपूत (लगभग सं. १५१ के) एवं जूनागढ़ राज के पाटावत सरदार की दातारी से प्रभावित होकर ईमिया व्यक्ति सम्बोधन से युक्त दोहे लिखे बताये जाते हैं। यथा —

राजस्थानी भाषा और साहित्य (डॉ. माहेश्वरी) पृ. २११

[1] दामो रचित 'लखमसेन पद्मावती कथा' (सं. श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी)

रा. भा. सा. (डॉ. माहेश्वरी) पृ. १९७

ढोला मारू रा दूहा भूमिका

सोरठा संग्रह (स्वामी भीकमचन्द) पृ. १७

वाचा साम्यो वाइ सुमां ने सुमे नहीं ।
पामा साव पसाइ, उपकारे तो ईसिया ॥

पार्श्वचन्द्र सूरि[1]

आबू प्रदेश के हमीरपुर गांव में सं. १५३७ चैत्र सुदि ९ को इनका जन्म हुआ था। आप बारहवीं शताब्दी के दार्शनिक विद्वान वादिदेव सूरि की परम्परा में हैं। इनकी चरण-पादुकाएँ बीकानेर में आज भी पूजी जाती हैं। आपका देहान्त सं. १६१२ में हुआ। आप गद्य एवं पद्य लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपकी रचनाएँ सौ के लगभग उल्लिखित हैं जिनमें दूहाशतक तथा अनेकों संख्यासंज्ञक रचनाएँ हैं।

भांडउ व्यास

इनका परिचय अप्राप्त है। 'राव हमीरदेव चौपाई' या 'हमीरायण' कृति के रचयिता के रूप में ये जाने जाते हैं अतः सं. १५३८ के लगभग ही इनका रचनाकाल समझना चाहिये। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

जा जायो ते ते जरौ जाजो कहे मु जाहि ।
रिणथम नूं बड़ो करो छिन देसा गढ माहि ॥

जसनाथ सिद्ध[2]

इनका जन्म सं. १५३९ माना जाता है। ये कतरियासर (बीकानेर) के हमीरजी के पाल्य पुत्र थे। ये आजन्म ब्रह्मचारी रहे। सं. १५६३ में इनका देहान्त हो गया था। इनकी वाणी में अनेक दोहों का प्रयोग है।

मीराबाई

इनका जन्म लगभग सं. १५५५ से १५ ३ तक के बीच माना जाता है। राव दूदाजी की पौत्री अथवा प्रपौत्री माना गया है। इनके देहान्त के विषय में बहुत मतभेद है। ये सुप्रसिद्ध कवयित्री एवं भक्त थी। इनके पदों में अनेक फुटकर दोहे प्राप्त होते हैं।

आसाजी बारहठ या आशानन्द बारहठ[3]

भादरेस गांव (जोधपुर) के निवासी सीधा के पुत्र आसा बारहठ का जन्म सं. १५५१ के लगभग माना जाता है। भक्त ईसरदास इनके भतीजे कहे जाते हैं। ये राव मालदेव के

---

[1] शोधपत्रिका ९।१-२ पृ. ५५ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख
राजस्थानी भाषा और साहित्य (डॉ. माहेश्वरी) पृ. ९५

[2] सिद्ध चरित्र (श्री सूर्यशंकर पारीक) पृ. ११
राजस्थानी भाषा और साहित्य (डॉ. माहेश्वरी) पृ. २९५

[3] पृ. १४, १२५ राजस्थानी भाषा और साहित्य (डॉ. मेनारिया)
पृ. १११ राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (डॉ. शर्मा) पृ. २

कृपापात्र थे। भटियाणी रानी को मनाने का कार्य इन्हीं को सौंपा गया था। कोटड़ा के बाबा के पास इन्होंने अपने शेष जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत किया। इनकी रचित 'बाघजी रा दूहा' बड़ी प्रसिद्ध रचना है। उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है—

> बाघा आव बळेह, घर कोटड़े तूं धणी।
> जाणी फूल भ्रमेह बास न जासी बाघजी ॥

चूंडोजी दधवाड़ियो[1]

कवि माधोदास के पिता चूंडोजी दधवाड़ियो का जन्म सं १५७ १५७५ के मध्य अनुमान किया गया है। ये मेड़ते के राव वीरमदेव के कृपापात्र थे और प्रसिद्ध भक्तों में इनकी गणना की जाती है।

गणपति[2]

'माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध' की रचना सं १५७४ में नरसा के पुत्र कायस्थ कवि गणपति ने की। ये आमोद (आम्रपद) जिला भड़ोच के निवासी थे। इनके प्रबन्ध में लगभग २५ दोहे हैं। एक दोहे की बानगी प्रस्तुत है—

> फरकट फोकट मू फिरइ, फागुण फूंफूकार।
> पूगी मध्य फागमर विधिउ जव ममती नहिं दार ॥

ओहल

इनका रचनाकाल सं १५७५ माना गया है। इनके जीवन के बारे में सामग्री अभाव है। बोलचाल की राजस्थानी मे लिखे गये इनके दोहे जन-जीवन में अति प्रसिद्ध हैं। इनकी 'पंच सहेली रा दूहा' नामक ६५ दोहों की एक अत्यन्त लघु किन्तु मार्मिक कृति है। उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है—

> तन तरवर फळ मालिया दोइ नारंग रस पूर।
> मुन्ध सारी बैसरी छीपणहारा दूर ॥

कुशललाभ

खरतरगच्छीय जैन कवि कुशललाभ का विवरण अविच्छिन्न रूप से प्राप्त नहीं है। इनका जन्म सं १५८ के लगभग अनुमानित है। 'ढोलामारू री चौपई' माधवानल कामकन्दला चौपई' आदि अनेक ग्रंथों का रचनाकार इन्हीं को कहा गया है।

रा भा सा (डॉ माहेश्वरी) पृ ११ मरुभारती (जयपुर) ७१५, पृ २१

रा भा सा (,,) पृ २ ६ माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध

[2] रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ ११२

रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ १४१

सुजाजी[1]

बीठू चारण सूजाजी का समय सं १५९१ और सं १५९८ के बीच माना जाता है। इनका 'राव जैतसी रो छंद' बड़ा प्रसिद्ध ग्रंथ है। ग्रंथ की भाषा डिंगल है और इसमें ४ दोहे हैं।

दुरसाजी आढ़ा

आढ़ा शाख के चारण दुरसाजी का जन्म सं १५९२ में जोधपुर के धूंदला गांव में हुआ था। कहते हैं ये अकबर के दरबारी कवि थे किन्तु मेनारियाजी ने इसे ऐतिहासिक तथ्य नहीं माना है। राजस्थान के सुप्रसिद्ध दोहाग्रंथों में 'विरुद छिहत्तरी' का स्थान है जिसमें महाराणा प्रताप का गुण-वर्णन है। कहीं-कहीं अकबर से प्रताप की बड़ी मार्मिक तुलना है। यथा—

अकबर पथर अनेक के भूपत भेळा किया।
हाथ न आवो हेक पारस राण प्रताप सी ॥

ईसरदास[2]

रोहड़िया शाखा के चारण ईसरदास का जन्म सं १५९५ में जोधपुर के भाद्रेस गांव में हुआ था। पिता का नाम सूजोजी एवं माता का नाम अमरबाई था। ये भक्त और कवि श्रेष्ठ कोटि के थे। हरिरस हाला झाला रा कुण्डळिया आदि आपके वर्णन ग्रंथ हैं। इनकी मृत्यु लगभग सं १६७५ में हुई। इनके 'कुण्डळिया' के दोहे स्वतन्त्र रूप में भी उपयुक्त होते हैं—

केहरि केस भमंग मणि सरणाई सुहडांह।
सती पयोहर कृपण धन पड़सी हाथ मुवांह ॥

हीरकलश[3]

इनका जन्म सं १५९५ के लगभग हुआ और स्वर्गवास लगभग सं १६५७ के माना गया है। बीकानेर और जोधपुर राज्यों में इन्होंने अधिकतर भ्रमण किया है। इनकी लगभग ३ रचनाओं का विवरण दिया जाता है। सवाद दोहों में इनकी कुछ रचनाएँ प्राप्त हैं। ये खरतरगच्छीय सागरचन्द्र सूरि शाखा के कवि थे। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

कहि मोती गुसि कामड़ा मह तह केहो साथ।
हूं साम्हुं कंचण धरिस तह बळ कूक स नाथ ॥

---

1. रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ १ ८
2. वही पृ ११४ वरदा (त्रिमास) १।४ पृ २४ पर श्री मनोहर शर्मा का लेख
3. रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ ११५ रा भा सा (डॉ माहेश्वरी) पृ १२५
4. रा भा सा (डॉ माहेश्वरी) पृ २१४ शोधपत्रिका भाग ७ अंक ४ पृ ६७ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

मइ सुर नरवर भेटिया कीधा जिहां सिंगार।
तइ भेटिया मांचस वसव जिहां कीधा आहार॥

सुरायच टापरिया[1]

इनके कुछ फुटकर दोहे प्राप्त होते हैं जो महाराणा प्रताप की वीरता पर लिखे गये हैं। इनका परिचय अज्ञात है, किन्तु इनको राणा प्रताप के समकालीन माना जाता है। अतः इनका रचनाकाल १६वीं शताब्दी मानना चाहिये। उदाहरण के लिए एक दोहा देखिए—

धांम थ सोवरणांह हैं बाही परवापसी।
जो बादल करसांह परै अपट्टी कमरां॥

भीमा चारणी[2]

प्रथमदास धीची की पत्नी उमादे को संबोधित कर के कहे गये कुछ दोहे भीमा चारणी के प्राप्त होते हैं। *इनका विस्तृत परिचय प्राप्त नहीं है, किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध* या सोलहवीं के पूर्वार्द्ध के मध्य में इनका रचनाकाल माना जा सकता है। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

पगे बजाऊं घूंघरू हाथ बजाऊं तूंब।
उमा अचच बुलावियो ज्यूं सावण की लूंब॥

कवि गुरुड़ व्यास[3]

१६वीं शती के कवि गुरुड़ की 'भोज राजा परकाय प्रवेश की १२वीं कथा' प्राप्त होती है। इनकी रचना में छन्द के रूप 'दोहा' मिला है।

दादू[4]

दादू के जीवन-वृत्त के विषय में मतमतान्तर है। इनका जन्म सं १६ के लगभग हुआ था। ये दादूपंथ के प्रवर्तक तथा सन्तों में सुप्रसिद्ध माने गये हैं। सं १६६ के लगभग इनका देहांत हुआ। इनकी वाणी प्रतिष्ठित है। इनमें अनेक दोहे हैं, जिन्हें साखी कहा गया है। भाषा में सरसता है। यथा—

मुझ ही में मेरा धणी पड़दा खोलि दिखाइ।
आतम सौं परमातमा परगट आणि मिलाइ॥

---

[1] रा भा सा (डॉ माहेश्वरी) पृ ११८ महाराणा यशप्रकाश पृ १२१
[2] रा भा सा (,,) पृ० १६५ मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ (डॉ मिश्रा) पृ २८११
[3] वरदा (त्रिमास) १।३ पृ १४ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख
[4] रा भा सा (डॉ माहेश्वरी) पृ २८१

महाराणा अमरसिंह

महाराणा प्रताप के पुत्र महाराणा अमरसिंह का रचनाकाल सं १६ के लगभग है। मुगलों से युद्ध करते करते असमंजस की स्थिति में इन्होंने रहीम के पास दोहे भेजे थे। एक उदाहरण है—

मोड़ कछाहा राठवड़ गोखां जोख करंत।
कहजो खाना खान नै वनचर हुआ फिरंत॥

बखनाजी

सत कवि बखनाजी का जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत नराणा नामक गाव में सं १६ १६१ के बीच हुआ माना जाता है। इनका देहावसान सं १६८ १६८७ के मध्य कहा जाता है। इनकी भाषा अत्यन्त सरस और ग्राम जनता की भाषा है। इनकी 'बाणी' में अनेक दोहों का प्रयोग हुआ है। यथा—

बखना हरि जळ बरखिया जळ-थळ भरै अनेक।
करम कठोरा माणसां रोम न भीनो एक॥

महाराज रायसिंह

बीकानेर के राजा रायसिंह स्वयं भी कवि थे। दक्षिण प्रवास के समय फोग का पौधा देख कर इनका प्रेम इस दोहे के रूप में व्यक्त हुआ है। यथा—

तूं सैं देसी रूंखड़ा म्हे परदेसी लोग।
म्हाने अकबर तेड़िया तू की आयो फोग॥

पृथ्वीराज राठौड़

'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के कर्त्ता राठौड़ पृथ्वीराज का जन्म सं १६ ६ में हुआ। इनके पिता बीकानेर-नरेश राव कल्याणमल और दादा राव जैतसी थे। हिन्दी-जगत् इस कवि से सुपरिचित है। वीर योद्धा कवि और भक्त सभी दृष्टियों से आपका स्थान राजस्थानी साहित्य में श्रेष्ठ है। इनका स्वर्गवास स १६५७ में हुआ। दसम भागवत राम कृष्ण तथा यमा पर इनके द्वारा अनेक दोहे रचित हैं। एक दोहे का उदाहरण प्रस्तुत है—

काया लागौ काट, सिकलीगर छूटै नहीं।
निरमळ हुवै निराट, भेट्यां सूं भागीरथी॥

राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (डॉ सहल) पृ ३
बखनाजी की वाणी (प्रथम सस्करण)
राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (डॉ सहल) पृ १
राजस्थानी भाषा और साहित्य (डॉ मेनारिया) पृ १२१

है। सं. १७ ३ में इनका स्वर्गवास हुआ। इनके अनेक ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है। बड़े उद्भट विद्वान एवं कवि के रूप में ये विख्यात हैं। 'सतसई' ग्रंथ इनको प्रिय रहे होंगे। सुप्रसिद्ध 'कागद थोड़ो हित घणउ' दोहा इनकी ही रचना बतलाई गई है। यथा—

कागद थोड़ो हित घणउ सो पिण लिख्यो न जाय।
सायर मां पाणी घणउ गागर में न समाय॥

अलूजी[1]

इनका समय सं. १६२ के लगभग है। ये चारण थे। इनका मुक्तक साहित्य ही प्रसिद्ध है। जीवनवृत्त अज्ञात है। इनकी रचना का एक नमूना देखिये—

सोही बाख सुबाण भजै हरि नाम निरन्तर।
सोही माख सुमाख मरै भमपण हुं त बाहर॥

रज्जब[2]

संत कवि रज्जबजी का जन्म लगभग सं. १६२४ में हुआ था। ये जाति के पठान थे। जयपुर में सामानेर के रहने वाले थे। दादू के प्रसिद्ध शिष्यों में इनकी गणना है। इनका देहान्त लगभग सं. १७४६ बताया जाता है। इनकी बाणी प्राप्त होती है, जिसमें नीति उपदेश भक्ति आदि के साहित्यिक सौन्दर्य युक्त दोहे हैं। यथा—

रज्जब कीड़ा नरक का राख्या चंदन मांय।
कीड़ा पूठा नरक नै चन्दन भावै नांय॥

पद्मा सांदू[3]

इनका जन्म सं. १६२५-३ के लगभग अनुमानित है। पिता का नाम छन्ना सांदू एवं बड़े भाई का नाम सांदू माला था। बारहठ शंकर से इनका विवाह हुआ था। उदाहरण—

भारथ भारथी अमरसी जब हुवौ बरियाम।
हठ कर चौड़ै हारणी कमधज आयो काम॥

अर्जुनराव

इनका परिचय अज्ञात है किन्तु 'उर्जुनराज रा दूहा' सं. १७७१ की लिपिकाल की प्रति में प्राप्त होने से अनुमानतः अठारहवीं शताब्दी का मध्य या प्रारम्भ काल इनका रचना काल

रा. भा. सा. (डॉ. मेनारिया) पृ. १२

मरुभारती (पिलानी) व. १ पृ. ७१ पर प. श्रीलाल मिश्र का लेख

राजस्थानी भाषा और साहित्य (डॉ. माहेश्वरी) पृ. २८७

रा. भा. सा. (डॉ. माहेश्वरी) पृ. १४८

महाराणा उदयपुर के पुस्तकालय के हस्त-ग्रंथों का केटलाग पृ. ११८ पुस्तक-प्रकाश जोधपुर हस्त. ग्रंथ नाहटा जी के हस्त. संग्रह से।

माना जा सकता है। उदैराज और ऊदो एक ही व्यक्ति के नाम हैं। नाहटाजी ने इनका जन्म सं. १६३१ में होने की सम्भावना की है। उदैराज प्रथावली गुण बावनी बद विरहिणी प्रबन्ध आदि इनकी रचनाएँ है। दोहे का एक उदाहरण इस प्रकार है—

उदै धपीजै धमू नही पीजै रहणी भाव।
छळ देखी बळ कीजिये छळ बिण बळ मेकाज ॥

सांयाजी भूला

इनका जन्म सं. १६३२ एव स्वर्गवास सं. १७०३ में हुआ। ईडर राज्य के लीलछा नामक गांव के चारण स्वामीदास के ये दूसरे पुत्र थे। ईडर राव इनके आश्रयदाता रहे हैं। कृष्णभक्त इस कवि ने 'नागदमण' एवं 'रुकमणीहरण' नामक दो प्रसिद्ध रचनाएँ लिखी है। रचनाओं के मध्य में दोहे प्राप्त होते है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

बिजिजा धारवा बीनबू सद्गुरु कक पसाय।
पम्पाळो पयणां-सिरे जदुपति कीनो जाय ॥

मेहोजी माथुर

कायस्थ माथुर बीकराजजी के वंश में भांमाजी के पुत्र मेहोजी माथुर थे। इनका रचनाकाल सं. १६४३ माना गया है। इनका गीता और भागवत का राजस्थानी सरस पद्यावली में अनुवाद मिलता है। सरल भाव और सादी भाषा इनके दोहों की विशेषता है। यथा—

अर्जुन विद्या विचारही जाको किसो न होय।
मनि मत सोजु नेता प्रभु, निरखै होसी सोय ॥

जसवन्त

सं. १६४३ की प्रति में जसवंत कृत 'त्रिपुर सुन्दरी री बेलि' मिलती है जिसमें ६ दोहे और २ कुंडलिया हैं। 'बेलि' में बेलियो छंद नही है। इनका परिचय अज्ञात है।

हेमरतन

इनका रचनाकाल सं. १६४५ है। इनके द्वारा रचित 'गोरा बादल पदमिणि चउपई' के अनेक रूपान्तर प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथ में दोहों का खूब प्रयोग हुआ है। वैणसगाई चमत्कार भी उपलब्ध है। उदाहरणार्थ—

रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ १३२ रा भा सा (डॉ माहेश्वरी) पृ १३० शोध-पत्रिका भा.८ पृ ११ पर श्री मोहनलाल शर्मा का मत।
[*] मरुवाणी ३।२, पृ १६ पर श्री नाहटा का मत।
रा भा सा (डॉ माहेश्वरी) पृ १००
राजस्थान के हस्त ग्रन्थों की खोज भाग तीन पृ ८१

वीरा रस सिणगार रस हासा रस हित हेत ।
सामि-धरम रस संभमु, जिम हुइ तन मति तेम ।।

बारहठ नरहरदास

इनका जन्म सं. १६४८ एवं मृत्यु सं. १७३३ में हुई। ये रोहड़िया शाखा के चारण लखाजी के पुत्र थे और महाराज गजसिंह के आश्रित थे। इनकी 'राव अमरसींघ जी रा दूहा' नामक रचना प्रसिद्ध है। दोहे का उदाहरण निम्नलिखित है—

रवि जठै राकेस जठ अवर जठै नग जरम ।
नरवै बेड नरेस कुल दीपक तो जग प्रकम ।।

संडायच हरिदास[1]

उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के समय के चारण संडायच हरिदास का समय जगतसिंह (सं. १६४८–१७ ९) का समय ही मानना चाहिये। इनका शेष विवरण अज्ञात है। सम्भव है ये निरजनी पंथ वाले हरिदास ही हों क्योंकि दोनों का समय एक ही है और 'टोडर जोग ग्रंथ' से उदयपुर (संडावाटी) के टोडरमल दानी से भी सम्बन्ध जुड़ सकता है। एक दोहा भी प्रसिद्ध है—

दोय उदयपुर ऊजळा दुइ दातार अटल्ल ।
इक तो राणो जगतसी दूजो टोडरमल्ल ।।

इनके द्वारा रचित दोहों में से एक दोहे का उदाहरण द्रष्टव्य है—

जाती काया सासव राम कबड़ी रेस ।
धनसब माया ऊभमे छाया फल जमठेस ।।

चाम्पादे

पृथ्वीराज राठौड़ की पत्नी चांपादे जैसलमेर के रावल हरराज की बेटी थी। ये भी श्रेष्ठ कवयित्री थी। इनके कुछ फुटकर दोहे मिलते हैं। इनका समय सं. १६५ माना गया है।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक फुटकर दोहाकारों की रचनाएँ भी मिलती हैं जिनमें से कुछ ये हैं—मानदास, पीरदानी, जसू, सानादे आदि।

पूर्व मध्यकाल

सं. १६५ से सं. १८ तक का समय राजस्थानी दोहों का 'पूर्व मध्यकाल' है।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी क्रमांक ६६

रा. भा. सा. (डॉ. मेनारिया) पृ. २११, राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (डॉ. सहल) पृ. ७६ व ११

रा. भा. सा. (डॉ. माहेश्वरी) पृ. १४६, डिंगल में वीर रस (डॉ. मेनारिया) पृ. ३७, राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (डॉ. सहल) पृ. १

इस काल में अनेक दोहाकार हुए हैं। राजस्थानी में लिखने वाले कवियों के लिए इस काल में दोहा छंद प्रायः आवश्यक सा हो गया था। दोहों में प्रतिपाद्य विषयों में वैविध्य का प्रारम्भ भी इसी काल से दृष्टिगोचर होता है। इस काल में सर्वाधिक दोहे व्यक्तियों को लेकर लिखे गये। अतः व्यक्ति-सम्बोधनों की दोहों में बहुलता प्राप्त है। व्यक्तियों को लेकर फुटकर दोहे तो इतने लिखे गये हैं कि उनका संग्रहादि भी कठिन है। इस काल में अनेक अज्ञात कवियों की दोहा रचनाएँ प्राप्त होती हैं जो विविध संग्रह या गुटकों में संग्रहीत मिलती हैं। कुछ दोहों में सवादात्मक दर्शनीय है। संतों और जैन कवियों के भी अनेक दोहे मिलते हैं। समयराज, पीठू महो, जग्गाजी आदि प्रसिद्ध दोहाकारों में से हैं। इस काल के कुछ दोहाकारों का वृत्त इस प्रकार है—

हेमानन्द[1]

हीरकलश के शिष्य हेमानन्द का समय सं० १६५८ के लगभग है। इनकी 'भीम बाल संवाद' रचना प्रसिद्ध है। उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है—

रसरण रसरण सतोस करि, वसिया एकरिण पास।
तिम अमि सहु मइ सप करि पूरउ मन की आस॥

गरीबदास[2]

दादू के बड़े लड़के गरीबदास का रचनाकाल सं० १६५५ है। ये बड़े पण्डित और गान विद्यानिपुण थे। इनकी 'बाणी' मिलती है जिसमें दोहे प्राप्य हैं। दादू की मृत्यु पर यही गुरु के स्थान पर स्थानापन्न किये गये थे। इनके दोहों की भाषा सरल है। यथा—

पान करै अमृत सरस पुणि सै हीरा हाथ।
सो प्यारी पिव आपरणै दूजी सबै अकाथ॥

नैणसी[3]

मुहणोत नैणसी ओसवाल महाजन का जन्म सं० १६६७ में हुआ था। वीर, शासन पटु और साहित्यकार के रूप में नैणसी की ख्याति है। सं० १७२७ में इनका देहान्त हुआ। 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' इनका बड़ा प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

जिनसमुद्र सूरि

ये खरतरगच्छ की वेगड़ शाखा के आचार्य थे। इनका जन्म लगभग सं० १६७ में हुआ। सं० १७४१ में इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी अनेक रचनाओं की प्राप्ति होती है।

---

[1] मरुभारती (पिलानी) ३।४ पृ० २४
[2] गरीबदास की वाणी (प्रथम संस्करण)
[3] राजस्थानी भाषा और साहित्य (डॉ० मेनारिया) पृ० १२३
राजस्थानी (२) पृ० ८२ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख

जान[1]

ये फतेहपुर शेखावाटी नवाब अलफखां के लड़के नियामतखां या न्यामतखां थे जिनका उपनाम जान कवि था। इनका रचनाकाल सं. १६७१ से सं. १७२१ के मध्यकाल का माना गया है। कायमखांरासो बुद्धिसागर आदि ७५ ग्रंथों का इनके द्वारा लिखा जाना माना जाता है। इनके ग्रन्थों में दोहों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। यथा—

> कर्मचन्द त फरिक भर्यो न्यामर्खा नाम।
> पातसाह संमहि सबै आयो अपनी ठाम॥

परशुराम

जयपुर राज्य के पंचगौड़ ब्राह्मण-कुल में इनका जन्म हुआ था। इनका रचनाकाल सं. १६७७ के आस-पास कहा जाता है। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्यों में गिने जाते हैं। इनके दो दर्जन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। दोहों की प्राप्ति इनकी रचनाओं के मध्य में होती है। इनके दोहों की भाषा पर ब्रज का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यथा—

> गुरु द्रोही जो आतमा सो मम द्रोही जान।
> परशा जो गुरु भक्त है सो मम भक्त पिछान॥

महाराजा जसवंतसिंह

जोधपुर के महाराजा गजसिंह के दूसरे पुत्र महाराजा जसवंतसिंह का जन्म सं. १६८१ में हुआ था। इतिहास प्रसिद्ध अमरसिंह राठौड़ इनके बड़े भाई थे। इनका स्वर्गवास सं. १७३५ में हुआ। ये डिंगल पिंगल के विद्वान एवं कवि थे। इनके लिखे अनेक ग्रंथ हैं। दोहे का एक उदाहरण निम्न है—

> नट न चाढ़ै बेहरा संक न मानै साह।
> फेरस्यौ फिर आवस्यो माहू रा जसशाह॥

बाजा महदू

यह कवि मुगल-सम्राट् अकबर की सभा का एक कवि माना जाता है जिससे इसका रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दी अनुमानित है। इसके दोहे तथा फुटकर रचनाएँ सं. १७११ में लिपिकृत प्रति में प्राप्त होती हैं अतः कवि का रचनाकाल इससे पूर्व तो है ही। इसका एक दोहा द्रष्टव्य है—

---

[1] राजस्थान भारती १।१ पृ. ३१ पर श्री नाहटा का लेख रा. भा. सा. (डॉ. मेनारिया) पृ. १३१

[2] रा. भा. सा. (डॉ. मेनारिया) पृ. १४१

[3] रा. भा. सा. ( ) पृ. १४५ राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (डॉ. सहल) पृ. ४६

[4] प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ११ पृ. ४२ व १

सिंधुरहि सिंधुरिया सिरि सेवती भार।
प्रथम विनायक प्रणमिजै पारभिहिं परमार॥

बीठू मेहो[1]

इनका वृत्त अज्ञात है। इनका रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। पाबूजी रा छंद गोगाजी रा रसावला आदि रचनाएँ इनके द्वारा रचित प्राप्त होती हैं। कूंपा मेहराजोत रा दूहा भी इनके लिखे हुए मिलते हैं।

हेम कवि

ये सामोर शाखा के कवि थे। सीथल (बीकानेर) के निवासी इस कवि का वृत्त प्राप्त नहीं होता। सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध इनका रचनाकाल माना जाता है। 'हेमी कोष' तथा 'गुण भाषा चरित्र' इनके ग्रंथ हैं। दोहे का एक उदाहरण इस प्रकार है—

इन्द्र नहीं क्यूं आपणों सूर नहीं क्यू घाट।
भा मथुरा बर इन्द्र रे पूत म एहो पाट॥

कल्याणदास लालचोत भाट

ये सर्वेया ग्रामवासी लालजी के पुत्र थे। इनका जीवनवृत्तान्त नहीं मिलता किन्तु रचनाकाल सं० १७ के लगभग है। इनका 'गुणगोविंद' नामक ग्रंथ मिलता है। उदाहरणार्थ एक दोहा द्रष्टव्य है—

वास धर्मैले वाण तण लाखणोत कलियाण।
गायौ श्री गोविंद सुख पाए भगत प्रमाण॥

लक्ष्मीवल्लभ

खरतरगच्छीय जैन कवि लक्ष्मीवल्लभ का रचनाकाल १८वीं शताब्दी है। इनका जन्म-नाम हेमराज तथा काव्य में प्रयुक्त नाम राजकवि है। 'देसंतरी छंद' में दोहे का प्रयोग हुआ है। नाहटाजी के अनुमान से इनका जन्म सं० १६६ और सं० १७ १ के मध्य माना जाना चाहिये। इनके द्वारा रचित अनेक ग्रंथों का पता चला है। 'दूहा बावनी' नामक ग्रंथ भी इनका रचित मिलता है। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

जन्म-मरण परणाण मुगति भाखी नव नव मति।
मत को मूठी मानि ज्यौं सबळी हौ सै सति॥

रा भा सा (डॉ० माहेश्वरी) पृ० ११२

मरु-भारती ११२, पृ २ पर श्री सीताराम लालस का लेख डिंगल साहित्य (डॉ० जगदीशप्रसाद) पृ २३

डिंगल साहित्य (डॉ० जगदीशप्रसाद) पृ २६

मरु-भारती ४।१ पृ १ ७ तथा राजस्थानी (२) पृ ४ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख राजस्थानी हस्त-ग्रंथों की खोज भाग ४ पृ ८६

राजसोम

ये जयकीर्ति के शिष्य थे। बड़े विद्वान और कवि थे। इनका रचनाकाल सं १७ १ से १७२१ माना जाता है। इनका 'दोधकचन्द्रिका' नामक एक गूढ दोहा ग्रंथ दोहों में दोहा पर लिखा गया रीतिग्रंथ मिलता है। उदाहरणार्थ एक दोहा देखिए—

काया माया कारमी राखी रही रीति।
तउ भी भाई तंतकी बेरन काकी मीति॥

लखराज[1]

महाराजा जसवन्तसिंह के मंत्री लखराज एक बड़े महत्वपूर्ण दोहाकार थे। इनके परिचय का पूर्ण विवरण अज्ञात है किन्तु मत्ससाक्ष्यानुसार इनके पिता कोचर मुहता मंत्रीश्वर महेश थे। ये सोजत के रहने वाले थे। इनका रचनाकाल सं १७ ८ से सं १७१ तक माना जा सकता है। इनकी रचनाओं में लखराज लखिया लखो लखमस आदि नाम मिलते हैं। इनके प्रबोधमाला देवविलास सीखबतीसी आदि वर्णनो ग्रंथ प्राप्त होते हैं जिसमें कालिकाजी रा दूहा पाबूजी रा दूहा तथा प्रस्तावशतक दोहों में ही रचित है। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

कुंवर मम के कारण चामीकर चाकर चमर।
पूरस हुंस प्रमास कर कहिति कालिका॥

सालम जीवण[2]

इनका परिचय अज्ञात है। लीला जोधावत पर आपके दोहे मिलते हैं। रचनाकाल सं १७१३ से पूर्व मानना चाहिये क्योंकि इनके 'लीला जोधावत रा दूहा' सं १७१३ में लिखित प्रति में प्राप्त होते है। दोहों में से एक का उदाहरण इस प्रकार है—

केही कारण काम निरखै ही आखै नही।
बधिया बैर विकाम लीबै लैन लीलाउत॥

कविया बखतराम

कवि का परिचय अज्ञात है। किन्तु इनकी रचना सं १७१३ में लिपिकृत ग्रंथ में प्राप्त होने से इनका रचनाकाल उपर्युक्त सं से पूर्व तो निश्चय ही है। इनकी 'राजा मजसिहजी रा दूहा' नामक रचना मिलती है जिसमें मजसिंह की प्रशस्ति गाई गई है। यथा—

---

[1] मरु-भारती ४।१ पृ १५ पर श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा दोधक-चन्द्रिका सपादित।

[2] मरुभारती २।१ पृ २ श्री अगरचंद नाहटा का लेख लेखक द्वारा हस्त प्रतियों के आधार पर।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी हस्त प्र क्रमांक ६६

[4] डेस्क्रिप्टिव केटेलाग आव एशियाटिक सोसायटी पृ ६ क्रमांक सी ६६, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी क्रमांक ६६

दुख दो बडौ दातार, गजपति मायौ गुणियांण ।
सामें कुम्भ सिणगार, सब सरीखो सूवउव ॥

जग्गाजी

रतनाजी के बेटे जग्गाजी का जीवनवृत्तादि प्राप्त नहीं है। ये खिड़िया शाखा के चारण थे। इनका रचनाकाल सं. १७१५ है। 'रतनरासौ' अथवा वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासोत री' इनका एक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रंथ है। वचनिका में कई प्रकार के दोहों का प्रयोग है। बड़े दूहे का एक उदाहरण दृष्टव्य है—

मसतकि बांधे मौड़ धारे मुख हिन्दू धरम।
मेछ घड़ा सिर भसड़पिभी रतनागिर राठौड़ ॥

किशोरदास[1]

ये मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के आश्रित राज कवि थे। 'राजप्रकाश' ग्रंथ का निर्माण सं. १७१६ में किया। इस ग्रंथ में दोहों का प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा डिंगल है। दोहे का एक उदाहरण दृष्टव्य है—

गणपति सरसति गवरपति वसपति सुरपति वाणि।
तुष्ट होय मो दीजियै सुमति पुष्टि रस वाणि ॥

गिरधर[2]

'सगतसिंघ रासो' के रचनाकार कवि गिरधर मेवाड़-वासी थे। ये आसिया चारण थे। इनका रचनाकाल सं. १७२ के आसपास माना जाता है। रासो में अनेक दोहे हैं जो डिंगल भाषा की प्रौढ़ रचना कहे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ—

किन्नौ हुकुम न कीजि की ए गढ एह अगट्ट।
अवस राण कमधिज्जमी सह दी सीख प्रगट्ट ॥

जोगीदास

जोगीदास चारण कवि थे और प्रतापगढ़ के महारावत हरिसिंह के आश्रित थे। इनका रचनाकाल सं. १७२१ है। छंदशास्त्र का ग्रंथ 'हरिपिंगल-प्रबन्ध' पिंगल में लिखित इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। भाषा का प्रवाह बड़ा उत्तम है। यथा—

राणी गज-मोताहलां बहु मर्द सिणगार।
की भीनी भरतैं मही पड गुंजाहल हार ॥

---

[1] व. रा. र. री महेसदासोत री पृ. ४५
[2] रा. भा. सा. (डॉ. मेनारिया)
[3] वही पृ. १६
[4] वही पृ. १६

महाराजा अभयसिंह[1]

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह (सं १७२५) बड़े वीर पुरुष थे। चारणों का ये बड़ा आदर करते थे। इनका कवि मुकुन्ददास की मृत्यु पर यह दोहा कहा हुआ बड़ा प्रसिद्ध है—

दिस दिस उठे दाह मित्र तिहारा मिळण री।
मन हो बिन मुकनाह दीसे कसोवास उत।।

जगार

'जगार रा कह्या दूहा' नामक रचना सं १७२६ के लगभग लिखी गई एक हस्तलिखित प्रति में प्राप्त होती है। इनका विस्तृत परिचय अज्ञात है।

बीठलदास[2]

'रुकमणी हरण बीठलदास री कही' नामक एक लघुकृति में दूहों की प्राप्ति होती है। इसके रचयिता बीठलदास का विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है किन्तु माहठाजी के अनुमान से रचना का समय सं १७२७ के पूर्व का होना चाहिये। उदाहरण—

कोप करे सिसपाल कहि भुम किवरी मुंह बाह।
जळ प्रमाण से जादवी पीवण लाग पराह।।

दलपत

ये जैन साधु थे। इनका 'खुमाण रासौ' प्रसिद्ध है। इनके रचनाकाल पर बड़ा मतभेद है। स ८७ से लेकर सं १७६ तक का समय इनका निर्धारित किया जाता है। बहुमत १७३ १७६ के लिए है। प्रो कृष्णचन्द्र श्रोत्रीय ने अपना शोधप्रबन्ध 'खुमाण रासौ' पर प्रस्तुत किया है सम्भव है कुछ नई मान्यताएँ सामने आवें।

सोढ़ीनाथी[5]

इनका जीवन-वृत्त संदिग्ध है। इनका रचनाकाल सं १७३ के लगभग माना जाता है। इनके पिता जोधराज कहे जाते है जो असंदिग्ध नही है। इनकी कई रचनाएँ मिलती हैं।

कुंभकर्ण[6]

ये साधु बाबा के चारण थे। इनका 'रतनरासौ' प्रसिद्ध है। इनका रचनाकाल सं १७३२ के लगभग अनुमानित किया गया है।

राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (डॉ सहल) पृ ८८
अनूप संस्कृत लाइब्रेरी अनुक्रमांक १ विषयांक १
शोधपत्रिका ११।१ पृ ७ पर डॉ माताप्रसाद दीक्षित का लेख
[4] रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ ८२
[5] डिंगल साहित्य (डॉ जगदीशप्रसाद) पृ ४८ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी केटेलाग पृ २१
[6] रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ २१

कविराजा करणीदान[1]

उदयपुर के सूलवाड़ा नामक गांव में सं १७४ के लगभग इनका जन्म हुआ । ये कविया गोत्र के चारण थे। डिंगल पिंगल और संस्कृत पर आपका समान अधिकार था। सूरजप्रकाश बिड़दसिणगार आदि अनेक रचनाएं आप द्वारा रची गई हैं। ये उदयपुर और जोधपुर के शासकों के कृपापात्र थे। बड़री के ठाकुर सार्मासिंह के लिए कहे गये इनके दोहे अत्यन्त लोकप्रिय हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

> दळ भासी विकरणाद रा तोपां पड़सी ताव ।
> या बड़सी भिळसी ज दिन भलसी मो सिर भाव ॥

हंस कवि[2]

'चंद कंवर री बात' के रचयिता हंस कवि का रचनाकाल अनुमानतः सं १७८ माना गया है। इस वार्ता का सबंध शृंगार से है। इसमें दोहों का बहुलता से प्रयोग हुआ है। भाषा शुद्ध राजस्थानी है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

> साम्ह धर्मी रस लैण सू, हवरे ऊभे भाण।
> घोड़ा थाम पलाणियो करी बात पहचाण ॥

लालचन्द[3]

लालचन्द नामक कई जैन कवि हुए हैं किन्तु 'गुरख-सोलही' एव 'बुद्ध-मुधा-रस' के रचयिता लालवर्धन उर्फ लालचन्द का रचनाकाल सं १७४८ के लगभग मानना चाहिये। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

> कीरी सा कवर करै, चली दया जिय मान ।
> बहुत भुगति मरें भया सो मूरख अनजान ॥

उदयराज

इनका रचनाकाल सं १७४६ से १७६६ तक का माना जाता है। इनकी लगभग २७ कृतियों का उल्लेख किया जाता है। ये भभान शाह के छोटे पुत्र थे। इनकी भाषा सरल लोकप्रचलित एवं मधुर है। यथा—

> सरोवर कमल सुहामणा हेम बास्या येह ।
> विरहिणी ना मुख नी परे, म्हारा थया तेह ॥

---

1. रा भा सा (डॉ मनारिया) पृ १७६ मरुभारती ३।२ पृ ८७ बिड़दसिणगार, परिचय।
2. शोधपत्रिका २।३ पृ १६६ पर प्रो॰ गोपीलाल नाहेलरा का लेख।
3. मरुभारती ३/१ पृ ४३ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।
4. मरुभारती २/१ पृ २ तथा ८/ पृ २२ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख प्राग्वाट इतिहास पृ ३२१

महाराजा जसवंतसिंह[1]

जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (सं १७२५) बड़े वीर पुरुष थे। चारणों का ये बड़ा आदर करते थे। इनका कवि मुकुन्दास की मृत्यु पर यह दोहा कहा हुआ बड़ा प्रसिद्ध है—

> विम विम उठै दाह मिल तिहारा मिळणा री।
> मन हो बिन मुकनाह दीसै केसोदास उन॥

जमार

जमार रा कहा दूहा' नामक रचना सं १७२५ के लगभग लिखी गई एक हस्तलिखित प्रति में प्राप्त होती है। इनका विस्तृत परिचय अज्ञात है।

बीठलदास[2]

'रुक्मणी हरण बीठलदास री कह्यौ' नामक एक लघुकृति में दूहों की प्राप्ति होती है। इसके रचयिता बीठलदास का विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है किन्तु नाहटाजी के अनुमान से रचना का समय सं १७२७ के पूर्व का होना चाहिये। उदाहरण—

> कोप करै सिसपाळ कहि भुय किसरी भुंइ थाह।
> जळ अमण से आयसी पीवण काज पराह॥

दलपत

ये जैन साधु थे। इनका 'खुमाण रासौ' प्रसिद्ध है। इनके रचनाकाल पर बड़ा मतभेद है। सं ८५ से लेकर सं १७६ तक का समय इनका निर्धारित किया जाता है। बहुमत १७३०-१७६ के लिए है। प्रो कृष्णचन्द्र श्रोत्रीय ने अपना शोधप्रबन्ध 'खुमाण रासौ' पर प्रस्तुत किया है संभव है कुछ नई मान्यताएँ सामने आवें।

सोढ़ीनाथी[4]

इनका जीवन-वृत्त संदिग्ध है। इनका रचनाकाल सं १७३ के लगभग माना जाता है। इनके पिता भोजराज कहे जाते है जो असंदिग्ध नहीं है। इनकी कई रचनाएँ मिलती है।

कुंभकर्ण[5]

ये साहू शाखा के चारण थे। इनका 'रतनरासौ' प्रसिद्ध है। इनका रचनाकाल सं १७३२ के लगभग अनुमानित किया गया है।

राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (डॉ सहल) पृ ४८

अनूप संस्कृत लाइब्रे री अनुक्रमांक १ विषयांक १

शोधपत्रिका ११।१ पृ ७ पर डॉ आनन्दप्रकाश दीक्षित का लेख

[4] रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ ८२

[5] डिंगल साहित्य (डॉ जगदीशप्रसाद) पृ ४८ अनूप संस्कृत लाइब्रे री केटेलाग पृ ५१

[6] रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ २१

तपागच्छीय बालचंदसागर[1]

इनका 'उदयपुर-वर्णन-छन्द' मिलता है। अधिक जीवनवृत्त प्राप्त नहीं है। रचनाकाल सं० १७८५ १८ ९ के बीच समझना चाहिये। एक दोहा द्रष्टव्य है—

समरी माता सरसती मांगूं वाणी माय।
अनुपम उदयापुर तणो वर्णन करूं बणाय॥

खेतल

इनका रचनाकाल सं० १७४१ है। इनका मूल नाम खेतसी तथा दीक्षित नाम दयासुंदर था। खेतसी खेता खेतल आदि नामों का प्रयोग इन्होंने अपने काव्यों में किया है। इनकी उदयपुर और चित्तौड़ गजल प्रसिद्ध है। चारण कवि खेतसी और यति खेतल एक ही व्यक्ति हैं या अलग-अलग इसका पता नहीं चल सका है। इनके दोहे का उदाहरण देखिये—

चरण चतुरभुज धारि चित मन ठीक करी मन ठौर।
चौरासी गढ़ चक्कवइ, चावो गढ़ चित्तौड़॥

भवानीदास पुष्करणा[2]

इनका वृत्त नहीं प्राप्त हुआ। सं० १८२८ में लिपिकृत 'कपटीपक पिंगल' के रचनाकार यही हैं। ग्रंथ के अंत में रचनाकाल सं० १७७१ दिया गया है अतः कवि का रचनाकाल भी यही ठहरता है। कवि और उसके रचनाकाल संबंधी दोनों दोहे प्रस्तुत हैं—

गुरु गनेस के चरण गहि, हिये धार के चित्त।
कुमर भवानीदास की जुगति करी जै कित्त॥

संवत सतरै से बरस और इकुहतर पाय।
माघ सुदि तिथि पूरी भयी ग्रंथ सुखदाय॥

निहाल

ये पार्श्वचन्द्र सूरि संतानीय हर्षचन्द्र के शिष्य थे। इनका रचनाकाल सं० १७८२ है। बंगाल गजल ब्रह्मबावनी माणकदेवी रास जीवविचार भाषा आदि इनकी रचनाएँ हैं। मध्य-मध्य में दोहों का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

श्री सद्गुरु शारदा प्रणमि सबरी गुरु सनाय।
गजल बंगाला देश की करूं सरस बनाय॥

मरुभारती ६।४ पृ० ८ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।
[1] राजस्थान के हस्त ग्रंथों की खोज भाग २ पृ० ११ तथा १४४
[2] राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान हस्त ग्रंथांक २११६८ (२)
राजस्थान के हस्त ग्रंथों की खोज भाग २ पृ० ११ तथा १४२

वीरभाण रतनू[1]

घड़ोई (जोधपुर) ग्राम के चारण रतनू वीरभाण का जन्म सं १७४५ में हुआ था। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मूल्य का 'राजरूपक' ग्रंथ इनकी काव्य शक्ति का उदाहरण है। एकाक्षर नाम माला' आदि ग्रन्थ भी इनके रचित मिलते हैं। सं १७९२ में इनका देहान्त हुआ। भाषा डिंगल की शैली का अच्छा उदाहरण है। यथा—

सम्र भाण विलास प्रगक छम माळ धनोपम।
हित प्रकाश प्रभु हास भरण वारिज मुख ओपम॥

कान्हजी अर्फ कीर्तिसुन्दर

कवि धर्मवर्धन (धर्मसी) के शिष्य कान्हजी थे जिनका दीक्षा का नाम कीर्तिसुन्दर था। इनका 'मांकणरासो' मिलता है। इस रचना का समय सं १७५७ है और रचना-स्थान मेड़ता है। रचना द्रष्टव्य है—

जोवां में मौजें जरै, सुणो कोडक साह।
वासा पैडा वाह नै प्रथिम धरै उमाह॥

महिमोदय[2]

इनका वृत्त अज्ञात है। इनका रचनाकाल सं १७२७ है। इनके द्वारा लिखित 'पखित ग्रंथ साठसो दोहा' मिलता है। एक दोहे का उदाहरण यह है

विजयदसमी वार नृप मत्री धन को वार।
कूमें रवि जिस वार में ते सस्माधि पसार॥

रूपपति

नाहटाजी ने अठारहवी शताब्दी के अतिम समय के कवि रूपपति या रूपनाथ का परिचय देते हुए इनका जन्म सं १७६ ६५ के मध्य एवं देहान्त सं १८५ के आसपास माना है। खरतरगच्छ के आचार्य जिनसुख सूरि से आपने सं १७७६ में दीक्षा ली थी। बीकानेर के आसपास आपके जन्म की कल्पना की गई है। इनके रचित दर्जनो ग्रंथों का उल्लेख हुआ है। दोहा की अधिक जानकारी नहीं मिल सकी है किन्तु रचनाओं में दोहों की सम्भावनाएँ निश्चित ही माननी चाहिये। एक उदाहरण है—

पिरथम सुख जोधाळ मिस्ट पाणी सुख पूजो।
तीजो पुत्र आदेस पादुका चौथे पूजो॥

---

[1] रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ १७ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान हस्त ग्रथाङ्क ५१

[2] राजस्थान भारती ४/३-४ पृ ६७ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान हस्त ग्रंथाङ्क ३४४
मरुवाणी २/११ पृ १६ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख

तपागच्छीय बसवंतसागर

इनका 'उदयपुर-वर्णन ग्रन्थ' मिलता है। अधिक जीवनवृत्त प्राप्त नहीं है। रचनाकाल सं १७८६ १८ ६ के बीच समझना चाहिये। एक दोहा द्रष्टव्य है—

समरी माता सरसती मांमू बाणी माय।
अनुपम उदयापुर तणो वर्णन करू बणाय॥

खेतल

इनका रचनाकाल सं १७४१ है। इनका मूल नाम खेतसी तथा दीक्षित नाम दयासुंदर था। खेतसी खेता खेतल आदि नामों का प्रयोग इन्होंने अपने काव्यों में किया है। इनकी उदयपुर और चित्तौड़ गजल प्रसिद्ध है। चारण कवि खेतसी और यति खेतल एक ही व्यक्ति हैं या अलग-अलग इसका पता नहीं चल सका है। इनके दोहे का उदाहरण देखिये—

चरण चतुरमुख धारि चित मन ठीक करी मन ठौर।
चौरासी गढ़ चक्कवइ चाबो गढ़ चित्तौड़॥

भवानीदास पुष्करणा*

इनका वृत्त नहीं प्राप्त हुआ। सं १८२८ में लिपिकृत 'रूपदीपक पिंगल' के रचनाकार नहीं हैं। ग्रन्थ के मत में रचनाकाल सं १७७६ दिया गया है अत कवि का रचनाकाल भी यही ठहरता है। कवि और उसके रचनाकाल संबंधी दोनो दोहे प्रस्तुत हैं—

गुरु गनेश के चरण गहि हियै धार कै बिस्न।
कुमर भवानीदास कौ सुमति करै यौ किस्न॥
संवत सतरै सै बरस और छियंतर पाय।
मार्गो सुदि तुतिया गुरौ भयौ ग्रन्थ सुखदाय॥

विद्याल

ये पार्श्वचन्द्र सूरि संतानीय हर्षचन्द्र के शिष्य थे। इनका रचनाकाल सं १७८२ है। संवाद बत्तम ब्रह्मबावनी माणकदेवी रास जीवविचार भाषा आदि इनकी रचनाएँ हैं। मध्य-मध्य में दोहों का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

श्री सदगुरु सारदा प्रणमि भवरी पुत्र मनाय।
पवन बंगाला देस की करू सरस बनाय॥

मरुभारती ६।४ पृ ४ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।
राजस्थान के हस्त ग्रन्थों की खोज भाग २ पृ १ ३ तथा १४४
* राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान हस्त ग्रन्थांक २३६४ (२)
राजस्थान के हस्त ग्रन्थों की खोज भाग २ पृ ११ तथा ११२

केसरी

इनका रचनाकाल सं १८१ है। साहू शाखा के ये चारण कवि जोधपुर नरेश अभयसिंह के यहाँ थे। 'माया भारथ' इनका बड़ा प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनका उपनाम 'सीह' मिलता है। इनका काव्य इस प्रकार है—

सेवा अभा नरेस री भेळप हठी मुरिंद।
कवि भाखा भारथ कही माण्या माणंद कंद॥

व्यास भवानीदास

इनका 'भाई भागवत विलास' प्रकाशित है। 'भोज चरित्र पन्नरबी विद्या री बात' भी इन्ही द्वारा रचित नाहटाजी के संग्रह मे है। इनका रचनाकाल सं १७९१ के लगभग माना गया है। 'रात' में २२५ दोहे है और सरल एवं विवरणात्मक है। यथा—

वेद पुराणाँ इम कही चंद विचार ततसार।
विद्या कहियै पनरमी दीमा चरित्र ससार॥

हमीर रतनू

कच्छभुज के राजा महाराव श्री देसलजी (स १७७४ १८ ८) के महाराजकुमार लखपतजी के आश्रित रतनू शाखा के चारण कवि हमीर का रचनाकाल सं १७९९ के लगभग है। जोधपुर के घड़ोई गाम में इनका जन्म हुआ था। 'लखपत पिंगल' 'हमीर नाम माळा' आदि इनके कई ग्रंथ मिलते है। उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है—

महादेव सुत करि महर, गणपति सुमति गंभीर।
कमर बखाणों कुळ तिलक भजवंभी भ्रम धीर॥

वीरचन्द

इनकी रचित पद्यमय बात प्राप्त होती है। इनका रचनाकाल सं १७९८ है। सं १८७७ में लिपिकृत 'सदेवच्छसावलिंगा दूहा' भी इनके रचित मिलते हैं। इस दोहों का दूसरा नाम 'बरसगणबत्तीसी' भी कहा गया है। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

मान न करो रे मानवी मान न बाबे मान।
कटक सु कौरव आविया मनि धरी मद्दर मान॥

---

[1] रा मा सा (डॉ मेनारिया) पृ १८४ नाहटाजी ने इनको 'मडवी खड़िया' लिखा है। राजस्थान भारती १।१ २ पृ १८

बरदा १।१ पृ ३६ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख

रा मा सा (डॉ मेनारिया) पृ १९१

बरदा १।३ पृ ३६ पर श्रीअगरचंद नाहटा का लेख राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान हस्त ग्रंथाक ४११४ (४१)

संत रूपजी[1]

संत परम्परा के रूपजी का जन्म जोधपुर की विसाड़ा के बेगण नामक गाँव में हुआ था। ये जाट जाति के सिलेरी गोत्र में पैदा हुए थे। इनके गुरु भवानीनाथ कहे जाते हैं। इनका विशेष विवरण प्राप्त नहीं है किन्तु अनुमान है कि इनका रचनाकाल अठारहवीं शताब्दी का मध्य रहा होगा। इनकी वाणी प्राप्त होती है जिसमें दोहों का प्रयोग विभिन्न रूप से किया गया है। यथा—

काछा बन में चार हैं एक कोमल दूजो काय।
तीजो भँवरो बाग रो चौथो बासग माय॥

जिनहर्ष (जसराज)

जिनहर्ष एक जैन कवि थे जिनका दीक्षा के पहले का नाम जसराज था। राजस्थानी में सैकड़ों दोहे इनके रचित मिलते हैं। जसा जसराज आदि सम्बोधन इनके दोहों में प्रायः रहता है। इनका प्रामाणिक जीवनवृत्त नहीं मिलता किन्तु अनुमान यह है कि विक्रम की अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध इनका रचनाकाल रहा होगा। शृङ्गार और उसके विविध भावात्मक रूपों पर दोहे दर्शनीय हैं—

बीजलिया बळमळिमळी आभै आभै कोडि।
कदे मिळेसू सज्जनां कंचुकी कस छोडि॥

इनके प्रहेली-दूहे भी मिलते हैं। इनकी 'श्रीपाल रास' का पता चला है, जिसका रचना काल सं १७४ है अतः यही काल कवि का मानना चाहिये।

लालनाथ परमहंस

इनका जन्म जाङमदेसर (बीकानेर) बतलाया गया है। इनका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है। इनके अनेक ग्रंथ लिखे हुए बतलाये जाते है। 'जीवसमझौतरी' का प्रकाशन हो चुका है। दोहों में उपदेश और नीति है। इनकी परम्परा प्रसिद्ध जसनाथजी सिद्ध से बतलाई जाती है। इनकी रचना का उदाहरण द्रष्टव्य है—

पीसी का दिन मूलड़ा जो मैं बरजी भून।
काया कमी कूगरी रोपी रात्री प्रेम॥

बगुबाई

सुप्रसिद्ध कविया करणीदान की पत्नी बगुबाई राजस्थानी की कवयित्रियों में से एक

वरदा १।४ पृ १६ पर श्री शिवसिंह मनसाराम चोयल का लेख
राजस्थान भारती १।२ १ पृ ७१ शोधपत्रिका ३।४ पृ ४५ राज प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान हस्त ग्रंथांक ५१ १ तथा १११
जीवसमझौतरी भूमिका (डॉ सहल)
मरुभारती ३।२ पृ ८२ पर श्री सीताराम लाळस का लेख।

है। इसका रचनाकाल सं १८ है। कहते हैं बगसी के ठाकुर नाथसिंह पर कहे गये दोहों के रचयिता ये ही हैं करणीदान नहीं। कुछ लोग इन्हें करणीदान की बहिन और कुछ लोग उनकी लड़की भी बताते हैं।

पृथ्वीराज रतनू[1]

इनका विस्तृत जीवन-वृत्तान्त अज्ञात है। जोधपुर के महाराज अभयसिंह के ये आश्रित थे। इनका रचनाकाल सं १८ के लगभग माना जा सकता है। 'अभयविलास' नामक इनका ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

इन दोहाकारों के अतिरिक्त इस काल में अनेक अन्य फुटकर कवियों का भी अभाव नहीं है। सब का विवरण न देते हुए कुछ की नाम-गणना यों है—हरनाथ संतदास खीचर, दूमरसी चारण कापड़िया चारण सूरदास लालहुआ बोड़ियो जीवराज आसिया करमसी आशाराम बारहठ सिद्धाइच बागड़ा अजीतसिंह मुरली अभयराम भीम आदि।

उत्तर मध्यकाल—

सं १८ से सं १९५ तक का समय राजस्थानी दोहा साहित्य का उत्तर मध्य काल है। इस काल का दोहा-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। परिमाण एवं स्तर दोनों ही दृष्टियों से उत्तर-मध्यकाल राजस्थानी दोहा साहित्य का श्रेष्ठतम समय या स्वर्णकाल कहा जा सकता है। सम्भवतः विकास-काल भी इतना ही समृद्ध रहा हो किन्तु उस काल की सभी रचनाएँ प्राप्त नहीं होतीं। इस काल के दोहों की सर्वाधिक प्रवृत्ति नीति की ओर रही है। राजिया मोतिया भैरिया कासिया आदि नीति-सम्बोधन इसी काल में प्रयुक्त हुए। वीरता और शृंगार का भी दोहों में अभाव नहीं है। ज्ञानसार, बांकीदास कृपाराम रामनाथ सूर्यमल्ल मिश्रण किसना जी आढ़ा जैसे समर्थ एवं साहित्यिक दोहाकार इसी युग के रत्न हैं। विशेष रूप से सूर्यमल्ल मिश्रण के प्रभाव का उल्लेख आवश्यक है। इस कवि के दोहों में अत्यन्त उच्चकोटि का साहित्यिक सौन्दर्य देखा जा सकता है। इस काल के कुछ दोहाकारों का परिचय इस प्रकार है—

ज्ञानसार

इनका जन्म सं १ १ में ओसवाल जाति के सांड गोत्रीय श्रेष्ठि उदयचन्दजी के घर हुआ। इनका बचपन का नाम नारणो नराण या नारायण था जो दीक्षित होने पर ज्ञानसार कर दिया गया। इन्होंने अनेक स्थानों का पर्यटन किया। सं १ ८ में इनका स्वर्गवास हो गया। इनके द्वारा अनेक ग्रन्थ लिखे हुए हैं। इनकी भाषा सरल है। एक दोहे का *उदाहरण* द्रष्टव्य है—

रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ २११ डिंगल साहित्य (डॉ जगदीश प्रसाद) पृ १६

ज्ञानसार ग्रन्थावली (प्रथम संस्करण)

मंछाराम[1]

सं १८१ में इनका जन्म हुआ और सं १८६२ में देहावसान। ये जोधपुर के निवासी थे एवं सेवक जाति के ब्राह्मण थे। प्रसिद्ध रीतिग्रंथ 'रघुनाथरूपक' इनकी ही रचना है। इस ग्रंथ में अनेक दोहों का प्रयोग हुआ है।

बख्तीराम[2]

बूंदी के चारण बख्तीराम मिश्रण शाखा के थे। इनका जन्म सं १८४८ में एवं देहांत सं १८६२ में हुआ था। इनके पिता चण्डी बूंदी नरेश के सम्मानित कवि थे। इनके कई ग्रंथ कहे गए हैं। इनके लड़के सूर्यमल्ल मिश्रण डिंगल साहित्य के बड़े प्रसिद्ध साहित्यकार हुए हैं। बख्तीराम की भाषा में डिंगल और पिंगल दोनों शैली तत्त्व प्राप्त हैं। यथा—

जद्यपि मम मतीय मति तदपि करत उच्चार।
उदय होत रजनाथ के सकल उडग अनुसार॥

रामकरण कविराम[3]

इनका रचनाकाल सं १८४७ है। इनका 'अलंकार माधव' ग्रंथ प्राप्त होता है। भाषा ब्रज से प्रभावित है। यथा—

बरन वसन वाहन विमल चित चित विमल विचार।
बढ़ो बर बानी बने विमल बरन विस्तार॥

उत्तमचन्द भण्डारी

ये ओसवाल थे। इनका जीवन-वृत्त अज्ञात है किन्तु महाराजा मानसिंह के समय में वर्तमान होना पाया जाता है। इनका रचनाकाल अनुमानतः १८६ है। 'प्रेम विहार' 'नाथ चन्द्रिका' के अतिरिक्त नाहटाजी ने 'रतना हमीर री वारता' का भी रचयिता इन्हीं को बतलाया है। दोहे का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

चित में बर अति चातुरी वातां विविध बणाय।
रतनां नै गावै तिको रतन प्रभा में जाय॥

महाराजा मानसिंह[4]

जोधपुर के महाराजा मानसिंह (सं १८६ १९) का काव्य प्रेम सर्वविदित है।

रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ २ ४ रघुनाथरूपक गीतां रो
रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ २ ७ बलविलास पृ २
राज के हस्त ग्रन्थों की खोज भाग ३ पृ १ ६
डिंगल साहित्य (डॉ जगदीशप्रसाद) पृ ४ राजस्थानभारती ।।। ४
१ ७ प श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।
[4] मरुभारती ६।४ पृ २६ पर श्री नारायणसिंह भाटी का लेख राजस्थानी बातांनाय पृ १४ रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ १६६

बांकीदास जैसे उनके कृपापात्र थे। वाघ बसाई जोधपुर आदि दोहा मानसिंह की प्रशस्ति में प्रसिद्ध है ही। ये महाराजा भुमानसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म सं १८३१ में हुआ था। इनके दो दर्जन ग्रन्थ डिंगल और पिंगल के मिलते हैं। एक दोहा उदाहरणार्थ देखिये—

मूंछीड़ा मर जावसी मीड़ी मूठड़ियांह।
मवकर पंचा माड़ यां रहसी मरदडियांह॥

देवनाथ महाराज

जोधपुर के आयस देवनाथ का रचनाकाल सं १८६ अनुमानित है। ये महाराजा मानसिंह के समकालीन थे। इनके फुटकर दोहों के अतिरिक्त 'रामला के दोहे' नामक २१ दोहों की रचना जोधपुर के पुस्तक प्रकाश म है। उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है—

कामण मैं थे कौम प्रभु बिन आगु पहर।
वेणी पई न दाम राम भजन में रामला॥

कृपाराम बारठ[1]

जोधपुर के गांव खराड़ी के निवासी खिड़िया शाखा के चारण कृपाराम के पिता का नाम जगराम था। इनका रचनाकाल सं० १८६२ के लगभग अनुमानित है। ये सीकर के राजराजा लक्ष्मणसिंह के आश्रित थे। इनके दोहों में 'राजिया' व्यक्ति सम्बोधन रहता है। स्वामीजी ने राजराजा देवीसिंह का आश्रित माना है। एक दोहे का उदाहरण द्रष्टव्य है—

काळी मोत कुरूप कस्तूरी कांटे तुलै।
शाकर बड़ी सरूप रोड़ां तुलै राजिया॥

रामनाथ कविया[2]

अत्यन्त प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध दोहाकारों में रामनाथ कविया की गणना की जाती है। आपका जन्म लगभग सं १८६२ में चोखा का वास (सीकर) में हुआ कहा जाता है, किन्तु दोहाकार ने स्वलिखित एक दोहे में भुमानपुर स्थान को जन्म-स्थान बतलाया है। आप अलवर में विजय के महाराज बलवन्तसिंह की सभा में दरबारी थे। अलवर महाराज के विरोध में 'धरणा' देने की बात भी कवि की अत्यन्त प्रसिद्ध घटना है। इन्हें कारावास में

पुस्तक प्रकाश (जोधपुर) के हस्त ग्रंथ से

[1] रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ १२५ राजिये रा दूहा (स्वामीजी) सोरठे राजिया के (बालकी किशनलाल) राजिये के सोरठ (महनोत) राजिये के सोरठे (भगवसिंह)

[2] राजस्थान साहित्य समिति बिसाऊ के महाकवि ईसरदास आसन से श्री मनोहर शर्मा द्वारा दिया गया भाषण वरदा ११३ पृ ७१ भा १ कस्तूरी-बहुलरी (डॉ बहल)

कष्ट भी भुगतना पड़ा था। देवी के आप भक्त थे। ७ वर्ष की अवस्था में आपका स्वर्गवास हुआ। आपकी 'करणी स्तुति' 'पाबूजी रा सोरठा' 'करणी बहोतरी' आदि कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। दोहे का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

> सेवां तिरिया साथ पति बोरो मांडो पड़ै।
> ऐ भर बैठा प्राज सिव स्याळ है सांवरा॥

कविराव बख्तावर[1]

श्री मुलराम के पुत्र कवि बख्तावर का जन्म सं १८७ में बसी (मेवाड़) नामक गांव में हुआ था। टांक शाखा के राव थे। मेवाड़ के महाराणाओं के दरबार में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। संवत् १९२१ में इनका स्वर्गवास हुआ। ब्रज और राजस्थानी दोनों भाषाओं के कवि रूप में इनकी ख्याति है। इनके ग्यारह ग्रंथ बतलाये जाते हैं जिनमें से 'केहर प्रकाश (प्रकाशित) बड़ा प्रसिद्ध है। ठा अर्जुनसिंह (बसी-मेवाड़) पर लिखा गया एक मरसिया देखिये—

> बहु विध वेवरण बोय बरम नाव खेवरण भरा।
> (म्हारा) सतगुरु तू सीसोद भावे इक बर भजन सी॥

सांदू रामसिंह

इनका जन्म सं १८७ में एवं देहान्त सं १९१९ में हुआ। इनके पिता मारवाड़ के गोड़वाड़ प्रान्त में मिरजेसर ग्राम निवासी थे। उनका नाम शक्तिदान था। रामसिंह भौर भक्त एवं कवि थे। गायों की रक्षा एवं समाज में भक्ति-प्रचार के कारण आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपके लिखे लगभग ४ मोतिया रा दूहा' बतलाये जाते हैं किन्तु सभी की प्राप्ति नहीं होती है। उदाहरणार्थ एक दोहा देखिये—

> राखे हस न राम मार्गे नह मीमां मुरो।
> वरसरण करसी साम मिटै जनम रा मोतिया॥

रूपचन्द[2]

इनका विवरण अज्ञात है। इनकी 'दोहाशतक' प्राप्त होती है जिसमें लिपि सं १८०१ अंकित है अतः कवि का रचनाकाल इससे पूर्व ही होना चाहिये। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

> बैठे दिन बैठा हुवै कहर तपै किरणाळ।
> ठाठी बर चाहिजि तपण कठिन गिरीखम काळ॥

रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ १४७ प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ५, पृ २ केहर प्रकाश (प्रथम संस्करण)

[1] वरदा २।१ पृ १२ पर श्री सीताराम मालस का लेख।

[2] मरुभारती २।२ पृ २१ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रंथांक ४११४ (१) (प्रतिलिपि लेखक के पास)

सूर्यमल्ल मिश्रण[1]

चारण चण्डीदान के सुपुत्र सूर्यमल्ल या सूरजमल का जन्म सं० १८७२ में बूंदी में हुआ। ये बड़े विद्वान एवं उद्भट कवि थे। डिंगल और पिंगल पर इनका समान अधिकार था। इनकी मृत्यु सं० १९२० में हुई। इनके वीरसतसई, वंशभास्कर छन्दोमयूख आदि कई ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। राजस्थानी के श्रेष्ठतम दोहाकारों में इनका स्थान है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सुत मारो रण-रण सिवो वधू बळा बाम।
सखिया डूंगर साख रा सासू घर न समाय ॥

महडू रिडमल[1]

चारण कवि महडू रिडमल का परिचय अज्ञात है। इनकी रचना के आधार पर इनका रचनाकाल सं० १८७१ माना जा सकता है। जोधपुर में सतसई लिखी गई है और स्वयं कवि द्वारा ही लिखित है अतः जोधपुर या आसपास ही कवि का निवास माना जा सकता है। इनकी वाणी वर्णन कृतियाँ बताई जाती हैं। सिद्धराज सतसई का एक दोहा प्रस्तुत है—

कुण मण मर्द कपाळ ल दा बरण हरबार बतां।
महमा तुम्ह मुझाळ, मूम्ह न आवै कहण मह ॥

महाराणा सज्जनसिंह[3]

उदयपुराधीश महाराणा सज्जनसिंह बड़े काव्यप्रेमी थे। इनका समय सं० १८७४ है। आपने 'रसिकविनोद' में गीत और रासो में दोहों का प्रासंगिक प्रयोग किया है। यथा—

फबै मदन मद छाकिया सुख मर बावा सैण।
सार हिमन्त अपार सुख साबाह बावां सैण ॥

अजीतसिंह महता[4]

जसलमेर के दीवान श्री शालमसिंह के पोते एवं श्री लक्ष्मणसिंह के पुत्र अजीतसिंह महता का जन्म सं० १८८९ मे हुआ। इनकी लिखी ६ पुस्तकों का उल्लेख मिलता है, किन्तु सभी प्राप्य नहीं है।

कमजी[5]

इनका रचनाकाल लगभग सं० १८८२ से सं० १८९५ के मध्य अनुमानित है। ये मेवाड़

---

[1] रा० भा० सा० (डॉ० मेनारिया) पृ० २१८

[2] राजस्थानी शोध संस्थान में सुरक्षित 'सिद्धराज सतसई' की प्रतिलिपि से श्री नारायणसिंह भाटी के सौजन्य से प्रतिलिपि प्राप्त।

रसिक विनोद पृ० २४

[4] मरुभारती, ६।१ पृ० ६४ पर श्री दीनदयाल ओझा का लेख।

[5] प्राचीन राज० गीत भाग ४ पृ० २५

केसरीसिंह सोदा[1]

इनका जन्म सं १८२७ में हुआ। ये मेवाड़ के सोन्याणा गांव के निवासी और सोदा बारहठ कुल में उत्पन्न चारण हैं। इनके पिता का नाम खेमराज था। 'प्रतापचरित' 'रूठीराणी' आदि पांच-छः ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है।

महाराज चतुरसिंह

मेवाड़ के राजघराने से इनका सम्बन्ध था। इनके पिता सुरतसिंह और दादा प्रतापसिंह थे। सं १९३६ में आपका जन्म हुआ। पत्नी की मृत्यु के बाद इन्होंने वैराग्य में ही अपना जीवन बिताया। उदयपुर के पास सुखेर नामक गाँव में आप तपस्वी की भांति रहते थे। सं १९८६ में इनका देहान्त हो गया। डॉ मेनारिया ने इनको मीरां के बाद राजस्थानी का मेवाड़ में सर्वाधिक लोकप्रिय कवि माना है। इनके लगभग १६ ग्रंथ बतलाये गये हैं। इनके दोहों में शांत-रस और वैराग्य-भावना के दर्शन मिलते हैं—

भावै वो भुगताय दुखा दुख दीजै सभी।
खोळा यूं खिसकाय मत दीजै मावेसरी॥

रावत मुखार्नासिंह

भगवानपुरा (मेवाड़) के रावत मुखार्नासिंह का जन्म सं १९१२ में हुआ। 'मर्मअमोल' तथा अन्य अनेक फुटकर रचनाएँ इनके द्वारा रचित है। ये इतिहास-प्रेमी और मर्मज्ञ विद्वान थे। इनका स्वर्गवास सं २ ११ में हुआ। इनके द्वारा ठाकुर जोरावरसिंह राठौड़ (मोठि-माणा-कृष्णगढ़) की मृत्यु पर लिखे गये मरसिये में से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

के भेळौ भेळा करै, किस्ता बाई कोट।
(पग) तें भेळी चुपकी तसी चौडे खानी चोट॥

इस काल के कुछ प्रमुख दोहाकारों का परिचय दिया गया किन्तु अनेक फुटकर कवि दोहाकार भी इस काल में है। कुछ ऐसे दोहाकारों का नामोल्लेख यों है —

उमेदराम देवकर्ण सागरजी रसिकबिहारी भैरूकवि गौरीबाई, मेघराज साहूनाथ तेजराम ग्राशिया चतुरदास कान्हड़दास भारतदास बुलाकदी मनसदास नरोत्तमपुरी श्यामलदास गमादीन आदि।

मध्यकालीन राजस्थानी दोहा-साहित्य के कुछ प्रमुख दोहाकारों का परिचय अति संक्षिप्त में प्रस्तुत किया गया है किन्तु इनके अतिरिक्त कितने ही दोहे और दोहाकार अभी

रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ २६१
वही पृ २१८
रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ २७१ प्राचीन राज गीत भाग ५ पृ १११

प्रकाश में ही नहीं आ सके हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि मध्यकाल का साहित्य अधिकांश रूप में हस्तलिखित प्रतियों में लाल कपड़ों में बंधा लोगों की कोठरियों में अंधकार सेवन कर रहा है। व्यक्तिगत स्वार्थों से उठ कर जब लोग आज अपने इन सारस्वत रत्नों को पाठकों को दिखलाने का साहस कर सकेंगे तब अनेक कवियों का परिचय साहित्य-जगत को हो सकेगा। वैसे इस निबन्ध में कई नये कवियों का प्रथम बार परिचय हो रहा है।

इसके अतिरिक्त राजस्थानी दोहा-साहित्य के मध्यकाल का एक बड़ा अंश ऐसा है जिसके रचयिताओं की जानकारी नहीं प्राप्त होती। कुछ काल के काले करों द्वारा कवलित हो गये अनेक अनपढ़ एवं अनजान जनता द्वारा नष्ट कर दिये गये कितने ही रचनाकार भुला दिये गये और सैकड़ों कवियों ने अपनी महत्ता को अंधकार में ही रखना उचित समझ कर अपने 'प्रिय' के महत्त्व को प्रकाशित किया। अतः इन अज्ञातनाम दोहाकारों के विषय में निश्चित रूप से कहना तो दूर रहा किसी कल्पना का संकेत करना भी कठिन है, क्योंकि लोकजीवन में सहस्रों दोहे तो समाज की जिह्वाओं पर जीवित रहे और इनके लेखक विस्मरित कर दिये गये।

के महाराणा भीमसिंह के पुत्र जवानसिंह के समकालीन थे। महाराणा की मृत्यु पर इन्होंने मरसिये-दूहे रचे थे जो बड़े ही प्रभावशाली हैं। यथा—

माथे मारण मौड़ भटियाणी कीधो मतौ।
चाड़े जळ चीतोड़ उदपुर पूगी रांण सथ॥

सम्मानबाई

कविया रामनाथ की पुत्री सम्मानबाई का जन्म सं० १८८ के लगभग अलवर के सिहाली ग्राम में हुआ था। इनका विवाह मावद के ठा० रामदयाल पास्हावत से हुआ था। पतिव्रता सोले आदि इनकी अनेक रचनाएँ हैं। सोलों के बीच-बीच में दोहों का प्रयोग हुआ है। यथा—

मिथलापुर री कामणी रैसम गांठ घुळाय।
जद चतुराई जाणस्यां खोलो की रघुराय॥

रामदास

इनका रचनाकाल सं० १९० है। गोवारासो' नामक कृति में कुछ दोहे प्राप्त हैं। एक दोहे का उदाहरण देखिये—

सौड़ चरै मूकी कवन जब खावै गुड़ खांड।
कहाँ विरत कहाँ खाभकी कहाँ कवन कहाँ खांड॥

मुरारिदान

इनका जन्म सं० १८२५ में हुआ था। ये सूर्यमल्ल मिश्रण के दत्तक पुत्र थे। सं० १९५४ में इनका देहान्त हुआ। 'डिंगल कोष' इनकी बड़ी प्रसिद्ध रचना है। ये डिंगल और पिंगल दोनों में रचना करते थे। 'डिंगल कोष' में अनेक दोहे रचे गये हैं।

राठौड़ बख्तावरसिंह

इनका परिचय अज्ञात है किन्तु अन्तःसाक्ष्य से इनका रचनाकाल सं० १८९९ के आसपास ठहरता है। ये रतलाम के नरेश कहे गये हैं। सूर्यमल्ल मिश्रण से इनका गहरा परिचय रहा था। इनकी 'भैरव-बावनी' मिलती है। उदाहरणार्थ एक दोहा देखिये—

हाथी नै मरण हेक कीड़ी नै नित हेक कण।
विधना देत विसेस भूख प्रमांणे भैरिया॥

मरुभारती १।४ पृ० ४५ पर श्री सीताराम लाळस का लेख
मरुभारती २।३ पृ० २६ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख
डिंगल कोष
भैरवबावनी (सं० मयंक)

महाराज इन्द्रभाण[1]

इनका परिचय अप्राप्य है। अठारहवीं शताब्दी के मध्य की एक प्रति में इनके द्वारा रचित दोहे लगभग ६ पृष्ठों में मिले हैं जो पन्नावत अमरसिंह द्वारा लिपिकृत हुए हैं।

किसनाजी आढ़ा

दुरसाजी की वंश-परम्परा में दूल्ह के पुत्र किसनजी या किसनाजी का जन्म हुआ था। ये उदयपुर के महाराणा भीमसिंह के कृपापात्र थे। 'भीमविलास' 'रघुवरजसप्रकास'[2] आदि इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है—

हर हर जप मनम कर हर, पख्खर अहमत पोष।
व्यापक नर हर जगत विच अंतर मत आलोष॥

बारहठ बालाबक्स[3]

नागरी प्रचारिणी-सभा काशी को ७) रु का दान देकर 'बालाबक्स-राजपूत चारण पुस्तक-माला' प्रारम्भ कराने वाले श्री बालाबक्स का जन्म जयपुर राज्य के हणूतिया नामक ग्राम में सं १९१२ में हुआ था। ये पालावत शाखा के चारण थे एवं इनके पिता का नाम निरसदान था। इनका देहान्त सं० १९८८ में हुआ। आप द्वारा लिखे गये अनेक ग्रंथों का उल्लेख है।

कृपाराम बणसूर

चारण कवि कृपाराम बणसूर का वृत्तान्त ज्ञात नहीं है किन्तु इनका रचनाकाल सं १९२ के बाद का होना सम्भव है। इनकी 'अगुणा गजराज री बात' मिली है जिसमें दोहा का भी खूब प्रयोग है। यथा—

तुम नाजीमीदार है मिश्र नृप बाहू पसार।
पहुरत कमम पाय है बहू जानत नवार॥

रामदयाल[4]

इनका जन्म-काल अज्ञात है। देथा चारण मिर्धीदान के ये पुत्र थे। इनका स्वर्गवास सं १९२ में हुआ। बचपन का नाम मकरदान था किन्तु बाद में साधुत्व में सम्मिलित हो जाने से रामदयाल नाम हुआ। ये संस्कृत डिंगल पिंगल आदि के प्रकाण्ड ज्ञाता थे।

---

[1] राजस्थान प्राच्य राजस्थानी मैनुस्क्रिप्ट्स री सूची सादूल स्मारक से क्रम संख्या १ विषयांक १.८ पत्र १ ३६
[2] रघुवरजसप्रकास (सं सीताराम लालस)
[3] रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ २६
मरुभारती ७।१ पृ १ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख
[4] रा भा सा (डॉ मेनारिया) पृ २६८

केसरीसिंह सोदा[1]

इनका जन्म सं. १८२७ में हुआ। ये मेवाड़ के सोन्याणा गांव के निवासी और सोदा बारहठ कुल में उत्पन्न चारण हैं। इनके पिता का नाम खेमराज था। 'प्रतापचरित्र' 'रूठीराणी' आदि पांच-छः ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है।

महाराज चतुरसिंह[2]

मेवाड़ के राजघराने से इनका सम्बन्ध था। इनके पिता सूरतसिंह और दादा शम्भुसिंह थे। स. १९३६ में आपका जन्म हुआ। पत्नी की मृत्यु के बाद इन्होंने वैराग्य में ही अपना जीवन बिताया। उदयपुर के पास सुखेर नामक गांव में आप तपस्वी की भांति रहते थे। सं. १९८६ में इनका देहान्त हो गया। डॉ. मेनारिया ने इनको मीरां के बाद राजस्थानी का मेवाड़ में सर्वाधिक लोकप्रिय कवि माना है। इनके लगभग १६ ग्रंथ बतलाये गये हैं। इनके दोहों में शांत-रस और वैराग्य भावना के दर्शन मिलते हैं—

भावै जो भुगताय दूजा दुख दीजै सभी।
चोखा धू खिसकाय मत दीजै मातेसरी॥

रावत सुजानसिंह[3]

भगवानपुरा (मेवाड़) के रावत सुजानसिंह का जन्म सं. १९३५ में हुआ। 'भवेग्रमोम' तथा अन्य अनेक फुटकर रचनाएँ इनके द्वारा रचित हैं। ये इतिहास-प्रेमी और मर्मज्ञ विद्वान थे। इनका स्वर्गवास सं. २०११ में हुआ। इनके द्वारा ठाकुर जोरावरसिंह राठौड़ (गाठि-माणा-छप्पनिया) की मृत्यु पर लिखे गये मरसिये में से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

के मेलै मेला करै किल्ला खाई कोट।
(पण) ते मेली तुपकी तणी चौड़े छाती चोट॥

इस काल के कुछ प्रमुख दोहाकारों का परिचय दिया गया किन्तु अनेक फुटकर कवि दोहाकार भी इस काल में हैं। कुछ ऐसे दोहाकारों का नामोल्लेख यों है —

उमेदराम देवकर्ण सामरजी रसिकबिहारी भैरू कवि गौरीबाई, मेवराज लालूभाण देवराम ग्राढिया चतुरदान कानहदास भारतदान गुलाबजी भगवदास गणेशपुरी श्यामलदास नवाबीन आदि।

मध्यकालीन राजस्थानी दोहा-साहित्य के कुछ प्रमुख दोहाकारों का परिचय अति संक्षिप्त में प्रस्तुत किया गया है, किन्तु इनके अतिरिक्त कितने ही दोहे और दोहाकार अभी

---

1. रा. भा. सा. (डॉ. मेनारिया) पृ. २११
2. वही पृ. २२८
3. रा. भा. सा. (डॉ. मेनारिया) पृ. २७१ प्राचीन राज. गीत भाग ६ पृ. ११।

प्रकाश में ही नहीं था सके हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि मध्यकाल का साहित्य अधिकांश रूप में हस्तलिखित प्रतियों में लाल कपड़ों में बंधा सोवों की कोठरियों में अंधकार सेवन कर रहा है। व्यक्तिगत स्वार्थों से उठ कर जब लोग काम अपने इन 'बाबीऐ भगो' को शोधकों को दिखलाने का साहस कर सकेंगे तब अनेक कवियों का परिचय साहित्य-जगत को हो सकेगा। वैसे इस निबन्ध में कई नये कवियों का प्रथम बार परिचय हो रहा है।

इसके अतिरिक्त राजस्थानी दोहा-साहित्य के मध्यकाल का एक बड़ा भाग ऐसा है जिसके रचयिताओं की जानकारी नहीं प्राप्त होती। कुछ काल के काले करों द्वारा कवलित हो गये अनेक जनपद एवं प्रलजाल जनता द्वारा नष्ट कर दिये गये कितने ही रचनाकार भुला दिये गये और सैकड़ों कवियों ने अपनी महत्ता को अंधकार में ही रखना उचित समझ कर अपने 'प्रिय' के महत्व को प्रकाशित किया। अतः इन अज्ञातनाम दोहाकारों के विषय में अधिकृत रूप से कहना तो दूर रहा किसी कल्पना का संकेत करना भी कठिन है, क्योंकि लोकजीवन में सहायक दोहे तो समाज की जिह्वाओं पर जीवित रहे और इनके लेखक विस्मरित कर दिये गये।

मध्यकालीन राजस्थानी वेलि साहित्य

डॉ॰ नरेन्द्र भानावत

मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में विषय विविधता छन्द-वैविध्य एवं शैली-वैविध्य का पर्याप्त विकास हुआ। रीति नीति प्रीति कीर्ति आदि क्षेत्रों में इस साहित्य ने खूब दौड़ लगाई। वेलि-साहित्य की सरिता का इतिहास भी इस काल में अपने पूर्ण यौवन-बाढ़ पर रहा। 'आदिकालीन राजस्थानी वेलि साहित्य'[1] लेख में हम १६वीं शती तक की ११ वेलियों का परिचय प्रस्तुत कर चुके हैं। प्रस्तुत निबन्ध में मध्यकालीन राजस्थानी वेलियों का सामान्य परिचय दिया जा रहा है।

स्थूल रूप से आलोच्य-काल (१७वीं शती व १९वीं शती) की रचनाओं के तीन वर्ग हैं—

१ – जैन वेलि साहित्य
२ – चारणी वेलि साहित्य
३ – लौकिक वेलि साहित्य

जैन वेलि साहित्य के अन्तर्गत आलोच्य काल की निम्नलिखित वेलियां आती हैं—

रचना	रचनाकार	रचना-काल
१ – चन्दनबाला वेलि	अजित देव सूरि	सं १५६७-१६२१ के मध्य
२ – धन्नारस वेलि प्रबन्ध	साधुकीर्ति	सं १६१४ के आसपास
३ – प्रभु बाहुबलि वेलि	शांतिदास	सं १६२५ (लिपिकाल)
४ – जइतपद वेलि	कनकसोम	सं १६२५
५ – गुरु वेलि	भट्टारक धर्मदास	सं १६३८ के पूर्व
६ – स्थूलिभद्र मोहन वेलि	जयवंत सूरि	सं १६४२
७ – नेमि राजुल बारहमासा वेल प्रबन्ध	जयवंत सूरि	सं १६५ के आसपास
८ – वीर वर्द्धमान जिन वेलि	सकलचन्द्र उपाध्याय	सं १६४३ ६ के मध्य
९ – हीरविजय सूरि देशना वेलि	सकलचन्द्र उपाध्याय	सं १६५२ के बाद
१ – ऋषभ गुण वेलि	ऋषभदास	सं १६६६-८७ के मध्य

---

[1] राजस्थानी साहित्य का आदिकाल परम्परा-भाग १२, पृ ८-८९

के बीच द्वन्द्व-युद्ध होते हैं जिनमें बाहुबलि विजयी होते हैं। बाहु-युद्ध में बाहुबली भरत को जमीन पर न पटक कर कंधे पर उठा लेते हैं पर भरत उन्हें मारने के लिए चक्र चलाते हैं। इस दृश्य को देख कर बाहुबलि को संसार से वैराग्य हो जाता है और वे दीक्षा धारण कर उग्र तप करते हैं। उनके आस-पास वृक्ष व लताएँ उग आती हैं सर्प बिल बना लेते हैं, फिर भी वे अविचल रहते हैं। अन्त में भरत तपस्वी मुनि बाहुबलि की वन्दना करने के लिए आते हैं और समस्त राग-द्वेषों से मुक्त होकर बाहुबलि सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं। बेलि के साथ 'लघु' शब्द कथा की संक्षिप्तता का द्योतक है।

जइतपद बेलि—

इसके रचयिता कनकसोम खरतरगच्छीय अमरमाणिक्य के शिष्य साधुकीर्ति के गुरु-भ्राता थे। आसकरण नाहटा परिवार में इनका जन्म हुआ था। सं. १६४८ में जब जिनचन्द्र सूरि सम्राट अकबर के आमन्त्रण पर लाहौर पधारे तब ये भी साथ थे। प्रस्तुत बेलि की रचना सं. १६२५ में आगरा में हुई थी। इसका मुख्य विषय पौषध सम्बन्धी ऐतिहासिक शास्त्रार्थ चर्चा से है। यह चर्चा तपागच्छ और खरतरगच्छ वालों के बीच सम्राट् अकबर की सभा में हुई थी। इसमें खरतरगच्छीय साधुकीर्ति ने तपागच्छीय मुनि बुद्धिसागर को निरुत्तर किया था। ४६ छन्दों में कवि ने तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का सुन्दर चित्रण किया है।

गुरु बेलि—

इसके रचयिता धर्मदास दिगम्बर सम्प्रदाय के सुमतिकीर्ति के शिष्य भट्टारक गुणकीर्ति के शिष्य थे। २८ छन्दों की इस रचना में बेलिकार ने अपने गुरु भट्टारक गुणकीर्ति का जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है। गुणकीर्ति का समय १७वीं शती का प्रारम्भ रहा है। ये परम सुन्दर प्रतापी और जगत-वन्दनीय थे। इनकी माता का नाम धरियादे था। चतुर्विध संघ ने मिल कर डूंगरपुर में इनके कंधों पर गच्छ का भार डाला। देश के विभिन्न प्रान्तों में घूमते रहे। चरित्र-पालन और तप-संयम में ये गणधर के समान धीर थे। इनके गुणों की थाह लेना समुद्र की लहरों या आकाश के तारों को गिनना है।

स्थूलिभद्र मोहन बेलि—

इसके रचयिता जयवन्त सूरि तपागच्छीय विनयमण्डन के शिष्य थे। इनका एक नाम गुणसौभाग्य भी था। २१२ छन्दों की यह रचना स्थूलिभद्र और कोश्या के प्रेमपूर्ण जीवन से सम्बन्धित है। स्थूलिभद्र कल्पक की वंश-परम्परा में होने वाले नवमें नंद राजा के मंत्री शकडाल के पुत्र थे। ये कोश्या वेश्या के प्रीति-पात्र थे। बारह वर्ष तक उसके साथ सुख-भोग किया था। अन्त में पिता की मृत्यु से विरक्त होकर इन्होंने संभूतिविजय से दीक्षा ग्रहण कर 'दुष्कर दुष्करकारी' तप किया और कोश्या वेश्या को आत्म-कल्याण की ओर लगाया।

नेमि राजुल बारहमासा बेल-प्रबन्ध—

इसके रचयिता भी उक्त जयवन्त सूरि ही हैं। ७० छन्दों में रचित इस बेल का सम्बन्ध नेमिनाथ और राजमती

पड़ते हैं और राजमती विरहाभिभूत से मूर्च्छित हो गिर पड़ती है। कवि ने राजुल की विरह-भावना के लिए बारहमासा-पद्धति को अपनाया है। प्रारम्भ के दूहे में प्रत्येक मास का उल्लेख कर आगे की राग मल्हार देशी में तद्जन्य राजुल की विरह-भावना की विवेचना की गई है।

वीर वर्द्ध मान जिन वेलि—

इसके रचयिता सकलचन्द्र उपाध्याय तपागच्छीय आचार्य हीरविजय सूरि के शिष्य थे। प्रस्तुत वेलि २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के पंचकल्याणक उत्तवगर्भकल्याणक जन्मकल्याणक तपकल्याणक ज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक—से सम्बन्ध रखती है। महावीर के जन्म होने पर राज्य में ऋद्धि-सिद्धि की वृद्धि हुई थी अतः इन्हें वर्द्धमान कहा गया।

हीरविजय सूरि देशना वेलि—

इसके रचयिता सकलचन्द्र उपाध्याय आचार्य हीरविजय सूरि के शिष्य थे। ११३ छंदों की यह रचना हीरविजय सूरि की देशना से सम्बन्ध रखती है। प्रारम्भ के २८ छंदों में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की गई है। बाद के छंदों में बतलाया गया है कि हीरविजय सूरि ने पाटन गुजरात अहमदाबाद आदि स्थानों में घूम कर भव्य जीवों को निर्जरा अभयदान धर्मप्रभावना पौषध सामायिक प्रतिक्रमण जीव-दया आदि का स्वरूप समझाते हुए जीवन में धर्म का महत्व बतला कर आत्म-कल्याण करने की प्रेरणा दी थी।

ऋषभगुण वेलि—

इसके रचयिता ऋषभदास प्राग्वटीय श्रावक कवि थे। इनका जन्म खम्भात में हुआ था। इनकी माता का नाम सरूपादे तथा पिता का नाम सांगण था। ये धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। काव्यत्व की दृष्टि से ये प्रेमानन्द और अखा के समकक्ष थे। तपागच्छीय आचार्य विजयसेन सूरि को इन्होंने गुरु रूप में अंगीकृत किया था। ७१ पद्यों की इस रचना में भगवान ऋषभदेव के जीवन की प्रमुख घटनाओं—जन्म दीक्षा मुक्ति आदि का उल्लेख करते हुए उनके विवाह का और तत्सम्बन्धी सभी प्रकार के रीति-रिवाजों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

बलभद्र वेलि—

इसके रचयिता सालिग १६वीं शती के कवियों में से थे। २८ छंदों की यह रचना बलभद्र से सम्बन्ध रखती है। बलभद्र कृष्ण के बड़े भाई थे। जैन दर्शन के अनुसार ये नौवें बलदेव कहे जाते हैं। इसमें बलभद्र और कृष्ण की अन्तिम जीवन-झांकी दिखाई गई है।

वासुदेव के बड़े भाई को बलदेव कहते हैं। ये ९ माने गये हैं—१ अचल २ विजय ३ भद्र ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन ६ आनन्द ७ नन्दन ८ पद्म ९ राम (बलराम या बलभद्र)

११ – वसन्त बेलि	सामिग	सं १६६९ (लिपिकाल)
१२ – चार कषाय बेलि	विद्याकीर्ति	सं १६७ के आसपास
१३ – सोमजी निर्वाण बेलि	समयसुन्दर	सं १६७ के आसपास
१४ – प्रतिमाधिकार बेलि	सामत	सं १६७५ (लिपिकाल)
१५ – बृहद् गर्भ बेलि	रत्नाकर गणि	सं १६८
१६ – पंचमति बेलि	हर्षकीर्ति	सं १६८३
१७ – प्रवचन रचना बेलि	जिनसमुद्र सूरि	सं १६६७-१७४ के मध्य
१८ – बारह भावना बेलि	जयसोम	सं १७ ३
१९ – आदिनाथ बेलि	भट्टारक धर्मचन्द्र	सं १७३
२ – अमृतबेलि नी मोटी सज्झाय	यशोविजय	सं १७० १९ के मध्य
२१ – अमृतबेलि नी नानी सज्झाय	यशोविजय	"
२२ – सुजस बेलि	कान्तिविजय	सं १७४५ के आसपास
२३ – नेम राजुल बेल	चतुरविजय	सं १७७६
२४ – जीव बलड़ी	देवीदास	सं १८२४ के आसपास
२५ – वीर जिन चरित्र बेलि	ज्ञान उद्योत	सं १८२५ के आसपास
२६ – सुम बेलि	वीरविजय	सं १८६
२७ – स्थूलिभद्र नी शीयल बेल	वीरविजय	सं १८६२
२८ – नेमिश्वर स्नेह बेलि	उत्तमविजय	सं १८७८

चारणी बेलि साहित्य के अन्तर्गत आलोच्य-काल की निम्नलिखित बेलियाँ आती हैं—

२९ – किसनजी री बेल	सांवला करमसी रूपेचा	सं १६ के आसपास
१ – गुण चाणिक बेल	चूंडो दधवाड़ियो	१७वीं शती का प्रारंभ
३१ – देईदास जैतावत री बेल	मची माखोत	सं १६११ के आसपास
३२ – रतनसी खींवावत री बेल	दूदो विसराल	सं १६१४ के आसपास
३३ – उदैसिंघ री बेल	रामा सांदू	सं १६१६ के आसपास
३४ – चांदाजी री बेल	बीठू मेहा सूसमाली	सं १६२४ के बाद
३५ – किसन रुकमणी री बेलि	राठौड़ पृथ्वीराज	सं १६३७-४४ के मध्य
३६ – त्रिपुर सुन्दरी री बेल	जसवन्त	सं १६४३ (लिपिकाल)
३७ – रामसिंघ री बेल	सांदू माला	सं १६५३ के आसपास
३८ – महादेव पार्वती री बेल	आढ़ा किसना	सं १६६०-१७ के मध्य
३९ – राव रतन री बेल	कल्याणदास महड़ू	सं १६६४-८८ के मध्य
४ – सूरसिंघ री बेल	माडण चोलो	सं १६७२
४१ – रघुनाथ चरित नव रस बेलि	महेशदास	१ वीं शती का प्रारंभ
४२ – अनोपसिंघ री बेल	माडण वीरभाण	सं १७२६ से पूर्व

लौकिक बेलि साहित्य के अन्तर्गत आलोच्य-काल की निम्नलिखित बेलियाँ आती हैं—

४३ – वीर गुमानसिंघ री बेल		१८वीं शती का मध्य

४४ – मकन बेल	१६वीं शती (लिपिकाल)
४५ – बाबा गुमान भारती री बेल भिमनजी कविया	१६वी शती का उत्तरार्ध

जैन बेल साहित्य

चन्दनबाला बेलि

इसके रचयिता सकलदेव सूरि पल्लिवालगच्छीय आचार्य महेश्वर सूरि के पट्टधर थे। वि सं १५६१ से पूर्व ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जा चुके थे। प्रस्तुत बेलि का संबंध चन्दनबाला से है। चन्दनबाला सोलह सतियों में से तीसरी सती मानी जाती है। इसके पिता दधिवाहन बिहार प्रान्त की चम्पापुरी (चम्पारन) नगरी के राजा थे। इसकी माता धारिणी वीर महिला थी। कौशाम्बी नगरी के राजा शतानीक चन्दनबाला के मौसा थे। इन्होंने राज्य-लोभ मे पड़ कर दधिवाहन पर आक्रमण किया था जिसके कारण चन्दनबाला का अनेक कष्ट उठाने पड़े। वह वेश्या के हाथ बिकती है सेठानी मूला द्वारा भौंयरे में बन्द भी जाती है। पर अन्त में भगवान महावीर के कठोर अभिग्रह को पूर्ण करने का श्रेय चन्दनबाला को ही मिलता है और वही दीक्षा अंगीकृत कर ३६ हजार साध्वियों का नेतृत्व करती है।

सम्यक्त्व बेलिप्रबन्ध —

इसके रचयिता साधुकीर्ति खरतरगच्छीय मतिवर्धन मेरुतिलक दयाकलश अमर माणिक्य के शिष्य तथा प्रोसवाल सचंतीय सचिती गोत्र के शाह वस्तुपाल के पुत्र थे। सं १६२५ को आगरे मे अकबर की सभा मे तपागच्छ वालों को पौषध की चर्चा में निरुत्तर किया था। प्रस्तुत बेलि मुख्य रूप से युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि से संबंध रखती है पर सुधर्मास्वामी स लेकर जिनचन्द्र सूरि तक की खरतरगच्छीय पाट-परम्परा का जो उल्लेख किया गया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। शीर्षक 'सम्यक्त्व बेलिप्रबन्ध' से सूचित होता है कि इस छोटी-सी कृति में कवि ने धर्म मर्म भर दिया है।

लघु बाहुबलि बेलि —

इसके रचयिता दिगम्बर जैन संत कवि शान्तिदास कल्याणकीर्ति के शिष्य थे। प्रस्तुत बेलि का संबंध आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र बाहुबलि से है। ये बड़े सुन्दर और बली थे। इन्हें प्रथम कामदेव कहा गया है। ऋषभदेव ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्य सौंप कर तथा बाहुबलि को पोदनपुर का अधिकारी बना दीक्षा धारण कर लेते हैं। भरत दिग्विजय के लिए निकलते हैं। साठ हजार वर्षों के बाद जब वे वापिस लौटते है तब बाहुबलि द्वारा अधीनता स्वीकार न करने के कारण उनका चक्र नगर के बाहर ही रह जाता है। दूत भेजने पर भी बाहुबलि अधीनता स्वीकार नहीं करते। इस पर दोनों भाइयों

विशेष परिचय के लिए देखिये लेखक का 'चन्दनबाला बेलि' शीर्षक लेख मधुमती वर्ष १ अंक ३

द्वीपायन मुनि के अभिशाप से जब द्वारिका नगरी जल उठी तब बलभद्र और कृष्ण प्राण रक्षा के लिए कौशम्बी वन की ओर भाग निकले। रास्ते में कृष्ण को प्यास लगी व एक वृक्ष के नीचे सो गये और बलभद्र पानी की खोज में गये। उधर जराकुंमार ने कृष्ण को हरिण समझ कर तीर चला दिया जिससे कृष्ण का प्राणान्त हो गया। बलभद्र मोह-ग्रस्त हो कर मृत कृष्ण को ६ मास तक कंधे पर लादे-लादे भटकते रहे। अन्त में देवताओं ने प्रतिबोध देकर बलभद्र को मोह-मुक्त किया। बलभद्र दीक्षित होकर जंगल में घूमते रहे। एक दिन रथकार के पास मुनि बलभद्र भिक्षा के लिये गये। भावनाशील मृग भी उनके साथ था। अचानक आंधी से वृक्ष की डाल गिर पड़ी जिससे तीनों का प्राणान्त हो गया। भावना-शुद्धि के कारण तीनों ५वें देवलोक में गये।

चार कषाय वेलि

इसके रचयिता विद्याकीर्ति खरतरगच्छीय पुण्यतिलक के शिष्य थे। प्रस्तुत वेलि १६ छन्दों की अपूर्ण रचना है। इसमें चार कषाय[1]—क्रोध मान माया लोभ का वर्णन किया गया है।

सोमजी निर्वाण वेलि—

इसके रचयिता महाकवि समयसुन्दर सकलचन्द्र गणि के शिष्य थे। पोरवाड़ जाति के रूपसी शाह की भार्या लीलादे की कुक्षि से सांचोर में इनका जन्म हुआ था। ये तर्क व्याकरण दर्शन एवं जैनागमों के गंभीर अध्येता एवं प्रकाण्ड पंडित थे। प्रस्तुत वेलि संघपति सोमजी के यश-वर्णन से संबंध रखती है। सोमजी का जन्म मंत्रीश्वर वस्तुपाल के पुनीत वंश में हुआ था। श्री जिनचन्द्र सूरि के सम्पर्क में आकर ये जैन धर्म में दृढ़ हुए। इन्होंने तीर्थ-यात्रा नवीन बिम्ब निर्माण जीर्णोद्धार और स्वधर्मी वात्सल्य आदि शुभ कार्यों में लाखों रुपये व्यय कर के जैन शासन की महती सेवा और उत्कट प्रभावना की थी। इसीलिए इन्हें संघपति'[2] का पद प्रदान किया गया। १ छन्दों की यह छोटी सी रचना अर्थ-व्यंजना एवं लाक्षणिकता से परिपूर्ण है। कवि का कथन है कि जो लोग सोमजी के मरण की बात करते हैं वे मूर्ख हैं क्योंकि उसकी मृत्यु नहीं हुई है। वह तो स्वर्ग में नलिनी गुल्म विमान (प्रथम देवलोक) देखने गया है। उसने मानशाह और कर्मचन्द्र को सब प्रकार की राज-काज संबंधी नीति बतलाई थी। उसी रीति-नीति को पूछने के लिए हरि ने उसे स्वर्ग में आमंत्रित किया है।

लेखक ने इसका विशेष परिचय 'साहित्य सन्देश' भाग २२ अंक ४ (अक्टूबर, १६६) पृ १ ६ पर प्रस्तुत किया है।

[1] जो शुद्ध स्वरूप वाली आत्मा को कलुषित अर्थात् कर्म-मल से मलिन करते हैं वे कषाय कहलाते हैं—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग १ पृ ११७

[2] 'संघपति' शब्द का अर्थ है—सम्पूर्ण व्यय उठा कर जैन तीर्थ यात्रा के निमित्त संघों का आयोजन करने वाला व्यक्ति (नेता या पति)

प्रतिमाधिकार वेलि—

इसके रचयिता कोई पंडित सामल है। इसका संबंध प्रतिमा-पूजन से है। १६वीं शती में एक धार्मिक क्रांति हुई। इसके सूत्रधार थे लोंकाशाह। इन्होंने मूर्तिपूजा का निषेध किया था। वेलिकार ने १८ छन्दों की इस रचना में आगमों का उल्लेख कर प्रतिमाधिकार की चर्चा की है।

बृहद धर्म वेलि—

इसके रचयिता रत्नाकर मणि सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध के कवि थे। १ ८ छन्दों की इस रचना में गर्भगत जीव का विकास-क्रम तथा जन्म होने पर १ वर्ष तक की १ अवस्थाएँ—बाला क्रीड़ा मन्दा बला प्रज्ञा हायनी प्रपंचा प्राग्भारा मुम्मुखी और शायिनी—वर्णित हैं। यह वर्णन जैनागम 'तंदुल वयालीय पइण्णय' पर आधारित है।

पचगति वेलि[1]

इसके रचयिता हर्षकीर्ति १७वीं शती के उत्तरार्द्ध में विद्यमान थे। प्रस्तुत वेलि पांच गतियों से सम्बन्ध रखती है। गति नाम कर्म के उदय से चार गतियां (नरक तिर्यंच मनुष्य और देव) होती हैं। सिद्ध गति गति नाम कर्म के उदय से नहीं होती क्योंकि सिद्धों के कर्मों का सर्वथा अभाव है। यहाँ गति शब्द का अर्थ जहाँ जीव जाते हैं ऐसे क्षेत्र विशेष से है। कुछ प्रतियों में इस वेल का नाम 'चतुर्गति वेलि' भी मिलता है।

प्रवचन रचना वेलि—

इसके रचयिता जिन समुद्र सूरि खरतरगच्छ की वेगड़ शाखा के आचार्य थे। इनका जन्म सं १६७ के लगभग श्री श्रीमाल जातीय शाह हरराज के यहाँ हुआ था। ये वेगड़ गच्छ के आचार्य जिनचन्द्र सूरि के शिष्य थे। प्रस्तुत वेलि केवल ज्ञान प्राप्त होने पर जिनेश्वर भगवान द्वारा दिये गये प्रवचन से संबंध रखती है। प्रथम ढाल में भगवान महावीर के कैवल्य ज्ञान होने पर समवसरण की रचना एवं आठ प्रतिहार्य (अशोक वृक्ष कुसुम वृष्टि, स्फटिक सिंहासन भामण्डल दुन्दुभी छत्र चंवर, इन्द्रध्वजा) तथा चौतीस अतिशय का वर्णन किया गया है। द्वितीय ढाल में भगवान के दर्शनार्थ आने वाले देवी-देवताओं का वर्णन है। तृतीय ढाल में धर्मोपदेशना का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिनधर्म दो प्रकार का है—चारित्र धर्म और श्रुतधर्म। चारित्र-धर्म के फिर दो भेद हैं—देशविरति और सर्वविरति।

बारह भावना वेलि

इसके रचयिता जयसोम तपागच्छीय प्रमोदसोम के शिष्य थे। १२ ढालों की इस वेलि में

---

[1] लेखक ने इसका परिचय प्रस्तुत किया है—'साहित्य सन्देश' भाग २१ अंक ११ मई १९६९

[2] लेखक ने इसका परिचय प्रस्तुत किया है—'शोध-पत्रिका' वर्ष १२, अंक १ पृ १११२।

कवि ने संसार के प्राणियों के हित के लिए बारह भावनाओं—अनित्य भावना अशरण भावना संसार भावना एकत्व भावना अन्यत्व भावना अशुचि भावना आस्रव भावना संवर भावना निर्जरा भावना लोक भावना बोधि-दुर्लभ भावना धर्म भावना का स्वरूप समझाया है।

आदिनाथ बलि—

इसके रचयिता मंडलाचार्य भट्टारक धर्मचन्द्र दिगम्बर जैन थे। सं १७१ में आषाढ़ की नवमी को *महारोठपुर (मारोठ)* में इसकी रचना की गई। इसमें आदिनाथ भगवान ऋषभदेव के पंच-कल्याणक उत्सवों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक तीर्थङ्कर के पंच कल्याणक उत्सव इन्द्रादि देवों द्वारा मनाये जाते हैं।

अमृत बेलि नी मोटी सझाय—

इसके रचयिता श्रीमद् यशोविजय १८वीं शती के पूर्वार्द्ध के कवियों में से थे। हरि भद्र सूरि के समान ये बड़े तार्किक प्रखर विद्वान एवं महान प्रतापी साधु थे। स १६८ में *गुजरात के कनोडु नामक ग्राम में नारायण वणिक की भार्या सोभागदे* से इनका जन्म हुआ। सं १७४३ में डभोई में इनका स्वर्गवास हुआ। संस्कृत प्राकृत-राजस्थानी में इनके कई ग्रंथ मिलते हैं। २१ पद्यों की इस रचना में कवि ने चेतना-सम्पन्न प्राणियों को धर्म-पथ पर निरन्तर बढ़ते रहने का उपदेश दिया है।

अमृत बलि नी नानी सज्झाय—

इसके रचयिता भी श्रीमद् यशोविजय ही हैं। यह १६ पद्यों की छोटी-सी रचना है। *इसमें कवि ने जीवन की सफलता विवेक धारण करने के नेत्रों में विवेक का अंजन* आंजने में तथा आर्तध्यान छोड़ कर शुक्ल ध्यान ध्याने में निहित मानी है। विनय आज्ञापालन परोपकार आदि आत्म-गुणों का सम्बल लेकर ज्ञान-दर्शन और चारित्र्य की प्राप्ति में निरन्तर बढ़ते रहना ही आत्म-साधक का कर्त्तव्य है।

सुजस वेलि—

इसके रचयिता कान्तिविजय अठारहवीं शती के प्रसिद्ध कवियों में से थे। ये तपागच्छ के आचार्य हीरविजय सूरि के प्रशिष्य कीर्तिविजय के शिष्य और उपाध्याय विनयविजय के गुरुभ्राता थे। प्रस्तुत वेलि में श्रीमद् यशोविजय का ऐतिहासिक जीवन-वृत्त वर्णित है।

नेम राजुल वेल—

इसके रचयिता चतुरविजय तपागच्छीय धर्णावपुर शाखा के आचार्य विजयऋद्धि सूरि के प्रशिष्य और रविविजय के शिष्य थे। २४ पद्यों की इस रचना में बाइसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ और उनकी वाग्दत्ता पत्नी राजमती की कथा को ही विस्तार के साथ गाया गया है।

जीव वेलड़ी—

इसके रचयिता देवीदास नामक कोई जैन कवि हैं। २१ पद्यों की इस रचना में जीव की विभिन्न योनियों का वेलड़ी के साथ रूपक बांधा गया है।

वीर जिन चरित्र वेलि[1]

इसके रचयिता मुनि श्री ज्ञानउद्योत तपागच्छीय पुण्यसागर के शिष्य ज्ञानसागर के शिष्य थे। इस रचना में जैनियों के २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर के 'वीरत्व' को प्रकट किया गया है।

शुभ वलि—

इसके रचयिता वीरविजय शुभविजय के शिष्य थे। ये उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के श्रेष्ठ कवियों में से थे। इनके पिता जड़ोधर गुजराती ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम विजया और पत्नी का नाम रमीयात था। इनका बचपन का जन्म-नाम केशव था। एक बार ये बहुत अधिक बीमार पड़ गये और किसी भी डाक्टर से अच्छे नहीं हुए तब काव्य के चरित्र-नायक शुभविजय ने इनके रोग को दूर किया। सं १८४८ में खम्भात में दीक्षा अंगीकृत कर ये शुभविजय के शिष्य बन गये। तब से इनका नाम भी वीरविजय पड़ गया। सं १९ ८ में इनका स्वर्गवास हुआ। प्रस्तुत वेलि की रचना कवि ने अपने गुरु शुभविजय की मृत्यु के बाद सं १८६ में राजनगर (अहमदाबाद) में की थी। इसमें कवि ने शुभ विजय का ऐतिहासिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है।

स्थूलिभद्र नो शीयल वेल—

इसके रचयिता श्री वीरविजय ही हैं। १८ ढालों की यह रचना स्थूलिभद्र और कोश्या के जीवन से सम्बन्ध रखती है। 'शीयल' शब्द शीलधर्म का व्यंजक है। साहित्यिक दृष्टि से कोश्या का रूप-वर्णन विरह-वर्णन एवं प्रेम-निवेदन सुन्दर बन पड़ा है।

नेमिश्वर स्नेह वलि—

इसके रचयिता उत्तमविजय १९वीं सदी के पूर्वार्द्ध के कवियों में से थे। ये तपा गच्छीय पौतमविजय के पद-सेवक हर्षविजय के लघु बांधव कुशलविजय के शिष्य थे। १२ ढालों में कवि ने नेमिनाथ और राजमती की कथा का ही गाया है। साहित्यिक दृष्टि से १ वीं ढाल में पखवाड़े का वर्णन कर राजमती के प्रेमोन्मत्त हृदय की झांकी प्रस्तुत की गई है तो ११वीं ढाल में बारहमासे की स्मृति के आधार पर राजमती की प्रेम भावना का नेमिकुमार के प्रति समर्पण है। १२वीं ढाल में वर्षा और वसन्त-वर्णन के व्याज से राजमती की विरह-व्यथा को जाग्रत किया गया है और उपालम्भ बाण से निर्मोही प्रिय को बेधा गया है।

चारण वेलि-साहित्य

किसनजी री वेल[2]

इसके रचयिता सांखला करमसी रूणेचा सोखला जाति के राजपूत थे। उदयपुर के

---

[1] लेखक ने इसका परिचय प्रस्तुत किया है—परम्परा भाग १८ (राठौड़ रतनसिंह री वेलि) में राजस्थानी वीररसात्मक वेलि साहित्य शीर्षक लेख पृ ११८

[2] इसे लेखक ने प्रकाशित कराया है—मरुवाणी वर्ष ८ अंक १२ पृ १ २

उदैसिंघ री बेल[1]

इसके रचयिता रामो सांदू उदयपुर के महाराणा उदयसिंह के समकालीन थे। इसमें कविकार ने १५ छन्दों में उदयसिंह की प्रशस्ति गाई है।

चांदाजी री बेल

इसके रचयिता बीठू महा दूसमाणी दूसला के पुत्र या वंशज थे। इसमें राव मालदेव के समरथी सरदार तथा मेड़ता के राव वीरमदेव के चतुर्थ पुत्र चांदाजी के वीर व्यक्तित्व की गौरव गाथा गाई गई है।

क्रिसन रुकमणी री बेल[2]

इसके रचयिता राठौड़ पृथ्वीराज राव जैतसी के पौत्र राव कल्याणमल के पुत्र और महाराजा रायसिंह के छोटे भाई थे। इस बेलि में कवि ने कृष्ण-रुक्मणी की प्रणय-गाथा को गाया है। यह बेलि सहृदय रसिकों का हार भावुक भक्तों की माला और पंडितों की कसौटी रही है। कहीं इसे अमृतवल्ली कह कर अमृत की तरह फलवती कहीं 'पुष्णवलि' कह कर भगवान के गुण-कीर्तन की अक्षय निधि और कहीं 'मंत्र' कह कर सब-कामनाओं को पूर्ण करने वाली बतलाया गया है। सच तो यह है कि प्रस्तुत बेलि बलि-काव्य-परम्परा में चिन्तामणि की भांति अपना उज्ज्वल प्रकाश विकीर्ण करती रही है जिसके आगे न तो पूर्ववर्ती बेलियों का प्रकाश ठहर सका है न परवर्ती बेलियों का। यह काव्य-स्थली का उत्तुंग हिमाचल है जिस पर आरोहण कर दोनों ओर के दृश्य देखे जा सकते हैं।

त्रिपुर सुन्दरी री बेल—

इसके रचयिता जगमल्ल नामक कोई कवि हैं। १ पंक्तियों की यह छोटी-सी रचना त्रिपुरसुन्दरी देवी से संबंध रखती है। यह देवी शक्ति का प्रतीक मानी जाती है।

रायसिंघ री बेल

अनुमान है इसके रचयिता सांदू माला रहे हों। ४१ छन्दों की इस रचना में बीकानेर के महाराजा रायसिंह के बचपन और यौवन के साहसपूर्ण कार्यों का वर्णन किया गया है। कविकार ने बादशाह अकबर से रायसिंह की नाराजगी और गुजरात की लड़ाइयों की ओर भी संकेत किया है।

---

[1] लेखक का 'राजस्थानी वीर रसात्मक बेलि साहित्य' लेख परम्परा भाग १४ पृ ११

वही—पृ ११०-१११

[2] इसके विभिन्न सम्पादकों द्वारा १८ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

लेखक का 'राजस्थानी वीररसात्मक बलि साहित्य' लेख। परम्परा भाग, १४ पृ १११

इस प्रकार प्रस्तुत निबंध में हमने मध्यकालीन राजस्थानी वेलि साहित्य की ४५ कृतियों का सामान्य संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। इससे यह स्पष्ट है कि १९ वीं शती तक वेलि साहित्य की परम्परा बिना किसी रोक-टोक के चलती रही। जैन वेलि साहित्य के समानान्तर चारणी वेलि साहित्य का भी सृजन होता रहा और इन दोनों के अन्तराल में मौखिक वेलि साहित्य का संगीत भी लोक-कंठों में रमता रहा। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि वेलि साहित्य का इतिहास उस सरिता की तरह है जो विरल रूप में अपने उद्गम-स्थान से निकल कर मध्यवर्ती भागों (मैदानों) में विपुल प्रवाह के साथ बहता रहा।

राजस्थानी मध्यकालीन लोक-साहित्य

प्रो० मनोहर शर्मा

लोक-साहित्य एक सतत् प्रवाहित धारा है, जिसे समय की परिधि में नहीं बांधा जा सकता। एक ही वस्तु अति प्राचीन काल से नाना प्रकार के रूप धारण करती हुई अत्यधिक लम्बे समय तक जन-साधारण में प्रचलित रहती है और उसका अध्ययन लोक-साहित्य का विषय है। इसी प्रकार किसी एक काल की विशिष्ट साहित्य धारा आगे के कालों को भी धरोहर के रूप में प्राप्त होकर प्रभावित करती है। फिर भी विशिष्ट काल के जन-जीवन के कुछ अपने उपलक्षण अवश्य होते हैं जो उस काल के लोक-साहित्य में प्रकट होते हैं। ऐसी स्थिति में लोक-साहित्य में भी किसी अंश में काल-विभाजन किया जा सकता है। अनेक रचनाएं समय-समय पर विरचित होकर लोक-साहित्य की सम्पत्ति बनती हैं और पात्रों के अनुसार उनका निर्माण-काल भी निश्चित सा रहता है। इससे भी लोक-साहित्य के काल विभाजन में सहायता मिलती है।

राजस्थान सदा से ही लोक-साहित्य का रत्नाकर रहा है। अब भी इस दृष्टि से यह हमारे भारत देश का एक विशिष्ट प्रदेश है। साहित्य यहां की जनता के जीवन में रमा हुआ है और निरक्षर लोग भी उसमें बड़ा रस लेते हैं। इसी रसधारा ने यहां के इतिहास को गौरवमय पद प्राप्त करवाया है। मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास अगणित उज्ज्वल चरित्र नर-नारियों के त्याग एवं बलिदान से लिखा गया है। इस पुण्य कार्य के मूल में यहां का लोक-साहित्य ही है जिससे जन जीवन को प्रेरणा प्राप्त हुई है। अतः राजस्थान के इतिहास को समझने के लिए यहां के लोक-साहित्य का अध्ययन परमावश्यक है।

मोटे तौर पर इस लेख में मध्यकाल पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के समय को माना गया है। इस काल का लोक-साहित्य अब भी राजस्थान में प्रचलित है परन्तु वह अपने विशिष्ट लक्षणों से सम्पन्न है जिसका अध्ययन बड़ा उपयोगी होने के साथ ही अत्यधिक रोचक भी है। सुविधा के लिए आगे मध्यकालीन राजस्थानी लोक-साहित्य के भाग विभाग कर लिए गए हैं और उनमें से प्रत्येक की उदाहरण सहित चर्चा की गई है। विषय अत्यन्त विस्तृत है अतः चेष्टा की गई है कि जहां तक हो सके सार रूप में ही परिचय प्रस्तुत किया जाय। फिर भी यह लेख गम्भीर अध्ययन के लिए एक रूपरेखा का काम अवश्य देगा ऐसी आशा की जा सकती है।

प्रबन्धकाव्य

यहां प्रबन्धकाव्य ऐसी रचनाओं को कहा गया है जो आकार में बड़ी हैं और जिनमें

महादेव पार्वती री वलि

इसके रचयिता किशना (किसनजी महड़ कृपा हिम कीवड़, मड वातार बखारण मान) दुरसा आढ़ा के पुत्र थे। इनका रचना-काल सं १६६ रहा है। इनकी मृत्यु सं १७ ४ में हुई। १८२ छन्दों की यह वलि चारणी वलि साहित्य की महत्वपूर्ण कृति है। पृथ्वीराज की वलि के अनुकरण पर लिखी गई इस कृति में शिव-पार्वती की कथा विस्तार से वर्णित है। पूर्वार्द्ध में सती की कथा तथा दक्ष-यज्ञ का वर्णन है। उत्तरार्द्ध में पार्वती-विवाह तथा तारकासुर-दमन की कथा का सन्निवेश किया जा सकता है। कवि ने शिव के दो विवाह कराये हैं एक सती के साथ और दूसरा पार्वती के साथ। कवि का उद्देश्य भी इन विवाहों के माध्यम से शिव-शक्ति के गुणों का वर्णन करना रहा है। काव्य का वातावरण अलौकिक घटनाओं और संकेतों से भरपूर है। यह अलौकिकता दो रूपों में व्यक्त हुई है—घटनात्मक और भावात्मक। वलि में वर्णनों की प्रधानता है। इन्हीं के माध्यम से चरित्र-चित्रण हुआ है। प्रमुख वर्णन-स्थल ये हैं—(१) शिव की महिमा का वर्णन (२) सती के जन्म और सौन्दर्य का वर्णन (३) सती के विवाह के लिए नारियल लेकर जाने वाले दक्ष के प्रधानों का वर्णन (४) कैलास-पर्वत का वर्णन (५) सती का शृंगार वर्णन (६) बरात और विवाह का वर्णन (७) दक्ष के यज्ञ का वर्णन (८) यज्ञ-विध्वंस का वर्णन (९) पार्वती के जन्म और सौन्दर्य का वर्णन (१) पार्वती की तपस्या और शिव द्वारा परीक्षा लेने का वर्णन (११) शिव की साज-सज्जा बरात और विवाह का वर्णन (१२) पार्वती के शृंगार का वर्णन (१३) तारकासुर के आतंक का वर्णन और (१४) सुर-असुर युद्ध का वर्णन।

राज रतन री वेल

इसके रचयिता कल्याणदास मेहडू चारण के चारण जिनस के प्रसिद्ध कवि जाड़ा मेहडू के पुत्र थे। ये जोधपुर के महाराजा जसवंसिंह के कृपा-पात्रों में से थे। १२३ छन्दों की इस रचना में बूंदी के राजाओं की वंशावली प्रारम्भ में दे कर रतनसिंह की गुणगाथा गाई गई है। 'फतहपुर' में ही काशी के समीप चरणाद्रि स्थान पर उसने अरीफखां का वध किया था। युद्ध-वर्णन सुन्दर बन पड़ा है।

सूरसिंह री वेल

इनके रचयिता चारण चोला (जिसे चौथजी भी कहा जाता है) सूरसिंह के राज्याश्रय में थे। ११ छन्दों की इस रचना में सूरसिंह के पूर्वजों का वर्णन कर विविध उपमानों के साथ सूरसिंह (बीकानेर के महाराजा) की अन्य राजाओं के साथ तुलना की गई है।

रघुनाथ चरित्र नवरस वेलि

इसके रचयिता महेशदास शाहजहाँ औरंगजेब के समकालीन थे। इनके पिता चांपजी अकबर के समय में विद्यमान थे। चांपजी भीकाजी तथा रामाजी चाचरीत तीनों सगे भाई थे। चांपजी किसी कारण राजा मानसिंह (जयपुर) से नाराज थे। इस सम्बन्ध में उनका लिखा हुआ एक चरण प्रसिद्ध है—

'मान माम मांपू नहीं नहीं माम री टेक।

महेसदास डिंगल और पिंगल दोनों में कविता किया करते थे। प्रस्तुत बेलि में भी दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है। १२७ छन्दों की यह रचना राम के जीवन से सम्बन्ध रखती है। कवि का लक्ष्य नव-रसों के माध्यम से राम का चरित्र वर्णन करना प्रतीत होता है पर वह अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल नहीं हो सका है। यह सत्य है कि प्रारम्भिक ११ छंदों में एक-एक कर के नव रसों का उल्लेख कर दिया गया है पर उसमें रस-परिपाक नहीं हो पाया है। नव रस वर्णन के बाद उसने राम की कथा का एक बार फिर उठाया है पर 'बालकाण्ड' की समाप्ति के साथ ही उसकी समाप्ति कर दी है।

अनोपसिंह री वेल

इसके रचयिता गाडण वीरभाण बीकानेर के महाराजा चरित्रनायक अनूपसिंह के सम कालीन थे। ४१ छन्दों की इस रचना में अनूपसिंह की कीर्ति-गाथा तथा आदिनारायण से लेकर अनूपसिंह (काव्य-नायक) तक की वंशावली वर्णित है।

लौकिक वेलि साहित्य

पीर गुमानसिंह री वेल[1]

इसके रचयिता का वेल में कहीं उल्लेख नहीं है। यह वेल मौखिक रूप से ही संतजनों द्वारा गाई जाती रही है। इस वेल का संबंध पीर गुमानसिंह से है। गुमानसिंह बिलाड़ा (जोधपुर) के आईमाता के दीवान कल्याणदासजी के पुत्र दौलतसिंह के पुत्र थे। दौलतसिंह को उनके छोटे भाई मुकनसिंह ने भ्रमण के बहाने जंगल में ले जाकर राज-गद्दी के प्रलोभन में मार दिया। उनकी मृत्यु के बाद रानी भटियाणी से गुमानसिंह का जन्म हुआ।

सकल वेल

इसका भी रचयिता अज्ञात है। इस वेल में जीवनोपयोगी सामान्य नीति की बातें कही गई हैं। कवि का संसार के प्राणियों के नाम संदेश है कि राम के बिना कभी जीना नहीं चाहिए, अमृत को छोड़ कर विष नहीं खाना चाहिए, कभी किसी का बुरा नहीं करना चाहिए, नदी-नालों को तैर कर पार नहीं करना चाहिए, तुच्छ बातों के लिए मरना नहीं चाहिए।

बाबा गुमान भारती री वेल

इसके रचयिता चिमनजी कविया बाबा गुमान भारती के भक्त थे। इनका जन्म शेरगढ़ तहसील के बिराई नामक गाँव में हुआ था। अन्तिम दिनों इन्होंने सन्यास धारण कर लिया था। ४४ छन्दों की इस रचना में बाबा गुमान भारती का जीवन-वृत्त वर्णित है। बाबा गुमान भारती जोधपुर प्रान्त की शेरगढ़ तहसील के गड़ा गाँव में समाधिस्थ हुए थे। इनके गुरु का नाम गुलाब भारती था। ये भू-भू नामक गाँव के ठाकुर के छोटे भाई की भार्या हरिकुंवरी राठौड़ की कुक्षि से पैदा हुए थे। राजस्थान के संतों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

---

[1] मैंने इसकी आलोचना प्रस्तुत की है—शोध पत्रिका वर्ष ११ अंक १४ पृ २१-३१।

इस प्रकार प्रस्तुत निबन्ध में हमने मध्यकालीन राजस्थानी वेलि साहित्य की ४५ वेलियो का सामान्य संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। इससे यह स्पष्ट है कि १९ वी शती तक वेलि साहित्य की परम्परा बिना किसी रोक-टोक के चलती रही। जैन वेलि साहित्य के समानान्तर चारणी वेलि साहित्य का भी सृजन होता रहा और इन दोनों के अन्तराल में लौकिक वेलि साहित्य का संगीत भी लोक-कंठों में रमता रहा। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि वेलि साहित्य का इतिहास उस सरिता की तरह है जो विरल रूप मे अपने उद्गम-स्थल से निकल कर मध्यवर्ती भागो (मैदानो) मे विपुल प्रवाह के साथ बहता रहा।

पवाड़ों का विशेष गुण है और इनमें मध्यकालीन राजस्थानी जन-जीवन की बड़ी ही सुंदर और स्पष्ट झांकी प्रकट हुई है। जनता ने पाबूजी को उनके किन-किन गुणों के कारण लोक-देवता के पद पर प्रतिष्ठित किया है यह सब वृत्तान्त इन पवाड़ों में कथा-रस के साथ हृदयंगम होता है।

इसी प्रकार सांपों के अधिनायक लोक-देवता गोगाजी चौहान-विषयक जन-काव्य है। इस सामग्री में गोगाजी का जन्म उनका विवाह और जोड़ों (राजपूतों की एक शाखा) के साथ उनके युद्ध का वर्णन है। इसके लिए 'रात्रि जागरण' करवाया जाता है और उसमें इष्ट-देवता की जीवन-गाथा गाई जाती है। इसके गायक चमार लोग होते हैं। इसी प्रकार रामदेवजी तँवर भी राजस्थान में लोक-देवता के रूप में पूजित हैं और उनकी जीवनकथा 'जागरण' (जिसे 'जम्मो' कहा जाता है) में गाई जाती है। इन्हीं अवसरों पर 'तोलांदे' और 'रूपांदे' विषयक जन-काव्य भी गाए जाते हैं। ये काव्य विशेष बड़े नहीं हैं और इनमें इन दोनों महिलाओं की सत्यपरायणता एवं चमत्कार का मार्मिक वर्णन है। ये दोनों काव्य क्रमशः वरदा (२।१) एवं मरुभारती (३।४) में लेखक के द्वारा प्रकाशित करवाये जा चुके हैं।

'बगड़ावत' राजस्थान का एक अन्य सुप्रसिद्ध जन-काव्य है। इसमें भोज बगड़ावत और जैमती की कथा विस्तार से गाई जाती है। गूजर जाति के लोगों में इस विशाल जन-काव्य की अत्यधिक प्रतिष्ठा है। परन्तु यह अभी तक पूरा लिपिबद्ध नहीं हो सका है। रानी लक्ष्मीकुमारी जी चूण्डावत ने इसका कुछ अंश मरुभारती में प्रकाशित करवाया है। इस काव्य का वर्णन बड़ा जोशीला है और इसे एक प्रकार का दूसरा महाभारत' ही समझिए। सामान्यतया 'जैमती' को जनता में द्रौपदी का दूसरा रूप माना जाता है जो बगड़ावतों के विनाश के लिए ही पृथ्वी पर उतरी थी। इस काव्य में भी राजस्थान के लोक-देवता देवजी' के चरित्र की महिमा व्याप्त है। देवजी गूजर लोगों के इष्टदेव हैं और इनके अनेक मंदिर यहां बने हुए हैं। काव्य में मध्यकालीन जन-जीवन का स्वाभाविक चित्रण देखते ही बनता है।

राजस्थान में जोगी लोगों द्वारा 'पार्वतीजी री व्यावलो 'गोपीचंद' और 'भरथरी' नामक काव्य भी प्रतिष्ठा के साथ गाये जाते हैं और इनका श्रवण एक पुण्य काम समझा जाता है। ये तीनों ही काव्य विशेष बड़े नहीं हैं और लेखक के द्वारा मरु-भारती (४।२) तथा विकास विद्या विहार मैगजीन (अक्टूबर १९५५) में छपवाए जा चुके हैं। इनमें गोपीचंद काव्य बड़ा करुणापूर्ण है और इसका एक अपेक्षाकृत बड़ा रूप भी प्राप्त हुआ है जो यथा-समय लोक-साहित्य के प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत किया जाएगा। स्वर्गीय दौलतसिंह लोढ़ा ने भरथरी काव्य का एक रूपान्तर राजस्थान भारती (१।३) में भी प्रकाशित करवाया है।

इसी प्रकार आईजी के भक्तों में भी अनेक जन-काव्य गाये जाते हैं और इनको लिपि बद्ध कर के छपवाने में श्री मिश्रसिंह चामत ने अत्यन्त सराहनीय परिश्रम किया है। इस सम्प्रदाय की साहित्य-सामग्री बड़ी प्रभावोत्पादक है। इसमें रचयिताओं के नाम होने पर भी यह लोक-साहित्य का ही रूप धारण कर चुकी है। 'आई माता री बेल' में माता की जीवन-गाथा एवं चमत्कारों का वर्णन है। इसकी रचना सन्त महदेव द्वारा की गई है।

इसी प्रकार 'रत्नादे री बेल' का रचयिता 'तेजो' नामक कवि है। इसमें रानी रत्नादे की भक्ति का प्रताप वर्णित है। 'पीर गुमानसिंह री बेल' एक हृदयग्राहक करुण काव्य है। यह वरदा (२।१) में प्रकाशित हुआ है।

गोगाजी के समान ही सांपों के अधिनायक लोक-देवता 'तेजाजी' विषयक काव्य (मरु-भारती १।२) भी बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। इसमें गो-भक्त तेजाजी के आत्म-त्याग की कथा वर्णित है। इस काव्य को किसान लोग हल चलाते समय उच्च स्वर से गा कर वातावरण को गुंजित कर देते हैं। 'कंवा भाडेती' (वरदा २।४) काव्य में धार्मिक जीवन का करुण पुट मिलता है।

'जीण' काव्य में भाई-बहिन के निर्मल स्नेह की वेगवती रसधारा प्रवाहित है। इसके दोनों पात्र 'हरष' और 'जीण' क्रमशः भैरव और माता के रूप में लोक-पूजित हैं। इस मार्मिक रचना का पूर्वार्द्ध ही राजस्थान भारती (१।१) में प्रकाशित हुआ है। 'सेवाड़' में 'जीणमाता' पर शाही सेनापति की चढ़ाई और देवी के चमत्कार का वर्णन है। इसी प्रकार भाई-बहिन के पवित्र प्रेम का एक अन्य लोक-काव्य अभी-अभी श्री उदयवीर शर्मा ने लिपिबद्ध किया है और यह राजस्थान साहित्य समिति बिसाऊ से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इस काव्य में 'पृथ्वीराज' और उनकी बहिन 'सूरजा' की जीवन कथा विस्तार के साथ गाई गई है और काव्य के दोनों पात्र भी लोक-देवता के रूप में पूजित हैं तथा जाखल धाला के जाटों के इष्टदेव हैं। सिरोही (शेखावाटी) में इनके नाम पर 'तीज' और 'गणगौर' के दिन बड़े मेले लगते हैं। 'भवळा रो माहेरो' (वरदा ४।१) नामक एक अन्य जन-काव्य में पाण्डव एक कुम्हारी को धर्म की बहिन मान कर उसके यहाँ माहेरा भरते हैं। 'नानीबाई का माहेरा' काव्य रतना नामक खाती का बनाया हुआ है। इसमें नरसीजी की पुत्री के यहाँ भक्तिवश श्रीकृष्ण स्वयं माहेरा भरने आते हैं। इस काव्य का श्रवण करना एक पुण्य कर्म समझा जाता है।

राजस्थान में 'महाभारत' भी जन-काव्य के रूप में गाया जाता है और यह अति विस्तृत है। अभी यह लिपिबद्ध नहीं हो पाया है। इसके प्रकाशन के लिए योजनाबद्ध कार्य किए जाने की नितान्त आवश्यकता है।

'चन्द्र मलयागिर' में राजा चन्द्र और उनकी रानी मलयागिर की सुप्रसिद्ध कथा है। 'कमदा रो बखाण' (गणेशराम मिश्र अभिनन्दन ग्रन्थ) में राजा हरिश्चन्द्र की दासी 'कमदा' का प्रसंग है। 'अमना कँवर' काव्य में अभिमन्यु की कथा अनोखे रूप में वर्णित है। इसे भी उदयवीर शर्मा ने लिपिबद्ध किया है और यह अभी अप्रकाशित है।

राजस्थान के दक्षिणी बागड़ प्रदेश (डूंगरपुर-बांसवाड़ा) में जन-काव्य 'ममासम' अत्यधिक लोकप्रिय है। इसे भोपे लोग तम्बूरे के साथ गाते हैं और भेंट पाते हैं। इसमें पना भव (गुमानसिंह) के वीर कृत्यों को बड़े विस्तार के साथ रस प्रवाह से गाया जाता है। हर्ष का विषय है कि इस राज्य की मध्यकालीन जन-काव्य को बागड़ प्रदेश साहित्य परिषद्, डूंगरपुर की ओर से प्रकाशित किए जाने की व्यवस्था की जा रही है। ममासम को भी इस रूप में मान्यता प्राप्त है।

वर्तमान रूप में प्राप्त 'बीसलदेव रास' भी मध्य काल में एक जन-काव्य का रूप धारण कर चुका था। उसका विषय-वर्णन एक लोक-काव्य के ही अनुरूप है। इसी प्रकार समया नुसार पदम भगत विरचित 'रुकमणी मंगळ' काव्य परिवर्तित एवं परिवर्धित होकर एक जन-काव्य बन गया है। राजस्थान में इसे बड़ी लोकप्रियता मिली है और इसकी कथा करवाई जाती है। राजस्थान में 'ढोला मारू रा दूहा' एव 'जेठवे रा सोरठा' नाम से प्रम कथाओं ने भी जन-काव्य का रूप प्राप्त किया है। इसके सम्बन्ध में आगे चर्चा की जाएगी।

राजस्थान के मध्यकालीन जन-काव्यों पर यहां अत्यंत संक्षिप्त रूप में चर्चा की गई है। इन काव्यों पर समग्र रूप से विचार करने पर निम्न बातें सामने आती हैं जो ध्यान में रखने योग्य हैं —

१ – ये जन-काव्य समय एवं स्थान के अनुसार रूपान्तरित एवं परिवर्धित होते रहे हैं।

२ – इनमें से अधिकांश को गाने वाली जातियां हैं जिनके भोपे तथा जोगी आदि प्रधान है। इन लोगों का पेशा यही है और भक्त-भक्तसी द्वारा इनको भेंट मिलती है। ये काव्य मौखिक रूप से पाए जाते हैं।

३ – इन काव्यों में मध्यकालीन राजस्थान का पूरा वातावरण एवं जन-जीवन चित्रित है जो सहज ही श्रोताओं को उस युग में ले जा कर उपस्थित कर देता है।

४ – अधिकांश काव्य 'वीर-पूजा' की भावना से ओतप्रोत हैं जो मध्यकालीन राजस्थान का एक प्रधान उपलक्षण रहा है। जिन व्यक्तियों ने कोई गुण प्रकट किया है, उनके सम्बन्ध में जन-काव्य प्रचलित हुए हैं। परन्तु इन गुणों की कसौटी मध्य कालीन दृष्टिकोण है जिसे सदैव ध्यान में रखना आवश्यक है।

५ – प्रायः सभी कथा-नायक लोक-वीर के साथ ही 'लोक-देवता' के रूप में प्रति ष्ठित हुए हैं और उनके अनेक चमत्कारों का वर्णन इन काव्यों में मिलता है। इस प्रकार मानव तत्त्व और देव तत्त्व इन काव्यों में सुन्दर रूप में समन्वित है। जिन काव्यों में देव चरित्र का वर्णन हुआ है उनमें भी देवों पर मानव जीवन का सर्वथा आरोप कर दिया गया है।

६ – अधिकांश काव्य जनता की श्रद्धा एवं भक्ति-भावना से समन्वित हैं परन्तु कई काव्य विशेष समुदायों में विशेष आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

७ – जिन काव्यों में पौराणिक कथानक हैं, वे आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित हुए हैं और उनमें नई उद्भावनाएं हैं।

लोकगीत —

मध्यकालीन राजस्थानी लोकगीत विशेष रूप से अध्ययन की वस्तु है। लोक-साहित्य के इस अंग पर शोध कार्य करने के लिए अधिक नहीं तो किसी अंश में अच्छा साधन सुलभ है। अनेक जैन विद्वानों ने अपनी रचनाएं लोकगीतों की 'देशियों' के आधार पर तैयार की हैं जिससे कि उनका जन साधारण में अच्छा प्रचार हो सके। लोकगीतों की धुनें जन-जीवन

का अंग बन जाती है फलतः उनके आधार पर कवि रचना का तैयार होना स्वाभाविक ही है। जैन विद्वानों में यह पुरानी परम्परा रही है। इस प्रकार बहुत अच्छी संख्या में मध्यकालीन राजस्थानी लोकगीतों की कम से कम प्रथम पंक्तियां तो सुरक्षित रह ही गई हैं क्योंकि रचयिताओं ने इनका अपने गीत के साथ उल्लेख किया है। निश्चय ही इन सभी लोकगीतों को पूरे रूप में प्रस्तुत करने का कोई साधन शेष नहीं रहा है फिर भी कहीं-कहीं किसी पुराने हस्तलिखित गुटके में ऐसे लोकगीत नमूने के रूप में मिल भी जाते हैं। इस प्रकार के कुछ नमूने श्री अगरचंद नाहटा प्रस्तुत कर चुके हैं परन्तु 'जैन गुर्जर कवियो' (भाग ३ खंड २) में पुराने २१२८ लोकगीतों की संकलित सूची सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस सूची में पुराने गीत की प्रथम पंक्ति के साथ उन जैन कवियों की रचनाओं का भी समय सहित निर्देश किया गया है जिन्होंने 'देशियों' को आधार मान कर अपने गीत लिखे हैं। इस श्रमसाध्य महत् कार्य के लिए लोकगीतों के अध्येता स्वर्गीय मोहनलाल दलीचंद देसाई महोदय के चिर ऋणी रहेंगे। इस लेख में इसी सूची को आधार मान कर राजस्थानी मध्यकालीन लोकगीतों पर वक्तव्य प्रस्तुत किया जाता है। वैसे इस विषय में एक पूरा शोध-प्रबंध तैयार किया जा सकता है परन्तु यहां अत्यन्त संक्षिप्त रूप में कुछ सूचनाएं सामने रखी जाती हैं।

मध्यकालीन राजस्थानी लोकगीतों में देवी देवता पर्व-त्योहार, ऋतु, उत्सव, कथा, पारिवारिक सम्बंध, ऐतिहासिक सामग्री आदि सभी विषयों पर जन-मानस के अत्यंत स्वाभाविक एवं सरस उद्गार परिपूर्ण हैं और ये जन-जीवन की एक उज्ज्वल चित्रपटी श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं, जो सामाजिक इतिहास की दृष्टि से असाधारण रूप से महत्व सम्पन्न है।

सर्वप्रथम यहां कुछ ऐसे लोकगीतों के प्राचीनता-सूचक उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं, जो बिना स्वर परिवर्तन के अब भी जन-साधारण में गाए जाते हैं। इन उदाहरणों में सूची में से केवल एक जैन कवि की रचना का निर्देश सम्मिलित किया गया है जो सर्वाधिक प्राचीन है —

(१) ७१८ ध—टोडरमल्ल जीतीयो रे
　　(ब्रह्मसिद्धांत स्वामी ४ सं १६६६)

(२) १०२१—ऊंचा गढ गिरनारि, ऊंचा मे महला हो ठाकुर मालीया जी।
　　ऊलहटी चूडा हो गढ अपरे मे बांभण मालाजी मोतीया जी।
　　(समयसुन्दर इत मस १-७ सं १६७१)

(३) १०४ जमादडा नु किसोक लगाड्यो पाधा रे, अब थी मोकलुंगी ना।
　　मालुडी हु सगरे सगणे माया रे पण परण मोकलु परि जा॥
　　(ज्ञानकुशल इत पारसे १-१ स १७ ७)

(४) १०६१ बिलजारा रे लोक देसाउरि जाय
　　न घर बेठा क्या करे बिणजारा रे।
　　(समयसुन्दर इत प्रत्येक १-७ स १६६५)

आगे कुछ ऐसे व्यक्तियों से सम्बन्धित लोकगीतों के उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनके विषय में अब भी गीत पाए जाते हैं परन्तु वे रूपान्तरित हैं—

(१) ११७—पावठिउँ मई वरसइ रे ऊमादे मन धूपइ रे।
(जिनहर्ष कृत उपमिति १७ सं० १७४५)

(२) १४१—काछिया काछवणा हो राणा काछिया हो काछवणा,
बसे तो वासो साहिब म्हे वीरां।
(समयसुन्दर कृत मृगा १-११ सं० १६६८)

(३) ११८—पाणी रे पावो हुँ तिरसी थइ रे जसालीया।
(समयसुन्दर कृत हरिश्चन्द्र ३-११ सं० १६६७)

(४) २१११—सुंदर सु सुगणाल विरम हो बीजा हो वारा सुंदर मोतनु हो।
(समयसुन्दर कृत सीताराम ८-६ सं० १६८७)

(५) २२११—सोरठ मामी हो बीज राजा नासवो।
(जिनहर्ष कृत शत्रुंजय रास ३-८ सं० १७५५)

जैन विद्वानों ने अपनी रचनाओं के लिए ऐसे भी अनेक गीतों की 'देशियों' को चुना है जो राम या कृष्ण से सम्बन्धित हैं। ऐसे लोकगीतों को आजकल सामान्यतः 'हरजस' नाम दिया जाता है। उदाहरण देखिए—

(१) ११—अयोध्या रे राम पधारिया सहेलीयां हे माओ मारीयो।
(जयरंग कृत कयवन्ना रास १० सं० १७२१)

(२) ११६—मोहिउ मोहिउ रे रावनमउ वाणी
सारीगणी मावी मइ वस्यु रे।
(ज्ञानसागर कृत पार्श्वनाथ २१ सं० १७२)

मध्यकालीन राजस्थानी लोकगीतों में जन-जीवन के कुछ स्वाभाविक चित्र इस प्रकार दृष्टव्य हैं—

(१) २२—पनरेमो हाली हल गढ़े हो
म्हारी सदा रे मुरली स्याव भात।
(लाभवर्धन कृत विक्रमादित्य सं० १७२७)

(२) ६१—म्हो भरमर बरस मेहू के भीजे चरती रे,
के भीजे चुनरी रे।
(समयसुन्दर कृत हरिश्चन्द्र रास ३-३ सं० १६६७)

(३) १७५—हठ वरवयोसारी पान ऊभी दोय मामडे महारा नाम।
पहरान रमणी भीर पोहल सीमी पावडी महारा माम।
(ज्ञानसागर कृत विक्रमसेन ३-१२ सं० १७२६)

(४) ७१८—टूंक मनइ टोडा बिचि हो
मेंडीरा छोड़ कल मेदी रंग मांगो ।
(ज्ञानसागर कृत इलाचीकुमार ६ सं १७१२)

(५) ८६६—बारें मार्गे पंचरंग पाग सोना रो मोमलो माल्ची ।
(परमसागर कृत विक्रमादित्य १८ सं १७२४)

(६) ११६१—पहिलो बधावो म्हांरा सुसरा होइयो
बीजो हो बीजो हो बधावो म्हांरा बाप रो ।
(जिनहर्ष कृत कुमारपाल ११७ सं १७४२)

(७) ११११—बेसर मइ रै बनाइ म्हारी म्हांलाहि देवुरि पाइ बाल बेसर रे ।
कोटवाल सुणइगो साम बेसर रे ।
(ज्ञानसागर कृत श्रीपाल ७ सं० १७२६)

मध्यकालीन राजस्थान में सामंती शासन-व्यवस्था के कारण प्रधान पेशा सिपाहीगिरी रहा है फलस्वरूप जन-जीवन में प्रवास राजकीय सेवा वियोग आदि तत्व व्याप्त थे। उस समय के गीतों का प्रधान स्वर यही है। लोग राज सेवा में घर से दूर रहते थे और पीछे से उनकी वियोगिनी पत्नियां प्रवास की अवधि के दिन गिनती थी। यहां कुछ उदाहरण इस सम्बन्ध में विशेष रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं—

(१) २११—ऊभी मावजडे राणी अरज करे छै,
अब को बरसाओ घर कीजे हो अब दुबीवासा ।
(जिनहर्ष कृत शत्रुंजय रास २-१२ सं १७११)

(२) २८६—प्राबूडा बाको बुबरे आमगढी
ओलगडी दुहेली राणा कुम री रे ।
(जयरंग कृत अमरसेन ११ सं १७)

(३) ३४२—कायर माया पातशाह रा माता मारूची
माता मारू ऊभी जवरीयारी बारि,
सुगुणीरा मारूची हो जी राज ।
(उदयरत्न कृत सीतारिज स १७७ समयप)

(४) १६२४—रमतां फाटउ मावरउ रै दस मन फाटउ चीर रे,
दुबइ आवे रे ओलमाला लाहरी कांकणीमइ भूलइ ।
(मोहनविजय कृत मानतुंग १ सं १९६)

(५) १७ —रे रंगरला करहला मो प्रीउ रत्तो आणि
हूं तो उपरि वालिने प्राण करूं कुरबाण
मुरका करहा रे मो प्रीउ पाछो वालि
मजीठ करहला रे ।
(समयसुंदर कृत सीताराम ६-१ सं ११८७ मालपाल)

के सम्बन्ध में एक लम्बी लेखमाला लेखक के द्वारा 'मरुभारती' में प्रकाशित करवाई जा रही है। इनमें आश्चर्यजनक सरसता है। इनके बोल सुर, कथा एवं पात्र सभी महत्वपूर्ण हैं। खेद है कि आजकल ये गीत उतने उत्साह के साथ नहीं गाए जाते और धीरे-धीरे इनका गाया जाना कम होता जा रहा है।

लोककथा—

लोककथा का विषय अत्यंत गहन है क्योंकि वह देश और काल का बंधन स्वीकार नहीं करती। एक लोककथा जो आज हम सुनते हैं, न जाने वह कितनी पुरानी हो सकती है और न जाने हमारे देश में तथा अन्य देशों में उसने समयानुसार कैसा कैसा रूप-परिवर्तन किया है। फिर भी किसी प्रदेश में कही जाने वाली लोककथा पर स्थानीय रंग छाया रहता है जो देश तथा काल की विशेषता प्रकट करता है। इसी तत्व के द्वारा लोककथाओं का वर्गभेद किया जाता है। एक उदाहरण लीजिए—पद्मपुराण में महाराजा इक्ष्वाकु और सूकर-सूकरी की विस्तृत कथा दी गई है। वहां इस उपाख्यान को 'पुरातन इतिहास' कहा गया है। अतः यह भारत की कोई अत्यन्त प्राचीन लोककथा है। 'राजा जासूर की बात' इसी का मध्यकालीन राजस्थानी रूपान्तर है जिसे आज भी प्रांत में अत्यधिक लोकप्रियता मिली हुई है। ऐसी स्थिति में राजस्थानी कथाओं की चर्चा करते समय इस 'बात' को अलग नहीं छोड़ा जा सकता। इसी तत्व को दृष्टि में रखते हुए यहां राजस्थान की मध्यकालीन लोककथाओं पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जाती है।

मध्यकालीन राजस्थानी लोककथाओं के अध्ययन के लिए पुष्कल सामग्री प्राप्त है। इस काल में लोककथाओं के सम्बन्ध में बहुत अधिक कार्य हुआ है और उसका अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्व है। इस सामग्री की प्राप्ति के लिए अनेक सूत्र हैं। जैन विद्वानों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों की अनेक भाषा-टीकाएँ लिखी हैं जिनको 'बालावबोध' नाम दिया गया है। इन टीकाओं में प्रसंग को बोधगम्य एवं सरस बनाने के लिए दृष्टांत-रूप में कथाएँ जोड़ दी गई हैं। इस प्रकार इन जैन विद्वानों की कृपा से अनेक राजस्थानी लोककथाएँ सुरक्षित हो गई हैं। ये कथाएँ शिक्षाप्रद होने के साथ ही रोचक भी हैं। जैन विद्वान विविध स्थानों में घूम घूम कर उपदेश देते रहे हैं अतः प्रसंगानुसार कहावत सुभाषित गीत चुटकले एवं कथा आदि का प्रयोग करना भी उनके लिए उचित एवं आवश्यक ही था। उनकी इस प्रवृत्ति से भी बहुत अधिक लोकसाहित्य की सामग्री सुरक्षित हुई है, क्योंकि इन चीजों को उन्होंने अपने ग्रन्थों में लिख डाला है। उदाहरण के लिए यहां मुनि कीर्तिसुन्दर द्वारा विरचित 'वाग्विलास कथा संग्रह (अठारहवीं शताब्दी) में से कुछ नमूने दिए जाते हैं। यह रचना वरदा वर्ष १ अंक १ में छप चुकी है और इसमें ११६ कथाओं की सूचनाएँ दी गई हैं—

इस विषय में विस्तृत जानकारी के लिए देखिए 'वरदा' (वर्ष ४ अंक ३) में लेखक का 'राजस्थानी बातों की कथावस्तु' शीर्षक लेख।

१६ पारकी सीख म्हारी सीख—

पारकीयां मैं कह्यौ राम राम। तठाव ऊपरि मोबी मौखत्ता हुंता तठे मौन सूं भिखि सीखव्यौ। मृतक मिस्यां कह्यौ मसी हुई, बाबू इण भांति मिसणी हुयो। बीबाह मैं जाइ रोयौ। मूवी हुई ए बात तुम्हारे कवे ही मत हुग्रमो। मांमा नैं दरबार में कह्यौ मरे मावौ राव ठरि जाइ छै। दरबार रा भावमी वेवाठ माम्या तरै राज री पीठि कीधी छीबामी दरबार मैं हठर्व सैं यात कहिजै। एक दिन वरे मागि मागी। यही बोह पार्वं मैं मोबौ सी कह्यौ आपणी भरि मायणो हुयो छै, काम पूरौ हुयो ए मूबें।

२२ बाप मरतां सीख दीधी हुती रे पुत्र मीठो जीमिजै स्त्री बांधि मारिजै बातां री बाढ़ि करिजे गंगा यमुना कूल परणाविजे। ए सीखां सुं मूर्दे तौ म्हारी मित्र ममवरा सूं, तिण आपे सीखां रौ मर्म सीखिजै। ए सीखा कीधा करिठी हुयी तरै पितारै मित्र मंथरस्त पाछि जाइ पूछयी। उणे बोहिरा ठांख री चक काढि दीधी।

> १ ५. जो मूमो रासभ तुम्ह बडो।
> दोष हरख जौ सोमन मडौ॥
> मांहे मिलियौ जौ बंद बोप।
> यहे बाबां कोई न दोष॥

सोनार १ रजपूत २ ब्राह्मण ३ बाणीयो ४ परदेसे दुकाळ मैं भूखे ही भ्रौं भखिता मुत बच्चौ बाधो। किसरे के लिये सुखे मरे भामा। ब्राह्मण रै बाप कथा कहते दोप पणी कह्यौ। बाखीया नैं कह्यौ प्रायश्चित सोना नीं रासभ दियां हर्ठै। पुत्रैं जाम्यौ प्रसिद्ध बात थई तौ पाछि बाहिर भास्यू। बाप मैं कह्यौ मैं मिस्र बाभी छै। बीजे दिन ब्याळै उत्तराई कहि बात सुधारी।

इसी प्रकार जैन कवियों ने अनेक राजस्थानी लोक-कथाओं के आधार पर अपने 'रास' एवं 'चौपई' ग्रंथों की रचना करके उनको पद्यात्मक रूप दिया है। इनमें कई कथाएँ तो ऐसी हैं जिन पर अनेक विद्वानों ने अपने ग्रंथ लिखे हैं। यह सब उन कथाओं की जनप्रियता की महिमा है। राजस्थान में राजा भोज एवं वीर विक्रमादित्य सम्बन्धी लोक कथाएँ बहुत है। जैन विद्वानों की इनकी तरफ विशेष रुचि रही है और विक्रमादित्य के सम्बन्ध में बने हुए ग्रंथों की तो संख्या काफी अधिक है। इनके साथ ही अनेक प्रेम-कथाओं के सम्बन्ध में भी ग्रन्थ विरचित हुए हैं, जिनमें माधवानल कामकन्दला 'सदयवत्स सावलिंगा' आदि के नाम उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। वीर रस की कथा के लिए 'गोरा बादल' का नाम लिया जा सकता है। जैन विद्वानों द्वारा लिखे गए ऐसे अनेक ग्रंथों का कथासार श्री भंवरलाल नाहटा ने तैयार करके विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया है और उनका यह स्तुत्य कार्य अभी जारी है। इस समस्त सामग्री पर विचार करने से प्रकट होता है कि विद्वानों ने इन लोक-कथाओं को जैन वातावरण में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है परन्तु कहानियों का कथात्मक रूप ज्यों का त्यों रखा गया है और पात्रों के नैतिक अथवा अनैतिक परन्तु स्वाभाविक जीवन में कोई परिवर्तन न कर के अंत में उपदेश जैन मत का दिया है।

इस प्रकार लोक-कथाओं के यथार्थ रूप के संरक्षण की दृष्टि से इन जैन रचनाओं का विशेष महत्त्व है।

मध्यकालीन राजस्थानी लोककथाओं के संबंध में अध्ययन करने के लिए अन्य प्रमुख स्रोत राजस्थानी बात-साहित्य है। राजस्थानी बातें बहुत बड़ी संख्या में लिखित रूप में प्राप्त हैं। इस विषय में भी रावत सारस्वत का वक्तव्य विशेष महत्वपूर्ण है—'बात नाम से संबोधित प्रभूत गद्य रचनाएँ राजस्थानी कहानियों का चिरकाल से संचित बहुत् भण्डार हैं। राजस्थानी 'बात' शब्द कहानी का ठीक पर्याय नहीं। इस शब्द से कहानी के अन्तर्गत वर्णित की जाने वाली सम्पूर्ण रोचकता कहने वाले की विदग्धता और सुनने वाले के जिज्ञासापूर्ण आग्रह के एक सम्मिलित भाव का सूचन होता है। इतना ही नहीं इसके उच्चारण मात्र से ही भाट चारणादि के गंभीर दृढ़ मुख की ओर एकटक देखते हुए ग्रामीण नवयुवकों के समूह तथा बूढ़ा नानी-दादी आदि के पैरों में पालथी मार कर बैठे हुए बालकों की टोली के मनोहर दृश्यों की धुंधली स्मृति आँखों के सामने नाचने लग जाती है।

राजस्थान में कहानी कहने की कला का स्वतंत्र रूप से विकास हुआ है और यह कला दूर देहातों से लेकर राजमहलों तक विशेष रुचि की वस्तु बनी है। इसमें कहानी को विशेष रूप से सवार सजा कर कहा जाता है और विषय को रोचक बनाने के लिए चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। अब भी राजस्थान में ऐसे अनेक कहानी कहने वाले हैं जो अपनी कला से श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देते हैं। इसके साथ ही कहानी को सँवार सजा कर लिखने की कला भी राजस्थान में विकसित हुई है और बहुत बड़ी संख्या में 'बातों' को अत्यन्त सुन्दर रूप देकर लिखा अथवा लिखवाया गया है। अनेक 'बातों' को कलापूर्ण चित्रों से सुसज्जित भी किया गया है और ऐसी प्रतियाँ सम्मानीय जनों को भेंट भी की जाती रही हैं। यह सब प्रक्रिया 'राजस्थानी बात' की लोकप्रियता की सूचक है। बात के लिखे जाने से उसको स्थिर रूप प्राप्त होता है परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि वही बात कलापूर्ण ढंग से कही भी जाती है और इन दोनों साधनों में विशेष अन्तर नहीं दिखित होता। फिर भी इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि इन दोनों कलापूर्ण साधनों से लोक-कथा के सहज और अकृत्रिम रूप में कुछ अन्तर जरूर आता है।

राजस्थानी बात का विषय-वैविध्य आश्चर्यजनक है। उसमें शौर्य त्याग बलिदान सत्यवादिता परदुःखकातरता आदि गुणों के अनेक आदर्श चरित्र हैं तो साथ ही उनमें ठग चोरों एवं चोरों के आश्चर्यजनक कारनामे भी चित्रित मिलते हैं। इसी प्रकार अनेक बातें प्रेम रस से परिपूर्ण हैं तो साथ ही वहाँ भक्ति निर्वेद एवं शांत रस की भी कमी नहीं है। जिस प्रकार उनमें नीति चातुर्य एवं लोक-व्यवहार के स्रोत हैं तो साथ ही उनमें हास्य रस

राजस्थान भारती (बीकानेर) में प्रकाशित 'राजस्थानी बात साहित्य' शीर्षक लेख जुलाई सन् १९५१

का फव्वारा भी चलता हुआ मिलता है। विषय शैली भाषा आदि अनेक रूपों में राजस्थानी बातों का वर्गीकरण किया गया है। इसी प्रकार उनका एक वर्गीकरण ऐतिहासिक अर्द्ध-ऐतिहासिक एवं कल्पित रूपों का भी है। साथ ही ध्यान रखना चाहिए कि कभी कभी में अनेक बातें हैं और कई बातें तो काफी बड़ी हैं जिनको आसानी से एक स्वतंत्र पुस्तक का रूप दिया जा सकता है। अब तक अनेक सज्जन राजस्थानी बातों की सूचियां प्रकाशित करवा चुके हैं परन्तु फिर भी यह काम बहुत कुछ करने को बाकी पड़ा है। इसी प्रकार यहां ऐसे भी प्रयास हुए हैं जिनमे एक बात मे अनेक बातें जोड़ दी गई हैं।

राजस्थान की ऐतिहासिक अथवा अर्द्ध-ऐतिहासिक कही जाने वाली बातों पर कुछ विशेष विचार करने की आवश्यकता है। प्रथम न यहां की जनता का 'इतिहास-बोध' बड़ा उत्कट है और यहां जिस किसी व्यक्ति ने कोई विशेष कार्य कर दिखाया है उसकी जन साधारण में कहानी बन पड़ी है। इस प्रकार के व्यक्ति यहां अमख्यित हुए हैं। फल यह हुआ है कि यहां व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध रखने वाली कहानियों की बहुत ही बड़ी संख्या है। इन कहानियों स ही जन-साधारण ने अपने 'इतिहास-बोध' को बल दिया है और दूर देहातों की निरक्षर जनता ने इन्हीं से अपने इतिहास का प्रेरणापूर्ण पाठ पढ़ा है। इन्हीं से लोगों ने नैतिक शिक्षा ग्रहण करके अपनी चारित्रिक शक्ति बढ़ाई है अथवा लोक-व्यवहार के सम्बन्ध में मार्ग-दर्शन लिया है। परन्तु जो बातें ऐतिहासिक अथवा अर्द्धऐतिहासिक कही जाती हैं, उनके सम्बन्ध में इतना जरूर ध्यान रखना चाहिए कि आखिर वे बातें हैं और उनको रसपूर्ण बनाने क लिए कल्पना का सहारा अवश्य लिया गया है। पृथ्वीराज चौहान बीरमदे सोनगरा अथवा जगदेव पंवार सम्बन्धी बातों में उनका 'वैज्ञानिक इतिहास' कितना है यह एक विचारणीय प्रश्न है। यदि ठोस तथ्यों के अनुसार उनके जीवन का विवरण प्रस्तुत किया जाय तो वह रोचक और रसपूर्ण नहीं हो सकता और जन-साधारण के लिए वह प्रिय वस्तु नहीं बन सकती। इतिहास अपने मार्ग पर स्वयं चलता है और कहानी को विशेष रास्ते से चलाया जाता है। राजस्थानी जनता ने यहां के लोक-वीरों के वृत्तान्त को अपने ढंग से चलाया है और यही कारण है कि पाठक या श्रोता उनकी बात पढ़ या सुन कर अन्त म एक सतोष की सांस लेता है और चरितनायक के प्रति आत्मीयतापूर्ण श्रद्धा प्रकट करता है। यही कारण है कि पृथ्वीराज चौहान राजस्थानी बात में 'शाह' को मार कर मरते हैं और प्रेमी प्रेमिका जलाल-बूबना मर जाने पर भी शिव-पार्वती द्वारा फिर से जीवित करवाए जा कर संसार-सुख भोगते हैं। राजस्थानी बातों का अध्ययन करते समय इस लोक-तत्व को सदैव दृष्टि में रखना आवश्यक है।

---

[१] राजस्थानी में कई ऐतिहासिक बातें ऐसी भी हैं जिनको केवल 'बात' लिख दिया गया है परन्तु उनमें रस-तत्व नहीं है। यहां ऐसी बातों को दृष्टि में नहीं रखा गया है।—लेखक

जिन व्यक्तियों को इतिहास में कोई स्थान नहीं मिल पाया राजस्थानी वार्तों ने उनको लोक हृदय के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया परन्तु यह कार्य हुआ है लोक-प्रवृत्ति के अनुसार ही। साथ ही राजस्थानी वार्तों में पूरे वातावरण का स्वाभाविक चित्र प्रकट हुआ है जो सामाजिक इतिहास तैयार करने के लिए अत्यधिक उपयोगी है। ये वातें सहज ही पाठक को राजस्थान के मध्य युग में ले जा कर खड़ा कर देती हैं और बाह्य वातावरण के साथ ही तत्कालीन लोक-हृदय को भी चित्र के समान आंखों के सामने प्रकट करती है। राजस्थान के मध्यकालीन जन-जीवन को समझने के लिए यह एक बहुत ही अच्छा साधन है।

इसी प्रसंग में राजस्थानी व्रत-कथाओं की चर्चा की जानी भी आवश्यक है। महिलाएँ किसी व्रत की कहानी सुन कर अपना व्रत 'खोलती' है। ये कहानियां अन्य बहुसंख्यक वार्तों के समान लिखी हुई भी मिलती है। अभी इनका एक संग्रह सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर से श्री मोहनलाल पुरोहित द्वारा सम्पादित हो कर प्रकाशित हुआ है। साथ ही ऐसी भी अनेक व्रत-कथाएँ या पुण्य-कथाएँ हैं जो लम्बे समय से मौखिक रूप में चली आ रही हैं और निश्चय ही वे किसी पुराण-कथा पर आधारित नहीं है। ऐसी कथाओं का अध्ययन अभी नहीं हो पाया है और यह विषय बड़ा ही उपयोगी तथा रोचक है। यदि राजस्थानी व्रत-कथाओं पर गहराई से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि वे लोक-कथाएँ ही हैं और चतुराईपूर्वक पुण्य-कथाओं के रूप में परिवर्तित कर के प्रचारित कर दी गई है। परन्तु यह एक सामाजिक प्रक्रिया है और इसका कर्तृत्व समाज को ही दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में जीवन के सांस्कृतिक तत्वों की परम्परा सहित जानकारी प्राप्त करने के लिए इन व्रत-कथाओं के वैज्ञानिक अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है। एक उदाहरण लीजिए—

प्राचीन काल में भारतीय प्रजा द्वारा पूजित 'यक्षतत्व' इन कथाओं में अनेक रूपों में व्याप्त है और समयानुसार उसमें इस प्रकार परिवर्तन हुआ है कि जन-साधारण में यक्ष का नाम भी सामान्यतः न होने पर यहाँ की व्रत-कथाओं में वह एक स्पष्ट तत्व के रूप में समाया हुआ है और लोकमान्य है।

प्रवाद

मध्यकालीन राजस्थानी लोक-साहित्य का एक प्रमुख अंग वे पद्य है जिनके पीछे कोई छोटा-सा प्रसंग है। आजकल इन प्रचारात्मक पद्यों को प्रवाद नाम दिया गया है। इनका महत्व इस कारण विशेष समझा जाना चाहिए कि ये जन-जीवन में व्याप्त रहे हैं और ये विविध विषयों के होने के साथ ही बहुसंख्यक है। ये पद्य पुराने हस्तलिखित ग्रंथों में यत्र-तत्र बिखरे हुए भी मिलते है और बड़े ही सारपूर्ण है।

राजस्थान में ऐतिहासिक प्रवादों की अधिकता रही है। किसी भी विशेष घटना के साथ ही उससे सम्बन्धित पद्य प्रचलित हो जाता था और लोग उसको कहने में बड़ा रस लेते थे। एक प्रकार से ये पद्य भी भाट के दोहों के समान ही है जो विशिष्ट व्यक्ति या घटना की याद दिलाते है। यह तो न होगा कि इन पद्यों के पीछे का ऐतिहासिक प्रसंग भी सदैव इतिहास का विषय न होकर लोक-वार्ता की वस्तु रहता है। फिर भी ये जन-साधारण के

इतिहास-बोध के परिचायक हैं और इस प्रकार के पद्यों की परम्परा काफी पुरानी है। अपभ्रंश काल से ही ऐसे प्रबंधगर्भित पद्य लोकप्रचलित मिलते हैं। मध्यकाल में यह लोक-प्रवृत्ति विशेष रूप से बढ़ी है। डॉ. कन्हैयालाल सहल ने ऐसे ही प्रसंगों का अपनी 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद' नामक पुस्तक में अच्छा संग्रह किया है। परन्तु इनकी संख्या बहुत बड़ी है और दूर देहातों तक में ये स्थानीय इतिहास के रूप में फैले हुए हैं। यहाँ कुछ प्रवादों के उदाहरण दिए जाते हैं—

[१]

वीरमदेवजी की मृत्यु के समय उनके पुत्र चूंडाजी केवल ६ वर्ष के थे और उनको शत्रु भय के कारण इसके बाद सात साल तक कालाऊ गांव में आल्हाजी चारण के यहाँ गुप्त रूप में रखा गया था। बड़े हो कर चूंडाजी प्रसिद्ध योद्धा हुए और उनकी शक्ति से डर कर मंडोवर के ईंदा राजपूतों ने उनके साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया और दहेज में मंडोवर दे दिया—

ईंदां रो उपकार, कमधज मत भूलो कदे।
चूंडो चँवरी चाड़ दी मंडोवर दायजे॥

जब चूंडाजी मंडोवर के स्वामी हुए तो आल्हाजी चारण उनसे मिलने के लिए आए और रावजी से भेंट न हो सकी तो यह सोरठा सुनाया—

चूंडा आवै चीत काचर कालाऊ तणा।
भूप भयो भैभीत मंडोवर रै *मालियै*॥[1]

यह सोरठा सुन कर रावजी ने आल्हाजी चारण का बड़ा सम्मान किया।

[२]

नदी और लाखाजी के पिता फूलजी के वार्तालाप के सम्बन्ध में ये दोहे प्रसिद्ध हैं—

माथै सिरखा सब भया अनड़ सरीखा आठ।
हेम हेडाऊ बापड़ो बळ न आयो बाट॥
लाखा करता बिणजणा हीरां बांधी पाज।
कांठै माती पो भयो हेम गरीब निवाज॥

इन दोहों में लाखा फूलाणी अनड़ नाम और हेम हेडाऊ अर्थात् बनजारे की दानशीलता की चर्चा है। कई लोग ये दोहे लाखा फूलाणी और 'बणी' (जगल) की बातचीत के रूप

---

[1] इस सोरठे के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ी खींचतान रही है जबकि इसका अर्थ स्पष्ट ही यों है—हे चूंडा तुझे कालाऊ गांव के काचर याद नहीं आते। उस समय तू भयभीत था और अब राजा बन कर मंडोवर के महल में बैठा हुआ है।

में भी कहते हैं। लाखा फूलाणी माल भरने के लिए, आते समय मार्ग में पड़ने वाले प्रत्येक वृक्ष को भी चूंनड़ी ओढ़ाता चलता था। एक 'बणी' में आकर उसने गर्व प्रकट किया तो उसे उचित उत्तर प्राप्त हुआ। कहा जाता है कि हेम नामक बणजारे ने नदी के पानी में अपनी मोतियों से भरी हुई पूरी 'बालद' बोल दी थी इसलिए वह बहुत बड़े दानी के रूप में स्मरण किया गया है। कुछ लोग हेमजी नामक राजपूत की दानशीलता के सम्बन्ध में नया ही प्रसंग सुनाते हैं जो मनोरंजन की दृष्टि से यहां दिया जाता है। यह प्रसंग केवल दूसरे दोहे से ही सम्बन्धित है—

हेमजी नामक एक राजपूत निर्धन होने पर भी स्वभाव से बड़ा दातार था। एक बार एक बारहठजी उसके घर दान लेने के लिए आए। उस समय उसके घर में कुछ भी न था कुछ ग्वार (अन्न) थी। बारहठजी ने अपना कपड़ा फैलाया और हेमजी की पुत्री 'लाखां' ने उसमें ग्वार डाल दी। जब ग्वार इधर-उधर बिखरने लगी तो हेमजी की दूसरी पुत्री 'हीरां' ने पास ही जमा दी। साथ में बारहठजी का बेटा 'कांटा' नामक था। हेमजी ने उस समय अपने पुत्र के कानों से 'भूम' नामक गहना निकाल कर 'कांटा' के कानों में पहिना दिया। तब बारहठजी ने इस दोहे के रूप में उस परिवार का कीर्ति-गान किया।

इस प्रकार के सम्बन्ध में यह सब चर्चा साहित्य के इस अंग की जन प्रियता प्रकट करने के लिए की गई है। जो विषय अत्यधिक जन-प्रिय होता है, उसमें नाना प्रकार के रूपान्तर हो जाने स्वाभाविक हैं।

[३]

माधाजी बारहठ अकाल-पीड़ित हो कर दिल्ली पहुँचे और वहां भूख के मारे कबूतरों का डाला गया अनाज चुन चुन कर खाने लगे। उस समय बादशाह अकबर की सवारी उधर से निकली। उसमें दुरसाजी आढ़ा भी थे। उन्होंने माधाजी को देख कर पहिचान लिया परन्तु उस समय वे कुछ भी नहीं बोले और घर आ कर उन्होंने उनके पास सोने का बना हुआ कटोरा भेजा। उत्तर में माधाजी ने यह दोहा कहा—

माम चराया चींरड़ा बाप फड़ाया कन्न।
दुरसो आढ़ा भूलगो जो अन्न है सो अन्न ॥

[४]

कहा गया है कि अकाल गांव-गांव के सम्बन्ध में बनते रहे हैं। सीकर के राज्य में 'कासलीवों' गांव का भींवू नामक चौधरी बड़ा प्रसिद्ध हुआ है। राजा लक्ष्मणसिंह (सं० १, ५२ १८९) के दरबार में भी भींवू की इज्जत थी। एक बार एक दाढ़ी से भींवू का जिद हो गया कि यदि कोई व्यक्ति राजाजी को 'मण्ड़ा' कह देवे तो उसे वह एक ऊंट इनाम में देगा। दाढ़ी ने इन दोहों में राजाजी को कई बार 'मण्ड़ा' कह दिया—

लागमयी भगमुग गई, धाप बरवाड़ा धाट।
मामनेल की मधा गई मण्ड़ा लच्छमणपर माट ॥ १
जगणी जाई तो ऐसा जणी मण्ड़ा सा बरियाम।
बैरी छाई काटिया लच्छमणपर का नाम ॥ २

कोकड़ कीसो कुरमरो भड़पा उवाड़ण नीब।
मक्षा देवीसिंघ रा तनै मरजन कहूँ क भीव ॥ ३

पिताभमरी बोवती गळ मोतियन की माळ।
राणी बीघावत राबका मक्षो कन्हैयालाल ॥ ४

इन दोहों को सुन कर रावजी बड़े प्रसन्न हुए और शर्त के अनुसार भीड़ू ने ढाढ़ी को अपना ऊँट भेंट कर दिया। तब ढाढ़ी ने भीड़ू की कीर्ति गाई—

कोळीड़ो कसमीर क दिल्ली पड़वड़ी।
भीड़ू राजा मान क अकबर तुरकड़ी ॥

भीड़ू की तरवार क मलके मारती।
बीबी बगड़ बुहार क बाबड़ मारती ॥

यहाँ कुछ चुने हुए ऐतिहासिक प्रबन्ध ही नमूने के रूप में दिए गए हैं। कल्पित प्रबन्ध भी बहुत अधिक हैं और वे विविध विषयों से सम्बन्धित हैं। यह बड़ी ही सरस सामग्री है और इससे अनेक प्रकार का रस प्राप्त होता है। ये जन-साधारण के इतिहास-प्रेम एवं काव्य रसिकता के द्योतक हैं। साथ ही इनसे जन-जीवन को असाधारण रूप से प्रेरणा प्राप्त होती रही है।

सुभाषित

राजस्थानी जन-साधारण में प्रचलित सुभाषितों की संख्या बहुत बड़ी है। यह प्रवृत्ति अपभ्रंश काल से ही देखी जाती है, जिसके सम्बंध में 'राजस्थानी आदिकालीन लोक-साहित्य' शीर्षक लेख (परम्परा भाग १२) में विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। मध्यकाल में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से विकसित हुई और प्राचीन पद्यों के साथ ही बहुसंख्यक नवीन पद्य लोक-प्रचलित हुए। इस साहित्य-सामग्री के सम्बन्ध में शोध करने के साधन भी सुलभ हैं। मध्य-काल में बड़ी संख्या में राजस्थानी 'वातें' लिखी गईं, जिन में लोक-प्रचलित सुभाषितों का प्रसंगानुसार पूरी छूट के साथ प्रयोग किया गया। अभी तक इन सुभाषितों का पूरा संग्रह नहीं हो पाया है, जिसकी नितान्त आवश्यकता है। इनमें दोहा छन्द की प्रधानता है जो राजस्थान का सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द है। ये दोहे सभी विषयों के हैं और बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हैं। इनमें शौर्य, शृंगार, भक्ति, वैराग्य, हास्य, नीति, उद्बोधन आदि सभी विषयों की सामग्री प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। सब से बड़ी विशेषता यह है कि ये दोहे जन-जीवन में घुलमिल कर पूरी तरह निखरे हुए मिलते हैं और एक बार सुनते ही हृदय में जम से जाते हैं। यहां इस सम्बन्ध में कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

ढोला मारू रा दूहा राजस्थान में सुप्रसिद्ध है। समयानुसार इस ग्रंथ के दोहों की संख्या बढ़ती गई है। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में जैन कवि कुशललाभ ने इन दोहों को 'बहुत अधिक पुराणा' (दूहा घणा पुराणा अछइ) प्रकट किया है। इस ग्रंथ के कुछ सुभाषित द्रष्टव्य हैं—

सुसनेही समयो परउ मच्छउ हिया मझार।
कुसनेही बर मांगणाउ, आंपण समयो पार॥ ३२

राजा परखा गुणिय-बरण कवि-बरण पंडित पात।
समळो मन उल्हस हुमत बूठेतो बरसात॥ ४०

दुख चीसारस मनहरया बच ई मान न हुंति।
हियडउ रतन-तळाव ज्यउं फूटि बहु विधि जाति॥ १९१

चिंता डाइणि ज्यां नरां रयां हड मन न खाइ।
जड़ चीरा मन चीरजई, तउ तन भीतर जाइ॥ २१९

चिंता बंध्यउ सयल जग चिंता किणहि न बद्ध।
जे नर चिंता बस करइ, ते माणस नहि सिद्ध॥ २२

डूंगर केरा वाहळा ओछां केरा नेह।
वहता वहइ उतावळा झटक दिखावइ छेह॥ ११म

दुरजण केरा बोलड़ा मत पातरजउ कोय।
अणहुंती हुंती कहइ, सपळी साच न होय॥ ४४१

वाहा चीत विनोद रस समुषा बीह मिलंति।
कइ निद्रा कइ कलह करि, मूरिख बीह गमंति॥ ११८

इसी प्रकार राजस्थान (एवं गुजरात) में दोहामयी प्रेम-कथाओं की एक विशेष परम्परा रही है। इनमें किसी के दोहों की संख्या कम है और किसी के अधिक है। समयानुसार यह संख्या वृद्धि को प्राप्त हुई है तथा इन दोहों का रूपान्तर भी किसी अंश में हुआ है। गुजरात में इन दोहामयी प्रेम-कथाओं पर स्वर्गीय मेघाणीजी ने अच्छा काम किया है और उनकी 'सोरठी गीतकथाओ' नामक पुस्तक बड़ी ही महत्वपूर्ण है। परन्तु राजस्थान में ऐसा काम नहीं हो पाया है। परम्परा का 'बीझे रा सोरठा' अंक इस दिशा में एक आदर्श है। आगे चल कर इन सोरठों की राजस्थान एवं गुजरात में दो धाराएँ प्रवाहित हुई हैं और वे दोनों ही विशेष रूप से रसमयी हैं। यहाँ 'परम्परा' में से कुछ चुने हुए दोहे (सोरठे) उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किए जाते हैं:—

टोळी सूं टळतांह, हिरणां मन माठा हुवै।
वाल्हा बीछड़तांह जीणो किण विध जेठवा॥
जळ पीधो जाडेह, पाबासर रै पावटै।
नैनकिये नाडेह, जीव न धापै जेठवा॥
चकवा सारस वाण नारी नेह तीनूं निरख।
जीणो मुसकल जाण जोड़ी बिछड़्यां जेठवा॥
नारी नापै नेह बाळप में बूढ़ां तणी।
मनां न होवै मेळ जोड़ी बिनां न जेठवा॥

मह बाबा मह मारिया मस दे मुजस न मिळ।
मोनई स्यां मानम्यां केहा कारज सिद्ध॥
कठा फिरम्यो एकसा किसा बिड़ांणा साथि।
बाप साथी तीन जण हियो कटारी हाथि॥
भूमि परेपो हे मरां कहा परेपो म्याव।
भूंम बिन मसा न नीपजै कण तुण तुरी नरिंद॥
हुंबा भरि हुवा हुवै कम्मां कमा बिहाय।
ऊठाणी पर बप्पड़ो नम नीपजै स न्याय॥
(बपड़ा मुपड़ा री बात)

फूटरिया हिरणी बणी बोह फूटणी बट्ट।
ज्यांरा मांही बांकड़ो बाजै रावै पट्ट॥
कंथ पराये मोर मैं मावै सोहि भवार।
मांझुण मामै पुत्र कुळां मरणो एकहि बार॥
राळो करस्यूं राव सूं सूरज करस्यूं साख।
फोज बिरोळूं एकसो मबळा बैण न भाख॥
रण भर रजपूती करै सो ही ममर कहाय।
कायर रोवै भीम मूं सो फिर माप नसाय॥
रण-चीतण तोरण-बंधण पुत्र बधाई चाव।
ये तीनूं दिन त्याग रा कहा रंक कहा राव॥
(एकम बाराह ढाढाळा री बात)

यहां लोक-प्रचलित सुभाषितों के दोहे से उदाहरण नमूने के तौर पर दिये गये हैं। जन-जीवन में इनका बड़ा महत्व है। लोग इनके द्वारा अपने समय को सरस बनाते रहे हैं। साथ ही इनके द्वारा वार्तालाप को प्रमाण-पुष्ट बनाया जाता है। समयानुसार ये जीवन-यात्रा में मार्ग-दर्शन करते हैं। प्ररणा के तो ये प्रजस्र स्रोत ही हैं। आकार में छोटे होने के कारण इनका स्मरण भी सर्वेव बना रहता है। प्रसगानुसार कहा हुआ सुभाषित बड़ा उपयोगी होता है। ऐसी अनेक घटनाएं हैं जिनमे एक छोटे से दोहे ने बड़ा काम कर दिया है। यदि राजस्थानी सुभाषितों का योजनापूर्वक सग्रह किया जाय तो साहित्य जगत को बड़ी ही सरस और उपयोगी भेंट दी जा सकती है। अब तक इस दिशा में जो कार्य हुआ है वह सराहनीय होने पर भी अपर्याप्त है। इस सम्बन्ध में श्रमपूर्वक कार्य किए जाने की आव श्यकता है क्योंकि मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में यह सामग्री बिखरी हुई पड़ी है।

पहेली —

राजस्थानी मध्यकालीन लोक-साहित्य का एक विशिष्ट अंग 'पहेली' है। इसके लिये गूढा हियाळी आडी आदि अनेक नाम सुने जाते हैं और सभी प्रकार की बहुसंख्यक पहेलियां प्राप्त हैं। पहेली बुद्धिवर्द्धक साहित्य है और साथ ही मनोरंजन का भी एक अच्छा साधन है —

उत्तर

माता धरण री काळ बसै पिता बसै आकास ।
कहो पुराणा मोकळा नवा तो आयो मास ।।
(मोती)

राजस्थान में ऐसी परम्परा रही है कि जब कोई 'जँवाई' ससुराल जाता था तो वहाँ की महिलाएँ उसकी बुद्धि-परीक्षा के लिये कुछ पहेलियाँ अवश्य पूछा करती थीं । अब यह परम्परा कुछ कम हो चली है । ऐसी दो पहेलियाँ उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की जाती हैं—

ऊजळ दंत अर मोती बरणो ।
रूप हमारे हियो भरणो ।।
अब सखी री कहा कीजै ।
मांग्यो रूप कहा सैं दीजै ।।
(मोळो)

पाथर-सुत की पूतळी जल-सुत को घर बास ।
छपाळी-सुत की मोवणी सासू सुत कै पास ।।
(तरवार)

देहात के लोगों को पहेलियों का विशेष चाव रहा है । वहाँ फुरसत के समय पहेलियों के दंगल भी जुड़ते रहे हैं । जीवन को सरस बनाने का यह एक उत्तम साधन है । इन दंगलों में नाना प्रकार की पहेलियाँ सामने आती हैं । संभवतः ऐसी एक भी वस्तु नहीं होगी जो एक साधारण गृहस्थ के काम में आती है या आस-पास देखी जाती है और उसके सम्बन्ध में पहेली न हो । कई पहेलियाँ ऐसी होती हैं जिनके पीछे कोई प्रसंग रहता है या जिनमें किसी दृश्य का वर्णन किया जाता है । ऐसी पहेलियों का 'फल' देना जरा कठिन होता है । इसी प्रकार अनेक पहेलियाँ ऐसी हैं, जिनका 'फल' देने के लिए पूरी कहानी कहनी पड़ती है । यह प्रसंग गर्भत्व राजस्थानी पहेलियों की एक विशेषता है और ऐसी पहेलियों की संख्या भी बहुत बड़ी है ।

कहावत—

कहावत में लोक-व्यवहार के अनुभव का सार समाया रहता है अतः इसको साहित्य जगत में पुराने समय से प्रतिष्ठा प्राप्त है । राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल में विद्वानों का ध्यान कहावतों की ओर विशेष रूप से गया है । इस विषय के विवेचन के लिये कई दिशाओं में अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है । सर्वप्रथम उन कवियों की रचनाओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए जिन्होंने कहावतों का प्रयोग विशेष चाव से किया है । दूसरे ऐसे भी ग्रन्थ लिखे गए हैं जिनकी रचना कहावतों के प्रयोग की दृष्टि से ही हुई है । इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में श्री अगरचन्द नाहटा ने शोध-पत्रिका (भाग ६, अंक ४) में 'उपखाना गर्भित रचनाओं की परम्परा' शीर्षक एक अच्छा लेख प्रकाशित करवाया है । इनके अतिरिक्त कहावतों का संग्रह भी हुआ है । श्री भँवरलाल नाहटा ने मरु-भारती (वर्ष ८ अंक ४) में सामाजिक रत्नाकर नामक ऐसा ही संग्रह छपवाया है जिसकी रचना लगभग ४०—

१ फाटउ सीवीइ नइ रूठउं मनावीइ ।
(फाटयोड़ो सींव लेणो पर रूस्योड़ो मना लेणो)

२ मूंडीया माथा भणइ फूटया मूका को न वारणइ ।
(मूंडेड़ै मूड को पर पीस्योड़ी बाड़ को के बेरो)

३ काणी ना लगन कोड़िसइ विघन ।
(काणी के ब्याह में सौ कोतिग)

४ रूप रोइ नइ कर्म खाइ ।
(रूप की रोवै कर्म की खाय)

५ मामणी मा डाकिणि कोण कहइ ।
(मापरी मा नै डाकण कुण बतावै)

६ मरणहारी घोड़ देवमाउइ पड़इ ।
(मोड़ की मोत मावै घर देव का चामड़ा खड़खड़ावै)

७ चोर नइ चांदणु न गमइ ।
(चोर नै च्यानणो कद सुहावै)

८ धर्म नी गाइ ना दांत को न जोयइ ।
(धरम की गऊ का दांत कुण गिण्या)

९ वीचड़ी माहिइं घी ढलिउं ।
(घी ढुळ्यो तो मूंगां मांय)

१० मोर नाची मनइ विमासई,
पग सामु जोइ तिवारइ आंखि आंसु भरइ ।
(मोर नाच ई नाचै पण पगां काणी देख कर रोवै)

११ ऊंट बलद नइ किसिउ सगाउ ।
(ऊंट बळद को के जोड़ो)

१२ डाकिणिइ पांच घर परिहरइ ।
(एक घर तो डाकण ई छोड़ै)

१३ तेम जोईइ तेमनी धार जोईइ ।
(तिल देखो तिलां की धार देखो)

१४ जासो कपूर नु एक पग मागउ ।
(कस्तूरी की एक टाग लम्बी तो के होग्यो)

१५ बाई मकटी पाणी पाखिउ
हा भाई ताहरउ बोलवानइ पाणी नहीं दूध पाइसु ।
(कागती दासी छा माग देता मीठो घणो बोल्यो सो थनै दूध पावस्यूं)

इसी प्रकार मुनि कीर्तिसुन्दर विरचित 'वाग्विलास' में भी कहावतें दी गई हैं। यहाँ कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१ पार की सीख प्रद्राई गीत। (सेठ की सीख पछवै ताँणी)
२ प्राव वाई हरखी प्राप बेहु सरिखी। (राँड के राँड पर्या सायी दुं जिसी ई मैं)
३ मूकि साजि सामि ताँई, प्रावी नीच प्रभाव ताँई।
४ साहु कै पतसाहु।
५ माठ्या रो भार नांपाछ्वे मैं भायौ।
६ तुम्ह स्नानै प्रम्ह स्नानं।
७ चीतवे पर, पड़ें घर। (चीतै पर तो पड़ै घर)
८ कास्यो पींज्यो भयो कपास। (कारयो फूल्यो होयो कपास)
९ काचीजी पाव धाम्हा जोशी मरे छक किसंची है। (काचीजी पगड़ी काली देखो पगड़ी मई भेंस कै पेट में)।

कहावतों के अध्ययन के लिए राजस्थानी लोक-साहित्य का 'मधूरा-पूरा' नामक ग्रंथ भी प्रसंग उपयोगी है। एक ही कहावत के लिए इसमें अनेक प्रमाण देखे जाते हैं। पुराने हस्त-लिखित गुटकों में मधूरा-पूरा नामक पद्य मय-रूप लिखे हुए मिलते हैं। जन-साधारण में इनका प्रचार भी कम नहीं है। इसका कारण इनकी रोचकता है। लेखक के संग्रह के एक गुटके में इनका एक दूसरा नाम 'भरथ-चितोका' भी मिला है। यहाँ इस प्रकार के कुछ पुराने उदाहरण नमूने के तौर पर दिए जाते हैं—

मिरा ताल बावड़ली इसी
माथा लेकड़ी नांबी इसी।
धरती एक मरता राजिसी
केहा चीया केहा मसी॥ १

मिरचमिये कै जे बम होई
बद की दाय न आवै कोई।
पायी दे रै घर का जाता
रूप की देवण रूप का पता॥ २

एक दिन माहु यू काणो
रातपु कब बचायो काणो।
पाडपोसण मायँ बाद को छड़ो
कर की देवण कर को पड़ो॥ ३

जांचै चोरै देखें परवाण
सूमी सेघी बाग में जाण।
चोखा अँबेर सज्या थान
वेहड़ा गुर वेहड़ा जजमान॥ ४

इन पदों का निर्माण 'उपखाणा गर्भित रचनाओं' की शैली पर है परन्तु ये लोक-मुख पर प्रचलित रहने के कारण बड़े सुडौल हो गये हैं और इनका प्रयोग कहावतों के रूप में वार्तालाप के समय किया जाता है। साथ ही ये समस्यापूर्ति का सा भी आनन्द देते हैं। पुरानी हस्तलिखित प्रतियों की छानबीन किये जाने से इनकी अच्छी संख्या मिल सकती है ऐसी सम्भावना है।

इस प्रकार राजस्थानी कहावतों के क्रमिक विकास का अध्ययन करने के लिये प्रचुर सामग्री प्राप्त है। जैन विद्वानों ने बहुसंख्यक प्राचीन कहावतों को अपने ग्रंथों में लिपिबद्ध कर दिया है। मध्यकालीन कहावतें भी अनेक ग्रंथों में प्राप्त हैं। इस सामग्री से सहज ही ये सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं कि राजस्थानी की प्राचीन कहावतें कौन-कौन-सी है और समयानुसार उनमें किस प्रकार रूप-परिवर्तन हुआ है तथा कौन-कौन सी प्राचीन कहावतें लुप्त हो चुकी हैं और कौन सी कहावतें नई हैं तथा किस काल की है। राजस्थानी कहावतों का इस दृष्टि से पूरा अध्ययन किया जाना बड़ा रोचक एवं उपयोगी होगा। साथ ही ध्यान रखना चाहिए कि कहावतों सम्बन्धी प्राचीन अथवा मध्यकालीन गुजराती साहित्य सामग्री को भी इस अध्यापन-क्रिया में सम्मिलित रखा जाना नितान्त आवश्यक है क्योंकि बहुत अधिक समय तक राजस्थान तथा गुजरात का लोक-साहित्य समान-रूप रहा है और अब भी यह एक-प्राण है।

उपसंहार—

यहाँ राजस्थानी मध्यकालीन लोक-साहित्य के विभिन्न अंगों पर परिचयात्मक प्रकाश डाला गया है। इस समस्त सामग्री में विषयगत विविधता होने पर भी इसका प्रधान स्वर सर्वत्र गूँजता हुआ प्रतीत होता है और वह है, सत्यनिष्ठा के साथ शौर्यमय आत्म-त्याग। राजस्थानी मध्यकालीन लोक-साहित्य का यही सरस मूल मंत्र है। इसमें गुणों की पूजा है जो मनुष्य को देव पद पर प्रतिष्ठित करवाती है। यही कारण है कि एक ही व्यक्ति के सम्बन्ध में यहाँ जमकाव्य तैयार हुए हैं लोक गीत गाए गए है लोक-कथाएँ कही गई हैं लोक-प्रशस्तियाँ बनी है और कहावतें भी चल पड़ी है। इस प्रकार यह सामग्री एक ही स्वर में बजने वाले अनेक वाद्य यन्त्रो की समवेत ध्वनि के समान प्रभाव पैदा करती है। इस समवेत ध्वनि ने ही मध्यकाल में राजस्थान में 'सूरा सतवादियाँ अर दातारां रो' समाज की रचना कर के यहाँ के इतिहास को महिमामय पद पर प्रतिष्ठित किया है। ऐसी मूल्यवान साहित्य-सामग्री के सम्बन्ध में जितना शोध-कार्य किया जाय थोड़ा है।

मध्यकालीन राजस्थानी कवयित्रियाँ

श्री शैलश्याम भोमा

विविध भाषाओं के साहित्य-सृजन में जिस निष्ठा तत्परता और विज्ञता के साथ पुरुषों ने योग दिया है उसी सहज उदारता और मेधा के साथ भारतीय नारियों ने भी। साहित्य-सृजन के प्रति नारी का यह अनुराग आज का नहीं वैदिक काल से प्रबल वेग के साथ अन्त सलिला की तरह बहता आ रहा है। अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा अत्री पुत्री अपाला बृहस्पति पत्नी जुहू विवस्वान् पुत्री यमी दीर्घतमा ऋषि की माता ममता एवं घोषा रोमशा विश्ववारा वाग्देवी गार्गी मैत्रेयी आदि कितनी ही विदुषी नारियों ने पुरुषों के ही समान मानवमात्र ऋग्वेद की ऋचाएं बना कर विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। संगमा सी नारियों ने घूम-घूम कर अध्यात्म विद्या का प्रचार किया। कौशल्या और सुमित्रा ने क्रमश नीति-शास्त्र और धर्मनीति के अनुपम ग्रंथों की रचना की। वैदिक-कालीन नारी की यह साहित्य-साधना अनवरत रूप से उत्तरोत्तर विकासोन्मुख रही और पाली साहित्य में भी बौद्ध भिक्षुणियों के विरागपूर्ण गीति स्वरों में नश्वर संसार का नैराश्य फूट पड़ा। भावों की उच्च भूमि पर आधारित उनके उद्गार इतने हृदयस्पर्शी और कलापूर्ण हैं कि कतिपय विद्वानों को यह विश्वास नहीं होता कि ये रचनाएं नारी रत्नों द्वारा रचित भी हैं अथवा नहीं। बौद्ध साहित्य के पश्चात हमारे सन्मुख प्राकृत और अपभ्रंश का जैन साहित्य आता है। इन दोनों भाषाओं में साहित्य-सृजन की दृष्टि से स्त्रियों की देन अवश्य नगण्य है पर उनका त्याग और तपस्यामय जीवन अनेकों काव्यों का प्रेरणा-स्रोत बना मूलाधार बना। तत्कालीन अनेकों कवियों ने नारी के इस त्याग और तपस्यामय जीवन की विविध सरस काव्यों में व्याख्या की। भाषा की दृष्टि से उक्त विवेच्य काल को संस्कृत पाली प्राकृत और अपभ्रंश का काल कहा जा सकता है। इसी अपभ्रंश के पश्चात शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी और गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी का साहित्य हमारे सामने आता है।

अधिकांश विद्वानों ने प्राचीन राजस्थानी का उद्भव ११वीं शताब्दी से माना है और कुवलयमाला कथा (सं ८३५) में उल्लिखित मरु-भाषा को प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है। ११वीं शताब्दी से अद्यावधि तक उपलब्ध होने वाले राजस्थानी भाषा साहित्य को डॉ एल पी टैसीटोरी डॉ मोतीलाल मेनारिया प्रो नरोत्तमदास स्वामी श्री अगरचन्द नाहटा डॉ हीरालाल माहेश्वरी श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी डॉ जगदीशप्रसाद, डॉ कन्हैयालाल सहल आदि विद्वानों ने विभिन्न भागों में विभाजित किया है। समस्त काव्य-विभाजनों को ध्यान में रख कर अगर देखा जाय तो यही ज्ञात होता है कि—

सं ८३५ से सं ११ तक उद्भवकाल
स ११ से सं १५ तक आदिकाल
स १५ से सं १६ तक मध्यकाल
सं १६ से आज तक आधुनिक काल ।

उद्भवकाल [सं ८५१ से स ११]

इस काल के जैना माना तथा शृंगारी कवियों की कृतियों में विषय-विवेचन की दृष्टि से नीति धर्मोपदेश और शृंगार वर्णन का बाहुल्य दिखाई देता है। भाषा की दृष्टि से यह काल अनेक देसी भाषाओं का जन्मकाल कहा जा सकता है। फिर भी प्रत्येक काव्यकार की कृति पर अपभ्रंश का ही प्रभाव विशेष परिलक्षित होता है। १२वीं सदी के जोगचन्द द्वारा रचित 'दोहासार' स १२२५ में बज्रसेन सूरि रचित 'भरतेसर बाहुबलि घोर' सं ११९२ के आसपास जैन व्याकरण हेमचन्द्राचार्य द्वारा रची गई सिद्ध हेमचन्द्रशब्दानुशासन स १२४१ में सोमप्रभ सूरि रचित कुमारपाल प्रतिबोध सं १३६१ मे आचार्य मेरुतुंग रचित प्रबंध चिन्तामणि' आदि-आदि कृतियों के भाव भरे छन्दों में अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अत इस काल तक की रचनाओं में राजस्थानी का परिमार्जित एवं स्वतंत्र स्वरूप सामने नहीं दिखाई देता।

आदिकाल [सं ११ से सं १५]

राजस्थानी का आदिकाल अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण काल है। इस काल में आते-आते कवियों की कृतियों मे राजस्थानी का एक स्वतंत्र स्वरूप दिखाई देता है जो अपभ्रंश से सर्वथा मुक्त है। वर्णनीय विषयों में इस काल की कृतियों में नीति धर्मोपदेश के साथ-साथ प्रेम भाव का भी भावात्मक वर्णन दिखाई देता है। इस दृष्टि से चारण शिवदास रचित अचलदास खीची री वचनिका' 'कवि मयण री राजस्थानी बात' असाइत रचित 'हंसाउली' विशेष द्रष्टव्य है। आदिकाल के इस महनीय साहित्य पर सुविज्ञ विद्वानों में गवेषणापूर्ण प्रकाश 'परम्परा' के राजस्थानी साहित्य का आदिकाल' अंक में डाला है।

उक्त दोनों कालों में निश्चित रूप से अनेक कवियों संतों जैन साधुओं और चारणों ने विविध विधाओं मे साहित्य निर्माण किया। उस काल को छोड़ कर जब हम आदिकाल की तत्कालीन परिस्थितियों का अवलोकन करते हैं तो ऐसा ज्ञात होता है कि यह काल ऐतिहासिक दृष्टि से अतीव संघर्षपूर्ण रहा। यहां के हिन्दू नरेशों को अल्लाउद्दीन खिलजी मुहम्मद तुगलक पठानों तैमूर तथा लोदी वंश के शासकों से अविश्रान्त रूप से लोहा लेना पड़ा। सामाजिक स्थिति भी कम विचारणीय नहीं थी। नारी अपने पति और पुत्र को हंसते-हंसते रणांगण में भजती थी। उसके लिये दो ही मार्ग अभीष्ट थे—विजयी होने में इसी प्रकार साथ पर पति सब रहना अथवा पति के रणखेत हो जाने पर उसकी चिता की ज्वालाओं में जल कर स्वर्ग मे प्रतिक्षातुर पति को प्राप्त करना। राजपूत ललनाओं का यह त्याग निश्चय रूप स विविध चरल काव्यों का विषय बना। परन्तु अनेक सामाजिक बंधनों में बंधी तत्कालीन नारी अपनी हृदयस्थ भावनाओं को प्रकट करने में समर्थ न हो सकी। यही कारण है कि राजस्थान के आदिकाल म एक भी कवियत्री के दर्शन नहीं होते।

परन्तु जब हम आलोच्य काल में आते हैं तो हमें एक से एक सुन्दर सरस भावभरे काव्य ग्रंथों की रचना करने वाली कवयित्रियों के दर्शन होते हैं। न्यूनाधिक मात्रा से राजस्थानी साहित्य-संवर्द्धन में योगदान देने वाले कतिपय कवियों का परिचय अवश्य साहित्य जगत में आ चुका है परन्तु जिन विदुषियों ने विषम सामाजिक परिस्थितियों को सह कर अथवा उनका विद्रोह कर अनवरत साहित्य साधना कर के अनेकों सरस काव्यों का सृजन किया—उनकी जानकारी अद्यावधि तिमिराच्छन्न है। हिन्दी साहित्य-संवर्द्धन में योग दान देने वाली कवयित्रियों की गणना की जाय तो राजस्थान इस दिशा में सर्वोपरि रहेगा। परन्तु राजस्थान की इन काव्य-कोकिलाओं का मीरां सहजोबाई दयाबाई आदि आदि दो तीन कवयित्रियों को छोड़ शेष का जो भी परिचय हमारे सामने आया है वह पूर्ण न हो कर अपूर्ण है आलोचनात्मक न होकर परिचयात्मक है। अतः राजस्थान की कवयित्रियों के भाव भरे साहित्य का सही मूल्यांकन सम्यक अध्ययन उनके भाषा, भाव और शैली पर प्रकाश डालने की अभी बहुत कुछ आवश्यकता है।

राजस्थानी कवयित्रियों सम्बन्धी शोध कार्य सिंहावलोकन

स्व मुंशी देवीप्रसाद से पूर्व राजस्थानी कवयित्रियों-मीरा सहजोबाई, दयाबाई आदि दो-चार कवयित्रियों के अतिरिक्त किन्हीं पर भी प्रकाश हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानों द्वारा नहीं डाला गया। यहाँ नहीं शिवसिंह सरोज में कवयित्री राज का उल्लेख कवि के रूप में ही किया गया है। श्री मुंशीजी ने इस दिशा में अथक परिश्रम कर के 'महिला मृदुवाणी' और विविध लेखों के माध्यम से राजस्थान की अज्ञात कवयित्रियों के साथ अन्यान्य क्षेत्रों की कवयित्रियों की पुष्ट जानकारी प्रस्तुत की। इनके पश्चात् स्व डॉ एल पी टैसीटोरी ने प्राचीन ग्रंथागारों का अवलोकन कर के 'डिस्क्रिप्टिव कैटालॉग ऑफ बार्डिक पोइट्री' में सोढीनाथी राव जोधा की आंबली रानी आदि आदि कवयित्रियों का परिचय दिया। चारण साहित्य के मर्मज्ञ श्री सीताराम लाळस ने अनेका अज्ञात विस्मृत कवयित्रियों का परिचय देकर एक विस्मृत पृष्ठ को स्मरण कराया। अन्यान्य साहित्यान्वे षकों में सर्व श्री अगरचन्द नाहटा स्व सूर्यकरण पारीक मुनि कान्तिसागर सौभाग्यसिंह शेखावत प्रभृत ने अनेकों अज्ञात कवयित्रियों का परिचय सम्मेलन पत्रिका नागरी प्रचारिणी पत्रिका शोध पत्रिका मरु-भारती युग प्रभात परिषद् पत्रिका सप्तवाणी आदि आदि पत्रों मे प्रमुख लेखों के माध्यम से प्रस्तुत किया।

हिन्दी साहित्य का इतिहास राजस्थानी भाषा और साहित्य एवं अनेकों शोध प्रबन्धों के लेखकों और लेखिकाओं ने भी राजस्थानी की कवयित्रियों की जानकारी प्रस्तुत करते समय कोई विशेष अध्ययन न कर के उक्त विद्वानों की सामग्री का दृष्टिकोण में रख अपने ग्रंथों में प्रकाशित सामग्री को ही थोड़े बहुत परिवर्तन और परिवर्द्धन से प्रस्तुत किया। इस प्रकार के विद्वानों और विदुषियों में डॉ रामकुमार वर्मा डॉ मोतीलाल मेनारिया और डा सावित्री सिन्हा का नाम उल्लेखनीय है। इस प्रकार यथावधि उपलब्ध होने वाले ग्रंथों में राजस्थान की कवयित्रियों और उनकी काव्यकृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन

सामने नहीं आ पाया। इस अभाव के अनेकों कारण हो सकते हैं परन्तु प्रमुख कारण यही है कि इस दिशा में राजस्थान के कतिपय विद्वानों को छोड़ शेष विद्वानों का ध्यान नहीं रहा।

राजस्थान की कवयित्रियों के इस विस्मृत और विशृंखल अध्याय को सामोपांग रूप से प्रस्तुत करने की दृष्टि से प्रस्तुत निबंध में राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल (वि सं १५ से १६ —जिसे राजस्थानी साहित्य का स्वर्ण काल कहा जा सकता है) की कवयित्रियों का परिचय दिया जा रहा है।

डिंगल साहित्य का सृजन उन परिस्थितियों में हुआ जब राजस्थान में जर जमीन और जोरू के लिए बातों ही बातों में युद्ध हो जाता था। इन परिस्थितियों में वीररसात्मक साहित्य का सृजन होना ही सम्भव था। अतः इस काल के चारण कवियों ने जिन वीर रसोद्र क छन्दों गीतों और डिंगल शब्दों का प्रयोग किया, तदनुरूप ही शैली का अनुकरण तत्कालीन कवयित्रियों ने भी किया। फलस्वरूप इस काल की कवयित्रियों का वर्णनीय विषय वीर और शृंगार ही प्रमुख रहा।

जिस प्रकार चारण कवियों ने रणाङ्गण में रणबांकुरे राजपूतों को युद्ध के लिए उत्साहित कर उनमें वीरोचित भावनाएँ भरी ठीक उसी तरह इस काव्यधारा की कवयित्रियों ने घर में बैठ सोये सिंहों को अपनी विस्मृत शक्ति का स्मरण कराया और वीर माता विदुला की तरह उद्बोधन दिया। जो कार्य डिंगल कवियों ने रणांगण में किया वही कार्य इन डिंगल कवयित्रियों ने सामाजिक परिस्थितियों का सामना करते हुए घर में बैठ कर किया।

इस काल की कवयित्रियों के सम्बन्ध में डॉ सावित्री सिन्हा ने अपने शोध प्रबन्ध 'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ' में जो धारणाएँ स्थापित की हैं वे अतीव हास्यास्पद एवं भ्रामक हैं। डॉ सिन्हा ने कवयित्रियों की रचनाओं को बिना देखे विपरीत काव्यधाराओं के अन्तर्गत भी मिलाया है वह भी अनुचित लगता है। उदाहरणार्थ श्री सिन्हा ने सोढ़ी-नाथी को डिंगल शैली की कवयित्रियों के अन्तर्गत रखा है जब कि उसकी समस्त रचनाएँ कृष्ण भक्ति-भाव से ओतप्रोत हैं।

शैली की दृष्टि से डिंगल काव्य रचना को ध्यान में रख कर राजस्थानी कवयित्रियों का अध्ययन किया जाय तो निम्नलिखित काव्य-कोकिलाएँ पहले-पहल ली जा सकती हैं क्योंकि उनकी एक अलग से शैलीगत विशेषता है।

१ झीमा चारणी—रचनाकाल वि सं १४८ के आस-पास
२ चांपादे रानी—रचनाकाल वि सं १६५
३ पद्मा चारणी—रचनाकाल वि सं १५६७
४ काकरेचीजी—रचनाकाल वि सं १७१५
५ विरजूबाई—रचनाकाल वि सं १८
६ राव जाखाजी री माजमी रानी } रचनाकाल वि सं

७. हरिजी रानी चावड़ी—रचनाकाल वि सं १८७६ से पूर्व
८. रानी राङवरीजी—रचनाकाल वि सं १९१

भीमा चारणी—

राजस्थानी भाषा की अनभिज्ञता के कारण १५वीं शताब्दी की इस डिंगल कवयित्री के विषय में डॉ सावित्री सिन्हा ने यह लिखा है—"जहाँ तक उसके काव्य के भाव पक्ष का सम्बन्ध है वह साधारण है। कला पक्ष के अस्तित्व के विषय में कुछ कहना ही व्यर्थ है क्योंकि न तो कला की साधना इन पंक्तियों का उद्देश्य है और न इनमें भावों की वह चरमाभिव्यक्ति है जहाँ साधना की चेष्टा न होते हुए भी अनुभूति कला बन जाती है। भाषा में न तो परिष्कार है न माधुर्य। स्थानीय प्रचलित शब्दों के बहुल प्रयोग हैं। कहीं तो भावों की सरसता भाषा की ग्रामीणता में बिलकुल खो गई है।"[1]

चारण-कुलोत्पन्न भीमा बीकानेर राज्य के बीठू चारण की बहिन थी। स्व मुंशीजी के शब्दों में वह "भक्ति चातुर्य और कविता में परम रसाल थी।"[2] कविता में परम रसाल कवयित्री भीमा ने सामारे के प्रणयपाश में बंधे महामापरोड़ के राजा अचलदास को भावभरे हृदयस्पर्शी कतिपय छन्दों द्वारा सदा के लिए उमादे सांखली का बना दिया। उसके कहे हुए छन्दों की संख्या परिमाण की दृष्टि से अवश्य कम है परन्तु उसके एक-एक छन्द में जीवन है माधुर्य है और विविधता है। हृदयस्थ भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति उसके छन्दों का शृंगार है। संगीत की स्वर-लहरी उसके छंदों से उमड़ते हुए रस-स्रोत हैं। सरल सुन्दर और सहज रूप से प्रस्फुटित होने वाले प्रभात की तरह भीमा के छन्दों की कतिपय भावाएँ इस प्रकार हैं—

> जिण उमादे सांखली तैं पिव लियो मुलाय।
> सात बरस रो बीछड़ियो तो किम रैन विहाय॥ १
>
> फिरती मापे झक गई हिरनी मूकी खाय।
> हार घरे पिव आखियो हँसे न सांमो थाय॥ २
>
> पगे बजाऊँ घूघरा हाथ बजाऊँ तूंब।
> ऊमा अचल मोलावियो ज्यूं सावण री लूंब॥ ३
>
> मालाघरी मालावियो जिण भीमा बल चाय।
> विण मानुषे बीहने मनावसी महिराण॥ ४

करणी चरित' के अनुसार भीमा कच्छ देश के मंजार नगर निवासी बरसड़ा शाखा के मालमजी नामक चारण व्यापारी की कनिष्ठ पुत्री थी। इसने किसी चारण द्वारा अपमानित होने के कारण चारण युवक से पाणिग्रहण न करने की प्रतिज्ञा ले ली थी। यही

---

[1] मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पृ ३१
[2] महिला मृदु वाणी पृ २८

कारण है कि इसका विवाह तत्कालीन ग्रमरकोट के राजा खेमकरण की सहायता से जैसलमेर के तरणोट निवासी भाटी बुध के साथ हुआ।

भाषा भाव और ग्रभिव्यक्ति की दृष्टि से कवयित्री भीमा का डिंगल काव्य-धारा की कवयित्रियों में विशिष्ट स्थान है।[1]

चांपादे—

चांपादे साहित्यानुरागी पिंगळ सिरोमणि ग्रंथ के रचयिता जैसलमेर के महारावल हरराज की पुत्री ग्रौर डिंगल कवि-सिरोमणि महाराज पृथ्वीराज की पत्नी थी। मुंशीजी के मतानुसार पृथ्वीराज की संगत से इन्हें भी कविता करनी ग्रा गई थी ग्रौर यह कभी-कभी काव्य रचना में सहारा भी दे देती थी। परन्तु काव्य-सृजन की प्रेरणा उसे ग्रपने पितृ-गृह से ही मिली थी क्योंकि महारावल हरराज के दरबार में कवियों का बड़ा ग्रच्छा समादर था ग्रौर ग्रनेकों काव्यकृतियों का निर्माण होता था। ऐसे रसमय वातावरण में पली चांपादे की काव्य प्रतिमा को पृथ्वीराज-से कवि को पति रूप में प्राप्त कर प्रबल बल मिला होगा।

चांपादे रचित कतिपय शृ'गार सम्बन्धी दोहे जिनका उल्लेख स्व मुंशीजी ने किया—

पीथल धोळा ग्राविया बहुली लग्गी खोड़।
पूरे जोबन पदमणी ऊभी मुक्ख मरोड़॥ (पृथ्वी वच)
प्यारी कहै पीथल सुणौ धोळां दिस मत जोय।
नरां नाहरां डिगमरां पाकां ही रस होय॥
खेड़ज पक्का धोरियां पथज गउग्घा पांव।
नरां तुरंगां वनफळां पक्का पक्का साव॥ (चांपादे वच)

विभिन्न विद्वानों ग्रौर विदुषियों द्वारा यथावधि दुहराए जाते रहे हैं। किसी ने भी इस दिशा में राजस्थान के प्राचीन ग्रंथागारों का ग्रवलोकन नहीं किया। वि सं १६२६ ग्रौर १८ के मध्य लिखित ग्रनूप संस्कृत लाइब्र री की प्रति नं ६६ मे चांपादे सम्बन्धी दोहे नवीन मिलते हैं। इन सात दोहों में से ५ पृथ्वीराज ग्रौर २ चांपादे के हैं। उपलब्ध चांपादे रचित दोनों दोहे इस प्रकार है

बहु दीहा हूं बल्लहो ग्राया मन्दिर ग्राज।
कवल देख कुमळाइया नहो स केहह काज॥

---

[1] भीमा के सम्बन्ध में विशेष द्रष्टव्य—
ग्र कवयित्री भूमादे—विश्वम्भरा वर्ष १ ग्रंक २
ब ग्रचलदास खीची री वचनिका–संपादक दीनानाथ खत्री
सादू ल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर
महिमा मृदु वाणी पृ १७

कुगे घुमामे चंच भरि, बए निसरजे काग।
काला सर वरियाव बिस माइम बैठ वग्ग॥

डॉ. सावित्री सिन्हा ने 'भ्रसन पाट कपाट हि चन्नल' जोड़ कर चापावे द्वारा चरण पूरा करने का उल्लेख करते हुए लिखा है— इन पक्तियों का साहित्यिक मूल्य तो कुछ भी नहीं है परन्तु इन दो बार उल्लेखों से तथा इन पंक्तियों में व्यक्त मुखरता से चम्पा के सौरभ के एक कण का भ्राभास अवश्य मिल जाता है।"

यद्यपि इस भावुक कवयित्री की सरस रचनाओं की उपलब्धि आज भी अनुपलब्ध है परन्तु जो कुछ छंद प्राप्त होते हैं उनसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि चापावे में काव्य-रचना की प्रमुख क्षमता थी। महाराज पृथ्वीराज की तरह ही डिंगल पर उसका अधिकार था। उसके रसमय जीवन की छाप भी उसकी रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होती है। कवयित्री चापावे सम्बन्धी विस्तृत विवेचन के लिए श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'राठौड़ पृथ्वीराज की पत्नी चापावती' विशेष द्रष्टव्य है।

पद्मा—

'बाम जाय कल्याण जाग' से प्रबोध गीतों की रचयिता कवयित्री पद्मा चारणी कमाजी सादू की सुपुत्री और बारहठ शंकर की पत्नी थी। बीकानेर के महाराजा रायसिंह के अनुज अमरसिंहजी का अन्तःपुर इसका आवास था। अपने पिता और पति की तरह ही यह डिंगल गीत और कवित्त लिखने में कुशल थी। 'वयण सगाई' अलंकार का निर्वाह इसके प्रत्येक छंद में भली-भांति हुआ है। उदाहरणार्थ सोये अमरसिंह को युद्ध की प्रेरणा देने वाले दो दोहले यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

सहर लूटतो सदा तू देस करतो सरद
कहर नर पड़ी थारी कमाई।
उजागर झाल खग जैतहर आभरण
अमर अकबर तणी फौज आई।
बीकहर सीहहर मार करतो बसू
अभंग अर अम्र तो सीस आया।
लाभ नयणाय भुजडोम खग लंकाल
जाग हो जाग कमधियाण जाया।

ऐसे वीर-रसोद्रेक छंदों की रचना करने वाली कवयित्री पद्मा के विषय में डॉ. सावित्री सिन्हा ने लिखा है— डिंगल शब्दावली की बीहड़ता में छिप हुए भावों को प्रयास कर के निकालना पड़ता है। विदुषी सिन्हा को प्रखर डिंगल समझ में न आती है और यह रहे डिंगल शब्दावली की बीहड़ता वह तो इसमें पद्मा का कोई दोष नहीं।

राजस्थान भारती भाग ७ अंक १
मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ ११

दयालदास की ख्यात में उक्त दोहरों के अतिरिक्त अमरसिंह की मृत्यु पर कहे गए दो दोहे और उपलब्ध होते हैं[1]—

> धारव मार्‌यो अमरसी बड हुथ्थै बरियाम।
> हठ कर सैंडै हारसी कमधज आयो काम॥
> कमर कटै उड़कै कमंध अमर हुएली भार।
> धारव हुन हौदै अमर समर बजाई सार॥

उक्त छंदों को देख कर एक पाठक सहज ही अदाजा लगा सकता है कि कवयित्री को काव्य-शास्त्र शब्द-सौष्ठव और भाषा का कितना अच्छा ज्ञान था। ख्रुद अलंकार और रस-परिपाक की दृष्टि से भी पद्या के उपलब्ध छन्द सर्वथा सुन्दर सरस और भाव-भरे हैं। इतना सब कुछ होने पर भी डॉ० सिन्हा ने लिखा है—"इन पंक्तियों की लेखिका में यद्यपि विलक्षता काव्योचित कल्पना तथा भावुकता का अभाव है पर वह विकास के साधनों के अभाव के कारण है। सीधीसादी रीति से भावों के व्यक्तिकरण में जो थोड़ी बहुत मार्मिकता आ सकी है वह उनकी अविकसित प्रतिभा की द्योतक है।"[2] सर्वथा असगत और भ्रामक है।

काकरेचीजी—

कवयित्री काकरेचीजी गुजरात के अन्तर्गत काकरेची प्रदेश के गांव दियोवर के ठाकुर बाघेला अमराजी की पुत्री थी। सांचोर के सोनगरा चौहान राव वस्तूजी के पुत्र नरहरदास इनके पति थे। इनका रचनाकाल १८वीं शताब्दी का मध्यकाल माना जा सकता है।

शाहजहाँ के लड़के से युद्ध करते समय नरहरदास रणखेत हो गये तब उनकी शकल से मिलता-जुलता एक नाई नरहरदास बन कर आया। भोले ठाकुर अमराजी ने नाई को नरहरदास समझा और उनके रणखेत की घटना को असत्य मान पुत्री से वेश बदलने को कहा। परन्तु काकरेचीजी बड़ी बुद्धिमती थी। उसने तुरन्त पर्दे की ओट से पिता से निवेदन किया—

> घर बाझी काकर धरा अध काछा अमरेस।
> नरहर भेजा नाजिया वयो पसदाडे वेस॥

यद्यपि इनकी अधिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं होती परन्तु स्व मुंधी के निम्नलिखित विचारों से ज्ञात होता है कि इनकी काव्य रचना की ओर अभिरुचि थी तथा पूर्व उल्लिखित दोहे के अतिरिक्त अन्यान्य दोहों की भी इन्होंने रचना की हो।

१ वे बहुत बुद्धिमान थी और कविता में भी उनकी रुचि थी।[3]

---

[1] दयालदास की ख्यात भाग २ पृ १११-११२
[2] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ ३१
[3] महिला मृदुवाणी पृ २

२ काकरेचीजी के बनाए हुए दोहे तो और भी सुनते हैं पर हमें मिले नहीं।[1]

डॉ॰ सिन्हा के अनुसार इनका विवाह मारवाड़ देश के पश्चिम परगने केसीनगर के चौहान राव बल्लूजी के पुत्र नरहरिदासजी से हुआ था। डॉ सिन्हा ने अपने कथन में नवीनता लाने की दृष्टि से स्व मुंशी के "इनका विवाह मारवाड़ देश के पश्चिम परगने सांचोर के सोनगरा चौहान राव बल्लूजी के पुत्र नरहरदासजी से हुआ था"[2] को उक्त रूप से प्रस्तुत किया है जो सर्वथा भ्रांति उत्पन्न करने वाला है।

बिरजूबाई—

डिंगल कवयित्री बिरजूबाई को स्व मुंशी देवीप्रसाद[3] और डॉ सावित्री सिन्हा[4] सूर्य प्रकाश' ग्रंथ के रचयिता कविराजा करणीदान की बहिन स्वीकार करते हैं। परन्तु डिंगल साहित्य-मर्मज्ञ श्री सीताराम लाळस ने नवीन खोज के आधार पर उसे करणीदान की द्वितीय पत्नी माना है।[5] इसका रचनाकाल वि सं १८ के आस-पास का अनुमानित होता है।

डिंगल गीत और कवित्त बनाने में कुशल कवयित्री बिरजूबाई समय-समय पर अनेकों रचनाएँ चारण कवियों को भी दिया करती थी। इस प्रकार प्रदत्त रचनाओं को चारण कवि अपने ही नाम से बताया करते थे। एक बार इसने अपने भतीजे को चांपावत ठाकुर प्रताप सिंह मोहनसिंहोत के पास जाते हुए को एक गीत बना कर दिया और उसे अपने ही नाम से बोलने को कहा। गीत में चीतें की जगह 'चीती कंत' सुन कर ठाकुर ने तुरन्त ही कहा कि यह सुन्दर गीत किसने लिखा है सच सच बता।' उस समय चारण कवि ने तुरन्त बिरजूबाई का नाम बताया। ठाकुर ने सुन्दर गीत पर दोनों को पुरस्कार दिया। उदाहरणस्वरूप गीत की कुछ कड़ियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं —

> नेहा मुजाला घेराकी नाग पैराकी बखाण कीजै।
> ताव जोड़ तैराकी पैराकी नाम ताव॥
> धराजी रूपका धाप्या मोखा रीझवार पगा।
> रीझार घेराकी काछी घेड़ा बाजराव॥ १
>
> ज्यां मुरां बागाव धारा मुरां सदा भोम जीनी
> मुडे माझा खेत घेह घरोती मुजाल।

---

[1] महिमा मृदु-वाणी पृ ३
मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ ११
महिमा मृदु-वाणी पृ २
वही पृ ८३
[4] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ ११
[5] मरु-भारती वर्ष ३ अंक २

पात रखी तातगीत रीतो पंच बिगू पथो
मू सारे परीती चीती क्व ज्यूं उबाए॥ ४

बिरजूबाई सी प्रतिभा-सम्पन्न कवयित्री के विषय में डॉ सिन्हा ने लिखा है — बिरजूबाई की इन पंक्तियों को काव्य की संज्ञा देना उतना ही उपहासास्पद है जितना कि किसी बालक के टूटे-फूटे शब्दों के जोड़ के प्रयास को कविता कहना।"

दुख तो इस बात का है कि डिंगल भाषा और उसके गीत-रचना-विधान की अनभिज्ञा डॉ सावित्री सिन्हा ने उक्त विचार न जाने किस आधार पर प्रकट किए है। जिस ढब से बिरजूबाई के गीत को लेखिका ने उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है वह बहुत अशुद्ध है। अच्छा होता कि वह 'महिमा मुहुवाणी' से पूरा गीत उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करतीं।

वस्तुत भाषा और शैली की दृष्टि से कवयित्री बिरजूबाई की रचनाएँ तत्कालीन डिंगल कवियों की कृतियों से किसी भी दृष्टि से कम भावपूर्ण नही।

राव जोधा री सांखली रानी—

कवयित्री सांखली रानी का सर्वप्रथम परिचय स्व डॉ एल पी टेसीटोरी ने 'कृष्णजी री वेलि' ग्रंथ निर्माती के रूप में प्रस्तुत किया। पश्चात् इसके डॉ सावित्री सिन्हा ने मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियों में इसका नामोल्लेख किया। वस्तुत इन्होंने अपने रचनाकाल में कितने ग्रंथों की रचना की यह कहाँ की निवासिनी थी आदि-आदि विषय अद्यावधि अनुसंधेय हैं।

हरिजी रानी चावड़ी—

हरिजी रानी का जन्म गुजरात के एक चावड़ा राजपूत कुल में हुआ था। यह जोधपुर के प्रतापी राजा मानसिंह की द्वितीय रानी थीं। इनकी बाल्यकाल की काव्य-रचना-प्रवृत्ति महाराजा मानसिंह का सम्पर्क प्राप्त कर और भी विकासोन्मुख हुई तथा इन्होंने एक से एक भाव भरे उत्कृष्ट शृङ्गारपूर्ण गीतों का सृजन किया।

डॉ सावित्री सिन्हा के शब्दों में 'रानी चावड़ी द्वारा रचित काव्य में कल्पना अनुभूति तथा कला तीनो ही तत्वो का थोड़ा बहुत समावेश है। पदों में माधुर्य और करुणा है। मगल गीत में अपने पति के वर-वेश धारण करने पर उनकी हार्दिक अनुभूतियाँ अनायास फूट निकलती है। महाराजा के सत्सग से इन रानीजी को भी कविता और गान-विद्या में अच्छा अभ्यास हो गया था और वे इन बातो से गुणग्राही महाराजा को दूसरी रानियों से अधिक रिझा लिया करती थी। इनके विषय में कहा जाता है कि महाराजा मानसिंह विश्राम के क्षणों में इनके गीत सुना करते थे और स्वयं भी गीत सुनाते थे।

मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ ४

४ महिमा मुहुवाणी—स्व मुशी देवीप्रसाद पृ १२१, ११

इनके लिखे कई ख्याल टप्पे और गीत विविध राग-रागिनियों में उपलब्ध होते हैं। इनकी भावभरी भाषा पर लोक गीतों का प्रभाव विशेष दिखाई देता है। रस की दृष्टि से इनके समस्त पद शृङ्गार रस-प्रधान हैं। उदाहरणस्वरूप कुछेक पद यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

[१]

बेगा नी पधारो म्हारा भामीजा थी हो
छोटी सी नायक थण रा पीव।
थो सांवरियो उमग रह्यो रे
हरिजी ने ओढ़ण दिखणी रो चीर।
इण श्रावण मिलणो कद होसी।
थारी थी रो था पर बीव।
छोटी सी नायक थण रा पीव॥

[२]

साळू ओ मगावो सांगानेर रो
रंग भीना राजा जी।
थन्न कटारी भाल मनोखी
लाग्यो छै मन्नो बाड़मेर रो॥ सा
हरे रंग कळियां रा घाघरो
घाघरे रो घेर घूमर रो।
रसीले राज म्हे मिसरी खातर
रूसणो किमो थे बीजी बेर रो॥

रानी राड़धरीजी—

मर्मज्ञिनी रानी राड़धरीजी मारवाड़ के अन्तर्गत राड़धड़ा प्रान्त के राणा की पुत्री और सिरोही के रावजी की धर्मपत्नी थी। राजा और रानी दोनों काव्यानुरागी होने के कारण कविता कर के साहित्य-साधना में समय व्यतीत करते थे। बसन्त के सुन्दर-सुखद सुहावने दिन में बाग के वन-उपवन की सुरम्य छटा देख कर रावजी ने कहा—

टूके टूक केतकी झिरते झिरले पाय।
अर्बुद की छबि देखतां और न भावै दाय॥

तत्काल ही राड़धरीजी ने कहा—

जब घाटणो भागगो अहर, पाछो चलणो पग।
अर्बुद ऊपर बैठणा भगा धरावो कग॥

रानी का उक्त दोहा सुन कर रावजी बड़े रुष्ट हुए और मारवाड़ की निन्दा करने लगे। रानी भला अपने पीहर की निन्दा कब सुन सकती थी। उसने उसी क्षण उत्तर दिया—

घर डाँबी धामम धणी परबळ मुणी पास ।
सिखियो बिण नै मामसी राइमहा रो बास ॥

राम काव्य-धारा

जिस प्रकार सूरदास ने वल्लभाचार्यजी के प्रादेशानुसार कृष्ण के विविध रूपों का गान कर के कृष्ण-भक्ति भावना को घर घर पहुँचाया उसी भांति तुलसीदासजी ने भी रामानंद के सिद्धान्तों को हृदयंगम कर के मर्यादापुरुषोत्तम राम की भावभरी गाथाएँ रामायण विनय-पत्रिका कवितावली जानकी मंगल आदि-आदि भावभरे ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत कर के राम के पावन चरित्र को राजा से रंक तक के घर में पहुँचाया। राम की मंगलदायिनी माता डॉ. सावित्री सिन्हा के शब्दों में "अनन्य भक्ति की जिस चरमानुभूति में राम काव्य की रचना सम्भव हो सकती थी नारी हृदय उससे अभिभूत तो हो सकता था पर उसकी साधारण प्रतिभा में रामचरित के भामीम तथा राम काव्य के उच्च मानसिक स्तर को व्यक्त करने की क्षमता न थी। काव्य-रचना के लिये प्रालम्बन के प्रति जिस भावात्मक सामंजस्य की आवश्यकता होती है नारी हृदय की प्राकृतिक रागात्मक तथा परिस्थिति-जन्य संस्कारों में राम की गरिमा के प्रति वह सामंजस्य उपस्थित करने की क्षमता नहीं थी।"[1] राम काव्य के अनेक अङ्गों की दुरूहता तथा साधनापरकता के कारण नारी हृदय को उससे काव्य-सृजन की प्रेरणा न मिल सकी।[2] परन्तु डॉ. सावित्री सिन्हा की उक्त मान्यताएँ सत्य के निकट प्रतीत नहीं होतीं। वस्तुतः सुख दुःख की मानवीय घटनाओं और पारिवारिक अनुभूतियों से भरा राम का चरित्र सहज रूप से मानव मन में घुल-मिल गया और उसने पुरुष और नारी समाज को समान रूप से अनुप्राणित किया। पुरुष ने राम के पिता दशरथ भाई भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न और रावण विभीषण हनुमान आदि-आदि से नई भावनाएँ प्राप्त की—वहाँ नारी ने सीता कौशल्या कैकई सुमित्रा उर्मिला मंदोदरी आदि-आदि नारी-चरित्रों से अपने-अपने मनोनुकूल भावनाओं को ग्रहण किया। इस प्रकार राम का आदर्श लक्ष्मण और भरत का भ्रातृत्व भाव सीता का सतीत्व और उर्मिला का त्याग मानव जीवन में विविध आदर्शों की स्थापना कर के पूजनीय और अनुकरणीय बना। वस्तुतः यह देवत्व का मानव में मिलन था।

दूसरी ओर रामानन्दजी के जिन बारह शिष्यों ने राम नाम की महिमा को भारत-व्यापी बनाया उनमें संत पीपा राजस्थान का ही था और श्री अनन्तानन्दजी के शिष्य कृष्णदास पयहारीजी ने भी गलता में गद्दी की स्थापना कर के बढ़ते हुए नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव को राजस्थान में राम भक्ति द्वारा परिसीमित किया। राम की पावन पुनीत गाथा सन्त तुलसी पीपा और पयहारीजी की अनुपम वाणी का स्पर्श पा कर मानव मन में रम

---

[1] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ. २१७
[2] वही पृ. २२१

गई जो विभिन्न कवि और कवयित्रियों के मुख से विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई। पुरुषों ने अपने भावानुकूल प्रसंगों को चुन कर अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया वहाँ नारी ने सीता को केन्द्र-बिन्दु मान कर राम-काव्य विषयक ग्रंथों का सृजन किया। फलस्वरूप राम-भक्ति धारा की विशिष्ट भक्त कवयित्री प्रतापकंवरी ने रामचन्द्र-नाम-महिमा रामगुण सागर, रघुवर स्नेह लीला रामप्रेम सुखसागर, राम सुयश पचीसी रघुनाथजी के कवित्त आदि ग्रंथों का सृजन किया वहाँ रूपदेवी ने रामरासो ग्रंथ लिख कर राम-महिमा का गुणगान गाया। अन्यान्य कवयित्रियों ने भी फुटकर भावभरे पदों के अतिरिक्त प्रबन्ध विलास रामप्रिया-विलास आदि आदि ग्रंथों को प्रस्तुत कर के राम-भक्ति भावना को उत्तरोत्तर आगे बढ़ाने में अनुलमीय सहयोग प्रदान किया।

राम-काव्य-धारा की कवयित्रियों ने केवल राम का ही गुण-गान किया हो—ऐसा दिखाई नहीं देता। राजस्थान की राम-काव्य-धारा की कवयित्रियों ने राधा-विलास और कृष्ण-विलास काव्यों के अतिरिक्त अनेकों कृष्ण और राधा सम्बन्धी फुटकर पदों का सृजन भी किया। परन्तु जिन कवयित्रियों में राम भक्ति भावना का प्राबल्य रहा उन्हें राम काव्य धारा के अन्तर्गत मानने का प्रयास किया गया है।

राजस्थान में राम-भक्ति भावना की लहर पूर्ण वेग के साथ १७ वी शताब्दी के प्रारम्भ काल में आई जो अद्यावधि विद्यमान है। इस धारा को मीरां की तरह घर-घर पहुँचाने का श्रेय कवयित्री प्रतापकंवरी को है। इनके पश्चात् तो अनेकों कवयित्रियों के ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। निश्चित रूप से बूंदी अलवर, जैसलमेर, बीकानेर की अपेक्षा जोधपुर की कवयित्रियों ने साहित्य जगत में अद्भुत योगदान दिया है। यद्यपि राम-काव्य-धारा की कवयित्रियों की रचनाएँ बहुत कम उपलब्ध होती हैं, फिर भी जिनकी रचनाएँ उपलब्ध हुई वे बहुत ही उत्कृष्ट और भावभरी है।

प्रतापकंवरी—

प्रतापकुंवरी का जन्म जोधपुर के जाखण गाव निवासी भाटी गोयन्ददास के घर वि सं १८७३ में हुआ। बचपन में ही उनकी बुद्धि बड़ी विलक्षण और कुशाग्र थी। बड़ी होने पर पिता ने इनके गुणों के अनुकूल पति की खोज की। सौभाग्य से जोधपुर के अधिपति मानसिंहजी के साथ प्रतापकुंवरी का पाणिग्रहण हुआ।

बचपन के गुरु मानसिंह-से विद्यानुरागी महाराजा का समर्थ पाकर विभूषित हो उठे। डॉ सावित्री सिन्हा के अनुसार भी "पूर्णदासजी के सत्संग तथा दामोदरदासजी की सत्प्रेरणा से इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की।[1] इनके लिखे निम्नलिखित भावभरे ग्रंथ उपलब्ध होते हैं —१ ज्ञान सागर २ ज्ञान प्रकाश; ३ प्रताप पचीसी ४ प्रेम सागर ५ रामचन्द्र नाम महिमा ६ रामगुण सागर ७ रघुवर स्नेह लीला ८ राम प्रेम सुखसागर; ९ राम

---

[1] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ २२७

सुजस पचीसी १ पत्रिका १६२१ चैत्र वदि ११ की ११ रघुनाथजी के कवित्त १२ भजन पद हरिजस १३ प्रताप विनय १४ श्रीहरिजस विनय १५ हरिजस गायन आदि।

ग्रन्थों के विषय—

प्रतापकुंवरी के ग्रन्थ यद्यपि विविधविषयक है परन्तु अधिकांश ग्रंथ 'राम' के विविध चरित्रों पर ही लिखे गये है जो कवयित्री के हृदयस्थ राम भक्ति के परिचायक हैं। प्रमुख रूप से राम-चरित्र के वर्णनीय विषय–झूला वर्णन राम विवाह राम वनगमन रूप वर्णन सीता-हरण राम का पुन अयोध्या आगमन और राम का राज्याभिषेक है। कहीं-कहीं फुटकर पदों में मानसिहजी की रचना-शैली का भी प्रभाव लक्षित होता है। इस प्रकार के पदों में निर्गुण भक्ति की भावाभिव्यक्ति हुई है और ज्ञान गुलाल अनद भाव सुरत कामानगर जैसे शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। समस्त ग्रथा का अवलोकन करने के पश्चात् यह भली भांति कहा जा सकता है कि प्रतापकुंवरी का राम भक्ति शाखा में एक नारी के रूप में नि सदेह उच्च स्थान है।

भाषा—

कवयित्री की भाषा सरस सुबोध सरल राजस्थानी है जिसमें भावों की पावन तरगें तरगित होती रहती हैं। प्रसाद गुण शैली में लिखे कवयित्री के भजनों का जोधपुर, जैसलमेर और बीकानेर के जन-जीवन में आज भी प्रचार है। हजारों स्त्री-पुरुष प्रतापकुंवरी के भजनों को गा कर अलौकिक आनन्द प्राप्त करते है। शब्दों का चुनाव और मुहावरों का प्रयोग करने में भी कवयित्री बड़ी कुशल प्रतीत होती है।

कला पक्ष और भाव पक्ष—

छन्द अलकार तथा राग रागिनियों का अच्छा ज्ञान होने के कारण प्रतापकुंवरी के पदों में इस प्रकार का लालित्य आ गया है जो अन्यान्य कवयित्रियों में ढूढने पर ही मिलेगा। अलकारों में उपमा रूपक अनुप्रास का विशेष प्रयोग हुआ है।

भक्त सदा अपना ध्यान आराध्य के चरणों में रखता है। वह संसार से विमुख है। उसे न आडम्बर से अनुराग है और न मोह ही। वह जब आराध्य के चरणों में अपनी जीवा वलि समर्पित करता है उस समय वह अपने भाव-पुष्प ही आराध्यदेव को समर्पित करता है। ठीक इसी तरह आलोच्य कवयित्री भी अपने भावो को ही आराध्य के चरणों में चढ़ाती है। वस्तुत प्रतापकुंवरी के पदो मे भावों की गहराई वही प्राप्त कर सकता है जिसके हृदय में कवयित्री के भावानुकूल भक्ति भावना हो। भावो की गहराइयो से भरे प्रतापकुंवरी के पद एक से एक उत्तम और उत्कृष्ट है।

राम-भक्ति शाखा की विशिष्ट भक्त कवयित्री प्रतापकुंवर—ले श्री अगरचन्द शर्मा आचार्य राधेश्याम मिश्र अभिनदन ग्रन्थ पृ १७६

रस—

कवयित्री की रचनाओं में शान्त रस की शीतल सलिला सतत प्रवाहित होती है जिसमें प्रत्येक भक्त अवगाहन कर के अलौकिक आनन्द की उपलब्धि करता है। हिंडोल विवाह के पदों में जहाँ शृङ्गार है वहाँ राम-वनगमन-विषयक पदों में करुण रसधारा भी उसी वेग से प्रवहमान हुई है।

मृत्यु—

इस विदुषी कवयित्री का देहावसान माघ बदि १२ संवत् १९४३ में २ घड़ी दिन का हुआ।[1] परन्तु उसकी राम-भक्ति की सौरभ दिग-दिगन्त में प्रसारित हुई जो आज भी अमर है अक्षुण्ण है।

इस विदुषी कवयित्री के विषय में डॉ. सावित्री सिन्हा ने जो मतवक्तव्य मंतव्य स्थापित किए हैं उनके विषय में भी पद्मचन्द्र शर्मा ने लिखा है 'डॉ. सावित्री सिन्हा का—'राम काव्य' रचयित्री के रूप में प्रतापकुंवर का स्थान साधारण कवियों से नीचे रहेगा—मन्तव्य हडबड़ाहट सूचित करता है। यथवा है उन्होंने प्रतापकुंवर के समस्त पदों का धैर्य के साथ अध्ययन नहीं किया नहीं तो इस प्रकार की अधूरी अर्द्धर्भावित और भ्रांतिमूलक बातें नहीं लिखती। वस्तुतः श्री ओझाजी के शब्दों में हम यहाँ यही कहना पड़ता है कि भटियाणी रानी प्रतापकुंवर विदुषी होने के साथ ही उच्च कोटि की कवयित्री भी थी।[2]

तुलछराय—

तुलछराय के माता पिता और वंश आदि के विषय में कुछ भी जानकारी न मिल कर सर्वश्री ओझाजी और मुंशीजी के कथनों से यही जानकारी मिलती है कि तुलछराय मानसिंहजी की उप-पत्नी थी परदायत रानी थी।[3]

कवयित्री का लिखा अद्यावधि कोई ग्रंथ-विशेष उपलब्ध नहीं होता परन्तु प्राप्त फुटकर पदों से यह अवश्य ज्ञात होता है कि कवयित्री राम की उपासिका थी। राम के प्रति उसके हृदय में अटूट भक्ति भावना थी। संभवतः यह भक्ति-भावना प्रतापकवरी के संग से प्रादुर्भूत हुई हो। प्रतापकुंवरी एक पद में इस प्रकार का उल्लेख भी करती है—

'तुलछराय नै राम पे रीझ्या
मिल दोउ करस्या बात।

---

[1] महिमा मृदुवाणी—मुंशी देवीप्रसाद पृ. ४५

[2] राम-भक्ति शाखा की विशिष्ट भक्त कवयित्री प्रतापकुंवर—आचार्य राधेश्याम मिश्र अभिनन्दन ग्रंथ पृ. ३६७

[3] ओझा—राजपूताने का इतिहास पृ. ८३४ (जोधपुर)
ओझा—राजपूताने का इतिहास पृ. ८३५

[4] महिमा मृदुवाणी पृ. १५

तुलछराय के कवयित्री होने और उसके पदों के सम्बन्ध में भी ओझाजी ने भी लिखा है— 'तुलछराय के रचे भगवद्भक्तिपूर्ण पद भी मिलते हैं।'[1]

तुलछराय राम के संग होली खेलने को बड़ी व्याकुल है। वह रह-रह कर जानकी के माध्यम से कहती है—

सीतारामजी सं खेलूं मैं होरी।
मरभूं कुसाम की मोरी॥

होरी खेलने जब आराध्य देव नहीं आते हैं तो वह अपने दिल की बात सुनने का उनसे निवेदन करती है—

मेरी सुध लीजो जी रघुनाथ।
साम रही जिय कैसे दिन की
सुनो मेरे दिल की बात।
मोको दासी जाम हिमायर
राखो चरन के साथ।
तुलछराय कर जोर कहे
मेरो निज कर पकड़ो हाथ।

तुलछराय ने राम के अतिरिक्त कृष्ण भक्ति सम्बन्धी कतिपय पद भी लिखे हैं। कवयित्री की भाषा राजस्थानी है। भाव सुन्दर और सरस है। विरहानुभूति कवयित्री के पदों का शृङ्गार है। राग-रागिनियों के ज्ञान से इनके पदों का गेय भाव भी श्रेष्ठ है।

बाघेली विष्णुप्रसाद कुंवरी

बाघेली विष्णुप्रसाद कुंवरी रीवां के महाराजा श्री रघुनाथसिंहजी की पुत्री और जोधपुर के महाराजा श्री जसवन्तसिंहजी के छोटे भाई महाराज श्री किशोरसिंहजी की रानी थी। इनका विवाह सं १८२१ में हुआ था। यह कृष्णचन्द्र आनन्दकंद को सीतानाथ कह कर रामानुज सम्प्रदाय की रीति से पूजती हैं।

डॉ सावित्री सिन्हा ने इस काल की 'राम काव्य रचयित्रियों का संक्षिप्त उल्लेख' में आलोच्य कवयित्री का परिचय मात्र दिया है। कवयित्री के लिखे अवध विलास कृष्ण विलास और राधा विलास तीन ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। कवयित्री रामस्नेही संप्रदायानुयायी रामदास के शिष्य दयाल की शिष्या थी। कृष्ण को भी कवरी राम के रूप में ही पूजती थी। उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त कवयित्री के अन्यान्य अनेकों फुटकर पद अनुराग लीला सम्मद-मोहनी हिंडोरा वर्णन महल हिंडोरा युगल छिपनी छवि लीला पनघट लीला सावन विरह लीला आदि-आदि लेखक के संग्रह में हैं।

---

[1] राजपूताने का इतिहास (जोधपुर, भाग २) पृ ८७१

कवयित्री की भाषा राजस्थानी है जिसमें ब्रज का सा मिठास है। छंद और अलंकार शास्त्र का सम्यग् ज्ञान होने के कारण कवयित्री की समस्त रचनाएँ भाषा भाव और शैली की दृष्टि से बड़ी सरस सुन्दर और भावपूर्ण हैं।

'प्रबंध विलास' दोहों और चौपाइयों में लिखा गया है जिसमें कवयित्री ने आराध्य देव रामचन्द्रजी के चरित्र तथा महिमा का गुणगान किया है। 'कृष्ण विलास' पद्य शैली और 'राधा रास विलास' गद्य तथा पद्य मिश्रित शैली में लिखा गया है।

कवयित्री की समस्त रचनाओं का विस्तृत विवेचन यद्यपि यहाँ नहीं किया जा सकता केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ग्रंथ रचना के परिमाण और स्तर की दृष्टि से आलोच्य कवयित्री अन्यान्य कवयित्रियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। मुंशीजी ने जिस समय 'महिला मृदुवाणी' का निर्माण किया उस समय कवयित्री वर्तमान थी ऐसा प्रतीत होता है।

कवयित्री के दैन्य भावना गुरु-भक्ति आराध्यदेव-विस्मय संबंधी पद एक से एक उत्कृष्ट और सरस

रतनकंवरी—

कवयित्री रतनकंवरी जाखल निवासी भाटी लक्ष्मणसिंहजी की पुत्री प्रतापकुंवरी की भतीजी और ईडर के महाराजा प्रतापसिंहजी की रानी थी।

इनके विषय में डॉ सावित्री सिन्हा ने कोई विशेष उल्लेख न कर के यही लिखा है कि इन्होंने भी राम के रूप-वर्णन तथा महिमा के गान में मुक्तक पदों की रचना की है। राम के चरित्र के अनुरूप गाम्भीर्य का अभाव है परन्तु रसिकता की अभिव्यक्ति में माधुर्य का अभाव नहीं है।

राजस्थान की अन्यान्य कवयित्रियों के प्रति दिए गये मतप्रकाश मन्तव्यानुसार यह मत भी है। डॉ सिन्हा ने इनके लिये भाव भरे पदों का अवलोकन नहीं किया प्रतीत होता है।

इनके लिये कतिपय पद 'मारवाड़ी भजन संग्रह' में उपलब्ध होते हैं। पदों की भाषा राजस्थानी है जिस पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। पदों में शृङ्गार और शान्त रस प्रधान है। विनय भावना भी कई पदों में देखने को मिलती है। उदाहरणस्वरूप एक-दो पद यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

> रघुवर म्हारा रे म्हाने दरस दिखाजा रे।
> तो देखन को चाह घनी है म्हाने झमक दिखाजा रे॥
> साथ सखी सरी कर दिन की मीठी बैन सुनाजा रे।
> रतन कवरि ता सा यह बिनती चक बेर हिय माजा रे॥

कवयित्री के पदों में राम 'रूप गुरा आगारो' है। वह उनकी सुहानी सूरत पर बलिहारी जाती है—

सियावर तेरी मूरत मैं हूं वारी रे ।
मौट मुकुट की लटक मनोहर, महान् मामत है मति प्यारी रे ॥
वा छवि निरखत को मो नैना, जोवत बाट तिहारी रे ।
रतन कंवरि कहे मो सिम या के मस्तक बताया मनुधारी रे ॥

रंगीले राम ने कवयित्री का मन मोह लिया है । आठों याम उस ही स्मरण करती है उसी का ध्यान करती है । भक्त कवयित्री की अनन्य भक्ति-भावना-भरे पद का रसास्वादन कीजिए—

मेरो मन मोयो रंगील राम ।
उनकी छवि निरखत ही मेरो बिसर गयो सब काम
अष्ट पहर मेरे हिरदे बिच आन कियो निज धाम ।
रतन कंवर कहे उनको पल-पल ध्यान करूं नित शाम ॥

देवी—

रूप देवी शाहपुरा निवासी अमरसिंह की पुत्री और अलवर के राजा विनयसिंहजी की रानी थी । इनके लिखे निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध होते हैं —

१ रामरास	रचनाकाल	वि सं १९१८
२ रूप-मंजरी		वि सं १९ ८
३ रूप रुकमणी मंगळ	,,	वि सं १९२४

राम रास में कवयित्री ने कृष्ण के रास वर्णन की तरह सरयू के तट पर राम के रास का वर्णन किया है । छन्दों की दृष्टि से इसमें दोहा चौपाई, सुन्दरी-रमण आदि-आदि का प्रयोग हुआ है । राग-रागिनियों मे प्रभाती देस बिहाग केदारा परज मल्हार, काफी सोरठ मांड आदि-आदि में सुन्दर पदो का लालित्य और भी बढ़ गया है । रूप-मंजरी ११ पदो मे लिखा काव्य है । 'रूप रुकमणी मंगळ' बहुत ही सरस काव्य है ।[१] भाषा भाव और शैली की दृष्टि से 'रूप रुकमणी मंगळ' मंगल काव्य ग्रंथ माला का एक सुरभित पुष्प है ।

कवयित्री का प्रकृति चित्रण भी अनूठा है । पदों का लालित्य देखते ही बनता है । पद-पद पर अनुप्रासो की छटा रूप देवी के प्रत्येक पद को बहुत ही सरस बना देती है । उदाहरणार्थ—

१ राम रमन सुख चैन करोंगे ।
भृकुटि पलक पल झलक छबीली पलकों पांव धरोगे ।
चरण चाहत चित चापि अली-जन मदन पीर हरोगे ।
रूप राम रस माधुरि मूरति आनन्द सकल भरोगे ।

कवयित्री के सम्बन्ध में संतवाणी वर्ष ५, अंक १२ में 'राजस्थान की भक्त कवयित्री रूप देवी' नामक मेरा लेख भी प्रकाशित हो चुका है ।

[१] इस ग्रंथ का सम्पादन लेखक ने कर लिया है और वरदा को प्रकाशनार्थ भेजा हुआ है ।

> २ सब मिल रास रच्यौ मझ रात।
> तट सरजू की तीर निकट प्रति सहुत सखा लै साथ ॥
> घुघर झनक झनकार सबद सुनि चकित भयो ब्रह्मा मुसकात।
> सकर सकित चकित चित चातुर, निरखि सरूप रघुनाथ ॥

कवयित्री की भाषा राजस्थानी है जिस पर ब्रज भाषा का थोड़ा बहुत प्रभाव है।

भाड़ची प्रतापबाला—

कवयित्री का विस्तृत परिचय स्व० मुंशी देवीप्रसादजी ने 'महिला मृदुवाणी' में दिया है। कवयित्री का जन्म वि० सं० १८११ में भादोव वदि १२ को जामनगर में जाम श्री रिड़मलजी के घर हुआ। जोधपुर के महाराजा तख्तसिंहजी के साथ वैशाख सुदि ११ सं० १९०८ को पाणिग्रहण हुआ। आप रामस्नेही सम्प्रदायानुयायी राम भक्त कवयित्री थी। कृष्ण और राम की समान रूप से उपासना किया करती थीं। इनका बनाया 'रामाद्वोरा' रामस्नेही साधुओं का एक बड़ा धर्म-स्थान आज भी जोधपुर में बना हुआ है। इनके लिखे पद 'प्रताप कुवर पद रत्नावली' में प्रकाशित हो चुके हैं। इनका देवलोक वि० स० १९७४ में हुआ।

इनके पदों की भाषा राजस्थानी है जिसमें ठेठ राजस्थानी का मिठास है। खमायच सोरठ जैजैवन्ती कालिगड़ा परज जम्भोरी जगला विहाग आदि आदि राग रागिनियों में आपके पद उपलब्ध होते हैं। पदों में आपका नाम अधिकांश रूप से जामसुता प्रतापकार, कुमारी जाम और जामसुता परताप प्रयुक्त हुआ है।

भाव और रस की दृष्टि से इनके पद बड़े सुन्दर, सरस और प्रसादगुण-युक्त हैं। भक्त के हृदय की विह्वलता इनके पदों में पग-पग पर देखने को मिलती है। यद्यपि इन्होंने समस्त पद चतुर्भुज श्याम को सम्बोधित कर के लिखे हैं फिर भी इनके मन में रामस्नेही सम्प्रदाय से दीक्षित होने के कारण राम भक्ति भावना का प्राबल्य था। वैसे कृष्ण और राम कवयित्री के समान रूप से आराध्य हैं। उदाहरणार्थ—

> थारी थारा मुखड़ा री स्याम सुजान।
> मन्द मन्द मुख हास्य विराजे कोटिक काम लजान।
> अनियारी अखियाँ रस भीनी बाकी भौहें कमान।
> दाड़िम दसन अधर अरुणारे, बचन सुधा सुख दान।
> जामसुता प्रभु सो कर जोरे, हो मेरे जीवन प्रान ॥

चन्द्रकला बाई—

चन्द्रकला बाई राव गुलाबजी के घर की दासी थी। इनका जन्म बूंदी में सं० १९२३ और देहावसान सं० १९६५ में हुआ।[1] आपका आविर्भाव समस्यापूर्ति के युग में हुआ और

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया पृ० ११५

आप स्वयं आशु कवयित्री होने के कारण समस्यापूर्ति में सदैव सर्वोपरि रहीं। सीतापुर के कवि मण्डल की ओर से आपको 'समुन्धरा-रत्न' की पदवी भी मिली थी। हिन्दी के 'रसिक मित्र' 'काव्य सुधाकर' आदि-आदि तत्कालीन पत्रों में आपकी रचनाएँ भी प्रकाशित होती थी।

आपने करुणाशतक पदवी प्रकाश रामचरित महोत्सव प्रकाश आदि की रचना की। यद्यपि इनकी ख्याति शृङ्गाररसात्मक फुटकर कवित्त सवैयों के कारण है परन्तु 'राम चरित्र' से ऐसा प्रतीत होता है कि कवयित्री के हृदय में राम के प्रति अच्छी भक्ति भावना है।

कविता में परिमार्जित ब्रज और हिन्दी भाषा का प्रयोग हुआ है परन्तु अधिकांश रचनाएँ राजस्थानी में हैं।

कवयित्री की रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि वह बड़ी विदुषी होने के साथ-साथ छन्द अलंकार और काव्य शास्त्र की ज्ञाता भी थी। आपने पूर्ववर्ती और तत्कालीन कवियों की काव्य-शैली के साथ साथ अभिव्यक्ति का भी उसे पूर्ण ज्ञान था। इस प्रकार की विदुषी कवयित्रियाँ वस्तुतः भाषा साहित्य का शृंगार हैं। उदाहरणार्थ—

कपिनाथ महाबल बालि नसाय
कप्यो कपिराज सुकण्ठ सुभाती।
दल बानर भालुन को सम सैन
नए गिरखी भति लंक कपाती॥
कहि जगकन्या हुनि रावन को
धुमवाय लई सियही हरषाती।
मुसकावत बाम बिनोद भरी
जब ही जब राम लगावत छाती॥

कृष्ण काव्य-धारा—

महाभारत गीता और श्रीमद्भागवत के कृष्ण वल्लभाचार्य से पूर्व कतिपय संस्कृत के विद्वानों और ब्राह्मण पंडितों के आराध्य देव एवं प्रेरणापुंज थे। संस्कृत भाषा ही कृष्ण-गुणगान के उपयुक्त थी और उसी में तत्कालीन कवि-कवयित्रियाँ कृष्ण का गुणगान करती थी। हिन्दी और ब्रज भाषा में कृष्ण भक्ति काव्य-धारा का आविर्भाव पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्यजी के अष्ट छाप की स्थापना के पश्चात् हुआ। इस भक्ति के केन्द्र मथुरा वृन्दावन गोकुल द्वारिका और नाथद्वारा रहे। कृष्ण के प्रति जिस वात्सल्य सख्य और दास्य भाव को लेकर वल्लभाचार्य ने जिन विविध रूपों की व्याख्या की उन्हीं को अष्ट छाप के सूरदास कुम्भनदास परमानन्ददास कृष्णदास छीतस्वामी गोविन्दस्वामी चतुर्भुजदास और नन्ददास स कवियों ने भारतव्यापी बनाया। वात्सल्य सख्य माधुर्य और दास्य भाव भरी कृष्ण की विविध लीलाओं का प्रभाव समस्त भारत में पड़ा। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ-काल में प्रारम्भ होने वाली इस सरस धारा का एक शताब्दी में ही समस्त भारत में प्रचार और प्रसार हो गया। भारत और अष्ट छाप के कवियों की भाव भरी स्वर-लहरी गूंज उठी। इस भक्ति-धारा के प्रचार और प्रसार का सर्वाधिक श्रेय महाकवि सूरदास को है जिन्होंने

वात्सल्य से ओत प्रोत कृष्ण की मनोमुग्धकारी बाल-लीलाओं का चित्रण कर के जन-मानस का ध्यान नटवर नागर नन्दकिशोर की ओर आकर्षित किया। राजस्थान के कवि और कवयित्रियां भी इस कृष्ण भक्ति-परक भाव-धारा में अवगाहन किए बिना नहीं रह सके। राज प्रासादों से लेकर गरीब की कुटिया में भी कृष्ण के भजन सूर की छाप से हजारों कंठों से प्रातः और सायंकाल उद्भाषित होने लगे। महलों में निवास करने वाली मेड़तणी मीरां और सुदूर पश्चिम में रहने वाली अमरकोट की सोढी नाथी भी इस भाव-धारा से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। सूर और अन्यान्य अष्ट छाप के कवियों की कृष्ण-भाव-परक मन्दाकिनी मीरां का भारी और मातृत्व भावभरा स्पर्श पा कर राजस्थान के जन-मानस का कंठहार बन गई। मीरां के पश्चात् कृष्ण की विविध लीलाओं को शृंगारिक रूप देने में नागरीदास और उनकी बनीठनी ने जो योगदान दिया उसे हिन्दी साहित्य विस्मृत नहीं कर सकता। इसी तरह बीरां रानी बांकावती गिरिराज कंवरी वाली सुन्दर सौभाग्य कुंवरी बाघेली रणछोड़ कुंवरी सम्मान बाई ने राजस्थानी भाषा में कृष्ण के प्रति हृदयस्थ भक्ति भावना को विविध रूपों में अभिव्यक्त किया। पिंगल भी राजस्थान की प्रिय भाषा थी और आज भी राजस्थानी कवि और कवयित्रियों के लिखे शताधिक ग्रंथ उक्त भाषा में उपलब्ध होते हैं। फलस्वरूप सुन्दर कुंवरी बाई, छत्र कंवरी बाई, प्रतापी देवी रंगाबाई, आनन्द कुंवरी आदि-आदि कवयित्रियों ने ब्रज भाषा में उत्कृष्ट काव्य ग्रंथों का सृजन कर के भगवान कृष्ण के चरणों में काव्य-प्रसून रत्न भेंट किए।

राजस्थान के नारी-जीवन में कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना को जगाने का श्रेय मीरां को है। मीरां का आराध्य के प्रति अटल विश्वास हजारों महारानियों का प्रेरणा-स्रोत बना। अनेकों ने मीरां की तरह ही सर्वार्पण कर के कृष्ण भक्ति में लीन होने का निश्चय कर लिया। फलस्वरूप कितनी ही कवयित्रियों ने कृष्ण की विविध लीलाओं का सुमधुर गान किया। राजस्थानी की कृष्ण भक्त कवयित्रियों की संख्या यद्यपि अन्यान्य क्षेत्रों से सर्वाधिक है, फिर भी अगर इस दिशा में अनुसन्धान किया जाय तो अनेकों कृष्ण भक्त कवयित्रियों का पता सहज रूप से और लग सकता है।

'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां' ग्रंथ में डॉ सिन्हा ने राजस्थान की जिन कवयित्रियों का परिचय दिया है वह सर्वथा भ्रांतिमूलक और मूल ग्रंथों के बिना अवलोकन के दिया गया है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की सामग्री का मूल्य अब निश्चित रूप से कम होने लग गया है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक कवि एवं कवयित्री पर लिखते समय पूर्व हस्तलिखित सामग्री का ही पिष्ठ-पेषण न किया जा कर मूल ग्रंथों का अवलोकन कर के नवीन तथ्य सामने लाए जाएं। अग्रिम पंक्तियों में यथासम्भव नवीनताओं के साथ कृष्ण काव्य-धारा की राजस्थानी कवयित्रियों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

मीरां—

मीरां का नाम लेते ही हृदय में सहज रूप से कृष्ण का स्मरण हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मीरां और कृष्ण में कोई पार्थक्य नहीं।

भारत की कवयित्रियों में जितनी अधिक चर्चा मीरां की रही संभवत: अन्य किसी कवयित्री की नहीं रही होगी। कबीर सूर तुलसीदास की तरह कितने ही ग्रंथ और संग्रह मीरां के प्रकाशित हुए जिनमें विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से मीरां की भक्ति-भावना को परखा उसकी व्याख्या की।

भक्त-मदाकिनी मीरां ने जो कुछ लिखा उसकी एक-एक पंक्ति में उसकी मनःस्थित भक्ति-भावना का स्पन्दन है जो अनायास ही भक्त का हृदय तरंगित कर देता है। मीरां में जो कुछ है सहज है स्वाभाविक है प्रकृतिजन्य है। उसमें न बनावटीपन है और न कृत्रिमता। उसके हृदय की निर्मलता पुनीत भक्ति का स्पर्श पा कर विविध पदों में प्रकट हुई है।

मीरां की भक्ति दांपत्य भाव की थी। उसने कृष्ण को पति के रूप में माना और उसकी संयोग और वियोग की अनुभूति में विविध पदों को गाया। उसका यह प्रेम लौकिक न हो कर अलौकिक था। उसकी अनुभूति भी भौतिक न हो कर आध्यात्मिक थी।

मीरां के विषय में इतना अधिक लिखा गया है कि यहां जो कुछ लिखा जाय मात्र पिष्ट-पेषण होगा अत: भक्त कवयित्री का एक पद बानगी रूप में प्रस्तुत कर के राजस्थानी की अन्यान्य कवयित्रियों पर विचार प्रकट किया जा रहा है जिनके सम्बन्ध में अद्यावधि बहुत कम जानकारी उपलब्ध होती है—

> बरसे बिन दूखण लागे नैण।
> जब से तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहुं न पायो चैन।
> सबद सुणत मेरी छतियां कांपे मीठे मीठे बैन।
> बिरह-व्यथा कासू कहुं सजनी बह गई करवत ऐन।
> कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैण।
> मीरां के प्रभु कब'र मिलोगे दुख मेटण सुख देण।

सोढी नाथी—

सोढी नाथी के विषय में डॉ रामकुमार वर्मा और डॉ सावित्री सिन्हा ने कुछ भी उल्लेख न कर के मात्र पद्यों का नामोल्लेख कर के अन्यान्य कवि और कवयित्रियों पर चर्चा की है। उसी उपेक्षिता हृद्य भक्त कवयित्री के सम्बन्ध में आज विषद विवेचन प्रकाश में आ चुका है।

सोढी नाथी अमरकोट के राणा चन्द्रसेन की पोती तथा राणा भोज की पुत्री और जैसलमेर के *यदुकुल रावळ रामचन्द्र के पुत्र देरावर के महाराजा सुन्दरदास की धर्मपत्नी* थी। इसके लिखे निम्नलिखित ग्रंथ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर में उपलब्ध हैं—

नणसी री ख्यात भाग २ पृ ३१६ व ३१ —डॉ रघुबीरसिंहजी ने अपने पत्र द्वारा उक्त जानकारी दी है अत: लेखक उनका आभारी है।

१ बाल चरित्र	सं १७११[1]
२ गूढार्थ	सं १७११[2]
३ भगवद्भाव चन्द्रायण	सं १७१
४ साखी	सं १७११
५ नाग लीला	सं १७११
६ कंस लीला	सं १७११

'बाल चरित्र' में कवयित्री ने १२ राजस्थानी दोहों-सोरठों में कृष्ण की बाल लीला का वर्णन किया है। गूढार्थ दृष्टिकूट पदों की तरह ७४ दोहों सोरठों में लिखा पांडित्यपूर्ण ग्रंथ है। 'भगवद्भाव चन्द्रायण' अपूर्ण प्राप्त हुआ है परन्तु अपनी विशेषता लिए हुए है। 'नाग लीला' में साखी परची दूहा सोरठा और चन्द्रायण आदि-आदि ५१२ छन्द है। कंस लीला १ ६ दोहों में लिखा गया काव्य है। साखी में कवयित्री ने अनेकों भक्तों के नामोल्लेख करते हुए ११८ साखियों में हृदयस्थ भक्ति-भावना को प्रकट किया है। ग्रंथों के नामानुसार कृष्ण-भक्ति भावना का कवयित्री ने हृदय खोल कर वर्णन किया है। कवयित्री की भाषा सुमधुर राजस्थानी है जिसमें भावानुकूल अभिव्यक्ति है। छन्द और छन्द-शास्त्र का कवयित्री को बहुत अच्छा ज्ञान है। रस की दृष्टि से कवयित्री की रचनाएँ शान्त रस-प्रधान हैं।

डॉ सावित्री सिन्हा ने नागी के सम्बन्ध में लिखा है—"रचना की मात्रा इतनी अधिक होते हुए भी इस प्रति की अप्राप्ति के कारण उसकी देन का मूल्यांकन करना असंभव है। अतः कवयित्री के विषय विवेचन हेतु मंजुभम का लिखा 'हिन्दी की उपेक्षिता कवयित्री सोढी नाथी' द्रष्टव्य है। लेखक का मरुभारती वर्ष ८ अङ्क ४ में प्रकाशित—सोढी नाथी रचित 'बूढा भरत और उसकी प्राचीन परम्परा' लेख भी सोढी नाथी पर अच्छी जानकारी प्रस्तुत करता है।

सोढी नाथी कृष्ण की अनन्य उपासिका थी। वह समस्त घर का धंधा त्याग कर रात दिन कृष्ण भक्ति-भाव में डूबी रहने की अनुनय-विनय करती है। ग्रंथ परिमाण भाव और कला पक्ष की दृष्टि से हिन्दी साहित्य की कवयित्रियों में राजस्थानी कवयित्री सोढी नाथी का विशिष्ट स्थान है।

---

[1] बाल चरित्र मरुभारती वर्ष ४ अङ्क १ में मंजुभम द्वारा संपादित प्रकाशित हो चुका है।

[2] गूढार्थ हिन्दी विश्व भारती बीकानेर द्वारा (संपादक मंजुभम) प्रकाशित हो चुका है।

[3] मध्यकालीन कवयित्रियाँ पृ ३५

[4] आचार्य राधेश्याम मिश्र अभिनन्दन ग्रंथ पृ १७६

मीरां—

मीरां जोधपुर की रहने वाली थी। इसके माता पिता का नाम ज्ञात नहीं हो सका है मत' अनुपमेय है। इसके लिखे पद कृष्ण भक्ति भावना से भरे हुए सर्वत्र राजस्थान में गाए जाते हैं। इसके फुटकर पद ही उपलब्ध होते हैं।

मीरां की जानकारी सर्वप्रथम मुंशी देवीप्रसादजी ने दी है और उन्हीं की सामग्री को विभिन्न विद्वानों ने दुहराया है। मीरां कृष्ण की मुरली की धुन पर मस्त है। उसे सुन कर वह तन मन की सुधि भूल जाती है और यही गाती रहती है 'बस रही मेरे प्राण मुरलिया, बस रही मेरे प्राण।

जिस दिन से इसने मुरली की धुन सुनी है उसी दिन से इसका ध्यान उसी ओर अहर्निश लगा रहता है—

धुनि सुनि कान भई मतवारी
अन्तर लग गयो ध्यान।

विरहजन्य भाव भी मीरां के उत्तम हैं। कृष्ण मिलन का कह कर भी नहीं आते हैं। कमलिनी उपालम्भ देती हुई कहती है—

मिलण मिलण तुम कह गये मोहन
अब क्यों देर लगाय रे।

कमलिनी की भाषा राजस्थानी है जिसमें कोमलता है। भावों पर मीरां आदि का भाव भी अंकित होता है।

रानी बांकावती—

महारानी बांकावती कछवाह राजा आनंदरायजी की पुत्री और किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह की महारानी थी। कविता लिखने का चाव बचपन से ही था। कृष्ण का इसे इष्ट था और आठों याम कृष्ण ध्यान में पगी रहती थी। आराध्य देव की भक्ति-भावना में सराबोर हो कर इसने श्रीमद्भागवत का सर्वोत्कृष्ट राजस्थानी भाषा में अनुवाद किया जो आज भी 'ब्रजदासी भागवत' के नाम से सुविख्यात है। अनुवाद अत्यधिक सरल सुबोध और प्रसाद गुण युक्त शैली में लिखा गया है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियों का रसास्वादन कीजिए—

जैसे रेत चमक मृग देखी।
जल के भ्रम मन माहिं सपेखी॥
जल भ्रम झूठ रेत ही सत्य।
भ्रम सो देखि परत जल प्रत्य॥
यों झूठो सब ही संसारा।
सांचो हो स्वामी करतारा॥

गिरिराज कुंवरी—

भरतपुर की राजमाता गिरिराज कुंवरी का जन्म वि सं १९ २ और देहावसान वि सं १९८ में हुआ। आपके लिखे दो ग्रंथ उपलब्ध होते हैं—

१ ब्रजराज विलास; २ पाक शास्त्र।

प्रथम ग्रंथ प्रकाशित है तथा द्वितीय अप्रकाशित। 'ब्रजराज विलास' को देखने से ज्ञात होता है कि कवयित्री कृष्ण की उपासिका थी। कृष्ण-मिलन हेतु उसकी आत्मा सदैव व्याकुल रहा करती थी। इनकी भाषा राजस्थानी है, जिसमें मधुरता है। उदाहरणार्थ—

मो सम कौन अधम जग माही।
सगरी उमर विषयन में खोई हरि की सुधि बिसराई।
मन भायो सोई तो कीनो जग में भई हँसाई॥
काम क्रोध मद लोभ मोह के मेरे हुए सिपाही।
इन से मोही छुड़ावो स्वामी गिरिराज है शरणाई॥

ब्रजभान किशोरी—

कवयित्री ब्रजभान किशोरी जोधपुर के महाराजा तखतसिंह की रानी थी। कृष्ण के प्रति इनके मानस में अथाह भक्ति थी। कृष्ण और राम की विविध लीलाओं का वर्णन इन्होंने अनेक राग रागिनियों में किया है। इनकी भाषा राजस्थानी है।

कृष्ण जंगल से धेनु चरा कर आ रहे हैं। उनके तन पर गो धूलि लगी हुई है। उस वेष में कृष्ण कितने सुहावने प्रतीत होते हैं कवयित्री के शब्दों में देखिये—

धेन संग आवत स्याम बिहारी।
अंग रज छावत मुकुट मैनन में कम छरी कर धारी।
निरखत नंद ग्वाल सब निरखत निरखत सबै ब्रजनारी॥
भुजमाल उर माल पुहुपन की बसीधर मुर भारी।
तखतराज ब्रजभान कुवर के निरखत नैन बिहारी॥

सौभाग्य कंवरी—

कवयित्री सौभाग्य कंवरी जोधपुर के महाराजा तखतसिंहजी की पुत्री और बूंदी के राजा रघुवीरसिंहजी की पत्नी थी। इनका जन्म वि स १९२९ में हुआ। इनके गुरु का नाम भावनदास था। भावनदास रामस्नेही सम्प्रदायानुयायी थे परन्तु कवयित्री के हृदय में कृष्ण के प्रति अनन्य भाव दिखाई देता है। इनका लिखा 'सौभाग्य बिहारी भजन माला' भी प्रकाशित है। इसमें गुरु-महिमा कृष्ण-लीला वियोग और निर्गुण भाव के पद हैं।

कवयित्री की भाषा राजस्थानी है। राग रागिनियों का कवयित्री को बहुत अच्छा ज्ञान था। यही कारण है कि इन्होंने अपने पद विविध राग रागिनियों में लिखे हैं। एक पद यहाँ दिया जा रहा है—

प्यारी लागे म्हांने राज री मरोर।
सौभाग्य बिहारी बनड़ो चित चोर।

केसरिया सिर पेच कलंगी जामो जरकस कोर।
अधर धरी मुरली मन मोहन ठाढ़ो नंदकिसोर॥
थरख करत सुर नर मुनि मोहे सुन मुरली की घोर।
गोपी ग्वाल बाल चहुँ दिश ते निरखत नंदकिसोर॥

बाघेली रणछोड़ कंवरी—

श्रासोच्य कवयित्री रीवा महाराजा विश्वनाथजी के भाई बलभद्रसिंहजी की पुत्री और जोधपुर के महाराजा तखतसिंहजी की रानी थी। इन्होंने अपने जीवन काल में कितने ग्रंथों का निर्माण किया—निश्चित जानकारी नहीं मिलती। इनकी भाषा राजस्थानी है। फुटकर पद कृष्ण भक्ति-भावना से भरे प्राप्त हैं—

गोविन्दनाथ तुम हमारे मोहे दुख से उबारे।
मैं सरन हूं बिहारे तुम काम कस्ट टारे।
हो बाघेली के प्यारे सिर कीट मुकुट धारे।
खोनी छटा को पधारे मोरी सुरत ना बिसारे।
कोटिक पतित उभारे, कृपा दृष्टि से निहारे।
हो भरोसे ही बिहारे, मेरी बात को सुधारे।

सम्मान बाई—

सम्मान बाई रामनाथ कविया की पुत्री और अलवर राज्य के बिहारनी ग्राम की रहने वाली थी। सुयोग्य पिता की देख रेख में शिक्षा-दीक्षा होने के कारण काव्य रचना-कौशल कवयित्री में बचपन से ही प्रारम्भ हो गया था जो उत्तरोत्तर विकासोन्मुख होता रहा। इनका लिखा 'पति शतक' ग्रंथ बहुत ही प्रसिद्ध ग्रंथ है। पति को साक्षात् परमेश्वर के रूप में मानने वाली सम्मान बाई दृढ़ विश्वास के साथ कहती है—

देखो तो त्रिलोकीनाथ पति मैं बिराज रहयो।
कहत सम्मान राम पति में प्रकाशे है॥

उक्त ग्रंथ के अतिरिक्त कवयित्री के लिखे फुटकर पद कई प्राप्त होते हैं जिन्हें कई विद्वानों ने निम्नलिखित ग्रंथ माने हैं—

१ कृष्ण बाल लीला २ दोहे; ३ सवैया छन्द ४ फुटकर दोहे।

इनके मानस में कृष्ण के प्रति अटूट भक्ति भावना थी। कृष्ण बाल-लीला के पद कवयित्री के कृष्ण भक्ति भावना के परिचायक हैं। इनकी भाषा राजस्थानी है जिसमें मधुरता के साथ-साथ काव्य-गत सौष्ठव भी है।

रसिकबिहारी बनीठनी—

बनीठनी हिन्दी साहित्य के यशस्वी कवि महाराजा नागरीदासजी की दासी थी। नागरीदासजी के सम्पर्क से इसके हृदय में कृष्ण के प्रति भक्ति भावना और काव्य-रचना भाव जागृत हुआ। कवयित्री का जन्म संवत् तो ज्ञात नहीं होता परन्तु इतनी जानकारी अवश्य मिलती है कि इनका देहावसान वि सं १८२२ आषाढ़ शुक्ला १५ को वृन्दावन में हुआ।

बनीठनी ने कितने ग्रंथ लिखे इस सम्बन्ध में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती। परन्तु इनके अनेक फुटकर पद प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। अपनी रचनाओं में कवयित्री ने अपना नाम 'रसिकबिहारी बनीठनी' लिखा है। कृष्ण के संयोग और वियोग भाव से भरे बनीठनी के पद एक से एक उत्कृष्ट हैं। शृंगार रस पदों की आत्मा है। कृष्ण भक्ति भावना का पुनीत प्रवाह उसमें तरंगित होता है।

कवयित्री की भाषा राजस्थानी है। राजस्थानी में शृंगार के पद बनीठनी से सुन्दर अन्यान्य किसी भी कवयित्री ने शायद ही लिखे हों। भाषा छन्द राग रागिनियाँ और अन्य शास्त्र पर कवयित्री का असाधारण अधिकार है। कला पक्ष और भाव पक्ष भी बनीठनी की रचनाओं का उत्तम बन पाया है। उदाहरणस्वरूप दो पद यहाँ दिये जा रहे हैं—

१ हो म्हांसो दे छै रसिया नागर पना।
  सारा देखै लाज मरां छां आवां किण जतना।
  छैल अनोखो कह्यो न मानै लोभी रूप सना।
  रसिकबिहारी नणद बुरी छै हो लाग्यो म्हारो मना॥

२ रतनाली हो थारी आँखड़ियाँ।
  प्रेम छकी रस बस अलसाणी जाणि कंवल की पाँखड़ियाँ।
  सुन्दर रूप लुभाइ गति मति हो भई ज्यूं मधु मांखड़ियाँ॥

कृष्ण काव्य धारा की इन कवयित्रियों के अतिरिक्त सुन्दर कंवरी बाई छत्र कंवरी बाई आनन्दी देवी मयाबाई आनन्द कवरी महारानी सोन कंवरी आदि-आदि कवयित्रियों ने राजस्थानी भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम न बना कर ब्रज भाषा को अपनाया। इन कवयित्रियों की रचनाएँ एक से एक उत्कृष्ट और भाव-भरी होते हुए भी यहाँ इनका परिचय प्रसंगानुकूल प्रतीत नहीं होता है। जो भी हो इतना तो निश्चित है कि राजस्थानी भाषा के मध्य काल की कवयित्रियों का कृष्ण भक्ति भावपरक साहित्य भारतीय साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। प्रत्येक कवयित्री की रचनाओं का सर्वांगीण परिचय विस्तार भय से यहाँ प्रस्तुत नहीं किया है और केवल परिचय मात्र ही दिया है।

निर्गुण काव्य धारा—

कबीर से पूर्व निर्गुण भाव-धारा का चाहे जो स्वरूप रहा हो परन्तु कबीर ने घूम घूम कर इस विचारधारा को सहज सुग्राह्य और आकर्षणकारी बनाया। भारत की सामाजिक स्थिति ने हजारों अनुयायी कबीर को दिए और स्वल्प काल में ही कबीरपंथी साधुओं की एक बहुत बड़ी संख्या बन गयी। कबीर पंथ के अनुरूप ही राजस्थान में दादू पंथ चरणदासी सम्प्रदाय रामस्नेही सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय निरंजनी सम्प्रदाय जसनाथी सम्प्रदाय आदि आदि अनेक पंथ और सम्प्रदाय सामने आए। यद्यपि प्रत्येक की मान्यता प्रणालि और बाह्य वेश भूषा में पर्याप्त अन्तर रहा परन्तु मूल रूप में सभी ने एक ईश्वरीय सत्ता को पहिचानने का उपदेश करते हुए मूर्ति पूजा का विरोध किया। गुरु के प्रति अगाध भक्ति भावना कबीर के सिद्धान्तानुसार सभी को मान्य रही। राजस्थान की जनता इन विविध सम्प्रदायों को

जिस पर हिन्दी का प्रभाव है। भाव और कला पक्ष दोनों की दृष्टि से कवयित्री की सरस रचना 'सहज प्रकाश' राजस्थानी भाषा का ही नहीं हिन्दी का एक उत्कृष्ट ग्रंथ है।

दयाबाई—

दयाबाई सहजोबाई की बहिन थी। एक ही गुरु की शिष्या होने के कारण गुरु बहिनें भी थीं। इसका जन्म काल भी वि. सं. १७७०—७५ के बीच ही अनुमानित होता है। कवयित्री अपनी बहिन के सदृश विदुषी और गुरु के प्रति अनन्य भक्ति भावना रखने वाली थी। इसके लिखे निम्नलिखित दो ग्रंथ उपलब्ध होते हैं।

१ दया बोध और २ विनय मालिका।

दयाबोध' की रचना सप्तांगों में हुई है १ गुरु महिमा ग्रंथ २ सुमरिन ग्रंथ ३ सूर ग्रंथ; ४ प्रेम ग्रंथ ५ वैराग्य ग्रंथ ६ साध ग्रंथ ७ अजपा

इसकी भी भाषा राजस्थानी है जिस पर हिन्दी की छाप है। निर्गुण भावाभिव्यक्ति दयाबाई की भी अतीव तीव्र है। संसार के प्रति नश्वरता वैराग्य ग्रंथ में अच्छे ढंग से प्रकट हुई है। उदाहरणार्थ—

सोवत जागत हरि भजो हरि हिरदे न बिसार।
डोरी गहि हरि नाम की दया न टूटे तार॥
दया नाव हरि नाम की सतगुरु खेवनहार।
साधू-जन के संग मिल तिरत न लागै बार॥
निरपच्छी के पच्छ तुम निराधार के धार।
मेरे तुम ही नाथ इक जीवन प्राण अधार॥

ईश्वर रूपी पति से मिलने के लिए दयाबाई का हृदय कितना व्याकुल है, इसका सरस वर्णन प्रेम ग्रंथ में द्रष्टव्य है।

बाई जुगाला—

बाई जुगाला अलवर निवासिनी थी और चरणदासी संप्रदाय के सुविख्यात संत अखैराम की शिष्या थी। भोजन करने से पूर्व प्रतिदिन एक पद बनाने का उसका अटल नियम था। इस प्रतिज्ञा के फलस्वरूप उसने प्रचुर परिमाण में पद लिखे होंगे परन्तु वे न मिल कर कवयित्री का वि. सं. १८१४ का लिखा 'नरसीजी रो भात' और 'बुद्ध विलास' नाम के दो ग्रंथ मिलते हैं।

दोनों की भाषा राजस्थानी है। भावों की अभिव्यक्ति सुन्दर, सरस और प्रवाहमयी है। 'बुद्ध विलास' वि. सं. १८३७ के पश्चात् का लिखा होने के कारण भाषा और भाव की दृष्टि से प्रथम ग्रंथ से अधिक सुन्दर जान पड़ता है।

दोनों ग्रंथों के अंतिम छंद इस प्रकार है—

१ संवत अठारहसै चौतीस जानियै।
माह सुदि दसमी क गिरहै मानियै।

सुक्रवार सुभ वार कथा पूरी भई।
ग्रबीराम नै बाई सुधासां सूं कही।
ग्रानी पंडित साम कहूं थिर नाम कै।
जो कुछ या में चूक सो देई बताय कै।
जो कार्य या कं पढै सुनै नर नेह कै।
बाई सुधासा तिन चरनन की खेह है।
२ ठारह सै सैंतीसवां गायो प्रिय बिलास।
माह सुदी येकादसी एतबार सुभरास॥

उमा—

नागरी प्रचारिणी सभा के ग्रप्रकाशित ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट में कवयित्री उमा का उल्लेख मिलता है। निवास-स्थान माता-पिता आदि के विषय में कुछ भी जानकारी खोज रिपोर्ट में नहीं मिलती। इनके कतिपय पद देखने में आते हैं। उन पदों को देखने से ज्ञात होता है कि कवयित्री राजस्थान की रहने वाली निर्गुण भावना की ग्रनुयायी थी। इसकी रचनाओं में सुरत पच तत्त झरोखे जैसे शब्दों से भी उक्त भावना की पुष्टि होती है। इसका काल भी १८वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध प्रतीत होता है। भाषा भाव को पूर्ण रूप से वहन करती हुई प्रतीत होती है परन्तु यह भी स्पष्ट लक्षित होता है कि कवयित्री अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थी।

उमा का राम दशरथ का राम न हो कर कबीर का राम है। उदाहरणस्वरूप—

ऐसे फाग खेल राम राय।
सुरत सुहागण सम्मुख आय॥
पच तत को बण्या है बाग।
जामे सामन्त सहेली रमत फाग॥
जहं राम झरोखे बैठे आय।
— ॥

रूपांदे—

सन्त कवयित्री रूपांदे सुविख्यात राजा मल्लिनाथ की पत्नी थी। यह रामदेवजी की अनन्य उपासिका थी। इनके गुरु का नाम उगमसी भाटी था। 'जाति-पाँति' के बन्धनों को तोड़ कर यह मेघा चमार के साथ रामदेवजी के 'जमा' में जाया करती थी और बिना भेद भाव के प्रसाद लेती थी। मल्लिनाथजी एवं ग्रन्यान्य रानियाँ रूपांदे के इस काम से बड़ी रुष्ट रहा करती थी। परन्तु रूपांदे को उन सांसारिक बातों से क्या लेना-देना था।

राजस्थान के लोक जीवन में रूपांदे के सम्बन्ध में ग्रनेकों कथाएँ कही जाती हैं। लोक-साहित्यकारों ने 'रूपांदे को बेल' आदि लिखे हैं। रूपांदे स्वयं भी राजस्थानी भाषा में भजन बनाती थी। उदाहरणस्वरूप एक पद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

नैनां जैसी प्रीत सवाई कोनी रमणी है।
नैन परम वारा छाया कामनी रमणी है।

विचारधारा से कब प्रभावित हुए बिना रह सकती थी। फलस्वरूप जिस क्षेत्र में जिस पंथ अथवा सम्प्रदाय का प्राबल्य रहा हजारों स्त्री-पुरुष उसी के अनुयायी बने।

पुरुषों की तरह नारी ने भी इस निर्गुण भाव को समझा और सहजोबाई, दयाबाई, बाई खुसाला गवरीबाई आदि-आदि कवयित्रियां निर्गुण भक्ति-भावनापरक विचारधारा की अनुगामिनी बनी। जसनाथी सम्प्रदाय में भी नेतलदे तोलांदे काळलदे प्यारलदे जैसी नारियाँ भी दिव्य प्रतिभा ले कर सामने आई। रूपादे जैसी भक्त नारियों ने तो मल्लिनाथ जैसे राजा का भी हृदय-परिवर्तन कर दिया। इस प्रकार राजस्थान में एक ओर सम्प्रदाय अथवा पंथ विशेष द्वारा गतिमान निर्गुण विचारधारा चल रही थी तो दूसरी ओर लोक-मानस में रामदेवजी आदि-आदि अवतारों के रूप में भी निर्गुण भावना का विकास हो रहा था।

कबीर ने पूर्व राजस्थान के निवासी नाथ सम्प्रदाय के रूप में निर्गुण की झांकी देख चुके थे परन्तु नाथ सम्प्रदाय की विशिष्ट विचारधारा को नारी का कोमल हृदय हृदयगम नहीं कर सका। फलस्वरूप अब अन्यान्य निर्गुण मत सामने आये तो निम्नलिखित कवयित्रियाँ विभिन्न पंथों की अनुयायिनी बनी—

जसनाथी सम्प्रदाय—१ काळलदे   २ प्यारलदे   ३ नारोजी।

दादू पंथ—१ बाईजी।

चरणदासी सम्प्रदाय—१ दयाबाई   २ सहजोबाई   ३ बाई खुसाला; ४ नाम वैयम।

वेदान्त की निर्गुण धारा—१ गवरीबाई।

लौकिक निर्गुण धारा—१ रूपादे   २ तोलांदे।

उक्त कवयित्रियों में से अधिकांश का सर्वांगीण परिचय यद्यपि अनुपलब्ध है फिर भी निर्गुण-साहित्य को राजस्थानी कवयित्रियों से जो योगदान मिला उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता।

निर्गुण काव्यधारा की कवयित्रियों ने जिस रूप में भाव अभिव्यक्त किए उन भावनाओं को किसी भाषा विशेष से आबद्ध करना यद्यपि कठिन कार्य है, फिर भी राजस्थान की जिन कवयित्रियों में राजस्थानी का बाहुल्य देखने में आता है उन्हें राजस्थानी कवयित्रियाँ स्वीकार किया गया है। अग्रिम पंक्तियों में निर्गुण काव्यधारा की कवयित्रियों का परिचय दिया जा रहा है।

गवरीबाई—

गवरीबाई का जन्म वि. सं. १८१५ में डूंगरपुर में हुआ। इसके माता-पिता का क्या नाम था अपने जीवन काल में कितने ग्रन्थों का सृजन किया आदि आदि तथ्य अनुपलब्ध हैं। परन्तु उपलब्ध जानकारी से यह अवश्य ज्ञात होता है कि गवरीबाई बाल्यकाल में ही पति सुख से वंचित हो गई थी और उसने अपना समस्त जीवन ईश्वर भक्ति भावना में व्यतीत किया था। तत्कालीन डूंगरपुर के राजा शिवसिंहजी द्वारा भी इसे सम्मान मिला था और उन्होंने इनके लिए एक मन्दिर भी बनवाया था।

कवयित्री के लिखे ११ पदों का एक संग्रह उपलब्ध होता है, जिसमें गवरीबाई की भक्ति-भावना विरहा और आराध्य के प्रति अनन्य भावना का पता लगता है। गुजरात के आचार्य विनयमोहन शर्मा और डॉ अम्बाशंकर नागर ने गवरीबाई को गुजरात की कवयित्री मानने का उल्लेख किया है परन्तु गवरीबाई निश्चित रूप से राजस्थान की कवयित्री है।[1]

गवरीबाई एक विदूषी कवयित्री है। निर्गुण शाखा के कवियों में जो स्थान सुन्दरदास का है वही स्थान निर्गुण शाखा की कवयित्रियो में गवरीबाई का है।

गवरीबाई को हीरा माणिक्य मोती और संसार का वैभव कुछ भी नहीं चाहिए उसे तो केवल आराध्य के दर्शन की पिपासा है—

हीरा मानक परम भण्डारा मास मुलक नहिं चाहिए।
प्रभु मो को एक बेर दरसन दरमे।

गवरी के पदों में निर्गुण भावना के अतिरिक्त राम कृष्ण नटवर-नागर आदि-आदि नामों का भी उल्लेख मिलता है परन्तु समस्त पदों में कवयित्री में निगुण भाव का ही प्राबल्य प्रतीत होता है।

सहजोबाई—

सहजोबाई चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक चरणदासजी की शिष्या थी। इसके पिता का नाम हरिप्रसाद था। इनका जन्म वि सं १७९९ में अलवर के डेहरा नामक गांव में हुआ। गुरु और ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा रखने वाली कवयित्री ने 'सहज प्रकाश' नाम के ग्रंथ का सृजन किया जिसके अधोलिखित आठ अंग हैं—

१ सद्गुरु महिमा २ गुरु महिमा ३ साधु महिमा ४ कथाएं, ५ अंग ६ सोलह तिथ्य वर्णन ७ सात वार निर्णय ८ मिश्रित पद।

सहजोबाई की रचनाओं में चरणदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। गुरु का आदर मान उसमें अटूट श्रद्धा सहजोबाई की रचनाओं का वर्णनीय विषय रहा है। संसार की नश्वरता के प्रति सहजो की उक्तियां सरल सुन्दर और स्पष्ट है। वह अपने गुरु पर चरणदास के चरन पर सहजो वारे प्राण' प्रान न्यौछावर करने को प्रस्तुत है।

सहजोबाई पर विभिन्न कवियो ने बहुत कुछ लिखा है। अतः अधिक न कह कर इतना ही कहना अभीष्ट है कि राजस्थान की आलोच्य कवयित्री की भाषा राजस्थानी है

---

[1] विशद विवेचन के लिये लेखक का सत वाणी वर्ष ३, अङ्क १ में प्रकाशित 'भक्त कवयित्री गवरीबाई एक सिंहावलोकन' लेख देखा जा सकता है।

जिस पर हिन्दी का प्रभाव है। भाव और कला पक्ष दोनों की दृष्टि से कवयित्री की सरस रचना 'सहज प्रकाश' राजस्थानी भाषा का ही नहीं हिन्दी का एक उत्कृष्ट ग्रंथ है।

दयाबाई—

दयाबाई सहजोबाई की बहिन थी। एक ही गुरु की शिष्या होने के कारण गुरु बहिनें भी थीं। इसका जन्म काल भी वि सं १७७ –७५ के बीच ही अनुमानित होता है। कवयित्री अपनी बहिन के सदृश विदुषी और गुरु के प्रति अनन्य भक्ति भावना रखने वाली थी। इसके लिखे निम्नलिखित दो ग्रंथ उपलब्ध होते हैं।

१ दया बोध और २ विनय मालिका।

'दयाबोध' की रचना सप्तांगों में हुई है १ गुरु महिमा अंग २ सुमिरण अंग ३ सूर अंग; ४ प्रेम अंग ५ वैराग्य अंग ६ साध अंग ७ अजपा

इसकी भी भाषा राजस्थानी है जिस पर हिन्दी की छाप है। निर्गुण भावाभिव्यक्ति दयाबाई की भी अतीव तीव्र है। संसार के प्रति नश्वरता वैराग्य अंग में अच्छे रूप से प्रकट हुई है। उदाहरणार्थ—

सोवत जागत हरि भजो हरि हिरदे न बिसार।
डोरी पहि हरि नाम की दया न टूटे तार॥
दया नाव हरि नाम की सतगुरु खेवनहार।
साधू-जन के संग मिल तिरत न लागै बार॥
निरपच्छी के पच्छ तुम निराधार के धार।
मेरे तुम ही नाथ इक जीवन प्रान अधार॥

ईश्वर रूपी पति से मिलने के लिए दयाबाई का हृदय कितना व्याकुल है, इसका सरस वर्णन प्रेम अंग में द्रष्टव्य है।

बाई बुआला—

बाई बुआला पावर निवासिनी थी और चरणदासी संप्रदाय के सुविख्यात संत अखैराम की शिष्या थी। भोजन करने से पूर्व प्रतिदिन एक पद बनाने का उसका अटल नियम था। इस प्रतिज्ञा के फलस्वरूप उसने प्रचुर परिमाण में पद लिखे होंगे परन्तु वे न मिल कर कवयित्री का वि सं १८३४ का लिखा 'नरसीजी रो मात' और 'बुध बिलास' नाम के दो ग्रंथ मिलते हैं।

ग्रंथों की भाषा राजस्थानी है। भावों की अभिव्यक्ति सुन्दर, सरस और प्रवाहमयी है। 'बुध बिलास' वि सं १ ३७ के पश्चात् का लिखा होने के कारण भाषा और भाव की दृष्टि से प्रथम ग्रंथ से अधिक सुन्दर जान पड़ता है।

दोनों ग्रंथों के अंतिम छंद इस प्रकार है—

१ संवत ठारासै चौतीस जानियै।
माह सुदि दसमी कू सिद्धी मानियै।

सुक्रवार शुभ वार कथा पूरी भई।
प्रवेराम ने बाई सुखाजी सूं कही।
ज्ञानी पंडित साथ कहूं सिर नाय के।
जो कुछ या में चूक सो देई बताय के।
जो कोई या कं पढ़े सुनै नर नेह के।
बाई सुखाजी तिन चरनन की खेह है।
२ ठारह से सैतीसवां पायो विश्व विकास।
माह सुदी मेकावदी एकवार सुखराय॥

उमा—

नागरी प्रचारिणी सभा के प्रप्रकाशित ग्रंथों की खोज रिपोर्ट में कवयित्री उमा का उल्लेख मिलता है। निवास-स्थान माता-पिता आदि के विषय मे कुछ भी जानकारी खोज रिपोर्ट में नहीं मिलती। उसके कतिपय पद देखने में आते हैं। उन पदों को देखने से ज्ञात होता है कि कवयित्री राजस्थान की रहने वाली निर्गुण भावना की अनुगामी थी। इसकी रचनाओं में सुरत पंच तत्त झरोखे जैसे शब्दों से भी उक्त भावना की पुष्टि होती है। इसका काल भी १८वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध प्रतीत होता है। भाषा भाव को पूर्ण रूप से वहन करती हुई प्रतीत होती है परन्तु यह भी स्पष्ट लक्षित होता है कि कवयित्री अधिक पढ़ी लिखी नहीं थी।

उमा का राम दशरथ का राम न हो कर कबीर का राम है। उदाहरणस्वरूप—

ऐसे फाग खेले राम राय।
सुरत सुहागण सन्मुख आय॥
पंच तत्त को बण्यो है बाग।
जामे सामन्त सहेली रमत फाग॥
जहें राम झरोखे बैठे आय।
— ॥

रूपादे—

सन्त कवयित्री रूपादे मुक्तिनाथ राजा मल्लिनाथ की पत्नी थी। यह रामदेवजी की अनन्य उपासिका थी। इसके गुरु का नाम उगमसी भाटी था। 'जाति-पाति' के बन्धनों को तोड़ कर यह ढेढ़ो चमारो के संग रामदेवजी के 'जम्मा' में आया करती थी और बिना भेद भाव के प्रसाद लेती थी। मल्लिनाथजी एवं अन्यान्य रानियाँ रूपादे के इस काम से बड़ी रुष्ट रहा करती थीं। परन्तु रूपादे को उन सांसारिक बातों से क्या लेना-देना था।

राजस्थान के लोक-जीवन में रूपादे के सम्बन्ध में अनेकों कथाएँ कही जाती हैं। लोक-काव्यकारों ने 'रूपादे की वेल' आदि लिखे हैं। रूपादे स्वयं भी राजस्थानी भाषा में भजन बनाती थी। उदाहरणस्वरूप एक पद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है —

पैलां वीसी प्रीत लगाई कोनी रखसी रे।
नैन भरम थारा थाना कोमनी रखसी रे।

बूठोड़ै री बात बटाऊ बीरो क्यसी रै।
गुड़ सूं कड़वो नीमड़ो किण विध मीठो होय रै।
सूका बोया कोयला ऊजळा नी होय रै।
काचे तांतण तांणो तणियो ताण्यां पैला टूटे रै।
धोळे बळ रो गाडियो बरसंतां पैला सूक रै।
धाव रै बर सजणी फूहड़ रै बर मार रै।
रोहड़े नै क्यू दियो भूल गयो किरतार रै।
सोने हंदी गाळ क्या हंदी सैली रै।
कम गया क्यारे बाई, उगमसी री बैनी रै।

क्यारे की तरह नेतलदे और तोलादे के भजन भी राजस्थान के लोक-जीवन में पाए जाते हैं। काळमदे और प्यारलदे का उल्लेख भी श्री सूर्यकरण पारीक ने 'चित्र चरित' ग्रंथ में किया है। उक्त दोनों कवयित्रियों के प्रबंध एवं फुटकर रचनाएँ अनुपलब्ध हैं।

यद्यपि संख्या की दृष्टि से निर्गुण काव्य-धारा की कवयित्रियां अधिक ज्ञात नहीं होतीं परन्तु रामस्नेही संप्रदायानुयायी रामदास ने अपनी भक्तिमाल में मीरां और सहजो के अतिरिक्त रतना करमा मगसी पूती पाबू, चौपामाता रूखियांबाई और रामप्यारी आदि-आदि कवयित्रियों का उल्लेख उल्लेखनीय भक्तों के साथ किया है। प्रत्येक कवयित्री के नाम से यही ज्ञात होता है कि समस्त कवयित्रियां राजस्थान की ही होनी चाहिएँ।

अन्यान्य कवयित्रियां—

जिन कवयित्रियों की रचनाएँ पूर्व वर्णित डिंगल राम-कृष्ण और निर्गुण काव्य धारा के अन्तर्गत नहीं आती है उन्हें अन्यान्य कवयित्रियों के रूप में लिया गया है। इस प्रबंध में विशेष उल्लेखनीय कवयित्रियों में रसिकप्रवीण प्रियासखी प्रतापकुंवरी तीजांजी कविरायजी चौबे लोकनाथजी की स्त्री प्रवीणराय चातुर आदि-आदि हैं। इन कवयित्रियों के अतिरिक्त श्री अगरचन्दजी नाहटा के 'किनमसिंह और उनकी रखेलियों की कविता' शीर्षक निबन्ध में भी हजूर, भगराजीजी छोटी चम्पा चितमगन केतकी रसवेली पना रसजोत आदि आदि नाम उल्लिखित हैं। भाषा भाव और वर्णनीय प्रसंग को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युल्लिखित अधिकांश कवयित्रियां शृङ्गार रस से अधिक सराबोर हैं और इनकी रचनाएं शृ गार-प्रधान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी साहित्य में प्रतिमान रीतिकाल का प्रभाव उक्त कवयित्रियों पर अवश्य पड़ा है।

इस प्रकार की शृङ्गारपरक रचनाओं को जन्म देने वाली कवयित्रियों में कई कवयित्रियां इस प्रकार की भी है जिन्होने अनेक ग्रंथों का सृजन किया और उनके विषय में निश्चित काव्य-धारा का निर्णय करना कठिन सा है। अतः प्रियासखी को भी अन्यान्य कवयित्रियों में ही रखा गया है।

प्रियासखी—

यद्यपि प्रियासखी बनिया के किसी राजा की पुत्री थी परन्तु उसकी रचनाएँ राजस्थानी में होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि कवयित्री का पाणिग्रहण राजस्थान के किसी

रजा महाराजा के सम हुआ हो। आप राधावल्लभ संप्रदाय को मानने वाली विदुषी भक्त महिला थी। आपका लिखा 'प्रियासखी की वाणी' ग्रंथ उपलब्ध होता है। ग्रंथ पाँच भागों में लिखा गया है—

१ सिद्धान्त २ रस का ग्रंथ ३ सखी को वचन सखी सों ४ श्रीस्वामजी को वचन श्री सखी प्रियासखी जू सों ५ भेप पलट।

उक्त ग्रंथ को देखने से ज्ञात होता है कि संस्कृत भाषा छद-शास्त्र और रागरागिनियों का आपको अच्छा ज्ञान था। सूरदास मीरां आदि-आदि भक्त कवि और कवयित्रियों का आप पर पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। इनकी भाषा राजस्थानी है जिस पर ब्रज का प्रभाव है। उदाहरणस्वरूप दो पद दिए जा रहे हैं—

> छैल छबीलो राधा गोरी होरी खेल मचायो।
> केसरि घोरि गुलाल माहि मुख मंजन के हँसि प्रिय मुलकायो॥
> पीताम्बर सों हाथ बांध करि, होरी को नाच नचायो।
> प्रियासखी को भेप बनायो पगनि महावर रंग रचायो॥

> प्रियतम हरि हिय बसत हमारै।
> कोई कहू कोई कछू रैन दिन छिन पल होत न जिय ते न्यारै॥
> जित तित तन मन रोमि रोमि में ह्वै रहे भरे नैननि तारै।
> अति सुन्दर वर अन्तर्यामी प्रियासखी हित प्रानपियारै॥

रसिकप्रवीन—

रसिकप्रवीन अलवर के राजा की रखैल थी। इसका लिखा अपूर्ण ग्रंथ 'सभा प्रकाश' अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर, में उपलब्ध है। कवयित्री की भाषा राजस्थानी है जिसमें अच्छा प्रवाह है। विरहजन्य अभिव्यक्ति भी कवयित्री की भावमयी है—

> पीतम आत विरस क कैस धरिये धीर।
> मिलि वाकर कटयो कटत बड़ी विरह को पीर॥

ज्ञात होता है यह बिनरानसिंहजी की रखैल थी। इसने बिनयरानसिंहजी का अनोखित रूप में वर्णन किया है—

> श्री बिनरान नरेस जू सोभत दुलहन धम।
> करवत तप तेज है सदा नरम मुप रम॥
> जरी पाघड़ा विछ रहे मोतियन चौक पुराय।
> करत प्रारती मुरजकवर जननी अति मुप पाय॥

सम्भव है अलवर के राजकीय पुस्तकालय में उक्त कवयित्री के अन्यान्य ग्रंथ भी पूर्ण रूप में उपलब्ध हों।

सोनांजी—

कवयित्री सोनांजी जयपुर के 'मद्दार' गाँव निवासी एं मधाराम की पत्नी थी। इन्हें संस्कृत और हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान था। इसने 'मधुपारायणी' का हिन्दी पद्यानुवाद

किया। यद्यपि 'मधुपारासरी' का हिन्दी अनुवाद संस्कृत मिश्रित हिन्दी में ही हुआ है फिर भी कहीं-कहीं राजस्थानी का प्रभाव अवश्य दिखाई देता है। अपना परिचय कवयित्री ने एक छन्द में अधोलिखित रूप में दिया है—

> जमपत्तन ते उत्तर दिसि गुरण योजन ग्राम सुम्हार हमारा।
> आदि गौड़ द्विजराज पुरोहित नाम गोत्र गुरण प्रवर प्रचारा॥
> श्रीमज्जीवन रामयरणक कवि स्वसुर सुतासु पतिव्रत पारा।
> उनकी सुत मधुपति पद सेवक तीजा नाम से मोहि उचारा॥

राजस्थानी भाषा की मध्यकालीन कवयित्रियों की देन यहाँ के साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इन कवयित्रियों का सही और सर्वांगीण मूल्यांकन यहाँ विस्तार भय से नहीं हो पाया है, केवल सभी का परिचय मात्र दिया गया है। राजस्थान की समग्र कवयित्रियों पर हिन्दी विश्व-भारती बीकानेर, मे अन्वेषण कार्य चल रहा है और पर्याप्त कवयित्रियों की रचनाओं का आलोचनात्मक परिचय तैयार किया जा रहा है। डॉ सावित्री सिन्हा और उससे पूर्व राजस्थानी कवयित्रियों के सम्बन्ध में जो जानकारी उपलब्ध होती है वह पूर्ण न हो कर अपूर्ण है। राजस्थानी साहित्य के शोध मनीषी इस दिशा में समुचित छान-बीन कर के राजस्थान की कवयित्रियों पर विशद रूप से विवेचन प्रस्तुत कर के अज्ञात सामग्री को प्रकाश में लायेंगे ऐसा विश्वास है।

प्रस्तुत निबंध लिखने में निम्नलिखित ग्रंथों की सहायता ली गई है—

१	महिला मृदुवाणी	— मुंशी देवीप्रसाद
२	राजस्थानी भाषा और साहित्य	— डॉ मोतीलाल मेनारिया
३	मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ	— डॉ सावित्री सिन्हा
४	राजस्थानी भाषा साहित्य—उद्भव और विकास	— डॉ शिवस्वरूप शर्मा 'अचल'
५	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	— डॉ रामकुमार वर्मा
६	हिन्दी साहित्य का इतिहास	— रामचन्द्र शुक्ल
७	सहज प्रकाश	—
८.	संत बाणी अङ्क	— गीता प्रेस गोरखपुर
९	जोधपुर राज्य का इतिहास	— डॉ गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा
१	सोढी नाथी रा गुडा अरथ	— अज्ञात
११	आचार्य राधेश्याम मिश्र अभिनन्दन ग्रंथ	— आचार्य राधेश्याम मिश्र अभिनंदन समिति कलकत्ता ७

१२ शिव चरित — सूर्यशंकर पारीक
१३ श्रीपाठ रत्न — आनन्द आश्रम बीकानेर
१४ मुहणोत नैणसी री ख्यात — मु नैणसी
१५ डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑव बार्डिक
   पोयट्री — डॉ टैसीटोरी
१६ राजस्थानी कैटलॉग ऑव अनूप संस्कृत
   लाइब्रेरी बीकानेर — बीकानेर
१७ हिन्दी कैटलॉग ऑव अनूप संस्कृत
   लाइब्रेरी बीकानेर — बीकानेर
१८ नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित
   खोज रिपोर्ट — वाराणसी
१९. भारत की कवयित्रियाँ — राजस्थानी में लिखा लेखक का
   अप्रकाशित ग्रंथ

पत्र-पत्रिकाएँ—

१ परिषद् पत्रिका — पटना
२ मरुभारती — पिलानी
३ शोध पत्रिका — उदयपुर
४ संत वाणी — पटना
५ वरदा — बिसाऊ
६ परम्परा — जोधपुर
७ रसवती — लखनऊ
८ प्रेरणा — जोधपुर
९ अमर ज्योति — जयपुर
१ स्वयं शिक्षा — जोधपुर
११ युग प्रभात — केरल

पुस्तकालय—

१ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी — बीकानेर
२ अभय जैन ग्रंथालय — बीकानेर
३ हिन्दी विश्व भारती का हस्तलिखित ग्रंथ
४ लेखक का हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह
५ आनन्द आश्रम — बीकानेर

विद्वानों के पत्र—

१ डॉ रघुवीरसिंहजी सीतामऊ
२ श्री बद्रीप्रसादजी साकरिया
३ श्री सीतारामजी लालस

मध्यकालीन राजस्थानी गद्य-साहित्य

श्री सीताराम लाळस

इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में विभिन्न रूपों में गद्य-लेखन प्रारम्भ हो चुका था। बात ख्यात पीढ़ी वंशावली टीका वचनिका हाल पट्टा बही शिलालेख वत आदि के माध्यम से समाज के सभ्यपूर्ण तत्वों सौन्दर्य भावनाओं सृजनात्मक प्रवृत्तियों तथा अन्य कितने ही कार्य-व्यापारों का सुन्दर चित्रण हुआ है।

समृद्धता की दृष्टि से राजस्थानी का बात साहित्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। राजस्थान में कहानी लिखने की परम्परा बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। सम्पूर्ण बात साहित्य के प्रकाश में न आने के कारण अधिकांश विद्वान बातों की विशिष्ट विशेषताओं के सम्बन्ध में अनभिज्ञ ही रहे। यही कारण है कि अधिकतर विद्वानों ने इन बातों का विषय (रईसों नवाबों आदि के अवकाश के क्षणों में मनोरंजन हेतु) प्रेम एवं अतिरंजित एवं आकस्मिक घटनाओं से परिपूर्ण ही माना है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य' नामक पुस्तक में राजस्थानी गद्य साहित्य के विषय में लिखा है—"ब्रजभाषा की भांति ही राजस्थानी में ख्यात बात और वार्ताओं का साहित्य थोड़ा बहुत बनता रहा। मुगल दरबार में 'किस्साख्वानी' नाम की एक विशेष प्रकार की कला का जन्म हो चुका था। मुगल काल के अन्तिम दिनों में तो 'किस्साख्वानी' या 'दास्तानख्वानी' एक पेशे का रूप धारण कर चुकी थी। जिनका काम अवकाश के क्षणों में बादशाहों नवाबों और अन्य रईसों का मनोरंजन किया करते थे। इन कहानियों का प्रधान विषय प्रेम हुआ करता था और अतिरंजित एवं आकस्मिक घटनाओं से कथा-विषय को आकर्षक बनाने की चेष्टा भी होती थी। राजपूत दरबारों में भी इनका आदर बहुत अनुकरण होने लगा इसी कारण राजस्थानी भाषा में भी 'किस्साख्वानी' का साहित्य बनता रहा। परन्तु जिस प्रकार राजपूत कला मुगल कला से प्रभावित होकर भी भीतर से सम्पूर्ण रूप से भारतीय बनी रही उसी प्रकार यह दास्तान साहित्य भी सम्पूर्ण रूप से भारतीय ही बना रहा।"

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि राजस्थानी बात साहित्य पर मुगल काल के प्रचलित किस्साख्वानी का असर भले ही पड़ा हो किन्तु राजस्थानी के बात साहित्य की अनेक रचनाएँ मुगलों के भारत में आने से पहले ही निर्मित होती रही हैं। अतः राजस्थान को कहानी कहने और लिखने का विचार नितान्त मौलिक है। 'बात' शब्द भी कहानी का उपयुक्त पर्याय नहीं है। 'बात' शब्द में कहानी के अन्तर्गत परिगणित की जाने वाली सम्पूर्ण घटनाएँ कहने वाले की विशेषता और सुनने वालों के जिज्ञासापूर्ण आनन्द का एक विचित्र

भाव सवन निहित है। विषय की दृष्टि से भी राजस्थानी वार्ताओं का प्रेम वीर, हास्य एवं शान्त रस के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जा सकता है। श्री रावत सारस्वत ने विभिन्न दृष्टियों से 'बातों' का जो वर्गीकरण किया है वह राजस्थानी बात साहित्य को पूर्णरूपेण समझने में सहायक होगा।

१—कथानक की दृष्टि से—

(क) ऐतिहासिक—राव रिणमल री बात पाबूजी री बात कानड़दे री बात माधै सांखले री बात राव अमरसिंघजी री बात आदि।

(ख) अर्द्ध ऐतिहासिक—मोगैजी री बात चयणी चारणी री बात कोयराज चारण री बात राजा मानधाता री बात पीरोजसाह पातिसाह री बात मूमल री बात आदि।

(ग) काल्पनिक—बात ठग री बेटी री पदमकला री बात फोगसी एवाल री बात चंदण मलयागिरि री बात आदि।

(घ) पौराणिक—सोमवती अमावस री कथा कृष्णाष्टमी व्रत कथा राजा नळ री बात कुमारका महातम री बात रामनवमी री कथा आदि।

२—विषय की दृष्टि से—

(क) प्रेम—सोरठ री बात ऊमादे भटियांणी री बात ढोला मरवण री बात बीझरै अहीर री बात राणी कैकै री बात सोना री बात आदि।

(ख) वीर—जगदे पंवार री बात सोनिगरै मालदे री बात राव चूंडे री बात हाडाई सूर री बात राजा प्रथीराज चौहान री बात गौड़ गोपाळदास री बात आदि।

(ग) हास्य—च्यार मूरखां री बात मोधावरी नदी रै जोगी री बात मांमै भांजवै री बात राजा भोज अर खापरिये चोर री बात बीरबल री बात आदि।

(घ) शान्त—राजा भोज री पनरसी विद्या री बात मांवण भाम रै पीर री बात रामदास वैरागत री भाखड़ियां रामदे तूंवर री बात आदि।

३—भाषा के प्रभाव की दृष्टि से—

(क) राजस्थानी—मारवाड़ रै मांमले री बात सूरां अर सतवादियां री बात सांई री पमक में बालक बसै तै री बात राजा भीम सू जुध कियौ तै री बात आदि।

(ख) उर्दू मिश्रित—कुतबदी साहिजादे री बात देहली री बात लुकमान हकीम की आपणी बेटे कू नसीहत आदि।

(ग) व्रजभाषा मिश्रित—नासिकेत री कथा पूरणमासी री कथा आदि।

(घ) गुजराती मिश्रित—अजना सती री बात।

राजस्थान भारती वर्ष ३ जुलाई १९५१।

४–रचना प्रकार की दृष्टि से—

(क) पद्यात्मक—सुरजिमल हाडै री बात राजा करणसिंहजी री कंवरी री बात आदि।

(ख) गद्य पद्यात्मक—रचना हमीर री बात नागजी नागमती री बात पना वीरमदे री बात आदि।

(ग) पद्यात्मक—विलाविलास चौपई, नल दमयती चौपई ऋषिदत्ताजी री कथा ढोला मारवणी चौपई आदि।

५–शैली की दृष्टि से—

(क) घटनात्मक—पातिसाह औरंगजेब री हकीकत जैपुर में वैद वैसणवां रो झगड़ो हुयो तै रो हाल आदि।

(ख) वर्णनात्मक—बीकी मगोल गीलावत रो वेपारी मूणशाह री बात रो बखांण आदि।

(ग) विचारात्मक—माल सिंहत राजा भोज नै डोकरी री बात वसनाथ भाट री बात।

६–वर्ण्य विषय की दृष्टि से—

(क) व्यक्ति चित्रण—हरराज रै मैंडां री बात हरदास ऊहड़ री बात ऊदै उगणा-वत री बात महाराजा पदमसिंह री बात आदि।

(ख) समूह वर्णन—भायलां री बात मूदेला री बात सांचोर रै चहुवांणां री बात पड़ दायद रै खडियां री बात।

(ग) समय व स्थान विशेष का वर्णन—राव बीके बीकानेर बसायो तै समै री बात राणै उदैसिंह उदयपुर बसायो तै समै री बात अणहलवाड़ा पाटण री बात आदि।

उपरोक्त वर्गीकरण के साथ इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि राजस्थानी बात-साहित्य इतना विस्तृत तथा विविधतापूर्ण है कि उसका पूर्ण वैज्ञानिक वर्गीकरण करना साधारण रूप में सम्भव नहीं है।

"राजस्थानी साहित्य में मोटे तौर पर दो प्रकार की बातें मिलती हैं। एक तो वे बातें जिनका लिपिबद्ध स्वरूप बन गया है और जिनकी भाषा-शैली में स्थायी रूपगत विशिष्टता प्रकट होती है। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे बात आती हैं जिनका कोई एक सीमित रूप लिपिबद्ध नहीं हो सका किन्तु व अभी तक लोगों की जबान पर ही हैं। इस दूसरे प्रकार की बातों को लोक-कथाओं के नाम से भी पुकारा जाता है।"[१]

राजस्थानी लोक-कथाओं की दृष्टि से भी बहुत समृद्ध है। राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास की गौरव-कथाएं आदि विविध रसों से परिपूर्ण हो कर लोक-कथाओं के रूप में

---

[१] परम्परा—राजस्थानी बात संग्रह भूमिका पृ १२।

प्रचलित हो गई हैं। ग्राम-ग्राम में इन लोक-कथाओं की समृद्ध स्मृतियाँ और रसात्मक भतियाँ प्रचलित हैं और नाना जनों के स्मरण और कण्ठ में रम रही हैं। स्थानीय प्रभावों के कारण उनमें अधिक विभेद पाया जाता है और लिपिबद्ध वातों में जहाँ घटनाओं का एक रूढ़ रूप परिपाटी से चला आ रहा है वहाँ इन वातों (लोक-कथाओं) में परिवर्तन के लिए सर्वत्र गुंजाइश रहती है। वातों की रचना प्रणाली पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

यद्यपि राजस्थानी की प्राचीन वातों में आधुनिक साहित्य की कहानियों में मिलने वाला सूक्ष्म तत्वों का चित्रण पात्रों का वैज्ञानिक चरित्र-लेखन तथा कहानी लेखक के विस्तृत अध्ययन की सारगर्भित मार्मिक उक्तियों आदि का अस्तित्व आदि नहीं मिलता तथापि राजस्थानी वातों की अपनी एक विशिष्ट शैली है।

घटना-बाहुल्य राजस्थानी वातों की प्रमुख विशेषता है। इनमें पाठकों को मन्त्रमुग्ध करने की अपूर्व क्षमता है। बीच-बीच में जहाँ भी अवसर प्राप्त होता है वहीं प्रकृति की अनुपम छटा नगर की विशालता एवं सम्पन्नता दुर्ग की अभेद्यता युद्ध की भयंकरता वीरों का रण-कौशल हाथी घोड़ों के लक्षण अस्त्र-शस्त्रों की विशेषताएँ, नायिका का सौन्दर्य उसके शृङ्गारिक उपकरणों आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। ये वर्णन इतने सजीव एवं मार्मिक हैं कि पाठकों के कल्पना-पटल पर सजीव चित्र उपस्थित कर देते हैं। बात कहने वाले या लिखने वालों की दृष्टि इतनी पैनी हो गई है कि वे अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों का निर्देश करना भी नहीं भूले हैं। उदाहरण के रूप में जहाँ मृगया का वर्णन हो रहा है वहाँ एक-एक क्षण के परिवर्तन के सुन्दर चित्र हैं। किसी सरस विषय को वे और भी मनोरञ्जक बना देते थे। कुछ रचनाएँ तो ऐसी हैं जिनमें शताब्दियों का इतिवृत्त गूंथ दिया गया है एवं उनका लिपिबद्ध रूप सैकड़ों पृष्ठों में जा कर समाप्त होता है। किन्तु कुछ रचनाओं में थोड़े से समय में घटित होने वाली छोटी-छोटी घटनाओं का भी सरस विशद वर्णन है सोलहवीं शताब्दी में रची गई 'खीची गगेव नीबावत री दो-पहरी' इसका सुन्दर उदाहरण है। इसमें खीचीवंशीय नीबा के पुत्र गंगेव की एवं उनके साथियों की एक दिन की दिनचर्या का वर्णन है जिसमें दुपहर का वर्णन प्रधान है। छोटे-छोटे वाक्यों की सुन्दर योजना के कारण गंभीर भावों की आलोचना तथा सूक्ष्म तत्वों का चित्रण बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। इसी बात का एक उदाहरण देखिये—

> 'तठा उपरायत मोतियां नै हुकम हुवो छै। मुजाई साक सारी ही वसत सीधी *मीठाश वेसवार सरस सेव रसी-नाडी चासज्यो नहीं सिकार रस वस नाडी सत्ती छां।* सू भावी भोई तो पावरा नाडी रै मारग बहीर हुवा छै। आप रमली'र मारग आचार्य नै गुडा रै मारग चालिया छै। घोड़ां रा पोडा सू जमी धूज रही छै। देह री ठौड़

राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १ प्रकाशक—राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर में प्रकाशित अगरचन्द नाहटा का एक लेख पृ २४ के आधार पर।

आकास में बाज लागी छै। चूनरमाळ मोरां री बाज रही छै। हींस कळळ होय हुयनै रही छै। बहुलियां रा चूघरा घंमां री झमकार हुयनै रही छै। बहुलां रा बाध पड़मां री खड़खड़ाट हुयनै रही छै। होकारा हुयनै रह्या छै। सहनायां में मलार राग हुयनै रही छै। निसांस मूहूड़ै आयै फरहरनै रह्या छै। नकीब चोपदार नजर दौलत। सू सूरज री किरण नै बरछियां री एकै किरण हुयनै रही छै। इसी समीयी बणनै रही छै।

वर्णन परंपरागत होते हुए भी इसकी सरसता में कमी नहीं आ पाई है। व्यक्ति-चित्रण भी इन बातों में बड़े सुन्दर ढंग से उपस्थित किया जाता है। इसी 'खीची गंगेव नींबावत री बेपारों' नामक बात में खीची गंगेव के व्यक्तित्व का रेखाचित्र देखिये—

'तठा उपरांत गंगेव नींबावत बाहर पधारै छै सु किण भांत री छै? ऊगतो सूरज पावासर री हंस कमरांपत कंवर बळहर जवाय भोगी भंवर कसतूरियो मिरग लाखियो सिंह सीळ गंगेव दुरजोधन भाहमेष चुमळ ज्यूं साप दुरवासा नाम ध्यांन री गोरख सहदेव ज्यूं सारी बात समरथ अरजुन ज्यूं बांस करण ज्यूं दांन पाण बत्तीस आखड़ी रो निवाहणहार, बैरियां विभाड़णहार, पर भोम पंचायण वस विमस जस लियण अवणगे मोर, मूंछै भीनै भात केसरिया पौसाक किया पांच हथियारां बांधा थांणा घोड़ै असवार हुवै छै।

प्रायः सभी बातों में तत्कालीन समाज की परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण मिलता है। इन बातों से मध्यकालीन राजस्थान के बहुत बड़े समाज के सामाजिक एवं राजनैतिक वातावरण आमोद प्रमोद रूढ़ि-निर्वाह, जीवन सिद्धान्तों आदि पर प्रकाश पड़ता है। वर्णनों की सजीवता औत्सुक्य का निर्वाह लयात्मक भाषा में काव्य का सा आनंद और सामाजिक सत्य की अभिव्यक्ति आदि के कारण सैकड़ों वर्षों से ये बातें राजस्थान के लोगों को अत्यन्त प्रिय रही हैं।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक राजस्थानी का गद्य साहित्य काफी उन्नति कर चुका था। सुगठित भाषा में उपमाओं दृष्टान्तों और उत्प्रेक्षाओं एवं अतिशयोक्तियों का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग होने लगा था। रूढ़ उपमानों के अतिरिक्त अन्य कितने ही नये मौलिक उपमानों का भी प्रयोग हुआ है। पद्य के समान गद्य में भी नख-शिख वर्णन राजस्थानी बातों में पाया जाता है। सोलहवीं शताब्दी[१] का ही इस सम्बन्ध में गद्य का एक और उदाहरण देखिये—

'तठा उपरांति करि नै राजान सिलामति नख सिख सूधी सिणगार बणाइजै छै। चांपिया सारीखी पहुपवेण ऊपरि सीसफूल मोतियां रो बणाय बणीनै रहियो

---

[१] राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १ प्रकाशक—राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर—में प्रकाशित श्री अगरचन्द नाहटा का एक लेख पृष्ठ १८ के आधार पर।

छै। पूनिमचंद सो मुख-सोळ कळा संपूरण विराजियौ छै। तिसकै बीच बिंदी मिस
नै रही छै। कवांण ज्यां बाकी भ्रांहां भमर विससी विराजनै रहिया छै। मिरग नैणा
त्रिसा भसका ज्यौं चळवासिया टोए मणिमाळो काचळ ठाविया छै सू भासी नासिका
बीच बेसर बणी उजळ पाणी नरमदा मोती प्रोया सू भटकिनै रहिया छै। बिर्च
मास मणी भळक रही छै।

—राजान राउतरी बात-बणाव।

राजस्थानी बातों की यह परम्परा आधुनिक काल तक निर्बाध गति से चली आ रही है। सोलहवीं शताब्दी के बाद भी साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत सी सुन्दर बातें लिखी गईं जिनका हम आगे यथास्थान उल्लेख करेंगे।

बात साहित्य के अतिरिक्त उस समय 'बंसावळी' या 'पीढ़ियावळी' भी लिखी जाती रही जिनका साहित्य की अपेक्षा इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्व है। बंसावळी या पीढ़िया-वळी में पीढ़ियां दी जाती हैं जिनके साथ में व्यक्तियों का संक्षिप्त या विस्तृत परिचय भी प्राय रहता है। विविध जातियों की बंसावळियां भाट मथेरण आदि जाति के व्यक्तियों द्वारा लिखी जाती रही हैं। बीकानेर के जैन संग्रहालयों में इस प्रकार की लिखी गई बंसावळियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। 'बच्छावत बंसावळी' 'राठौड़ वंस री विगत' आदि बंसावळियां तो इतिहास की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। विविध राज्यों की लिखी हुई अधिकांश पीढ़ियावळियां आधुनिक समय में उपलब्ध नहीं हैं जो मिलती हैं उनसे ही राजस्थान के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

संवत् १६   के लगभग की लिखी गई 'राठौड़ों की बंसावळी' से उस समय की भाषा एवं बंसावळियां लिखने के ढंग की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

'पछै मुसलमान री फौजा नै दिल्ली री फौजा ले नै राव चूंडै ऊपर नागौर आयौ।
राव चूंडौ नागोर मारियो पछै केल्हण अपूठौ आयौ। —राठौड़ां री बंसावळी
(सं १६   )

पन्द्रहवीं शताब्दी के 'बालावबोध' लिखने की परम्परा भी अभी तक जैन लेखकों में चली आ रही थी। बालक भी सरलता से समझ सकें इस तरह की टीका को 'बालावबोध' कहा गया है। सं   १६   की लिखी गई 'मुनिपति चरित्र बालावबोध' की एक प्रति हमारे देखने में आई है। भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ काफी महत्वपूर्ण है। इसकी भाषा का एक उदाहरण देखिये—

साम्स (साकेत) नगर चंद्रावतंसक राजा। तहनइ (तेहनइ) बि भार्या। एक सुदर्शना। बीजी पद्मावती। सुदर्शना ना बि पुत्र। सागरचंद्र। मणिचंद्र। पद्मावती ना बि पुत्र।

परम्परा भाग ६ १ 'भीतिप्रकाश' में प्रकाशित श्री अगरचंद नाहटा का एक लेख—'राजस्थानी भाषा व अनुवाद की परम्परा' पृ १७२।

गुणचंद्र । बालचंद्र । चंद्रावतंसक राजा ईलीबद बनी (बैठी) । अमिमद्द लीभउ । बां ए बीबउ बमि सिइ तामइ का समन पाबिउ । तामिई ब्यारइ पुइर बीबउ सीचिउ । राजानउ सपर साही (कोठी) भरिउ । मूरछा भावी । बाकुल हुउ । मरी विकाला कि विराज परीबउ मिमिउ । (मरी देव मोकि मिरोज परीभउ मिमिउ)

इस समय की बोलचाल की भाषा में अरबी-फारसी का प्रयोग बढ़ता जा रहा था। शासन-कार्यों में भी फारसी-मिश्रित राजस्थानी का प्रयोग होता है। बारहठ लखा द्वारा सं. १६४२ में कुलगुरु पदमारामजी को बादशाह अकबर की ओर से दिये गये ताम्रपत्र की भाषा के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी—

परवाना—

सिद्धश्री बारहठजी श्री लखोजी समस्त चारण बरण जोगलिखावा सीरकारां सूं श्री देसराजजी की वाचज्यो अठे तपत आगरा श्रीपातसाजी श्री १ ०८ श्री अकबर साहजी रा हुजूर दरीखाना माही भाट चारणां रा झगड़ा री नक्की कीधी जद चारण समस्त राजेसुर हाजर था जां का देसावीर की हाजर था जठा सुण अर मो सु समंचार कह्या जद सब पंचां री सला सु कुलगुर पदमारामजी अगणी जैसलमेर गाम चालीसा का जकाने अरज लीप अठे बुलाया गुर पदमारामजी पातसाहजी की सरकारी में चारण उत्पती शास्त्र शिवरहस्य सुणायी पातसा कबुल कीधो जण पर भाट झुटा पड़्या झुटां चारण बस री पुरत पाछी मिजाजस छारां बुलाय सु सीधाय बदली कीधी ओर मारा बुता माफक हाती लाप पसाव प्रबक दीधो पाछ की भेबज बावन हजार बीघा जमी ऊनेस के अगने दीधी जकण रो तांबापत्र श्री पातसाहजी का नाव को कराय दीधो अण सवाय भाता ई चारण बरण समस्त पंचां कुल गुर पदमारामजी का बाप दादा से ब्याव हुवे जकण में कुल दापा रा रुपीया १७॥) ओर त्याग परट हुवे जीण मां मोठीसरा को भांगो देवे जीण सु दुणी भांगो कुल गुर पदमाराम का बेटा पोता पामा जासी समत १६४२ रा मती माहा सुद ५ दसकत पंचोली पन्नालाल हुकम बारठजी का सु लीखी ठकाव मामरा समस्त पंचां की सलाह सु आपांसी मां कुरां सु अदीलता हुवी नहीं छै।[1]

परवर्ती काल में राजस्थानी गद्य में साधारणतः दो प्रकार की पुस्तकें लिखी गई — कुछ स्वतन्त्र ग्रंथ तथा कुछ साहित्यिक ग्रंथ की टीकाएँ, अनुवाद आदि। स्वतन्त्र ग्रन्थों के अन्तर्गत इस समय में रचा गया 'राजपत विलास' का उल्लेख आवश्यक है। इसकी रचना राज्यसिंहजी के समय में सं. १६२१ से १६६८ के बीच किसी समय हुई थी[2] क्योंकि इसमें सं. १६६२ तक की घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ की भाषा का एक उदाहरण देखिये—

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ सं. १९७७ में प्रकाशित 'चारणों और भाटों का झगड़ा' नामक लेख पृ. १११-१३४ से उद्धृत।

[2] राजस्थान भारती भाग २ अंक १ जुलाई १९४८ पृ. २१।

'एक समरै कल्याणमलोत पातिसाही सांदि नी हुती। ताहरां कुंवर श्री दळ-पतजी मूं राजाजी कहाड़ि मेल्हियो जु ऐ साहि केराए। अर इसनूं काढ परहा करजो म्हां अमरै नू। ताहरां इसड़ै दीठै टाळे कुंवर श्री दळपतजी बीकानेर थी चढि अर इया धांमहा पधारिया। सांभाखर म्हा करि छोहूं म्हा करि सिघू पधारिया। सिघू मोच खबरि पाई जु एथि तो मैड़ा छा नही। ताहरां सिघू हुता कूच करि अर बाडसरि पधारिया। मोथि रामबदास रा आदमी कोसासूंधी करता हुता सु कुंवर श्री दळपतजी भखाड़िया।

दूसरे प्रकार के ग्रन्थ अनुवाद एवं टीका के रूप में मिलते हैं। अनेक साहित्यिक ग्रंथ (जिनमें अधिकतर काव्य ग्रन्थ ही होते थे) जो साधारण जन के लिये सहज रूप में बोधगम्य नहीं होते थे उनकी उस समय में प्रचलित सरल गद्य में टीका प्रस्तुत की जाती थी जिससे जन साधारण भी उन काव्य-ग्रन्थों का रसास्वादन कर सकें। राजस्थानी अनुवादों की विविध शैलियां पाई जाती हैं। ये अनुवाद या टीकाएं जो जैन ग्रन्थों या जैन विद्वानों के किये हुए हैं उन्हें प्रधानतया 'टब्बा' 'बालावबोध' और 'वार्तिक' के नाम से ही संबोधित किया गया है। 'टब्बा' संक्षिप्त शब्दानुवाद का द्योतक है। अनुवाद अनेक प्रकार के पाये जाते हैं जिनमें शब्दानुवाद, छायानुवाद प्रधान रूप से उल्लेखनीय हैं। विस्तृत विवेचन को टीकाओं की संज्ञा मिल जाती है। इस काल में अनेक ग्रंथों की टीकायें लिखी गई। पृथ्वीराज की 'वेलि' पर लिखी गई आठ-दस टीकायें मिलती हैं, उनमें प्राचीनतम रूप में उपलब्ध टीका का उदाहरण हम यहां दे रहे हैं जो संभवतः संवत् १६८१ का है—

चाखि का वंसगाहार। सब ही बात सामरथ। श्री कृष्ण रुकमणीजी नाह पकड़ि रथ उपरि बैसाणी। तबै वाहर वाहर हुई। कहण लागा जु कोई होय सु दौड़िज्यो। हुरणाखी कहतां रुकमणीजी हरि कहतां कृष्ण हरि ले गया।

—वेलि क्रिसण रुकमणी री टीका (संवत् १६८१)

इन टीकाओं के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं के ग्रंथों का भी राजस्थानी में अनुवाद किया गया। संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में रचित ग्रन्थों को समझना जब जन-साधारण के लिए अत्यन्त कठिन हो गया तब प्रचलित भाषा में उनके अनुवाद की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। यद्यपि प्रारम्भ में अधिकांश अनुवाद जैन आचार्यों द्वारा किए हुए ही मिलते हैं तथापि जैनेतर अनुवाद भी बाद में सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। इनमें 'भागवत दसम स्कंध भासा' 'महाभारत भासा' 'मत्स्य पुराण भासा' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मुस्लिम संस्कृति एवं साहित्य के प्रसार के कारण फारसी भाषा के भी अनेक ग्रंथों का अनुवाद राजस्थानी में किया जाने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी तक तो यह परंपरा बहुत ही बढ़ गई थी।

टीकाओं एवं अनुवादों के अतिरिक्त सत्रहवीं शताब्दी के परवर्ती काल तक गद्य काव्य का रूप भी काफी निखर चुका था। भाषा में लालित्य की मात्रा कुछ अधिक दृष्टिगोचर

हार सभी थी। वर्णन बड़े सुन्दर होते थे। सत्रहवीं शताब्दी में लिखित एक वर्णनात्मक ग्रन्थ में विरहिणी का वर्णन देखिये—

'हार त्रोड़ती वसन मोड़ती। आभरण भांजती वसन मांजती। किरणी कलाप त्रोड़ती मस्तक फोड़ती। वक्षस्थल ताड़ती कंचन फाड़ती। कंठ कलाप रोलावती अधी हमि लोटती। मासूकरी कंचुक मीजती लोचनी दृष्टि भीजती। दीन वचन बोलती सखीजन अपमानती। वोड़इ पाणी माछली जिम तालोबलि थाती शोक विकम थाती शोक विकम थाती। क्षणि बोभइ, क्षणि रोभइ। क्षणि हसइ, क्षणि रूसइ। क्षणि भाकंदइ क्षणि निंदइ। क्षणि मुरूइ, क्षणि मूरूइ। तेह तनु तवाप करइ। कमलनाल पुण भलइ वास। चन्द्रकांति ज्वलइ, पुष्प शय्या बलइ। हार भावइ न भार, वदलीहर, मानइ यमहर, ये जल सीकर ते उद्दीप कर। जउ शीतलोपचार, ते करइ विकार। इणि परि प्रज्वलित स्नेह पटल विरहानल दीपजइ।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि सत्रहवीं शताब्दी तक मुसलमानी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषमताओं का प्रभाव राजस्थान की भाषाओं एवं बोलियों पर भी पर्याप्त रूप से पड़ने लगा था। उस समय की जो वार्तायें अथवा लोककथायें जो बोलचाल की भाषा में लिखी जाती रहीं उनमें अरबी-फारसी के शब्द निसंकोच रखे गए हैं। ये कथाएँ साहित्यिक निपुणता या चमत्कार की दृष्टि से नहीं लिखी गई। सत्रहवीं शताब्दी की लिखित 'कुतबदीन साहिजादै री वारता' का एक उदाहरण देखिये—

'एक दिवस पीरोजसाह का उमराव वामसमव की बेटी साहिबां कुमावती की इकली सुस्याम गई महरवान हुई भर कहण लागी—'भरे साहिबां तुम्हें उपगार करेंगी हई खुब गर्मा क्या उपगार करैंगी उपगार करती है हमारै वर्गा खुब के नाम सती है।

साधारणतः लोक-कथाओं का निर्माण जन-साधारण के लिये ही किया जाता था अतः उन कथाओं की रचना प्राय बोल चाल की भाषा में ही की जाती थी। अरबी-फारसी शब्दों का प्रचलन बोल-चाल की भाषा में निरन्तर बढ़ता ही जा रहा था। लेखक प्रायः अरबी-फारसी के अच्छे जानकार भी होते थे। अतः बाद की 'वातों' में अरबी-फारसी का प्रयोग बड़ा सुव्यवस्थित ढंग से हुआ। 'वातों' में इन शब्दों के प्रचुर प्रयोग का दूसरा कारण इन लोक-कथाओं का कई वर्षों तक लिपिबद्ध नहीं होना भी है। लिपिबद्ध न होने से इनका स्वरूप स्थिर न रह सका और कालान्तर में इनकी भाषा अरबी-फारसी शब्दों से प्रभावित होती गई और जब इनको लिपिबद्ध किया गया तब तक ये शब्द इन 'वातों' में अपनी जड़ जमा चुके थे। 'वात' के लेखकों ने जहाँ मुसलमानी पात्रों का वर्णन एवं कथानक

राजस्थान साहित्य संग्रह भाग १ प्रकाशक राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर, जोधपुर, में प्रकाशित अगरचन्द नाहटा के एक लेख के पृ २२ पर दिया गया उदाहरण।

हैं। यथा—पड़गड़ हड़बड़ धड़ड़ि खाटरखाड़ि भड़ूफड़ धड़च्चड़ झाटम्मीड़ भड़भड़, कड़क्क्या वज्जड़ खड़ड़खड़ि टड़ट्टड़ि खड़भ्भड़ आदि। ध्वन्यात्मक कुछ शब्द तत्सम रूप में भी आये हैं। इस ग्रंथ का एक अनुप्रास युक्त गद्य का उदाहरण देखिये—

'इणि भाति सूं ब्यारि राणी विच्छु बणाय ग्रम्य गाळ र उघाड़ि मस्तक वाला। मंजळां चढि महा सरवर री पाळि माइ ऊभी रही। जिसड़ी हीक दीसै। जिसड़ी चीरड़ियां री मूळकी। कै मोतियां री लड़ी। पवंगां सू उतरि महा प्रवीण ठौड़ि ईसर पौरिज्या पूजी। कर जोड़ि कहरख मागी। कुण कुम श्री हीय भणी देख्यी। म माता भात दूधी। पछै सभी आकाश पवन पाणी। चद सुरज नूं प्रणाम करि। आरोगी डोळी परिक्रमा दीन्ही। पछै आप रै पूत परिवार नै ढेहुसी सीख मति आसीस दीन्ही।

—वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री (पृ १०१५)

'वात' और 'वचनिका' के अतिरिक्त राजस्थानी गद्य साहित्य के विकास में ख्यातों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक दृष्टि के अतिरिक्त ऐतिहासिक दृष्टि से भी इन ख्यातों का महत्त्व बहुत अधिक है। राजस्थानी में 'ख्यात' शब्द प्राय इतिहास के पर्याय रूप में ही प्रयुक्त होता रहा है। 'ख्यात' संस्कृत के 'ख्याति' शब्द का रूपान्तर मात्र है। अठारहवीं शताब्दी में कई ख्याते लिखी गई। वैसे क्रमबद्ध इतिहास लिखने की परंपरा प्राचीन भारत में नहीं मिलती किन्तु मुगलकाल में लिखी गई फारसी तवारीखों के प्रभाव के कारण लोक-भाषाओं में इतिहास लिखने का प्रयत्न किया गया। सम्राट अकबर को इतिहास से बड़ा प्रेम था। उसने अपने समय में इतिहास-लेखन को बहुत महत्त्व दिया। अबुल फजल द्वारा 'अकबरनामा' एव 'आइने अकबरी' अब्दुल कादिर बदऊनी कृत 'तारीखे बदऊनी' निजामुद्दीन द्वारा 'तबकाते अकबरी' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रथ इसी समय लिखे गये। स्थानीय राजाओं ने भी इतिहास-लेखन के महत्त्व को समझा एवं इसके लिखाने की आवश्यकता अनुभव करने लगे। सम्राट ने भी राजपूत राजाओं को इसके लिये प्रेरित किया। इसके बाद प्राय प्रत्येक राजपूत राजा के समय में नियमपूर्वक ख्यातें लिखी जाती रही। राजस्थानी का प्राचीनतम ख्यात साहित्य प्राय इसी समय से मिलना प्रारम्भ होता

नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ में प्रकाशित विविध विषयों के अन्तर्गत 'चारण' पर विचार प्रकट करते हुए श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने मुरारि कवि के नाम से श्लोक दिया है—

अर्थाभिरव्यारत्नानां क्षिति रमण परां प्राप्य संभोगसीमां।
मा कीर्ते सौविदल्ला नवगरम कवि ग्राव वाणी विलासान्॥
गीत ख्यात न नाम्ना किमपि रघुपतरद्य यावत्प्रसादा।
द्वाल्मीकेरेव धात्री धवलमति यशोमुद्रया रामभद्र॥

इसमें 'ख्यात' शब्द का प्रयोग है, अत ऐसा माना जा सकता है कि 'ख्यात' मूल तत्सम शब्द है।

है। वास्तविक एवं प्रामाणिक गद्य साहित्य का उदाहरण इन्हीं ख्यातों में मिलता है। ये ख्यातें विभिन्न लोगों द्वारा लिखी जाती रहीं। कुछ ख्यातें तो राज्य की ओर से नियुक्त ख्यात-लेखकों द्वारा लिखी गई। इन ख्यातों में अपने स्वामी के प्रति प्रशंसायें ही अधिक हैं आलोचनायें कम। इस दृष्टि से इनका साहित्यिक मूल्य चाहे जितना ही हो ऐतिहासिक मूल्य अवश्य कुछ कम हो जाता है। इन राजकीय ख्यात-लेखकों के अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों ने स्वतन्त्र रूप से भी ख्यातें लिखीं। इतिहास की दृष्टि से ये ख्यातें ही अधिक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण हैं। इनमें नैणसी दयालदास व बांकीदास के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते हैं।

ख्यातें प्रायः दो ढंग से लिखी जाती रहीं। एक तो वे जो लगातार इतिहास के रूप में लिखी गईं एवं जिनमें साधारणतया क्रम-भंग नहीं होता। इसके अन्तर्गत 'दयालदास री ख्यात' मानी जा सकती है। दूसरे प्रकार की वे ख्यातें हैं जिनमें क्रमबद्ध इतिहास के स्थान पर क्रमरहित फुटकर बातें पाई जाती हैं। कुछ बातें उनमें बड़ी भी होती हैं एवं कुछ बातें नितांत छोटी एक दो लाइन में ही समाप्त होने वाली होती हैं। अगर इन बातों को क्रम से लगा दिया जाय तो भी इनसे कोई शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं बनता। दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत 'बांकीदास री ख्यात' की गणना की जा सकती है।

आधुनिक समय में लिखे गये मुगलकालीन इतिहास प्रायः मुसलमानी तवारीखों को आधार मान कर ही लिखे गए हैं अतः वे इतिहास बहुत कुछ अधूरे, भ्रमात्मक एवं एक पक्षीय ही रह जाते हैं। राजस्थानी ख्यातों से सहायता लेकर इन भूलों एवं अधूरेपन को दूर किया जा सकता है किन्तु अद्यावधि इनका उपयोग नाम मात्र के लिये ही हुआ है। सम्भवतः इसका प्रमुख कारण इन ख्यातों का अभी प्रकाशित न होना भी हो। ख्यात-लेखकों को विभिन्न विषयक सामग्री खोजने तथा उसे उचित रूप में उपस्थित करने के लिये अथक परिश्रम करना पड़ा है किन्तु खेद है कि उनके इस कठोर परिश्रम का अभी तक उचित मूल्यांकन नहीं किया गया।

ख्यातों में गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग किया गया है तथापि पद्य की मात्रा बहुत ही कम है। ख्यात-साहित्य की इस परम्परा में मुंहणोत नैणसी द्वारा संवत् १७ ई. में लिखी ख्यात बहुत महत्वपूर्ण है। नैणसी की ख्यात में बात बहुत बड़ी-बड़ी है जो कई पृष्ठों तक चलती है। अगर इन बातों का क्रम से व्यवस्थित कर दिया जाय तो उनसे क्रमवार इतिहास बन जाता है।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात राजस्थानी गद्य की सशक्त प्रौढ़ और उदात्त रचना कही जा सकती है। इस ख्यात के गद्य का एक नमूना द्रष्टव्य—

'मारवाड़ रा मगरा सू उत्तर नै सहर छै। दीवाण रा मोहल पीछोला री पाल ऊपर छै। मोहलां थी पावरण नू तळाव सबठो नहर छै। कोस दा रे फेरै छै। सहर री एक पासी मारवाड़ रो मगरो छै। एकण पासी नरक हिम निमरवा रो मगरो छै। तळाव मगरो भरीजै तरै पाणी मगर ताई जाय छै। तळाव मे पाणी मारवाड़ रा मगरा रो सीमरवा रा मगरा रो पाणी आवै छै। तळाव निपट बडो छै। माहे मगरमछ रहै

प्रस्तुत किया है वहाँ उसके अनुरूप अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया है जिससे वर्णन में अत्यन्त स्वाभाविकता बनी रहती है—

नवाब मुहीम सर कर पदमपुरे सूं पाव कोसे'क गांव री उरा में भा उतरियौ थौ। इतरै उरा बखत रा ढोल नगारा बाजिया जिका सुण'र पूछी—आज माई के पुरे में ढोल नगारे को बाजे हैं सो किसी की सादी है या कोई कुंवर पैदा हुवा है या किही ऊपर फतह हासिल की है ? सो जाय सताब खबर लेय आवौ। बरणा आदमी खबर नूं गयौ। आदमी तुरत आय सारी खबर सुणाई।

—महाराजा श्री पदमसिंह री बात

प्राचीन राजस्थानी का गद्य अनेक रूपों में मिलता है। बातें लोक-कथाएं वचनिकाएँ आदि का उल्लेख हम कर चुके हैं। सं० १७१६ में एक और प्रमुख 'वचनिका' का निर्माण हुआ। इसके पहले शिवदास चारण द्वारा 'अचलदास खीची री वचनिका' लिखी जा चुकी थी जिसका उल्लेख हम यथास्थान कर चुके हैं। उसी परम्परा में जग्गा खिड़िया ने 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघ जी री महेसदासोत री' की रचना की किन्तु शिवदास के निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर भी जग्गा साहित्यिक दृष्टि से उससे आगे निकल गया। भाषा की दृष्टि से इसका रूप शिवदास की वचनिका से अधिक सुथरा हुआ है। इसमें पद्य-गद्य दोनों का प्रयोग बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। प्रबन्ध काव्यों में पद्य के साथ ही साथ गद्य के प्रयोग की परम्परा भी राजस्थानी साहित्य में काफी समय से चली आ रही है। सम्भवतः यह प्रणाली संस्कृत के चम्पू ग्रन्थों से ली गई है। इस प्रकार के ग्रन्थों में ये गद्य खण्ड विभिन्न नामों से मिलते हैं यथा—वचनिका वारता दवावैत आदि।

१—वारता—औरंगसा पातसा आसुर अवतार। तपस्या के तेज पुंज एक से सिरदार। भाप का विहाई सा प्रताप का निवांन। मारवाड़ आमे किसी बोलसी बिहांन। राजरूपक (सं० १७८७)

२—दवावैत—ऐसा गढ़ जोधाण और सहर का दरसाव जिसके चौतरफ की बागीचू का डबर और दरियाऊं का बणाव। पहिले बागीचू की सोभा कहिके दिखाया पीछे दरियाऊ की तारीफ जिसके गुन गाया। सा कैसे कहि दिखाया जहां मिवाणू का निवास रतिराज का वास। मुसबार के रस लै हौजू का बणाव। इंद्रलोक सा उजोत अवासू का दरसाव।—सूरजप्रकास (सं० १७८७)

'वचनिका' ग्रंथ में एक-एक चरित्रनायक का विवरण और युद्ध-वर्णन रहता है। 'रघुनाथ रूपक' इत्यादि छन्द-शास्त्रीय ग्रन्थों में गीतों आदि का विवेचन करने के साथ वार्ता वचनिका दवावैत आदि गद्य रूपों के भी लक्षण उदाहरण सहित दिए हैं। उनमें गद्य के दो भेद माने हैं—दवावैत और वचनिका। इन दोनों के भी दो दो भेद किये गये हैं—दवावैत के शुद्धबन्ध और गद्यबन्ध तथा वचनिका के पद्यबन्ध और गद्यबन्ध। मंछ कवि द्वारा लिखे गये दवावैत की व्याख्या करते हुए उसके टीकाकार श्री महतावचन्दजी खारैड़ ने लिखा है—'दवावैत कोई छन्द नहीं है जिसमें मात्राओं वर्णों अथवा गणों का विचार हो। यह अन्त्यानुप्रास रूप गद्य काम है। अन्त्यानुप्रास मध्यानुप्रास और किसी प्रकार का छानुप्रास या यमक

लिया हुआ गद्य का प्रकार है। यह संस्कृत प्राकृत फारसी उर्दू और हिन्दी भाषा में भी अनेक कवियों और गद्यकारों द्वारा प्रयोग में लाया हुआ मालूम पड़ता है। आधुनिक लल्लूलालजी के 'प्रेमसागर' आदि ग्रंथों में तथा उर्दू के 'बहारदानिश' 'नोवतन' आदि ग्रंथों में तथा फारसी के ग्रंथों में देखा जाता है। यह दवावत दो प्रकार की होती है—एक तुकबंध अर्थात् पद्यबंध जिसमें अनुप्रास मिलाया जाता है और दूसरी गद्यबंध जिसमें अनुप्रास नहीं मिलाते हैं।

इस सम्बन्ध में श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा अपने एक लेख में दी गई टिप्पणी भी उल्लेखनीय है[1]— 'रघुनाथरूपक में वचनिका और दवावैत के जो भेद बताये गये हैं, उनके नामों में थोड़ा उलटफेर हो गया है गद्यबद्ध को पद्यबद्ध और पद्यबद्ध को गद्यबद्ध कह दिया गया है। टीकाकार ने जो टिप्पणियाँ दी हैं वे भी भ्रांतिपूर्ण हैं। शुद्ध विवेचन इस प्रकार है—वचनिका के दो भेद होते हैं—(क) पद्यबद्ध (या पदबद्ध) जिसमें मात्राओं का नियम होता है। इसके दो भेद होते हैं—

१ जिसमें आठ-आठ मात्राओं के तुक-युक्त गद्य खण्ड हो और

२ जिसमें बीस-बीस मात्राओं के तुक-युक्त गद्य खण्ड हों।

(ग) गद्यबद्ध जिसमें मात्राओं का नियम नहीं होता। इसके भी दो भेद होते हैं—

१ वारता (कहीं-कहीं तुकान्त गद्य के लिए भी बात वार्ता या वार्तिक नाम का प्रयोग देखा जाता है) या साधारण गद्य।

२ तुक युक्त गद्य।

दवावैत के भी इसी प्रकार दो भेद होते हैं—

१ पद्यबद्ध (या पदबद्ध) इसमें चौबीस-चौबीस मात्राओं के तुकयुक्त गद्य खण्ड होते हैं

२ गद्यबद्ध—इसमें तुकयुक्त गद्य खण्ड होते हैं मात्राओं का नियम नहीं होता। दवावैत और वचनिका में क्या अन्तर है, यह अभी तक समझ में नहीं आ पाया है। वचनिका के चतुर्थ भेद और दवावैत के द्वितीय भेद में कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता। उपलब्ध दवावैतों की भाषा राजस्थानी से प्रभावित खड़ी बोली हिन्दी है जबकि वचनिकाओं की राजस्थानी।

संवत् १७१५ में रची गई 'राठौड़ रतनसिंघजी महेसदासोत री वचनिका' इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। चारण कवियों और काव्य-रसिकों में वचनिका का अत्यधिक मान और सत्कार रहा है। यह एक प्रबन्ध काव्य है। उस काल के अन्य ग्रंथों के समान वचनिका में भी विदेशी (अरबी-फारसी) शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम है। डिंगल के कुछ विशिष्ट व्याकरणानुकरण-मूलक शब्द भी काफी मात्रा में पाये जाते

---

[1] राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १ प्रकाशक राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर, जोधपुर में प्रकाशित 'राजस्थानी गद्य काव्य की परम्परा' नामक श्री अगरचन्द जी नाहटा द्वारा लिखे गए एक लेख में दिये गये फुट नोट के आधार पर।

हैं। यथा—धड़गड़ हड़बड़ चड़ाँड़ बाटरबड़ि कड़क्कड़ धड़क्कड़ झटमड़ि, धड़धड़, कणणकण झमठ सड़स्सड़ि टट्टट्रि खड़खड़ आदि। संस्कृतमूलक कुछ शब्द तत्सम रूप में भी आये हैं। इस ग्रंथ का एक अनुकांत गद्य का उदाहरण देखिये—

'इणि भांति सू ब्यारि रांणी निम्हू बनासि ग्रम्य नाळ र उछाळि मसख चाला। अधर्ळा चढि महा सरवर री पाळि माह ऊभी रही। किसड़ी ठीक दीसै। जिसड़ी कीरतियां री झूबकी। कै मोतियां री लड़ी। पर्वतां सूं उतरि महा प्रवीत ठौडि ईसर गौरिज्या पूजी। कर जोड़ि कहण लागी। धूम धूप धौ हीज बणी देज्यो। न माया बात पूजी। पछै जमी आकास पवन पाणी। चद सूरज नू प्रणाम करि। धारोधी छोटी परिक्रमा दीन्ही। पछै माप रै पूत परिवार नै छेहसी सीख मति आसीस दीन्ही।
—वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री (स १७१५)

'बात' और 'वचनिका' के अतिरिक्त राजस्थानी गद्य साहित्य के विकास में ख्यातों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक दृष्टि के अतिरिक्त ऐतिहासिक दृष्टि से भी इन ख्यातों का महत्त्व बहुत अधिक है। राजस्थानी में 'ख्यात' शब्द प्राय इतिहास के पर्याय रूप में ही प्रयुक्त होता रहा है। 'ख्यात' संस्कृत के 'ख्याति' शब्द का रूपान्तर मात्र है। सत्रहवीं शताब्दी में कई ख्यातें लिखी गई। वैसे क्रमबद्ध इतिहास लिखने की परंपरा प्राचीन भारत में नही मिलती किन्तु मुगलकाल में लिखी गई फारसी तवारीखों के प्रभाव के कारण लोक-भाषाओं में इतिहास लिखने का प्रयत्न किया गया। सम्राट अकबर को इतिहास से बड़ा प्रेम था। उसने अपने समय में इतिहास-लेखन को बहुत महत्त्व दिया। अबुल फजल द्वारा 'अकबरनामा' एवं 'आइने अकबरी' अब्दुल कादिर बदऊनी कृत 'तारीखे बदऊनी' निजामुद्दीन द्वारा 'तबकाते अकबरी' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ इसी समय लिखे गये। स्थानीय राजाओं ने भी इतिहास-लेखन के महत्त्व को समझा एवं इसके लिखाने की आवश्यकता अनुभव करने लगे। सम्राट ने भी राजपूत राजाओं को इसके लिये प्रेरित किया। इसके बाद प्राय प्रत्येक राजपूत राजा के समय में नियमपूर्वक ख्यातें लिखी जाती रहीं। राजस्थानी का प्राचीनतम ख्यात साहित्य प्राय इसी समय से मिलना आरम्भ होता

नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ में प्रकाशित 'विविध विषयों' के अंतर्गत 'चारण' पर विचार प्रकट करते हुए श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने मुरारि कवि के नाम से श्लोक दिया है—

वर्णाभिरचारणानां क्षिति रमण परां प्राप्य सम्मोदलीलां।
मा कीर्त सौविदल्ला नवगणय कवि प्रात वाणी विलासान् ॥
गीत ख्यात न नाम्ना किमपि रघुपतरद्य यावत्प्रसादा।
द्वाल्मीकरेव धात्री धवलयति यशोमुद्रया रामभद्र ॥

इसमें 'ख्यात' शब्द का प्रयोग है, अत ऐसा माना जा सकता है कि 'ख्यात' मूल तत्सम शब्द है।

है। वास्तविक एवं प्रामाणिक गद्य साहित्य का उदाहरण इन्हीं ख्यातों में मिलता है। ये ख्यात विभिन्न भागों द्वारा लिखी जाती रहीं। कुछ ख्यातें तो राज्य की ओर से नियुक्त ख्यात-लेखकों द्वारा लिखी गईं। इन ख्यातों में अपने स्वामी के प्रति प्रशंसा ही अधिक है आलोचना कम। इस दृष्टि से इनका साहित्यिक मूल्य चाहे जितना ही हो ऐतिहासिक मूल्य अवश्य कुछ कम हो जाता है। इन राजकीय ख्यात-लेखकों के अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों ने स्वतन्त्र रूप से भी ख्यातें लिखीं। इतिहास की दृष्टि से ये ख्यातें ही अधिक प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें नैणसी दयालदास व बाँकीदास के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते हैं।

ख्यातें प्रायः दो ढंग से लिखी जाती रहीं। एक तो वे जो लगातार इतिहास के रूप में लिखी गईं एवं जिनमें साधारणतया क्रम भंग नहीं होता। इसके अन्तर्गत 'दयालदास री ख्यात' मानी जा सकती है। दूसरे प्रकार की वे ख्यातें हैं जिनमें क्रमबद्ध इतिहास के स्थान पर क्रमरहित फुटकर बातें पाई जाती हैं। कुछ बातें उनमें बड़ी भी होती हैं एवं कुछ बातें नितांत छोटी एक डेढ़ लाइन में ही समाप्त होने वाली होती हैं। अगर इन बातों को क्रम से लगा दिया जाय तो भी इनसे कोई शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं बनता। दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत बाँकीदास री ख्यात' की गणना की जा सकती है।

आधुनिक समय में लिखे गये मुगलकालीन इतिहास प्रायः मुसलमानी तवारीखों को आधार मान कर ही लिखे गये हैं अतः ये इतिहास बहुत कुछ अधूरे, भ्रमात्मक एवं एक-पक्षीय ही कहे जा सकते हैं। राजस्थानी ख्यातों से सहायता लेकर इन भूलों एवं अधूरेपन को दूर किया जा सकता है किन्तु यथावधि इनका उपयोग नाम मात्र के लिए ही हुआ है। सम्भवतः इसका प्रमुख कारण इन ख्यातों का शीघ्र प्रकाशित न होना भी हो। ख्यात लेखकों को विभिन्न विषयक सामग्री खोजने तथा उसे उचित रूप में उपस्थित करने के लिए अथक परिश्रम करना पड़ा है किन्तु खेद है कि उनके इस कठोर परिश्रम का अभी तक उचित मूल्यांकन नहीं किया गया।

ख्यातों में गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग किया गया है तथापि पद्य की मात्रा बहुत ही कम है। ख्यात-साहित्य की इस परम्परा में मुँहणोत नैणसी द्वारा संवत् १७ ‌ ‌ ९ में लिखी ख्यात बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'नैणसी की ख्यात' में बातें बहुत बड़ी-बड़ी हैं जो कई पृष्ठों तक चलती हैं। अगर इन बातों को क्रम से व्यवस्थित कर दिया जाय तो उनसे क्रमवार इतिहास बन जाता है।

'मुँहणोत नैणसी की ख्यात' राजस्थानी गद्य की अत्यन्त प्रौढ़ और उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है। इस ख्यात के गद्य का एक नमूना द्रष्टव्य—

> 'माण्डवां रा मगरा मूं उतर नै शहर छै। सीवाणं रा मोहम पीछोड़ा री पाळ ऊपर छै। माहमां री प्रायवणा नूं तळाव मगरो नहर छै। काम दा रै पेरै छै। शहर री एक पानी माण्डवां रो मगरो छै। एकण पानी नरक बिस निमरचा रो मगरो छै। तळाव पणो भरीजै तरै पाणी नगर ताई जाय छै। तळाव मे पाणी माण्डवां रा मगरा रो बीवरचा रा मगरा रो पाणी आवै छै। तळाव निपट बडो छै। माह मगरमध रहै

छै। तळाव ऊंडो घणो छै। तै तळाव री मोरी छूटै छै। तिण री पाणी धरती रोकी फिरै छै। तिणरो घणो हासल हुवै छै।

राजपूताने के इतिहास में कई जगह जहां प्राचीन शोध से प्राप्त सामग्री इतिहास की पूर्ति नहीं कर सकती वहां नैणसी की ख्यात ही कुछ कुछ सहारा देती है। इतिहास की दृष्टि से यह एक अपूर्व संग्रह है।

कालक्रम की दृष्टि से अठारहवीं शताब्दी के परवर्ती काल में ख्यात साहित्य के अतिरिक्त परम्परागत गद्य-काव्य के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। इनमें 'सभाशृंगार' नामक ग्रंथ की एक प्रति संवत् १७६२ की मिली है। यद्यपि सोलहवीं शताब्दी में गुजराती राजस्थानी से अलग हो चुकी थी तथापि इस पर गुजराती का थोड़ा बहुत प्रभाव मालूम देता है। इस ग्रंथ का वर्षाकाल का एक वर्णन देखिये।

वरखाकाल हुउ बाहिरौ रहिउ कुमर वापि पाखी भरता रया। बादळ उनमा। मेघ तणा पाणी वहै पंथी गामड़ जाता रहै। पूरब ना वाजइ वाय लोक सहु हरखित थाय। आकास गड़हड़ै गाज गड़हड़ै। पखी तड़फड़इ घणा मांणस लड़थड़इ। काठ खड़खड़इ हाली हळ खड़इ। आपणा घरि कादम फेड़इ बीजा काज मेड़इ। घार घार न मोड़इ साथ विहार न करेइ। अनेक जीव नीपजै विविध धान्य ऊपजै। लोक नी आस पूजै माय भैंस दूजै।

इस समय की दवावैत के रूप में लिखी गद्य रचनाएं भी मिलती हैं। उदाहरण के लिये खासीदास भाट द्वारा रचित 'नरसिंहदास गौड़ की दवावैत' का एक उदाहरण देखिये—

'रंग महकते हैं। कपड़े महकते हैं। तोसक सीस्यावता है। हजूरी पावता है। चढ़ते उतरते पाव दे सलाम करावत हैं। परवफल पावता है। चंवर ढलते हैं। सभा बिराजती है। नौबत बाजते हैं। घोड़ फिरते हैं। पायक चढ़ते हैं। गुणीजन रंग बढ़ता है। यह बखत बणता है। सोभा बणती है। श्री दीवाण पधारते हैं। दुसमण को मारते हैं। देसों दूर करते हैं। साहों काम सरते हैं। कवीसुर बोलते हैं। मरणा बोलते हैं। काम का सूरत। जतमा विहारी देतमा प्रवाड़ा। जय मह-राज नरसिंह जेत कवि खासीदास कही दवावैत।

इस दवावैत के अतिरिक्त संवत् १७७२ में बनाई गई कुछ और दवावैत भी मिलती हैं जिनमें रामविजय उपाध्याय द्वारा रचित जैनाचार्य जिनसुखसूरिजी की दवावैत तथा जिन-लाभसूरि दवावैत प्रमुख हैं। इस काल का दवावैत-साहित्य बहुधा जैन-ज्ञानियों द्वारा ही रचा गया है।

इस काल में संस्कृत गद्य ग्रंथों के कुछ अनुवाद भी किये गये। संवत् १७७१ में लिखित 'बैताल पच्चीसी' की भाषा का उदाहरण देखिये—

वार्ता—तीर्थ विस्वनाथ री दरसन कर बैठो। इतरइ एक नायका बाहिन हूं ऊपरि स्नान करि पूजा करि पाछी। तितरइ एक वर दीठो कंवर नूं कंवरी यह दीठो। मांहो-मांहि निजर मिळी काम रा बाण माथा उन्मादन सोखण संदीपन मोहन तापन पै

पोष दोसु काम रा माइका रा हीया माहि घुमीया हरे कुळ री मरजादा छोडि माज दूर करि सील कतार इसरि समस्या करि संकेत स्याम कह्या—एक कमळ हाथ माहे लीयौ हुतो माखन लगाइ पछे काने लगायौ कानां भी याते लगायौ बातो भी पने लगायौ पमां भी हीमइ धरि चासती हुई, बांझइ राजा पुत्र विरह करि पीड़ित हुइव तरह प्रकार

संवत् १८०० के बाद गद्य साहित्य का विस्तार द्रुत गति से हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसे बहुत से लेखक हुए जिन्होंने उत्कृष्ट कोटि का गद्य साहित्य लिखा। शैली की विविधता की दृष्टि से भी इस काल का विशेष महत्व है।

संवत् १८ के मध्य का एक उदाहरण श्री मेनारिया ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में दिया है—

'पछै बामण रोवी लेने तळाव ऊपर रोटी करवा बैठो। पछै तळाव री तीर एक मीडक आयो। आने न बामण भी कही—देखता तोहे तो में अठे कदी नहीं देख्यो। तू कठे आय है। जदी बामण कहे—हू कुमीरा रही छू नै मयाजी बाठे छू।

भाषा की दृष्टि से यह उदाहरण उन्नीसवीं शताब्दी के परवर्ती काल का मालूम होता है। संवत् १८ तक गद्य साहित्य में इतनी आधुनिकता नहीं आ पाई थी।

कविराजा बाँकीदास द्वारा संवत् १ १ में लिखी गई ख्यात राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर से प्रकाशित हो चुकी है। इसमें छोटी-छोटी फुटकर बातों का संग्रह है। लगभग २७७६ बातें इसमें संगृहीत हैं। राजपूताने के समस्त राज्यों एवं मुगल बादशाहों के इतिहास सम्बन्धी अनेक फुटकर नोट इसमें भरे पड़े हैं। 'ख्यात' की भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'अकबर री मा मक्का बमेरै मका-सरीफ ज्यारी ज्यारत करण गयी। पातसाह मिरजा सरफुदीन नु साथे मेलियो। मक पीर विलायत में जिण री ज्यारत सुहागवती करै, विधवा न करै। ज्यारत करण वास्तै विधवा प्राण पुरस सूं मवध करि मिळा पड़ै छै। उण पीर री ज्यारत करण नु अकबर री मा मिरजा सरफुद्दीन साथ मिळा पड़ी। पिछी अकबर री मा पाछी आयी। जब मा बात सुणी अकबर फुरमायो—आमी तो सरफुद्दीन हमारा चाकर रहा अब हमारा बाबा है।

उन्नीसवीं शताब्दी के बाद साहित्य का विकास की दृष्टि से काफी महत्व है। इस शताब्दी के प्रारम्भकाल (संवत् १८१२) में लिपिबद्ध 'श्री ढोलामारूजी री बारता' नामक एक ग्रन्थ जोधपुर के 'पुस्तक प्रकाश' में वर्तमान है। ग्रन्थ प्रायः दोहों-सोरठों में ही लिखा गया है किन्तु बीच-बीच में कुछ फुटकर गद्य भी दिया गया है—

'जस नाम ऐवाळ रहतो हुतो मरण नाम ऐक सुगाई री नाम मारवणी हुतो। ऐवाळ बाळीयो या माळ। ऐवाळ कहण लायो माळ तो माहरा छाप माहे छै। काम म्हारी बाळ बाप्पी हुती।

'ढोला मारू री बात' की एक और लिपिबद्ध प्रतिलिपि संवत् १८७२ की मिलती है। इस काल के गद्य का क्रमशः विकास समझने में इसका उदाहरण भी सहायक होगा—

'पिंगळ राजा सांवतसी देवड़ा नै मावसी मेल कहायो—थनै थे आणी करो। तद सांवतसी बणो ही विचारियो पण बात काम कोई बैठ नहीं। कुंवरि नै ऊकणी वे मेली थे। तब ऊंठ घोड़ा रथ सेजवाळ सवाद पायवान साथे हुवा छो उदैवत बणै नहीं। वाट रोकया छै। धनरथ होय मास वाव। तरै सांवतसी मावसी नै कह्यो—थै मारग विसम छै। आप आने परधान मेलो तो आणो करो। कंवरि नै वरे पहुचावो पछै थारी बात सोरी छै। इतरी कहि मावसी नै सीख दीधी।

उपरोक्त दोनों उदाहरणों की तुलना से यह स्पष्ट है कि जहां पहले उदाहरण में प्राचीनता की छाप स्पष्ट है वहां पिछले उदाहरण में भाषा आधुनिकता की ओर बढ़ती हुई दिखाई देती है। 'रहंती हुती' 'चारती हुंती' आदि प्रयोग आधुनिक वार्तों में नहीं मिलते अगर मिलते भी हैं तो उनकी संख्या नगण्य है। अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग प्रायः बढ़ता जा रहा था। सम्भवतः इसका कारण यह था कि उस समय राजस्थान के अधिकतर रजवाड़ों का शासन-संबंधी कार्य प्रायः फारसी के माध्यम से ही सम्पन्न होता था।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि इस शताब्दी में 'बात' रचनाओं में विविध शैलियों का प्रयोग किया गया। प्रतीकात्मक शैली में लिखी गई 'डाढाळा सूर की बात' इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस बात' में वीरोचित कार्यों का आरोपण एक सूअर परिवार पर किया गया है। 'डाढाळा सूर' की वीरता अपने युग की वीर भावना के अनुकूल एवं अनुरूप है। किन्तु जहां किसी ऐतिहासिक कथा में 'वीरता' पात्रों एवं घटना-क्रम में निहित रहती है वहां इस 'बात' में 'वीरता' को अमूर्त तत्व के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। सम्भवतः प्रतीकात्मक शैली में लिखी गई यह पहली रचना है इस कारण इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। सूअर की व्यवहारगत और स्वभावजन्य परिस्थितियों के आधार पर मानवोचित वीर भाव की अभिव्यंजना जैसी सुन्दर इस बात' में बन पड़ी है वैसी संभवतया अन्य किसी प्रकाशित बात में नहीं पायी जाती। किसी ने इस बात के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि प्रतीक के ही कारण इस कथा में एक प्रकार से सत्य का विश्वासक प्रयोग हुआ है और यह 'विश्व' एक वीर सूअर परिवार के प्रतीक रूप में स्थापित किया गया और सफलतापूर्वक निभाया भी गया। यह बात' भी संभवतया उन्नीसवीं शताब्दी के परवर्ती काल में लिपिबद्ध की गई जान पड़ती है। इस बात की भाषा का एक उदाहरण दृष्टिये—

पाव कोसे क गया जद डाढाळो बोलियो—भूंडण म्हा सूरवीर री गेलरिया पै छोडियो आछो नहीं। बाबा बडो परम छै और म्हारो सरीर मुं सभार छै। कान्ह पग

'परम्परा' के 'राजस्थानी बातां' नामक अङ्क में श्री कोमल कोठारी द्वारा लिखे गये एक लेख के आधार पर।

पसार पे म्हे मरीस तौ भगत आवसी जौनूं भवत होयसी जानूं बडो महणौ होसी। राव बडो रजपूत छै, सूरवीर छै। पाछो आय काम आयसूं तौ वद होयसी। राव रौ चित्त चांत होवै। माम् फेर इसौ सापुरुष कोई मारणेहारो नहीं मिळसी तीसूं राजी होय मोनूं सीख देवो जे काम आवूं।

उन्नीसवीं शताब्दी का अंतिम गद्य लेखक कविराजा सूर्यमल्ल हुआ। अपने वृहद् ग्रंथ 'वंशभास्कर' में इन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग किया है। साहित्यिक रूप में इन्होंने संस्कृतनिष्ठ राजस्थानी का प्रयोग किया। वंशभास्कर की भाषा में प्रसाद गुण का अभाव है यह अत्यन्त गूढ़ और क्लिष्ट है यहां तक कि टिप्पणी से भी आशय सुगमता से नहीं खुलता। संभवतया प्राचीन परंपरागत विशुद्ध राजस्थानी का यह अंतिम उदाहरण है। भाषा में संस्कृत के तत्सम रूपों का प्रयोग प्रचुरता के साथ हुआ है—

'यो राजा मैं आपरा प्राण रौ पोषण अनंगसेना नामि अवरोध नाम दासी रै पत्य निवेदन कीधौ। दासी तो कळियुग रो रूप पूरा भविष्य भवनीस रौ तिरस्कार करि पुत्रादि रै आमित अनेक मन रहे जिका में कोई रो ही लोक रो बोधणहार ठाळियो जिण री सगति रै प्रभाव स्वर्ग लोक रा मार्ग मुद्रित कराय कुंभीपाक रो निवास माळियो सो आपरा स्वामी रो दीधो अपूर्व चमत्कारिक फळ पोणी अनंगसेना नै बारटै भट कीधौ।'

मध्यकालीन डिंगल-गीत साहित्य

श्री नारायणसिंह भाटी

प्राचीन राजस्थानी साहित्य में डिंगल गीतों का प्रमुख स्थान है। सैकड़ों कवियों द्वारा विभिन्न घटनाओं और विषयों को लेकर असंख्य गीत रचे गए हैं। प्राचीन राजस्थानी साहित्य के इतिहास में से यदि इन गीतों को निकाल दिया जाय तो न केवल राजस्थानी साहित्य की एक महत्वपूर्ण काव्य-धारा से ही पाठक वंचित रहते हैं वरन् राजस्थानी साहित्य का मूल्यांकन एकांगी और भ्रमपूर्ण होगा। ये गीत साहित्य की दृष्टि से ही नहीं इतिहास की दृष्टि से भी बड़े महत्वपूर्ण हैं। साधारण से साधारण ऐतिहासिक घटना पर गीत का निर्माण हुआ है यद्यपि आज वे सभी गीत उपलब्ध नहीं होते क्योंकि शास्त्रीय पद्धति पर रचे जाने के बावजूद भी इन गीतों की परम्परा मौखिक ही रही है। इन गीतों का निर्माण प्रायः किसी घटना या अवसर पर होता था और कवि स्वयं अपने मुँह से इन गीतों का उच्चारण उचित अवसर पर किया करता था। कई बार युद्ध-स्थल तक में कवि इन गीतों के माध्यम से वीर योद्धाओं की भावनाओं को उत्तेजित कर उन्हें अपने कर्म-पथ पर अग्रसर करता था। अतः इन गीतों का केवल कलात्मक अथवा साहित्यिक महत्व ही नहीं था वरन् सामाजिक जीवन में एक प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न करने की क्षमता भी इन गीतों में थी। इस प्रकार सामाजिक भावनाओं के अत्यन्त शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण वाहन के रूप में इन गीतों को मान्यता प्राप्त थी।

डिंगल गीतों की रचना कब से प्रारम्भ हुई इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना बड़ा कठिन है। पर नवमी शताब्दी के मुरारि कवि द्वारा रचित एक संस्कृत श्लोक में चारणों के गीतों और स्तवों का प्रसंग आया है। हेमचन्द्राचार्य (१२वीं शताब्दी) के 'प्राकृत व्याकरण' में भी इस प्रकार के छन्दों के उदाहरण मिलते हैं।[1] वैसे बापा रावल पर लिखा हुआ गीत भी उपलब्ध होता है और उसके बाद राव सिहाजी के सम्बन्ध में उनके समकालीन कवि शंकरदास बारहठ द्वारा रचा हुआ गीत राठौड़ों की ख्यात में लिखा हुआ मिलता है। इन गीतों की भाषा अधिक प्राचीन नहीं है। पर यह पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि ये गीत मौखिक परम्परा से चले आते रहे हैं, जिससे इनकी भाषा में

द्रष्टव्य – नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ पृष्ठ २२१

[1] प्राकृत-व्याकरण – सम्पादक डॉ P.L. Vaidya पृष्ठ १४६

परिवर्तन होते रहे हैं। इसलिए उनकी भाषा में नयापन होने से ही उनकी प्राचीनता में सन्देह नहीं किया जा सकता। विशेषतः जब कि ऐसे संकेत नवमी और दसवीं शताब्दी में प्राप्त होते हैं कि—चारणों द्वारा उस समय गीतों की रचना की जाती थी। एक और बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि इन गीतों की रचना प्राय जिस व्यक्ति या घटना से सम्बन्धित होती है वे समकालीन होते थे। यही परम्परा राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल में देखी जा सकती है। यद्यपि अवतारों तथा सिद्ध पुरुषों की स्तुति में बाद के कवियों ने भी गीतों की रचना की है।

पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते आते गीत काफी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं और सोलहवीं शताब्दी में गीतों को और भी विस्तार मिला है।

आलोच्य मध्यकाल (जो कि सोलहवीं शताब्दी के अन्त में स्पष्ट रूप से प्रारम्भ होता है) में गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। १७ वीं शताब्दी में राठौड़ पृथ्वीराज ने डिंगल भाषा का सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ वेलि किसन रुक्मणि री' वेलियो गीत में लिखा जिससे इस शताब्दी में गीत परम्परा की महत्ता प्रकट होती है। मध्यकालीन गीत साहित्य को ठीक तरह से समझने के लिए इस काल (१६ वीं शताब्दी के अन्त से १६ वीं शताब्दी तक) की ऐतिहासिक एवम् सामाजिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। इस काल के प्रारम्भ में मुगल सल्तनत की स्थापना पूर्ण रूप से हो चुकी थी। अकबर जैसे कुशल शासक ने महाराणा प्रताप के अतिरिक्त राजस्थान के सभी राजाओं को किसी न किसी तरह से अपने वश में कर लिया था और अपनी राजनैतिक पटुता एवम् व्यवहारकुशलता के कारण इन शासकों से स्थायी सम्बन्ध बना लिए थे। इसके बावजूद भी कई बार राजनैतिक प्रश्नों को लेकर या व्यक्ति स्वातन्त्र्य को लेकर या धार्मिक प्रश्नों को लेकर समाज में उथल-पुथल होती रहती थी। इस सामाजिक उथल-पुथल में व्यक्तिगत साहस और वीरत्व का बड़ा महत्व था। उस समय का शासक वर्ग तथा वीर पुरुष युद्ध अथवा मृत्यु से किंचित भी भयभीत नहीं होते थे। क्षत्रिय सामाजिक परिस्थितियों और विदेशी सत्ता में पनपने वाले इस्लाम धर्म से अपने सतीत्व एवम् धर्म की रक्षा करने के लिए नारियां सती हो जाना अपना कर्तव्य समझती थीं। युद्ध में काम आ जाना और पति को प्राप्त होना शुभ कार्य समझा जाता था और इस प्रकार के बलिदानों को जनता बड़ी सम्मान की दृष्टि से देखती थी। यहां तक धर्म का प्रश्न था धार्मिक स्थानों और गौओं की रक्षा के लिए इस काल में असंख्य व्यक्तियों ने प्राणोत्सर्ग किया है। यह सब कुछ होते हुए भी मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव शासक वर्ग पर अवश्य पड़ा है और उनके शासन में वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित हुए। परन्तु विदेशी संस्कृति को उन्होंने अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। सम्राट अकबर ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक एकता कायम करने के लिए काफी प्रयत्न किए और दीन ईलाही धर्म की स्थापना की। सभी धर्मों के आचार्यों के शास्त्रार्थ सम्राट स्वयम् सुना करता था जिससे सभी धार्मिक पक्षों के बीच सहिष्णुता का वातावरण अवश्य बना परन्तु धार्मिक सम्प्रदायों में वैमनस्य नहीं आया। वर्ण विभाजन के अनुसार बंटी हुई यहां की जनता यथाविधि अपना काम करती थी और ब्राह्मणों का समाज में बड़ा पूज्य

स्थान था। इन महात्माओं को जनता बड़े आदर की दृष्टि से देखती थी। इस काम में पनपने वाली भक्ति साहित्य की धारा इसका बहुत बड़ा प्रमाण है। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में भी अकबर द्वारा बनाई हुई परिस्थिति सुदृढ़ता के कारण यथावत चलती रही। इसमें कोई बहुत बड़ा परिवर्तन जिसे क्रान्तिकारी परिवर्तन कहा जा सके नहीं हुआ। इस काल में भी इन बादशाहों ने यहाँ के शासकों के साथ मैत्री सम्बन्ध रखा। पर औरङ्गजेब के सत्तारूढ़ होते ही उसकी धार्मिक असहिष्णुता अदूरदर्शिता और साम्राज्य हड़पने की लालसा के कारण देश में बड़ा असन्तोष व्याप्त हो गया। उधर दक्षिण में शिवाजी के नेतृत्व में मरहठों ने मुस्लिम साम्राज्य के विरुद्ध बगावत शुरू कर दी और इधर राठौड़ दुर्गादास ने औरङ्गजेब के लिए निरन्तर संघर्ष की स्थिति बना दी। औरंगजेब के समय के इतिहास को देखने से पता चलता है कि उसके शासन के तरीके में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया था जिसके फलस्वरूप उसे अपने जिन्दगी में सैकड़ों छोटी बड़ी लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। राजस्थान फिर पूर्ण अशान्ति और संघर्ष की भूमि बन गया। इस संघर्ष को व्यक्त करने वाला विपुल साहित्य डिंगल-गीतों में मिलता है। औरंगजेब के समय में लड़ते-झगड़ते यहाँ के शासकों की स्थिति बड़ी कमजोर हो गई थी। रही-सही ताकत दिल्ली की सल्तनत और भी कमजोर हो जाने से क्षीण हो गई। मुगलों का प्रभाव जब समाप्त प्रायः हुआ तो मरहठों ने ताकत पकड़ी और उन्होंने बड़ी बड़ी सेनाएं बना कर राजस्थान को लूटना प्रारम्भ किया। यह भी संघर्ष की एक अजीब कहानी है जिसका वर्णन भी यहाँ के साहित्य में कई रूपों में उपलब्ध होता है। ऐसी स्थिति का लाभ उठा कर अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति और व्यवहारकुशलता से यहाँ के शासकों को अपने अधीन किया और एक नए प्रकार की शासन व्यवस्था कायम करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। असहाय जनता यह सब ऊहापोह देखती रही पर भावुक कवियों और बहादुर योद्धाओं ने फिर भी स्वातंत्र्य रक्षा के प्रयत्नों के विरल उदाहरण ऐसी परिस्थितियों में पेश किए हैं, जिनका विवरण इस समय के फुटकर साहित्य में मिलता है। सन् १८५७ की क्रांति में राजस्थान का सामूहिक रूप से ऐसा कोई प्रयत्न नहीं रहा। परन्तु परोक्ष या अपरोक्ष रूप में जिन व्यक्तियों ने अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी स्वातन्त्र्य संग्राम की ज्योति को प्रज्वलित करने में सहयोग दिया उनकी प्रशस्ति में यहाँ के कवियों ने काफी बड़े परिमाण में गीत रचना की है जो न केवल उनकी प्रशस्ति ही है वरन् यहाँ की सामाजिक भावनाओं को भी प्रकट करती है। उनके प्रति गाए जाने वाले लोकगीत तो आज भी घर घर में प्रचलित हैं। इस प्रकार यह मध्य कालीन समय संघर्ष ऊहापोह और राजनैतिक दृष्टि से बड़े उथल पुथल का समय रहा है। इस प्रकार की परिस्थितियों की भावनात्मक अभिव्यक्ति और सामाजिक दृष्टि से उस समय में होने वाले कार्य-कलापों का काव्यात्मक मूल्यांकन सबसे अधिक डिंगल गीतों में मिलता है।

इस प्रकार की पृष्ठ-भूमि में निर्मित डिंगल गीत साहित्य अपनी छन्द व शैलीगत विशेषताएँ रखता है। गीतों की छन्दगत विशेषताओं के पहले हम यहाँ गीतों में प्रयुक्त होने वाले कुछ नियम और उनकी रचना-प्रणाली से सम्बन्ध रखने वाली कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं क्योंकि उनको समझे बिना गीतों के साहित्यिक सौन्दर्य को नहीं समझा जा सकता।

गीत शब्द का यहाँ प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थ में हुआ है। प्रायः गीत शब्द को देख कर लोग यह अनुमान लगा लेते हैं कि गीत कोई गाने की वस्तु होगी। परन्तु यहाँ गीत का अर्थ प्रशस्ति से है। इन गीतों के माध्यम से वीर योद्धाओं और समाज के प्रिय व्यक्तियों की प्रशस्ति प्रकट की गई है।[1] डिंगल गीतों की रचना करते समय कवि के लिए कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक है जैसे—जथाओं का निर्वाह, वयस सगाई अलंकार का निर्वाह, विभिन्न शब्दों का सही प्रयोग, व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध रखने वाले गीतों में उस व्यक्ति के बाप-दादा जाति (खांप) स्थान आदि के नाम का जिक्र, विभिन्न काव्य-दोषों से गीत को मुक्त रखते हुए गीत का निर्माण करना आदि। इन नियमों को डिंगल के छन्द शास्त्रियों ने विस्तार के साथ समझाया है।

जथा—

जथाओं के वर्णन की सामान्य विशेषता यह है कि प्रायः प्रथम द्वाले में कही गई बात इस नवीन ढंग से पुनः पुनः कही जाती है कि उसमें एक प्रकार की पुनरुक्ति होते हुए भी पुनरुक्ति दोष नहीं होता। कई जथाओं के निर्वाह में अलंकारों का भी सहयोग रहता है। कवि मंछ ने अपने ग्रंथ में ग्यारह प्रकार की जथाओं का वर्णन किया है। यथा—

　　　　बिधानीक सर, सिर, बरस अहिगत भाव अधीण।
　　　　सुद्ध इवक सम मून लो जथा ग्यारह जाण।।[2]

कवि किसनाजी आढ़ा ने भी 'रघुवर जस प्रकास' में ग्यारह प्रकार की ही जथाएँ मानी हैं।[3] परन्तु उदयराम ने अपने 'कवि-कुळ-बोध' में जथाओं के इक्कीस भेद किए हैं। यथा—

　　　　विधानी सर वरण सीस सुध मुगट सम।
　　　　मून भाव निपुणाद ध्यान अहपति सरस गम।
　　　　सुधाधिक सम यमक यमक रूपक सर भारथ।
　　　　बोध अनुपम बंध साथ बिन तोम सुधारथ।
　　　　युत प्राकृत रूपक बंधयुग सुगता ग्रह कुम बंध मत।
　　　　सबळत जथा वरणो सुक्रम विध इकीस कायब वरत।

इस प्रकार इन जथाओं का डिंगल गीतों में बड़ा महत्त्व है। और जहाँ जथा के निर्वाह में त्रुटि हो जाती है वहाँ 'नाळछेद' दोष माना जाता है। यहाँ हम कोष प्रयोग जथा का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

[1] द्रष्टव्य—मेरा लेख नव भारती वर्ष २ अंक १।
[2] 'रघुनाथ-रूपक' पृष्ठ २८६
[3] 'रघुवर-जस प्रकास' पृष्ठ १७१ १७२
[4] 'कवि-कुळ-बोध' की प्रतिलिपि हमारे संग्रह में है।

पीछे विप्रां सूं चपळ जुगती जोग अजोग।
यथा दंड र जोग कज, यै अजोग में जोग॥

छप्पय

वेद बीत विप्र सूं पाय पग पाम पुरोयव।
वित्त दत विजमायाम मेस ठम हुव महायव॥
प्रीत पराये प्रेत सार गुरु सम्मे समप्पै।
बर्णै धम्म रस विक्रम आण अपणी जस जंपै।
जोग र अजोग पाल्यो जथा वथा अरथ ऊपर वर्णै।
जवनाट भूप वता धनी सरव वास वैरस बूठी॥

वैण सगाई अलंकार—

यद्यपि राजस्थानी काव्य में 'वैण सगाई' अलंकार का प्रत्येक प्रकार के छन्दों में प्रयोग हुआ है। पर दोहे और गीत में तो इसका प्रयोग अनिवार्य-सा माना गया है। वैण सगाई का शाब्दिक अर्थ अक्षरों के आपसी सम्बन्ध से है। इसमें अक्षरों का आपसी सम्बन्ध कई प्रकार से मिलाया जाता है जिससे कविता में विशिष्ट प्रकार का भाव-सौन्दर्य प्रकट होता है। कविता को कण्ठस्थ करने में भी अक्षरों के ध्वनि-साम्य के कारण बड़ी सुविधा हो जाती है। इस अलंकार को चमत्कार आचार्यों ने बड़ा महत्व माना है। यहां तक कि दग्धाक्षरों के अशुभ प्रभाव को नष्ट करने की क्षमता इस अलंकार में मानी है।

दग्ध आखर आवै अवस वैण सगाई वेस।
दरध मगर पर मगण हुव तावे नह तवसेस॥[1]

मध्य कालीन राजस्थानी साहित्य में तो वैण-सगाई का आधिक्य ही नहीं है वरन आचार्यों ने इसके अनेक भेदापभेदों के प्रयोग भी किए हैं। कवि मंछ ने इस अलंकार पर संक्षेप में ही प्रकाश डाला है। पर 'रघुवर जस प्रकास' में वैण सगाई के दस भेदोपभेद किए हैं यथा—आदि मध्य अन्त उत्तम मध्यम अध्यम अधमाधम अधिक सम और न्यून। यहां हम इनमें से एक भेद का स्पष्टीकरण उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। आदि मेळ वैण सगाई—इस वैण सगाई के अनुसार चरण के प्रथम शब्द के आदि वर्ण स्वर या व्यञ्जन की पुनरावृत्ति चरण के अन्त में आने वाले शब्द के आदि में होनी चाहिए।

सांचो मित्र सचेत कही काम न करै किसा।
हर अरजण रै हेत रथ कर हांक्यो राजिया॥

इस प्रकार अक्षरों के कई प्रकार के आपसी सम्बन्धों के आधार पर अनेक भेदापभेद हो सकते हैं।

जहां मित्र वर्णों का आपसी सम्बन्ध बिठाया जाता है उसे 'अनुप्रास' कहा गया है जो कि वैण सगाई का ही एक भेद है। इसके भी अधिक सम और न्यून मित्र वर्णों के आधार

---

[1] डिंगल-कोष (बूंदी)—मुरारिदानजी कृत।

पर तीन बड़े भेद किए गए हैं और इन भेदों के आदिमेळ, मध्यमेळ अन्तमेळ उत्तम मध्यम अधम अधमाधम आदि उपभेद और हो सकते हैं। इन भेदोपभेदों के चरणानुसार भी भेद किए जाते हैं। पर डिंगल गीतों मे तो प्रत्येक चरण में वैण सगाई आवश्यक-सी है इसलिए उनका गीतों की दृष्टि से उतना महत्त्व नहीं है।[1]

उक्ति (उकत)—

डिंगल गीतों में उक्ति का बड़ा महत्त्व है। यहाँ उक्ति का तात्पर्य वचनों के प्रकट करने से है। कौन किससे और किसके लिए किस प्रकार के वचन प्रकट कर रहा है इसके आधार पर उक्ति के कई भेद किए गए हैं। उक्ति का उचित निर्वाह न होने पर कव्य शास्त्रियों ने काव्य में 'अख-दोष' माना है।

'रघुवर-जस प्रकास' मे और 'रघुनाथ रूपक' में नौ प्रकार की उकतों का वर्णन कवियों ने किया है। पर उदयराम ने 'कवि-कुळ-बोध' में कुछ अधिक भेद भी किए हैं। मुख्य उकतों के नाम इस प्रकार हैं—

१ सनमुख उक्ति—(१) सुद्ध सनमुख (२) वरभित सनमुख।
२ परमुख उक्ति—(१) सुद्ध परमुख (२) परभित परमुख।
३ परामुख उक्ति—(१) सुद्ध परामुख (२) परभित परामुख।
४ श्री मुख उक्ति—(१) सुद्ध श्रीमुख (२) कलपत श्री मुख।
५ मिश्रित उक्ति—इसमें प्रत्येक चरण या द्वाले में भिन्न उक्ति का प्रयोग होता है।

यहाँ हम सुद्ध सनमुख उक्ति का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

जिस व्यक्ति का प्रसंग हो कवि सीधा उसी के सम्मुख वहाँ स्वयं वर्णन करता है वहाँ यह उक्ति होती है यथा—

दस सिर कळठ मारण दुसह ह्रावां तारण हाथ।
कृपा रूप 'किसनो' कहै मिळौ भूप रघुनाथ॥

व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध रखने वाले गीतों में नायक के पिता दादा आदि स्थान प वि का जिक्र परोक्ष या अपरोक्ष रूप में होना आवश्यक है क्योंकि एक ही नाम के अनेकों व्यक्ति होने से यह भ्रान्ति हो जाने की सम्भावना रहती है कि गीत वास्तव में किस व्यक्ति के लिए कहा गया है। कई गीतों में नायक के पिता का नाम न देकर उसके किसी प्रसिद्ध पूर्वज का नाम लिया जाता है। नाम के आगे 'हरो' 'हरा' आदि शब्द लगा कर वंश-परम्परा की ओर संकेत किया जाता है जैसे—जोधाजी के वंशज के लिए 'जोधाहरो'। इसी प्रकार प्रसिद्ध पूर्वज के नाम के पहले 'अभिनमो' शब्द का प्रयोग करने से भी वंशानुक्रम की ओर संकेत किया जाता है, जैसे सूरसिंह के वंशज के लिए 'अभिनमा सूर' गीतों में प्रयुक्त हुआ है। पूर्वज के नाम के आगे या पीछे 'तिलौ' या 'तूलो' शब्द लगा कर भी वंश

[1] द्रष्टव्य—मरु भारती वर्ष १ अङ्क १ श्री बदरीदान साहू का 'वैण सगाई' पर लेख।

के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जैसे—'रिड़मल जिमो' या 'जिमो रिड़मल' रिड़मलजी के किसी वंशज के लिए प्रयुक्त हो सकता है। नायक के पिता का नाम जहाँ गीत में आता है वहाँ उस नाम के साथ 'तणौ' या 'जाडो' और 'सुतन' आदि शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे महाराजा मानसिंहजी पर लिखे हुए गीतों में 'सुतन मुमनेस' 'गुमान तणु' आदि का प्रयोग मिलता है। जहाँ तक जाति या स्थान का प्रश्न है कई बार दोनों में से एक का नाम लेकर ही नायक की जानकारी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है। जैसे राठौड़ के लिए 'खेड़ेचा' शब्द का और भाटी के लिए 'माड़ेचा' स्थान वाचक शब्द का प्रयोग कर नायक की जाति की ओर भी संकेत कर दिया जाता है। यदि गीत में इन तत्त्वों का प्रयोग नहीं किया जाता है और गीत के नायक के बारे में अस्पष्टता रह जाती है तो 'हीण' दोष माना जाता है।

उदाहरणार्थ जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी से संबंधित एक गीत यहाँ उद्धृत किया जाता है *जो कि जसवंतराव होल्कर को मारवाड़ में अंग्रेजों के खिलाफ शरण देने के* बारे में लिखा हुआ है। इस गीत में निम्न टाइप वाले शब्द द्रष्टव्य हैं।

महाराजा मानसिंहजी रो गीत—मरहठां नै शरण दी जिण बाबत रो।

नृपत मांन धन तपाबळ सुरधरण नाथ निज
पाइयां आभरण पहर पाया।
वहता जिका सब करण होता विदा
अमरण धके तो सरण आया।।
तज प्रभुता नमी गुमांनसिंह तण
रोन पख छत्राळ पुरसाण रोडै।
जावता धड़े दाता जिया रखण जुध
आविया बचण वे घूंभ ओड़ै।।
बिरद पत जबर परताप बिसवत बिया
धर विजै मराठां पिसण वेसोट।
उरड जाता बड़ा करै रा मरदवां
अनै धर वहै न राज री ओट।।
दिपण अथाह जसराज जिसड़ा दुरस
प्रकासै भाम भगवा बरण पूर।
राणवां रिझवा धरवै सुजस वेतरम
भरम बांधी भुजां मममा सूर।।

दोष—

डिंगल साहित्य के आचार्यों ने काव्य में आने वाले ग्यारह दोषों का विवेचन भी किया

परम्परा भाग हद जा सक पृष्ठ ७५

है। डिंगल गीतों में उनका ध्यान रखना भी आवश्यक है। 'रघुनाथ रूपक' में दस दोषों का वर्णन है।[1] 'रघुवर जस प्रकास' में ग्यारह प्रकार के दोष बताए गए हैं। इन दोषों के नामकरण की कल्पना मनुष्य के शरीर या जाति संबंधी कुछ दोषों के आधार पर की गई है। य दोष निम्न प्रकार हैं—

१ अन्ध दोष—जिस में उक्ति का निर्वाह अस्पष्ट या ठीक तरह से नहीं हो पाता। २ छबकाळो दोष—गीत में एक ही भाषा का प्रयोग न होकर अन्य कई भाषाओं के पद अधिक प्रयोग में आ जाते हैं वहां यह दोष होता है। ३ हीण दोष—नायक के पिता जाति स्थान आदि का उल्लेख न होने से जहां भ्रम पैदा हो जाता है वहां यह दोष होता है। ४ निनग दोष—जहां उपयुक्त क्रम से वर्णन न होकर आगे पीछे वर्णन किया जाय वहां निनंग दोष होता है। ५ छन्द भंग दोष—छन्द में मात्रा आदि की कमी होने से यह दोष होता है। ६ जाति विरोध दोष—जहा एक ही गीत में अन्य गीतों के हालों का समावेश कर दिया जाता है वहां विभिन्न जाति के हालें होने से यह दोष होता है। ७ अपस दोष—इसमें दृष्टिकूट पदों की तरह बहुत गूढ़ और कठिन अर्थ होता है। ८ नाळ छेद दोष—जहां किसी भी कथा के क्रम का ठीक तरह स निर्वाह नहीं हो पाता हो वहां यह दोष होता है। ९ पख तूट दोष—जहां गीत में स्तर की भाषा का प्रयोग न होकर हल्के शब्द आ जाते हैं वहां यह दोष होता है। १॰ बहरो दोष—जहा शब्दों का प्रयोग इस अस्पष्टता के साथ किया जाता है कि अर्थ उल्टा भी हो सकता है वहा यह दोष होता है। ११ अमंगळ दोष—जहां चरण के अन्त की तुक के अन्त का अक्षर पहले अक्षर से मिलने पर अमंगल सूचक शब्द बन जाता है वहा यह दोष होता है। यथा—

महमत में पद राम र यहा अन्तिम अक्षर 'रै' यदि 'म' के साथ जोड़ दिया जाता है तो 'मरै' अमंगळ शब्द बन जाता है।

डिंगल गीतों का पाठ—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है ये गीत किसी राग-रागिनी में नहीं गाए जाते।[3] विशेष प्रकार की लय (Rythm) में इनका पाठ होता है। डिंगल गीत को बोलने में भी एक प्रकार की कला है। इस कला के बिना सुन्दर गीत भी उतना प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकता। इसीलिए गीत के कहने की कला पर कवियों ने बड़ा जोर दिया है। यथा—

कवि के अक्खर सब सम्बार, कत्रु कहिबे में फैरा
वो ही भायळ ठीकरी वो ही कायळ नैरा।

प्राय कवि लोग ये गीत राज्य-सभाओं में अथवा युद्ध भूमि में स्वयम् उपस्थित हो कर कहा करते थे। और गीत कहने के ढङ्ग में इतना ओज और उच्चारण का सौष्ठव होता था

---

[1] 'रघुनाथ रूपक' पृष्ठ १४
[2] रघुवर जस प्रकास' पृष्ठ १७९
[3] झमाळ बमाळ और सोरठियो गीत गाये भी जाते हैं।

पावक घट सकियौ न प्रचाळ ।
बीठम सुतन तणो तन बळतां
भजड़ो चहोट मयौ रिण तास ॥ २
गिरियो भरा न बिहुमे प्रसियौ
दावानळ मह पंजर दाझौ ।
पासहरी मधुरो पाडंतौ
रज रज मारो विसन रह्यौ ॥ ३
वळ पळचर सुरमुख भपछर हर
चोथौ किया भासते चव ।
वास हंस प्रमरापुर वसियौ
लाधौ घट हूं कह्यौ लव ॥ ४
प्रारंभ की चार पंक्तियां पुनः यहां पढ़ी जायेंगी।

इस शैली में पाठ करने के लिए निरन्तर प्रभ्यास की बड़ी भावश्यकता होती है। छोटा साणोर, बड़ा साणोर, सुपंखरो पखाळो बोलो आदि गीतों के लिए ये शैलियां विशेष रूप से उपयुक्त हैं। गीत ढोल वर्णक आदि अपनी छंद गत लय के अनुसार भी पढ़े जाते हैं।

डिंगल गीतों का वर्गीकरण—

विभिन्न छन्द-शास्त्रियों के अनुसार गीतों की संख्या में भिन्नता है। डिंगल के प्राचीन-तम छन्द शास्त्र 'पिंगळ-सिरोमणि'[1] में लगभग चालीस गीतों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। 'रघुनाथ रूपक'[2] में ७२ प्रकार के 'कवि-कुळ-बोध'[3] में ८४ प्रकार के और 'रघुवर जस प्रकास'[4] में ६१ प्रकार के गीत मिलते हैं।

गीतां रा नाम— [छन्द वेग्रक्खरी]

विधानीक१ पाडगती२ न बड३ ।
वंकौ४ सर्वकड़ौ५ सुक्खी बड़ ॥
त्रोटी-बंध६ मुकट७ घोड़ौ८ चव ।
सावभड़ौ६ दुवावळ१० सुभव११ ॥
गजगत१२ त्रिकुटबंध१३ सुड़ियल१४ गण ।
सिरमणी१५ एक अखर१६ मांग१७ ठण ॥

---

[1] 'पिंगळ-सिरोमणि' (परम्परा भाग १३)
[2] 'रघुनाथ रूपक' काशी नागरी प्रचारिणी सभा
[3] द्रष्टव्य—मेरा लेख मरुभारती वर्ष ६, अंक १
[4] 'रघुवर-जस प्रकास' पृष्ठ १८६ (राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर)

सुरिमा वीठा बिके सबीजै ।
बिस वीठा किए मोत बबीजै ॥
राम सुवस भमुतो रघुराई ।
वेसी मसुघो सुभ विसाई ॥[1]

इन गीतों का वर्गीकरण मोटे रूप में मात्रिक और वर्णिक दो भेदों में किया जा सकता है। पर अधिकांश गीत मात्रिक ही हैं। कुछ गीतों में मात्रा और वर्ण का मिश्रण भी है। इसके आगे गीतों के चरण की तुकों के अनुसार सम विसम और अर्द्धसम के रूप में इनके उपभेद हो सकते हैं। यहां यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि जिस प्रकार बाबा छप्पय दोहा आदि के मात्रा-प्रसार के अनुसार कई भेदोपभेद हो सकते हैं उसी तरह इन गीतों के भेदोपभेद नहीं होते। केवल 'पिंगळ-प्रकास' के रचयिता हमीरदान रतनू ने अपने 'पिंगळ-प्रकास' में प्रस्तार के आधार पर 'बेलियो साणोर' के ११ भेद प्रदर्शित किये हैं। पर अन्य छन्द-शास्त्रों में इस प्रकार का सिद्धान्त नहीं अपनाया गया है।

जहां तक इन गीतों के नाम और लक्षण का प्रश्न है विभिन्न छन्द शास्त्रियों में कई गीतों के बारे में मतभेद भी है। उदाहरणार्थ—'पिंगळ-सिरोमणि' में 'पंखाळो' गीत सोलह मात्राओं का सम छन्द है। परन्तु 'रघुनाथ रूपक' में उसे 'छोटा साणोर' के समान ही माना है। 'पिंगळ-सिरोमणि' में जो 'बड़ा साणोर' है उसे 'रघुनाथ रूपक' में 'प्रहास साणोर' कहा गया है। पिंगळ-सिरोमणि का 'माझा चौसर' 'रघुनाथ रूपक' तथा 'रघुवर जस प्रकास' के 'माझा चौसर' से भिन्न है। 'सिंहचलौ' गीत 'पिंगळ-सिरोमणि' में साणोर का ही एक भेद माना गया है पर 'रघुवर जस प्रकास' और 'रघुनाथ रूपक' में यह गीत भिन्न प्रकार का है। 'रघुवर जस प्रकास' तथा 'रघुनाथ रूपक' का 'झाकड़ी' गीत 'पिंगळ-सिरोमणि' से भिन्न है। इसी प्रकार सेलार, दुमेळो सुपंखरो काछो भमर-गुंजार, आदि गीतों के सम्बन्ध में भी इन छन्द-शास्त्रों में भिन्नता पाई जाती है। अतः छन्द शास्त्र की दृष्टि से इन गीतों के अध्ययन में उपरोक्त सभी छन्द शास्त्रों को तुलनात्मक दृष्टि से देखना आवश्यक है। यहां स्थानाभाव के कारण इस पर विस्तार के साथ विवेचन करना सम्भव नहीं है।

डिंगल गीतों के वर्ण्य-विषय—

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, राजस्थान के इस काल का इतिहास संघर्षपूर्ण रहा है। ऐसी स्थिति में डिंगल का अधिकांश गीत साहित्य वीर रसात्मक रचा गया है। अधिकांश योद्धाओं के साहसपूर्ण कार्य-कलापों और युद्ध में वीर गति प्राप्त करने वाले योद्धाओं पर असंख्य गीत ज्ञात-अज्ञात कवियों द्वारा रचे गए हैं। इन वीररसात्मक गीतों में सेना सेना की साज सज्जा विभिन्न रणवाद्यो युद्धातुर योद्धाओं की भावभंगिमाओं हाथी और घोड़ों की चपलता तथा सैन्य-संचालन के तौर-तरीकों के अतिरिक्त युद्ध भूमि में

---

[1] रघुवर जस प्रकास—संपादक सीताराम लाळस प्रकाशक राज प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर।

प्रविष्ट होने पर युद्ध की भयंकरता तथा विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार के साथ सुनाई देने वाली वीरों की ललकार के साथ बहने वाली रक्त की नदियां और उनमें तैरते बाल कबंधों के सिरों का वीभत्स वर्णन देखने को मिलता है जहां रणचंडी अपना खप्पर ले कर मुण्डों की माला पहने हुए नृत्य करती है। इस प्रकार के वर्णन की परिपाटी साधारणतया अधिकांश गीतकारों ने अपनाई है। परन्तु कई गीतकारों ने सांग रूपक द्वारा युद्ध का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया है। राठौड़ रतनसिंह (उजावत) के युद्ध को लेकर कवि ने एक सांग रूपक बांधा है जिसमें अकबर की फौज को विष-कामिनी बनाया गया है और रतनसिंह को दूल्हा बना कर विवाह की पूरी रस्म तथा रति-क्रीड़ा तक का रूपक युद्ध के साथ बिठाया गया है। उदाहरणार्थ कुछ द्वाले इस प्रकार हैं।[1]

ऊभि प्रावध तिम रूप सनाही प्रामूखस प्राभरणै अंग।
पारभ मीर बड़ा मुकि-पाखर, धोवां सूं रचियौ रिम वप॥
छपति बड़ा बड़ एक सारिखा बागर-हर समखा-हर वेह।
अकल कमारि नारि अजमेरी चाली दे साहमि चड़ वेह॥
बाज प्रवाज सामळ वड़पति पाकपिया वरघूड़ प्रनड़ाह।
बोल तणै भरि वीर बोलती चूमी सामी मीर वडाह॥
वड सिएू मांचै वड वळती विखरसि पूरति जिपरति वेस।
नाळी भावै मधम सोवती तीखाखा भड़ चीवस वेस॥
निर्मळीहार अपार निसासहि छिड़ंबति वोसां रकत दुबाह।
बिस कन्या देखे बलवाया मुणियड मांड प्रनड़ मेवाड़॥
विकट भणी भव कूंत बधारे, भुज भळका मामा मालाड़।
बाघर फौज पाघण वड़िया वैतारणा ऊपरि पंग बोड़॥
भरि-भड़ दूण सबा लख मावभ सोर्ळ दूण समे सिरमारि।
कूंत कमोख पुरी अमधोसी मसफि गुरज गहि फणिय कुमारि॥
सिहण कसस तण गमस कवण सिम बगुस भवन सरपंच सधूप।
रूप किया वो अमर रतना रिम भड़ गज तेरह तिम रूप॥
मंत्र विन अमन महूरति ऊपरि अचळ अमळ पळ हुंकळ चीड़।
मीरां भड़ परणण कौमारी माफ रमण वांधियौ मौड़॥
अपछर देख मढ़ें प्राखासो विकन तणी रचियौ वीमाह।
रिणवट वरं वांधीयौ रतने परा फौज भाभी पतिसाह॥
मन वठ राय बबा बम मौजां कटि मेखळ कसियौ कुरजाख।
भावै मीर बड़ा उपडवी नीवछटै मेवर नीसाख॥
पाखर घोर वाजती पामम कांकण हाथळ धूरक्स।
बाघर भड़ भाभी वीमावत रमण रमाड़ण रूक रस॥

---

[1] द्रष्टव्य—परम्परा भाग १४

माम मेए जोगो नह मिळसी,
बीस कोड़ देवां मम बस॥ २

सुनो माम न फाई साक़ो
गाफल हिवड़े राघ मिमांन।
'भोपा' ऐ दिन कई भावसी
मजसी बळै कई भगवाम॥ ३

फरसराम भज बस इमरत फळ
बमम सफळ हुय पासी।
पासी बळै प्रमोलक पंछी
इस तरवर कद भासी॥ ४

इस प्रकार के स्फुट गीतों के अतिरिक्त कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ शास्त्रों का निर्माण करने वाले कवियो ने अपने ग्रन्थों के उदाहरण में राम की कथा भी है और इस प्रकार यथा-स्थान गीतो के प्रकरण मे राम की महिमा गाते हुए अपनी भक्ति भावना को भी प्रकट किया है। इस दृष्टि से पिगळ-शिरोमणि[1] रघुवर जस प्रकास[2] रघुनाथ रूपक[3] व पिंगळ-प्रकास महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। पिंगळ-प्रकास के रचयिता हमीर दान रतनू ने तो अपना कोष 'हमीर माम माळा' भी सांबोर गीत में ही लिखा है।

इस काल में नीति सम्बन्धी साहित्य की भी बड़ परिमाण में रचना हुई है। दोहे को अधिकांश कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना है। कई निपुण कवियों ने चाणक्य-नीति जैसे प्राचीन नीति ग्रन्थों का सुन्दर अनुवाद विभिन्न छन्दों में किया है। नीति की अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से भी बड़ सशक्त ढंग से हुई है। यहाँ महाराजा मानसिंहजी (जोधपुर) के राज्याश्रित प्रसिद्ध कवि बांकीदास का एक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

बस रासो जीम कहै इम बांकी कड़वा बोल्यां अमत किसी।
जोड़ तणी तरवार न लागै जीम तणी तरवार जिसी॥ १
मारी भगी उमैरा भारत हेकण जीम प्रताप हुवा।
मन मिळ्योड़ा तिका माठवा जीम करै बिरा मांह जुवा॥ २

---

[1] पिंगळ-सिरोमणि—लेखक द्वारा सम्पादित परम्परा भाग ११

[2] रघुवर जस प्रकास—श्री सीताराम लाळस द्वारा सम्पादित—राज प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर

[3] रघुनाथ रूपक—महताबचन्द्र खारैड़ द्वारा सम्पादित—काशी नागरी प्रचा-रिणी सभा

[4] डिंगल कोष—लेखक द्वारा सम्पादित—राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर

सभा मिजाज सजन रै मांवै बात बणाय करै विस्तार।
बैठ सभा बिच मुजरा मारै बचन कहणौ बहुत बिचार ॥ ३

मन मैं फेर बसी री मछ्छ पकड़ गैह बमदूत पमो।
मिर्जे नहीं बनणा यूं मामा मामा कम बोलणो मसो ॥ ४

इस विषयों के अतिरिक्त दुर्ग नगर, बागबाग वाटिका आदि अनेकानेक विषयों पर गीतों के माध्यम से वर्णन हुए हैं। कवि शिवबक्शी पातावत का अमरगढ़ पर ऋतु-वर्णन तथा महाराज मेहरू रचित पीछोले का वर्णन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहां पीछोले के वर्णन के कुछ पद उद्धृत किए जाते हैं।[1]

तिलक किया केसर तणा मजबस बणा मजमाह।
चोप राह बेहूं चपै वाह उदयपुर वाह।
वाह उदयपुर वाह के पुंगव धारखा।
पवमंस बर बर नार प्रवी बिच पारखा।
मरद गरद हुम जाय देख मूपठ को मांसी।
मुक पीछोला री तीर दीपे सिरिमारची झोसी ॥ १

कोयल कीयै टहुकड़ा पपइयौ करै पुकार।
पाणी परजाळां पडै पर भंवर झणकार।
पर भंवर झणकार के इस मधुर कै।
सांची उमगी मास्यौ मेह सनेह कै।
करै ध्यान हाथ महर पति कैलास की।
मिर्जे उदैपर वाह हवा धन मास की ॥ २

इस काल के शासक वर्ग के आमोद प्रमोद के साधनों में शिकार तथा हाथी व सिंह के युद्ध आदि प्रमुख साधन थे अतः उनके आश्रित कवियों ने इन विषयों पर भी गीतों की रचना की है।

गीतों में जहां इस प्रकार के गम्भीर व ओजस्वी वर्णन उपलब्ध होते हैं वहां करुण एवं हास्य रस भी इनसे अछूता नहीं रहा।

इन गीतों का क्षेत्र केवल इन वर्ण्य-विषयों तक ही सीमित नहीं रहा। सामाजिक उथल पुथल और जीवन संघर्ष में व्याप्त अनेकानेक समस्याओं का सामना करते समय अनुभव की जाने वाली भावनाओं की अभिव्यक्ति भी इन गीतों में बड़े जीवन्त और हृदयस्पर्शी रूप में हुई है। व्यंग्य तथा आभार प्रदर्शन से सम्बन्धित कई गीत आज भी अतीत की अनेकानेक भावानुभूतियों का जीवित चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। डूंगरपुर के जहां रावल का जब प्रजा से झगड़ा हुआ तो उनके सरदारों ने उचित अवसर पर उपयुक्त सहायता नहीं

---

[1] महाराज मेहरू

की जिस पर उसकी मेहर ने बड़ा ही व्यंग्यपूर्ण गीत लिखा है। गीत के दो द्वाले यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

मूवा हासरा उमेर थया पामणो हिंवाया मात
पोखे केण कारणै खिवाया थांनै पीव।
सोको साज धारणे फिरंगी हूत भाट सेला
नीर साय भणी रै बारणै देवा जीव॥
भावा वाला मूंडी ले र, पाछाई न आवणो छो
करे धारा भेळा मयू गमावस्यो तो कूत।
मावक बावतो मठे पीवणो सही हो माज
बीवणो मही धो मणी पावतो बसूत॥

सन् १८५७ की क्रान्ति में आउवा ठाकुर कुशालसिंह ने अंग्रेजों का मुकाबला बड़ी बहादुरी के साथ किया था पर अन्त में उन्हें अपना गढ़ छोड़ना पड़ा। अंग्रेजों के भय से किसी ने भी उन्हें शरण नहीं दी। अन्त में कोठारिया के रावत जोधसिंह ने उन्हें अपने पास रखा और अंग्रेजों से मुकाबला किया। उनके इस साहसपूर्ण कार्य की प्रशंसा में कवि ने गीत कहा है जिसके दो द्वाले यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

पड़ै ममावड़ ग्रोव छतरधर फिरंग पालटै।
भाट घर कोप भुज घमस भड़िया।
सोच अंग्रेज हिन्दुवाण आया सरब
जोध सिर सेस रै कमम जुड़िया॥
पड़ै धक विकट चांपी मुर्व पूळ मयी
भड़ां नट छके उर माह भूंभी।
ठोम बाय टेक ना सुई मौजम तणी
म कसी ठोर मुज लकण ऊभी॥

महाराजा मानसिंहजी जब जालोर के किले में ग्यारह वर्ष तक भीमसिंहजी की फौज से घिरे रहे तो आउवा ठाकुर माधोसिंहजी ने भीमसिंहजी की अप्रसन्नता की परवाह न कर निरन्तर खाद्य सामग्री आदि से उनकी मदद की। महाराजा मानसिंहजी ने उनके इस मानवोचित गुण और आभार को प्रकट करने के लिए निम्न लिखित गीत की रचना की।

धवर ध्रोक आकाश रण टसारा वियण भत।
बसू कब सतारा बारणा बाक।
सिवा रा सुतन जग मसारा साहसी।
भघा रण भसा रा कर माक॥ १
पही निज हाथ मो बांह वाणी जगत।
प्रगट कीरत जमी समंद पाव।
नहीं आसी सगा मेह आतम कथन।
रिजमणा थापिया जिकै राजा॥ २

ज्यां करी सबरा रा भट वे जोस रा ।
भट के बार ज्यां बिरद पायौ ।
जाणियो मूझ बिन भगत हुय जावणी ।
पाबिमो पण जाबाण पायौ ॥ ३
तिमक निज प्रिम रा दूसरा तेजसी ।
मरट भरियाँ किम्मण काढ मापा ।
पकर जग जीत देवळ कियौ पाबिमो ।
चावणो सूजस रो कळस चांपा ॥ ४

कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन की समस्त समस्याओं की यथासाधारण अभिव्यक्ति भी इन गीतों के माध्यम से हुई है ।

मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य के अन्तर्गत आने वाले गीतकार बहुत बड़ी संख्या में हैं । उच्च कोटि की गीत रचना करने वाले प्रसिद्ध कवियों में राठौड़ पृथ्वीराज दुरसा आढ़ा चौपा आढ़ा ईसरदास कुम्भीचन्द तथा भूता महादान महडू महाराजा मानसिंह, बाँकीदास उदैराम बूंपा सूर्यमल्ल मिश्रण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । यहाँ स्थानाभाव के कारण उन पर प्रकाश डालना संभव नहीं है अतः गीतों की रचना-प्रणाली सम्बन्धी आवश्यक जानकारी के अतिरिक्त उनकी कुछ विशेषताओं आदि का ही सामान्य परिचय यहाँ दिया गया है ।

सन् १८५७ की क्रान्ति के पश्चात् ज्योंही अंग्रेजी साम्राज्य की नींव गहरी जमी और उन्होंने अपनी कूटनीति तथा शिक्षा-पद्धति के द्वारा यहाँ के समाज व शासक वर्ग को अकर्मण्य तथा पाश्चात्य सभ्यता का गुलाम बनाया तब यहाँ के साहित्य में भी वह अनुभूति सत्य-परायणता तथा ताजगी नहीं रही । जो भी साहित्य भारतीय स्वतंत्रता के पहले तक कुछ कवियों ने रचा वह उच्च कोटि का न हो कर समाज की गिरावट का ही द्योतक है । गीतों के माध्यम से भी कविता की चाटुकारिता और विशुद्ध साहित्य के गौरव के प्रतिकूल पिष्ट-पोषण व अनुकरणात्मक कृतियाँ देखने में आती हैं ।

परन्तु जहाँ तक १६ वीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक के गीत साहित्य का प्रश्न है वह राजस्थानी साहित्य की ही नहीं वरन् समस्त भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है । विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक ने इन गीतों के महत्व को स्पष्टतया स्वीकार किया है राजस्थानी गीतों में जितनी सरसता सहृदयता और भावुकता है । वे भावों के स्वाभाविक उद्गार हैं । मैं तो उनको गद्य साहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूँ । आवश्यकता इस बात की है कि इतने वृहद् तथा सामाजिक व ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इस साहित्य को संकलित व सुसम्पादित किया जाय अन्यथा अधिकांश साहित्य कुछ ही समय में सर्वदा के लिए काल के गर्भ में लुप्त हो जायेगा और अनेकानेक कवियों की प्रतिभा के परिचय से हमारा समाज वंचित रह जायेगा ।
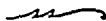
राजस्थानी साहित्य की ऐतिहासिक काव्य-कृतियाँ

[संवत् १५००-१६५०]

डॉ हीरालाल माहेश्वरी

काल विभाजन आदिकाल मध्यकाल

साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन अनेक प्रकार और अनेक दृष्टियों से किया जाता है, जिसके मूल में कारण अध्ययन की सुविधा का विशेष है। हिन्दी साहित्य के दीर्घ इतिहास को आदिकाल मध्यकाल [इसमें भी दो भेद—पूर्व-मध्यकाल तथा उत्तर-मध्यकाल] व आधुनिक काल जैसे नाम देकर, फिर 'प्रवृत्तियों' और 'विशेषताओं' के आधार पर उनको क्रमशः वीरगाथाकाल भक्तिकाल रीतिकाल तथा गद्यकाल नाम से पुकारा गया है। आचार्य शुक्ल द्वारा दिए गए वीरगाथाकाल[1] और रीतिकाल नामों पर विद्वानों को आपत्तियाँ हैं और कहीं उनके विभाजक सन् संवतों पर भी किन्तु 'आदिकाल' 'मध्यकाल' तथा 'आधुनिककाल' जैसे नामों पर प्रायः नहीं। इनमें आदिकाल और मध्यकाल नाम तो बड़े ही अस्पष्ट और भ्रामक हैं खास तौर से मध्यकाल' नाम। काल-विभाजन की समस्या राजस्थानी साहित्य के भी सम्मुख है और इस साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन के लिए इन नामों का प्रयोग कर जहाँ हम इन कालों में पाई जाने वाली विभिन्न भाषागत और साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रति एक अस्पष्ट धारणा व्यक्त करते हैं वहाँ वैज्ञानिक काल विभाजन से बचने का प्रयास भी। भाषा-विशेष के उद्भव और विकास के साथ तत् साहित्य-विशेष के 'आदिकाल' नाम की तो संगति किसी न किसी प्रकार बैठाई जा सकती है, किन्तु 'मध्यकाल' नाम को इस जोड़-तोड़ का भी सहारा नहीं है।

---

[1] आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १ संवत् २ १।

(क) डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल प्रथम भाषण।

(ख) डॉ रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २; तथा 'बिहारी'।

श्री राहुल सांकृत्यायन हिन्दी काव्य-धारा तथा 'पुरातत्त्व निबंधावली'।

कारण मदय किए जा सकते हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए हम राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं —

(१) विकास काल (संवत् ११ –१५)
(२) विकसित काल (संवत् १५ –१६५)
(३) विवर्धन काल (संवत् १६५ –१९२५) तथा
(४) अर्वाचीन काल (संवत् १९२५–२ १८)

मेरा अपना अनुमान है कि राजस्थानी साहित्य के आदिकाल की अन्तिम सीमा संवत् १५ है और इसका नाम विकासकाल है। आदिकाल की इस सीमा को और आगे सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक लाना उचित नहीं है। 'परम्परा' के राजस्थानी साहित्य का आदिकाल अङ्क में संवत् ८३५ ('कुवलय माला कथा' सम्पादकीय पृ ८) से लेकर संवत् १६२ (सिद्ध भक्त कवि अमृतनाथ कवियां समय-संवत् १६१ १९१८ देखें वही अङ्क, पृष्ठ १५ तथा ६१ ६२) तक ७८४ ८५ साला के समय को आदिकाल की सीमा में समेटा गया है जिसके विषय में मतभेद का होना स्वाभाविक है किन्तु इसका परिहार सुयोग्य सम्पादक ने यह कह कर 'लेखकों ने अपने-अपने मतानुसार आदिकाल का समय निर्धारित कर अपने विषय पर प्रकाश डाला है' किया है। यहाँ पर काल-विभाजन संबंधी चर्चा के अधिक विस्तार में न जा कर विकसितकाल (संवत् १५   १६५) की ऐतिहासिक काव्य कृतियों का परिचय देना ही अभीष्ट है।

इस काल में शैली की दृष्टि से चारण जैन और लौकिक तीनों शैलियों की रचनाएँ मिलती हैं किन्तु अन्तिम शैली की रचनाएँ कम ही उपलब्ध हैं। रूप की दृष्टि से ये रचनाएँ प्रबन्ध और मुक्तक दो रूपों में मिलती हैं। रचना-बाहुल्य की दृष्टि से चारण शैली की रचनाओं का स्थान सर्वोपरि है।

इस सम्बन्ध में अपनी असमर्थता की भी दो बातें कह दूँ। एक यह कि इस लेख में सभी ऐतिहासिक काव्य-कृतियों और रचनाओं का उल्लेख नहीं किया जा सकता। उन्हीं का उल्लेख किया गया है जिनकी महत्ता ऐतिहासिक दृष्टि से निर्विवाद है और इस कारण कई कृतियाँ [illegible] भी [illegible] नहीं। दूसरी यह कि विवेच्य कृतियों और रचयिताओं का उल्लेख मात्र ही किया गया है ऐतिहासिक साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से किसी पर भी विचार नहीं किया जा सका है। कारण है इसकी लघु सीमा जिसके बाहर इन सब को समाई नहीं हो सकी।

लौकिक शैली की रचनाएँ

[illegible] इनकी [illegible] साधारण कम ही हैं क्योंकि इनमें शास्त्रीय लोक [illegible] ऐतिहासिक भी अनैतिहासिक — दोनों प्रकार के [illegible] [illegible]

कर लिए गए हैं। उदाहरण के लिए 'ऊमादे के गीत' को देखा जा सकता है [1] जिसका उल्लेख देसाई की अनुक्रमणिका में भी मिलता है।[2]

इस गीत की प्रारम्भिक कड़ियों में राव मालदेव के अकबर की चाकरी में पधारने का वर्णन है जो स्पष्ट ही इतिहास विरुद्ध है। संबंधित कड़ियाँ ये हैं—

> अंबरियो नई गाजै हो भटियाणी बरसे हो
> कोइ भरभर बरसै मेह राव मालव पधारया हो
> अकबरजी री चाकरी।

इन रचनाओं का महत्व तत्कालीन लोक-रुचि और मनोवृत्तियों को समझने की दृष्टि से अधिक है। लोक-मानस की विभिन्न भावनाओं का सही चित्रण ये प्रस्तुत करती हैं। ढोला-मारू 'जेठवा ऊजली' सेणी-बीजानन्द' नागजी-नागमती' राणक- रा खंगार' आदि रचनाओं से ऐतिहासिक तथ्यों को खोजना बुद्धि विलास मात्र है। ऐसी रचनाएं इतिहास को कभी हल्का सा सहारा दे सकती हैं। मूमर भूरसा ढाला-कूलाणी[3] मुपियारदे आदि आदि संबंधित अनेक गीत इसी प्रकार के हैं।

जैन शैली की रचनाएं —

ऐतिहासिक काव्य-कृतियाँ इस शैली में अपेक्षाकृत अल्पसंख्य हैं। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जैन धर्म-कथाओं और पुराणों में उल्लिखित महापुरुषों के जीवन चरित्र पर लिखे गए काव्यों को ऐतिहासिक काव्य कोटि में नहीं लिया गया है जिसके अनेक कारण हैं। इस शैली की प्राप्त अधिकांश रचनाएं तीन वर्गों में रखी जा सकती हैं—

१—पौराणिक साहित्य : इसके अन्तर्गत जैन-धर्म-कथाओं और पुराणों में वर्णित महापुरुषों और नारियों के जीवन चरित्र पर विभिन्न दृष्टियों से प्रकाश डालने वाली कृतियाँ आती हैं। यात्राओं के वर्णन और मन्दिरों के चित्रण भी इसी के अन्तर्गत हैं। इस सम्बन्ध में 'श्री त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र' द्रष्टव्य है।

२—लोककथानक-साहित्य : इसमें विक्रमादित्य भोज आदि राजाओं से सम्बन्धित साहित्य तथा विभिन्न प्रचलित लोक-कथानकों पर आधारित साहित्य की गणना की जा सकती है। ऐतिहासिकता इनमें इतनी ही है कि इनमें वर्णित प्रधान या गौण पात्र या पात्रों के नाम इतिहास से समर्थित हैं। उनके जीवन-चरित्र या कार्य-कलापों

मरुवाणी वर्ष ७ अङ्क २ फरवरी १९५९
[1] जैन गुर्जर कविओ भाग ३
[2] नैणसी की ख्यात भाग २ पृ १५२ (ना प्र स)
[3] आसोपा मारवाड़ का मूल इतिहास पृ ११४-११७
[5] बाँकीदास री ख्यात पृ २१

मध्यकाल या मध्ययुग

इस काल की सीमा निर्धारित करने में विभिन्न विषयों के विद्वानों ने विभिन्न मत दिए हैं। साधारणतया इतिहास के विद्वानों ने सन् ७११ से १८ १ ई तक के काल को मध्यकाल नाम दिया है । भाषा-शास्त्रियों ने यद्यपि ईसा पूर्व छठी शताब्दी से संवत् १ तक पालि प्राकृत और अपभ्रंश नाम से मध्य-भारतीय-आर्य-भाषाओं का समय माना है तथापि अपभ्रंश नाम मध्य-भारतीय आर्य भाषा के अर्थ में अब अधिक प्रचलित है[3]। राजस्थानी का सम्बन्ध एक ओर तो हिन्दी से है और दूसरी ओर गुजराती से। साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य में चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक 'मध्यकाल' माना गया है और कभी कभी इस सीमा को घसीट कर संवत् ११ तक भी लाया गया है[5]। ओझाजी के अनुसार सन् १ से १२ ई तक का काल मध्यकाल है[6] और डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'पाँचवीं से सोलहवीं तक के समय को 'मध्ययुग' कहना बहुत कुछ कह हो गया है ।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से राजस्थानी का सम्बन्ध गुजराती से अत्यन्त घनिष्ट रहा है यहाँ तक कि समय विशेष के लिए ये दोनों एक ही थीं जिसके लिए 'पुरानी पश्चिमी राजस्थानी' 'मारु-गुर्जर' या 'सोरठ-मारु'[8] आदि नाम दिए गए हैं। गुजराती के विद्वानों में डॉ मजूमदार ने संवत् ११ से ११ ८ तक[9] ८ वर्षों के समय को अपने साहित्य का मध्यकाल माना है और जिसका समर्थन अन्यत्र भी किया गया मिलता है किन्तु कहीं-कहीं इसकी प्रारम्भिक सीमा को और भी पीछे (ई स ९ से) ले जाया गया है

डॉ आशीर्वादिलाल श्रीवास्तव (क) दिल्ली सल्तनत (ख) मुगलकालीन भारतभूमिकाएँ—

डॉ सेन और डॉ चटर्जी मिडल इण्डो आर्यन रीडर, कलकत्ता विश्वविद्यालय

डॉ सुकुमार सेन भाषार इतिवृत्त पृ ९९

हिन्दी साहित्य कोष पृ ५६२

[5] डॉ सावित्री सिन्हा मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ १ १

डॉ गौ ही ओझा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

मध्यकालीन धर्म-साधना पृ ११

[8] श्यामदास रामा किंचित् प्रास्ताविक पृ व रा पृ मं जोधपुर

[9] M R Majumdar Main tendencies in Medieval Gujarati Liter tu e Page 1

(क) धीरुभाई ठाकर गुजराती साहित्यनी विकास रेखा भाग १ तथा २ (ख) जोशी मध्यकालीन गुजराती साहित्य नुं रेखा-दर्शन

[1] वैद्य गुजराती साहित्य नी रूपरेखा

और कहीं-कहीं पन्द्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक के समय को 'मध्यकाल' माना गया है[1]।

राजस्थानी के विद्वानों में डॉ मोतीलाल मेनारिया ने संवत् १४६ से १६ ० तक[2] और प्रो नरोत्तमदास स्वामी ने संवत् १५५ से १८७५ तक[3] के काल को 'मध्यकाल' कहा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मध्यकाल या मध्ययुग की सीमा विभिन्न विषय के विद्वानों ने तो भिन्न भिन्न निर्धारित की ही है, हिन्दी गुजराती और राजस्थानी साहित्य के पण्डितों में भी इस सम्बन्ध में मतभेद है। साहित्य के विद्वानों में एक सीमा तक तो यह मतभेद स्वाभाविक भी है किन्तु इतना गहरा मतभेद निश्चय ही राजस्थानी साहित्य के वैज्ञानिक काल विभाजन की अपेक्षा और आवश्यकता रखता है 'मध्यकाल' या 'मध्ययुग' जैसे चलते नाम के अन्तर्गत पुरानी और नई सभी रचनाओं का आकलन और अध्ययन करना कदापि तर्कसंगत नहीं।

राजस्थानी के सम्बन्ध में डॉ टैसीटरी का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने प्राचीन डिंगल (तेरहवीं शताब्दी मध्य—सत्रहवीं शताब्दी मध्य) और अर्वाचीन डिंगल (सत्रहवीं शताब्दी मध्य—वर्तमान काल) दो भेद माने थे। डॉ टैसीटरी का यह मत भ्रामक और अनुचित है, इसका उल्लेख डॉ मेनारिया ने[4] तथा प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने अन्यत्र किया है[5]। इसी प्रकार कुछ हेर फेर के साथ जिन विद्वानों ने डॉ टैसीटरी के मत का अनुसरण किया है उनकी चर्चा भी इस प्रसंग में विशेष उपादेय नहीं[6]। इस सम्बन्ध में राजस्थानी के दो विद्वानों—डॉ मेनारिया और प्रो स्वामी द्वारा किया गया राजस्थानी साहित्य का काल-विभाजन सर्वमान्य प्रसिद्ध रहा है। समुचित रूप से वैज्ञानिक काल-विभाजन में एक सब से बड़ी बाधा राजस्थानी साहित्य के बहुलांश का प्रकाश में न आना भी है।

इस प्रसंग में एक और बात भी उल्लेखनीय है। राजस्थानी भाषा और साहित्य—दोनों को दृष्टिगत रख कर किया गया काल विभाजन ही वैज्ञानिक हो सकता है। यह भी सम्भव है कि कभी भाषागत परिवर्तन विशेष न हो किन्तु साहित्यिक प्रवृत्तियों परम्पराओं और शैलियों में अपने पूर्व-काल से काफी भिन्नता हो। इनके आधार पर भी काल-परिवर्तन के

---

[1] झवेरी गुजराती साहित्य ना मार्गसूचक स्तंभो पृ १

[2] राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ १ १

[3] राजस्थानी साहित्य एक परिचय पृ २२

[4] राजस्थानी भाषा और साहित्य

[5] राजस्थानी भाषा और साहित्य

[6] (क) डॉ जगदीशप्रसाद डिंगल साहित्य

(ख) डॉ माथुर राजस्थानी पद्य साहित्य उद्भव और विकास

कारण मान्य किए जा सकते हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए हम राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं —

(१) विकास काल (संवत् ११ ०–१५)
(२) विकसित काल (संवत् १५ –१६५)
(३) विवर्धन काल (संवत् १६५ –१९२५) तथा
(४) अर्वाचीन काल (संवत् १९२५–२ १८)

मेरा अपना अनुमान है कि राजस्थानी साहित्य के आदिकाल की अन्तिम सीमा संवत् १५ है और इसका नाम विकासकाल है। आदिकाल की इस सीमा को और आगे सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक लाना उचित नहीं है। परम्परा' के राजस्थानी साहित्य का आदिकाल अंक में संवत् ८३५ (कुवलय माला कथा' सम्पादकीय पृ १) से लेकर संवत् १६२ (सिद्ध भक्त कवि अनुनाथ कविया' समय-संवत् १२६ १११६, देखें वही अंक, पृष्ठ ५५ तथा ६१ ६२) तक ७ ४ ८५ सालों के समय को आदिकाल की सीमा में समेटा गया है जिसके विषय में मतभेद का होना स्वाभाविक है किन्तु इसका परिहार सुयोग्य सम्पादक ने यह कह कर 'लेखको ने अपने-अपने मतानुसार आदिकाल का समय निर्धारित कर अपने विषय पर प्रकाश डाला है' किया है। यहाँ पर काल-विभाजन संबंधी चर्चा के अधिक विस्तार में न जा कर विकसितकाल (संवत् १५ १६५) की ऐतिहासिक काव्य-कृतियों का परिचय देना ही अभीष्ट है।

इस काल में शैली की दृष्टि से चारण जैन और लौकिक तीनों शैलियों की रचनाएँ मिलती हैं किन्तु अन्तिम शैली की रचनाएँ कम ही उपलब्ध हैं। रूप की दृष्टि से ये रचनाएँ प्रबन्ध और मुक्तक दो रूपों में मिलती हैं। रचना-बाहुल्य की दृष्टि से चारण शैली की रचनाओं का स्थान सर्वोपरि है।

इस सम्बन्ध में अपनी असमर्थता की भी दो बातें कह दू। एक यह कि इस लेख में सभी ऐतिहासिक काव्य-कृतियों और कर्ताओं का उल्लेख नहीं किया जा सकता। उन्हीं का उल्लेख किया गया है जिनकी महत्ता ऐतिहासिक दृष्टि से निर्विवाद है और इस कारण कई कृतियाँ छूट भी गई हो तो आश्चर्य नहीं। दूसरी यह कि विवेच्य कृतियों और रचयिताओं का उल्लेख मात्र ही किया गया है ऐतिहासिक साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से किसी पर भी विचार नहीं किया जा सका है। कारण है इसकी लघु सीमा जिसके अन्दर इन सब की समाई नहीं हो सकती।

लौकिक शैली की रचनाएँ—

इतिहास की दृष्टि से इनका महत्त्व अपेक्षाकृत कम ही है क्योंकि इनमें तत्कालीन लोक-रुचि के अनुसार विभिन्न ऐतिहासिक और अनैतिहासिक—दोनों प्रकार के तथ्यों का समावेश कर दिया गया है और कभी कभी तो एक दूसरे के विरोधी ऐतिहासिक तथ्य भी समाविष्ट

कर दिए गए हैं। उदाहरण के लिए 'उमादे के गीत' को देखा जा सकता है जिसका उल्लेख देसाई की अनुक्रमणिका में भी मिलता है।

इस गीत की प्रारम्भिक कड़ियों में राव मालदेव के अकबर की चाकरी में पधारने का वर्णन है जो स्पष्ट ही इतिहास-विरुद्ध है। संबंधित कड़ियाँ ये हैं—

> मॅवरियो नई मार्जे हो भमियारणी बरसे हो
> कोई झरमर बरसे मेहू, राव मालदे पधारया हो
> अकबरजी री चाकरी।

इन रचनाओं का महत्त्व तत्कालीन लोक-रुचि और मनोवृत्तियों को समझने की दृष्टि से अधिक है। लोक-मानस की विभिन्न भावनाओं का सही चित्रण ये प्रस्तुत करती है। ढोला-मारू' 'पेठवा-जलाली' 'सेणी-बीजानन्द' नागजी-नागमती' राणक-'रा बनारे' आदि रचनाओं से ऐतिहासिक तथ्यों को खोजना बुद्धि-विलास मात्र है। ऐसी रचनाएँ इतिहास को केवल हल्का सा सहारा दे सकती है। घूमर[3] गुड़ला[4] बाला-फूलाणी[5] सुपियारदे आदि आदि संबंधित अनेक गीत इसी प्रकार के हैं।

जैन शैली की रचनाएं —

ऐतिहासिक काव्य-कृतियाँ इस शैली में अपेक्षाकृत अल्प हैं। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जैन धर्म-कथाओं और पुराणों में उल्लिखित महापुरुषों के जीवन चरित पर लिखे गए काव्यों को ऐतिहासिक काव्य कोटि में नहीं लिया गया है जिसके अनेक कारण हैं। इस शैली की प्राय अधिकांश रचनाएँ तीन वर्गों में रखी जा सकती हैं—

१—पौराणिक साहित्य : इसके अन्तर्गत जैन-धर्म-कथाओं और पुराणों में वर्णित महापुरुषों और नारियों के जीवन चरित पर विभिन्न दृष्टियों से प्रकाश डालने वाली कृतियाँ आती हैं। मन्दिरों के वर्णन और मन्दिरों के चित्रण भी इसी के अन्तर्गत हैं। इस सम्बन्ध में 'श्री त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' द्रष्टव्य है।

२—लोककथात्मक-साहित्य : इसमें विक्रमादित्य भोज आदि राजाओं से सम्बन्धित साहित्य तथा विभिन्न प्रचलित लोक-कथानकों पर आधारित साहित्य की गणना की जा सकती है। ऐतिहासिकता इनमें इतनी ही है कि इनमें वर्णित प्रधान या गौण पात्र या पात्रों के नाम इतिहास से समर्थित हैं। उनके जीवन-चरित या कार्य-कलापों

मरुभारती? वर्ष ७ अङ्क २ फरवरी १६५५
जैन गुर्जर कवियो भाग १
[3] नैणसी की ख्यात भाग २ पृ १५२ (ना प्र स)
[4] मारवाड़ का मूल इतिहास पृ ११६ ११७
[5] बांकीदास री ख्यात पृ २१

से सम्बन्धित कथाओं में धर्माग्रह या रुचि-वैचित्र्य व वैभिन्न्य के कारण कल्पना को इतनी ढील दी गई है कि उनका ऐतिहासिक रूप एकदम लुप्त हो गया है।

सच्चे अर्थ में इन दोनों प्रकार की रचनाओं को ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता।

१—ऐतिहासिक रचनाएँ इसके अन्तर्गत ऐतिहासिक अर्ध-ऐतिहासिक या इतिहासोन्मुख काव्य आते हैं। स्मरणीय है कि चारण शैली के ऐतिहासिक काव्यों से ये भिन्न प्रकार के हैं, कई दृष्टियों से। प्रस्तुत प्रसंग में इस श्रेणी की रचनाएँ ही उल्लेखनीय हैं किन्तु इनकी संख्या बहुत ही कम है। आलोच्य काल में प्रबन्ध रूप में पाई जाने वाली रचनाओं में हेमरतन कृत 'गोरा बादल री चोपाई' और मुक्तक रूप में पाई जाने वाली रचनाओं में—'गोपीचन्द गीत' 'सुपियारदे गीत' आदि की गणना की जा सकती है। इनके अतिरिक्त 'कान्हड़दे प्रबन्ध' भांडउ व्यास कृत 'राय हमीरदेव चौपाई' मबाव कविकृत 'राव जैतसी रो पाघड़ी छन्द' आदि रचनाओं पर भी जैन शैली का प्रभाव स्पष्ट है। काल-क्रम की दृष्टि से इनका परिचय इस प्रकार है—

कान्हड़दे प्रबन्ध नागर ब्राह्मण कवि पद्मनाभ ने इसकी रचना संवत् १५१२ में की थी। इसका महत्व चार दृष्टियों से है —(१) भाषा (२) साहित्य[1] (३) इतिहास और (४) संस्कृति व समाज[2] और चारों दृष्टियों से निर्विवाद है। इस काल की यह प्रारम्भिक ऐतिहासिक कृति है जिसमें सर्वत्र पुरानी शैली के 'अइ' और 'अउ' रूप पाए जाते हैं। अपभ्रंश की यह प्रवृत्ति जैन शैली में परवर्ती काल में भी चलती रही। यह काव्य जालौर के शासक सोनगिरा चौहान वंशी कान्हड़दे से सम्बन्धित है और इसका प्रमुख वर्ण्य-विषय अलाउद्दीन और चौहान वंश के वीर कान्हड़दे, मालदेव तथा वीरमदेव के साथ हुए युद्ध हैं; अतः सम्पूर्ण काव्य में वीररस प्रधान है। राजपूत वीरों के स्वदेशाभिमान जातीय गौरव उच्चादर्श और आत्म-विश्वास की झलक

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मंदिर जोधपुर, से प्रकाशित

(क) गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति पृ १४१ ७१

(ख) Divetia Gujarati Language & Literature Appendix to Lec III.

(ग) आलोचना वर्ष ४ अङ्क २, जनवरी १९५५

(घ) Munshi Gujarat & its Literature Page 150-160

(ङ) कवि चरित पृ ६२ ७१

(च) गुजराती साहित्यना मार्ग-सूचक स्तम्भो पृ ४२ ७४

(छ) शोध-पत्रिका भाग ३ अङ्क १ पौष २ ८ डॉ दशरथ शर्मा का मत

(ज) चौहान कुल-कल्पद्रुम भाग १ तथा अन्य इतिहास ग्रंथ

२ (क) मजूमदार गुजराती साहित्यना स्वरूपो पृ ८१-८८

(ख) मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ ८२ ९१

काव्य में स्थल-स्थल पर मिलती है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन तथा तत्का-लीन भौगोलिक स्थिति का विवरण बहुत ही ठीक है। इतिहास की यह अत्यन्त प्रामाणिक कृति है इसमें सन्देह नहीं।

भाण्ड व्यास कृत राव हमीरदेव चौपाई[१] (रचनाकाल—संवत् १५३८) इसमें रणथम्भोर के चौहान वीर हम्मीर हठीले का अलाउद्दीन के साथ हुए युद्ध उनकी शरणागत रक्षा पराक्रम और अन्त में उनके निधन का सुन्दर वर्णन हुआ है। दोहा गाहा चौपाई आदि सब मिला कर ३२१ छन्दों की यह रचना अभी तक अप्रकाशित है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार यह "किन्हीं व्यासपदस्थ के पुत्र भाण्ड की रचना है।"[२]

अज्ञात कवि कृत राव जैतसी रो पाघड़ी छन्द की संवत् १६७२ में लिपिबद्ध हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर में है (प्रति नं १)। इसका विवरण डॉ. टैसीटरी ने भी दिया है।[३] यह रचना बीठू सूजे के काव्य 'राव जैतसी रो पाघड़ी छन्द' से बहुत अधिक साम्य रखती है और विस्तार में उससे बड़ी है। इसका प्रारम्भ राव सलखा के वर्णन से होता है तथा अन्त कामरां के साथ हुए राव जैतसी के युद्ध और उनकी विजय के साथ। अन्तिम छन्द में कवि ने सम्पूर्ण कथा-सार इस प्रकार दिया है—

पडियउ मीर सधीर दूठ कंधीर महाबलि
पाखर ऊमरधान कोडि पाखटिया कलसि।
भीमाहर केकाण पडिउं हुआ विहडक्कड
पाडिउ क र सय पड विजड वाही वजेहड।
भागउ मिसड मीतड भिडवि पिडिउं बार छंडि बकाइं।
भजियउ जयति सुरिताण मिलि पाडिउ रणपसि वल्लवइ॥ ४८१

इसकी रचना संवत् १५८१ और १५९८ के किसी समय हुई थी।

हेमरतन कृत गोरा बादल पदमिनी चौपाई[४] की रचना संवत् १६४५ में हुई थी। इसकी कथा चित्तौड़ के राजघराने से संबंधित होने के कारण बहुत प्रसिद्ध है। इसमें प्रधान रस वीर है और गौण रूप से शृंगार का वर्णन हुआ है। स्वामी-धर्म की प्रशंसा के साथ साथ वीर पद्मिनी के शील की भी बड़ाई यत्र-तत्र करता चलता है[५]।

---

[१] द्रष्टव्य मरुभारती वर्ष ८ अंक १ १९६१ में श्री अगरचन्द नाहटा का लेख
[२] हिन्दुस्तानी जनवरी-मार्च १९६ पृ १
[३] Descriptive Catalogue, sec II Pt. I, page 8
[४] डॉ. टैसीटरी द्वारा सम्पादित और एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता से प्रकाशित
[५] डॉ. माहेश्वरी राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ २९९ २९९

इस शैली की मुक्तक रचनाओं में सुपियारदे गीत[1] (रचनाकाल लगभग संवत् १५) और गोपीचन्द गीत[2] आदि उल्लेखनीय हैं। सुपियारदे बरण के स्वामी सोहा सांखले की बेटी थी। उसका विवाह तो मंडोवर के स्वामी नर्बद के साथ तय हुआ था किन्तु दुर्भाग्यवश हुआ जैतारण के स्वामी नरसिंह सिंधल के साथ। पश्चात् नर्बद एक दिन जैतारण आया और सुपियारदे को बैलगाड़ी में बैठा कर अपने घर ले गया[3]। गोपीचन्द गीत' बंगाल के सुप्रसिद्ध राजा गोपीचन्द और उनकी रानियों के संवाद के रूप में है जिसमें राजा के जोगी हो जाने और रानियों द्वारा पुन: गृहस्थ बन जाने का अनुरोध पाया जाता है। नागरी प्रचा सभा से प्रकाशित 'नाथ सिद्धों की बानियां' में गोपीचन्द के नाम से प्रकाशित गोपीचन्दजी का पद संवाद'[4] नामक रचना प्रस्तुत रचना से भिन्न है जो पता नहीं किस कारण से 'गोपीचन्द' की रचना मानली गई है। वस्तुत: यह एक लोक-गीत है जो गोपीचन्द' के जीवन से सम्बन्धित है।

चारण शैली—

वास्तव में चारण शैली का काव्य ही मुख्य रूप से ऐतिहासिक काव्य कहा जा सकता है। वीररसात्मक ऐतिहासिक कविता की अपार सृष्टि चारण शैली की प्रमुख विशेषता है। यह काव्य भी प्रबन्ध और मुक्तक दो रूपों में पाया जाता है। पहले प्रबन्ध काव्यों को लें—

बादर ढाढी कृत वीरमाण (रचनाकाल संवत् १५ लगभग) इस काल की प्रारम्भिक कृतियों में से है। ओज-गुण प्रधान यह रचना वर्णन की दृष्टि से अनूठी है। इसमें रावल मल्लीनाथजी और उनके ज्येष्ठ पुत्र जगमाल के वीर कृत्यों राव वीरमजी का इतिहास और अन्त में उनके पुत्र गोगादेव का अपने पिता की मृत्यु का बदला लेते हुए युद्ध में वीरगति को प्राप्त करना सविस्तार वर्णित है। इसमें इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री सुरक्षित है। ओझा रेउ आसोपा तथा गहलोत प्रभृति विद्वानों के इतिहास ग्रन्थों से यह बात स्पष्ट है। इसमें एक बड़ी बात यह है कि कवि अपने चरितनायक का यथातथ्य वर्णन करता है उसके गुणों को कहीं बढ़ा-चढ़ा कर नहीं दिखाता[5]।

पाल्हण सिवदास कृत 'अचलदास खीची री वचनिका १२ छन्दों की रचना है। प्राचीनता भाषा साहित्य और इतिहास सभी दृष्टियों से यह एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण चारण कृति है। रचनाकाल इसका संवत् १५ के लगभग है।

डॉ माहेश्वरी पृ २२५। हस्तलिखित पत्र श्री नाहटाजी के पास।

अजन्ता अगस्त १९५५, श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

द्रष्टव्य (क) वीर विनोद पृ ११३ १४

(ख) नैणसी की ख्यात भाग २, पृ १२२-२७

पृ २०-२२

[5] द्रष्टव्य डॉ मेनारिया डिंगल में वीररस

डॉ माहेश्वरी राजस्थानी भाषा और साहित्य

बारहठ पसाइत (संवत् १४८०-१५३१) कृत दो रचनाएँ—१ 'राव रिणमल रौ रूपक' तथा २ 'गुण जोधायण' क्रमशः मारवाड़ के राव रिणमल और राव जोधा के वीर कृत्यों से सम्बन्धित काव्य हैं। इनके अतिरिक्त मुक्तक रूप में लिखी चारणी इस कवि की तीन और रचनाएँ हैं—

१ कवित्त राव रिणमल चूंडै रै वैर में आढियां नै मारीया तै समै रा।
२ कवित्त राव रिणमल नागौर रै धणी पेरोज नै मारिया तै समै रा।
४ कवित्त राउ मोकल मुआं री खबर आया रा।
इनका विषय इनके नामों से स्पष्ट है[1]।

बीठू सूजे नगराजोत कृत 'राव जइतसी रो पाघड़ी छन्द' का (रचनाकाल संवत् १५९१-९८) का सम्पादन राजस्थानी के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. टैसीटरी ने किया था जो सन् १९२ में एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। कथा-प्रसंग की दृष्टि से इसको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले में राव चूंडा से लेकर राव जैतसी के पिता राव लूणकरण तक के वर्णन और दूसरे में कामरां के साथ हुए राव जैतसी के युद्ध-वर्णन सम्मिलित हैं। तत्कालीन युगव्यापी सामरिक मनोवृत्ति के चित्रण और ऐतिहासिक घटना क्रम के स्पष्टीकरण के लिए इस काव्य को डिंगल की प्रतिनिधि रचना कहा जा सकता है।

अज्ञात कवि कृत 'जैतसी रासो' (रचनाकाल वही) का मुख्य विषय भी राव जैतसी के हाथों कामरां की पराजय का वर्णन है। यह रचना ९७ छन्दों की है।

राव जैतसी से सम्बन्धित ऊपर लिखित तीनों ही रचनाएँ विभिन्न रूप से इतिहास के एक उपेक्षित किन्तु ठोस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि कामरां को अपने इस दुस्साहस में राव जैतसी के हाथों बुरी तरह पराजित होना पड़ा था। इतिहास के लिए इनका महत्व निस्सन्दिग्ध है[3]।

बारहठ आसा (संवत् १५६३-१६५) की अभी सात रचनाओं का पता है जिनमें से चार ऐतिहासिक हैं। इनमें 'बाघजी रा दूहा' तो बाघा कोटड़ा की मृत्यु पर

डॉ. माहेश्वरी : राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ८७-९१

राजस्थानी भाग ३ अङ्क ३ जनवरी १९४० तथा 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्रकाशित

[3] द्रष्टव्य (क) डॉ. दशरथ शर्मा : दयालदास री ख्यात भाग २
(ख) ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास भाग १
(ग) डॉ. रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान पृष्ठ १०-१८
(क) डॉ. मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य
(ख) डॉ. माहेश्वरी : राजस्थानी भाषा और साहित्य

कहे गए मरसिये है[1] और 'उमादे रा कवित्त' रूठी राणी उमादे के सती होने पर कहे गए १४ कवित्त । 'राव चन्द्रसेण री रूपक' में जोधपुर के कँवर चन्द्रसेन के गुणों का बरणन है जिसका महत्व छन्द-शास्त्र की दृष्टि से भी है । 'रावल माला सम्बन्धात रो पुण' ८७ छन्दों का काव्य है, जिसमें महेवा के स्वामी रावळ मल्लीनाथ के जीवन-चरित्र और प्रमुख रूप से उनके वीर-कार्यों का उल्लेख है । इनकी अनेक मुक्तक रचनाएँ भी उपलब्ध है[2] ।

धांदू माला ने भूलणा छन्द में तीन महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की :—

१ भूलणा महाराज रायसिंघजी रा
२ भूलणा दीवांण प्रतापसिंघजी रा तथा
३ भूलणा अकबर पातसाहजी रा ।

ये सभी रचनाएँ इनमें वर्णित घटनाओं और युद्धों की सम-सामयिक है । विभिन्न वर्णित घटनाओं का समय संवत् १६२७ से १६३३ है अतः यही समय इनका रचना का होना चाहिए । इस युग के कवियों मे भूलणा छन्द को जितनी प्रांजलता और प्रवाह धांदू माला ने दिया उतना किसी अन्य ने नहीं । कवि की मुक्तक रचनाएँ भी मिलती है ।

बीठू मेहा (संवत् १६ –१६५) : बीठू मेहा की सभी मुख्य रचनाओं— पाबूजी रा छन्द गोगाजी रा रसावळा तथा करणीजी रा छन्द—के नायक-नायिका राजस्थान-इतिहास के सुप्रसिद्ध व्यक्तित्व है । प्रथम रचना में जो ओज और प्रवाह है, वह डिंगल की किसी भी श्रेष्ठ रचना से तुलनीय हो सकता है । इनके अतिरिक्त ११ कवित्तों में कवि ने बावड़ के करमसी और सावळदास चौहान की वीरता का वर्णन किया है[3] ।

ऊपर जिन कवियों का उल्लेख है प्रायः उन सभी की मुक्तक ऐतिहासिक रचनाएँ भी मिलती है ।

चारण साहित्य : मुक्तक काव्य—

ऐतिहासिक मुक्तक काव्य—रचना करने वालों की संख्या अपरिमेय रही होगी इसमें सन्देह नहीं किन्तु हमें उन सबका परिचय प्राप्त नहीं है । हस्तलिखित पुस्तकों में गीत दोहा सोरठा छप्पय नीसाणी भूलणा आदि छन्दों में रचित असंख्य रचनाओं का पता

राजस्थान रा दूहा (?) पीलाणी
डॉ सहल राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद
गीत-मंजरी बीकानेर
राजस्थानी वीर गीत म क१
[3] प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ८

रतनू वेणराज सिढायच गेपो बारहठ लक्खा दरसा आसिया बरसा आसिया की स्त्री अस्सूजी कविया बारूजी सौदा अमराजी बारहठ हरिदास केसरिया पोरवजी बोगसा सूरायच टापरिया राठौड़ प्रिथीराज[१] दुरसा आढा किसना आढा सांदू माला भीमा चारणी पदमा सांदू चम्पावे पीठवा मीसण मना बारहठ, सुखकरण मेहडू मीमा आसिया चूंडोजी दधवाड़िया करण रतनू ईसर रतनू,[२] बाघ महडू,[३] मालदेव बरसड़ा पाता बारहठ गगा सिढायच[४] आदि आदि।

स्पष्ट है कि राजस्थानी का साहित्य ऐतिहासिक काव्य-कृतियों से भरपूर है। लौकिक शैली के साहित्य की भी अनेक ऐतिहासिक कृतियाँ परवर्ती विकासकाल (संवत् ११५०-१९२५) में मिलने लगती हैं। 'राजस्थानी सबद कोस' की प्रस्तावना[५] में ढोला मारू रा दूहा तथा जेठवे रा सोरठा (जो प्रस्तावना लेखक के अनुसार लौकिक प्रेम काव्य हैं) में ऐतिहासिक तथ्य गौण बताते हुए पृथ्वीराज रासो के सम्बन्ध में दिए गए डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी के वक्तव्य को उद्धृत किया गया है[६] जिससे सम्भवतः यह धारणा बन सकती है कि राजस्थान की अन्य ऐतिहासिक काव्य-कृतियाँ भी इसी तरह की हैं। निवेदन है कि 'प्रस्तावना' लेखक की यह बात दो कारणों से उचित नहीं प्रतीत होती—(१) लौकिक प्रेम काव्यों से ऐतिहासिक तथ्य कभी नहीं ढूंढे गए, तथा (२) डॉ द्विवेदी का वक्तव्य 'रासो' पर लागू है राजस्थानी साहित्य पर नहीं। शायद इस प्रकार की विचारधारा को डॉ धीरेन्द्र वर्मा के इस कथन से भी बल मिला हो कि 'अवधी भाषा के प्राचीन साहित्य की यह विशेषता है कि उसमें ऐतिहासिक ग्रंथों की कमी नहीं है। अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में यह बहुत खटकता है[७] तो कोई आश्चर्य नहीं। यह 'खटकने वाली' बात राजस्थानी में तो कदापि नहीं है, अन्य भाषाओं में भले ही हो। राजस्थानी का साहित्य तो ऐतिहासिक कृतियों का अक्षय भण्डार है। विपुल गद्य और ऐतिहासिक साहित्य का निर्माण ये दो राजस्थानी साहित्य की विशेषताएँ रही हैं।

चौहान कुल-कल्पद्रुम पृ २७४
प्राचीन राजस्थानी गीत भाग २ तथा १
वही भाग १ तथा महाराणा-यश प्रकाश
प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ८
[५] वही
[६] वही भाग ११
वही भाग ९
[८] वही भाग २
[९] परम्परा का 'राजस्थानी साहित्य का आदिकाल' पृ १६४ में उद्धृत
हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ ७१
हिन्दी भाषा का इतिहास भूमिका।

मध्यकालीन ख्यात साहित्य

श्री राधेश्याम त्रिपाठी

पीठिका—

राजस्थान की अपनी साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्परा रही है। इस प्रदेश की प्रारम्भिक भाषा पर अपभ्रंश का प्रचुर प्रभाव दिखाई देता है पर कालान्तर में राजस्थान की भाषा ने शनैः शनैः अपना स्वतन्त्र रूप स्थापित कर लिया और उसके विविध विधाओं की साहित्यिक रचनाएँ सम्पन्न होने लगी। राजस्थान की इसी साहित्यिक भाषा का नाम डिंगल है जिसे विद्वानों ने अनेकानेक नामों से अलंकृत भी किया है। डिंगल अपभ्रंश के उत्तरार्द्ध की वह वेगवती धारा है जिसने अपभ्रंश की प्रवृत्तियों के प्रभाव से अपने को मुक्त करने की चेष्टा भी की और उसके सद् अंगों को अंगीकार भी किया। पिछले एक सहस्र युग से डिंगल की धारा अपने प्रारम्भिक युग में भारत के एक विशाल भू-खंड पर रस वर्षित करती रही। ग्यारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक की लौकिक और साहित्यिक भाषा का रूप रंग इसी में निहित था।

इस युग की डिंगल भाषा में गद्य एवं पद्य दोनों प्रकार की साहित्यिक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। डिंगल का पद्यात्मक स्वरूप तो उदयकाल से ही लक्षित होने लग गया था पर उसका गद्यात्मक स्वरूप प्रारम्भिक अवस्था में पट्टे-परवाने ताम्रपत्र शिलालेख वचनिका तथा पद्यात्मक गद्य के रूप तक ही सीमित था। गद्य के इन प्राचीन उदाहरणों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि इनके शब्द-समूह संस्कृत की विभक्तियों से युक्त हैं तथा इन पर अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव है। इसके साथ ही इन उदाहरणों में प्रयुक्त क्रियाओं की परीक्षा करने पर विदित होता है कि इनमें क्रिया सूचक शब्द भी खड़ी बोली हिन्दी के बीजरूप की भूमिका का प्रदर्शन किए हुए हैं। यथा—करैला मानवै और जावैगा आदि। इस प्रकार के ताम्रपत्र और पट्टे-परवानों के जो उदाहरण ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी के निकट मिले हैं। स्व. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने ऐसे कई एक पट्टे-परवाने प्रकाशित कराए थे जिनकी भाषा अर्वाचीन डिंगल प्रतीत होती है। बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी का जो गद्य साहित्य राजस्थान प्रान्त में उपलब्ध है उनके अनेक उदाहरण तथा गद्य ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। ये गद्य रचनाएँ धर्म सम्बन्धी विचारधाराओं के प्रतीक हैं जिनमें अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट भासित होता है।

पन्द्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी का युग डिंगल भाषा के गद्य-साहित्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस युग में डिंगल भाषा का गद्य-साहित्य अनेकों रूपों में उपलब्ध होता है

दयाळदास सिंढायच अपने समय का प्रतिभाशाली विद्वान और सिद्ध हस्त पंडित था। बीकानेर राज्य में उसका सम्मान एक विशिष्ट इतिहासकार के रूप में था था। दयाळदास द्वारा रचित साहित्य में निम्नांकित रचनायें मुख्य की दृष्टि भाग्य स परिचित रही हैं—

१ बीकानेर रा राठौड़ां री ख्यात
२ आर्याख्यान कल्पद्रुम
३ देश दर्पण
४ बीकानेर रा राठौड़ा रा पीढ़

दयाळदास ने अपनी इन रचनाओं में जिन सद्भावनाओं की प्रतिष्ठा की है, वह व्यक्तित्व का प्रतीक है। इतिहास लेखन में न तो उसने मुस्लिम इतिहासकारों का ही पूर्ण अनुकरण किया है और न उसने 'मोद्‌स' संकलन का ही कार्य किया। दयाळदास सच्चे अर्थों में इतिहासकार के गुणों को लेकर चले थे। उसने अपने पूर्व तथा पश्चात की सभी उपलब्ध सामग्री का उपयोग ख्यात रचने में किया था। वह मौलिक इतिहासकार की प्रतिभा लिए था अतएव उसने जो कुछ लिखा वह पूर्ण दायित्व अधिकार तथा सत्य से लिखा है। बीकानेर के राजाओं की विजयों का उसने जिस शानदार ढंग से वर्णन किया है और भाषों के गुणों का जिस निष्ठा के साथ गायन किया है उतनी ही ईमानदारी से उसने उनके पराभवों और उनकी दुर्बलताओं पर भी कलम चलाई है। अपने वर्णन को उसने पूर्ण सजीवता के साथ चित्रित किया है। यदि हम यह कहें कि दयाळदास ने केवल बीकानेर राज-वंश का ही वर्णन किया वरन उसने मध्यकालीन भारत का भी पूर्ण सफलता से चित्रण किया है तो कोई अनुचित नहीं होगी। डॉ० दशरथ शर्मा का दयाळदास के व्यक्तित्व पर दिया गया उल्लेख महत्वपूर्ण है—

On the whole Dayaldas Sindhay ch presents one of the best pi tures f medieval India of a people full-blooded and impulsive sensitiv to the best in Indian Culture as shown by their appreciation and p t onage of fine arts and literature, yet in some ways politically immat fo th y f led to sink their personal difference even in the face of the greatest threat to their independence It was glorious to be g eat gener ls of the Mughals; it would have been more glorious still to be gr at gene als of an independent and free India ”

दयाळदास री ख्यात भाग २ श्री सादूल प्राच्य ग्रन्थ माला के अन्तर्गत प्रकाशित डॉ० दशरथ शर्मा द्वारा सम्पादित है जिसमें विद्वान सम्पादक ने दयाळदास द्वारा रचित ख्यात का वैज्ञानिक अध्ययन किया है। दयाळदास री ख्यात में राव श्री बीकोजी राव श्री नरोजी

दयाळदास री ख्यात भाग २, भूमिका पृष्ठ १७ से डॉ० दशरथ शर्मा।

राव श्री लूणकरणजी राव श्री जैतसी राव श्री कल्याणसिंहजी राव श्री रायसिंहजी राजा श्री दलपतसिंहजी राजा श्री सूरसिंहजी राजा श्री करणसिंहजी और महाराजा श्री अनूपसिंहजी तक का क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। प्रत्येक राजा के जन्म से लेकर मृत्यु तक का वर्णन है साथ ही प्रत्येक की जन्म-कुण्डली देकर उनके जन्म व काल आदि की प्रामाणिकता प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक राजा के राज्य में घटित विविध घटनाओं का पूर्ण विवरण दिया गया है जिसके अन्तर्गत विविध विजयों विग्रहों विवाहों आक्रमणों षड्यन्त्रों व पारस्परिक कलह का वर्णन है। मुगल बादशाहों के साथ इस राज वंश का क्या कब और कैसा सम्बन्ध रहा, उसका पूरा विवेचन इस ख्यात में अंकित है। साथ ही अकबर जहांगीर, दारा शिकोह, मुराद और आलमगीर आदि बादशाहों की जन्म-कुण्डलियां भी दी गई हैं। राजाओं की दानवीरता संतति-परिचय के साथ-साथ युद्ध में काम आने वाले वीरों का नामांकन भी किया गया है। राजाओं की सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। सुगन देवी-दर्शन व पूजा-पाठ आदि का उल्लेख भी प्रसंगानुसार मिलता है। इस प्रकार दयालदास री ख्यात में राव श्री बीकोजी से लेकर महाराजा अनूपसिंहजी तक का इतिहास है।

दयालदास की वर्णन-शैली विषय के अनुरूप सरस प्रभावयुक्त भावमयी और प्रवाहपूर्ण है। उदाहरणार्थ युद्ध क्रिया का एक प्रसंग दर्शनीय है—

> पीछे हिसार रो फौजदार सारंगखान लारै भार चढ़ियो सु छापै आयो। तद कांधल जी सारै साथ सू चढ़ सामा गया नै सारंगखान रो साथ निजीक आयो। तद कांधल जी घोड़े नू कुदावता तद तंग पुरतंग कुमची टूट जावता सु टूट गया। तद कांधल जी आपरा बेटा नू अर साथ सारै ई नू कह्यो के थे फौज रो मुंडो म्हासी जितरै हू तंग सारनू। अर कांधल जी तंग सारण नू घोड़ै सु उतरिया। अब साथ सारो भागो है। जिस सारंगखान कांधल जी रै साथ पर भीड़ा उठाय नाखिया। तद साथ सू अर कांधल रै बेटा नू बाको झलियो नहीं सु भाज नीसरिया। नै कांधल जी अनै आदमी घणा खेत रया। पीछे कांधल जी कह्यो जावो रे कपूतां मैं तो थानू बाघै रै जरोखै पातसाही रो कह्यो हो। (दयालदास री ख्यात पृ १६ १७)

इसी प्रकार अन्यान्य राजाओं के शासन-काल में घटित घटनाओं के वर्णनों में दयालदास की अभिव्यक्ति विषयानुकूल भाषा शैली की विविधता में प्रस्तुत हुई है। दयालदास का भाषा-ज्ञान अपूर्व था। राजस्थानी के साथ-साथ अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग विषय प्रतिपादन की सार्थकता सिद्ध करता है। ख्यात में गद्य को 'वचनिका' कहा गया है। गद्य के साथ-साथ गीत दोहा कविता आदि छन्द भी प्रसंगानुसार रखे गये हैं जिनका अपना कलात्मक मूल्य तो है ही साथ ही चरित्र के विकास में भी यह पद सहायक हुए हैं। भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य भी है। लेखक की वर्णन-शैली परिमार्जित है तथा अभिव्यक्ति की क्षमता अद्भुत है।

ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से 'दयालदास री ख्यात' का महत्त्व अद्भुत है। राव बीकाजी के बीकानेर बसाने के प्रसंग का उल्लेख राजस्थान की कई ख्यातों में मिलता है।

कहीं प्रतिरंजनापूर्ण वर्णन विस्तार से किया गया है। वर्णनकर्ता जिस राज्याश्रय में रहता था उसके वंशजों के गुणगान यश प्रतिष्ठा और गौरव की कथाओं को समय-समय पर लिखता रहता था जिनके वर्णन अनुश्रुतियों के आधार पर भी और सत्य घटनाओं के साक्षात्कार पर भी निर्भर करता था। जैन मुनियों द्वारा लिखित पट्टावलियां और टिप्पण को इसी कोटि में रखा जा सकता है।

आज जिस परिभाषा के अन्तर्गत हम 'इतिहास' के रूप-विधान की सीमाओं और विस्तार-वैभव को देखते हैं उसी के अनुरूप हम ख्यातों को मूल रूप से ग्रहण नहीं किया जा सकता। मुसलमानी तवारीखों और इतिहासों में उस युग के इतिहासनवीसों ने जिस प्रकार अपने आश्रयदाता नवाबों और बादशाहों के गुण-गौरव का यशोगान किया है उनके पराभव को भी विजय से मंडित किया है उसी प्रकार मध्य युग में लिपिबद्ध होने के कारण इन ख्यात-लेखकों ने भी इसी परम्परा का अनुसरण मात्र किया प्रतीत होता है।

वस्तुतः ख्यात वंशावलियों और पीढ़ियों का विकसित परिमार्जित और प्रौढ़ रूप कहा जा सकता है। भारतवर्ष में वंशावली लिखने की परम्परा पुराण युग से मिलती है। यह परम्परा किसी न किसी रूप में अब तक चलती रही है। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' और 'लोक-प्रबन्ध' में भी हम इसी प्रवृत्ति और परम्परा के स्वरूप को देख सकते हैं। यह प्रकट है कि पश्चिमी भारत में जब से राजपूत शक्ति का उदय हुआ यह परिपाटी प्रशस्ति-लेखन के रूप में येनकेन प्रकारेण चलती रही। प्रशस्ति-लेखन-परम्परा के सूत्र ईसा की चौदहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होते दिखाई देते हैं।[1] मालवे के परमारों की उदयपुर प्रशस्ति।[2] जोधपुर प्रशस्ति परमारों की तथा बहलोतों की आबू प्रशस्ति[3] इसके प्रारम्भिक उदाहरण हैं। प्रशस्ति-लेखन का यह कार्य भट्ट विद्वानों के द्वारा सम्पादित होता था। चौदहवीं शताब्दी के बाद संस्कृत के स्थान पर तत्कालीन लोक भाषा में प्रशस्ति-लेखन का कार्य होने लगा था। इस प्रकार यह रूप शनैः शनैः विकसित होता चला गया।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अबुलफज़ल ने 'आइने अकबरी' की रचना की थी। अकबर ने शासनारूढ़ होने के आठ वर्ष बाद सं १५७८ में इतिहास विभाग की स्थापना की। डॉ ओझा यह मानते हैं कि इसके उपरान्त देशी राज्यों में भी ख्यातों का लिखा जाना प्रारम्भ हुआ। इसके पूर्व इतिहास-लेखन की परम्परा या परिपाटी यहाँ नहीं थी। तत्कालीन राजपूत इससे प्रभावित हुए और उनमें भी इतिहास लिखा जाने लगा। उनको प्रोत्साहन देने के दो प्रमुख कारण थे। अकबर के दरबार में कुछ को छोड़ कर सभी राजा

---

[1] टैसीटरी – J P.A S B New Series खण्ड १५, नं १ 1919 पेज २
टैसीटरी वही पृष्ठ
[2] Ap g aphic Indica खण्ड १ पृष्ठ २२२
G I A S B 894 Page 1-9
[3] Indian Antuguary खण्ड 16 1887 पृ 347

रखते थे। वे अपने गौरव को बनाए रखने में तथा दूसरों को नीचा दिखाने के लिए अपने इतिहास को अतिशयोक्ति से बना कर प्रकाशित करते थे। यह इतिहास उनकी मान-मर्यादा का रक्षक समझा जाता था तथा अकबर के सम्मुख प्रतिष्ठा पाने के लिए उन्होंने अपने इतिहास संकलित करवाए और ये इतिहास 'ख्यात' कहलाए।

वस्तुतः मध्यकालीन राजस्थान के ख्यात साहित्य के उद्भव की इस साहित्यिक और सांस्कृतिक पीठिका के तीन तत्व विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

१ राजवंशों तथा राजाओं का वर्णन कालक्रम तथा राज्यानुक्रम की दृष्टि से।
२ भाषा-विकास के ऐतिहासिक क्रम की दृष्टि से।
३ सामन्तयुगीन समाज के चित्रण की दृष्टि से।

इन ख्यातों में तत्कालीन समाज की राजनैतिक सामाजिक धार्मिक एवं नैतिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति मिलती है। तत्कालीन समाज के संघर्षपूर्ण तत्वों का विवेचन राजाओं के ऐश्वर्य का महिमामय गान दुर्ग व नगरों की विशालता एवं स्वच्छता युद्ध की विभीषिका वीरों का रण-चातुर्य तथा युद्ध में काम आने वाले वीरों की नामावली आदि का वर्णन। उपमाओं दृष्टान्तों उत्प्रेक्षाओं एवं अतिशयोक्तियों से युक्त है। वर्णनों के इस प्राचुर्य में भाषागत प्रवाह तथा कहीं-कहीं पद्यबद्धता आदि तत्वों का अवसर के अनुकूल निर्वाह हुआ है। तत्कालीन समाज की राजनैतिक उथल-पुथल का इन ख्यातों में बड़ा सुन्दर और मार्मिक वर्णन हुआ है। मध्ययुगीन राजस्थान के बहुत बड़े समाज का राज वंशों की विभिन्न प्रवृत्तियों का पारस्परिक विद्वेष का शासन-प्रणालियों का जागीर प्रथाओं का जातीय व्यवस्थाओं तथा जीवन-सिद्धान्तों का सविस्तृत वर्णन इन ख्यातों में चित्रित है। अतएव इन ख्यातों का ऐतिहासिक भाषाविषयक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्व असंदिग्ध है।

'ख्यात' साहित्य का वर्गीकरण—

राजस्थान में 'ख्यात' नाम से उपलब्ध साहित्य को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१ इतिहासपरक ख्यात—जिसमें किसी राज-वंश के राजाओं का क्रमबद्ध व काल-क्रमानुसार इतिहास रहता है

२ वार्तापरक ख्यात—जिसमें समय-समय पर संग्रहीत अथवा रचित वार्ताओं का संकलन रहता है

३ व्यक्तिपरक ख्यात—जिसमें किसी राज वंश के एक या एक से अधिक राजाओं के राज्य व काल का वर्णन क्रमानुसार रचित या संकलित रहता है

४ स्फुट ख्यात—जिसमें छोटी-छोटी स्फुट टिप्पणियों का संकलन रहता है तथा फुटकर ख्यातों को रखा जा सकता है।

१ इतिहासपरक ख्यात—

इतिहासपरक ख्यात में किसी एक ही राज-वंश के राजाओं का जन्म से लेकर मृत्यु तक विशद व विविध वर्णन काल क्रम से लिखा जाता है। इतिहासपरक ख्यातों की संख्या सीमित है। 'दयालदास री ख्यात' इतिहासपरक ख्यात की सुप्रसिद्ध रचना है।

दयाळदास सिंढायच अपने समय का प्रतिभाशाली विद्वान और डिंगल भाषा का प्रकाण्ड पंडित था। बीकानेर राज्य में उसका सम्मान एक विशिष्ट इतिहासकार के रूप में किया जाता था। दयाळदास द्वारा रचित साहित्य में निम्नांकित रचनायें मुख्य की दृष्टि से अधिक मान्य व चर्चित रही हैं—

१ बीकानेर रा राठौड़ां री ख्यात
२ आर्याख्यान कल्पद्रुम
३ देश दर्पण
४ बीकानेर रा राठौड़ा रा गीत

दयाळदास ने अपनी इन रचनाओं में जिन उद्‌भावनाओं की प्रतिष्ठा की है वह उसके चिंतन का प्रतीक है। इतिहास लेखन में न तो उसने मुस्लिम इतिहासकारों का सा पक्षपातपूर्ण अनुकरण किया है और न उसने 'नोट्स' संकलन का ही कार्य किया। दयाळदास सच्चे अर्थों में इतिहासकार के गुणों को लेकर चले थे। उसने अपने पूर्व तथा अपने समय की सभी उपलब्ध सामग्री का उपयोग ख्यात रचने में किया था। वह मौलिक इतिहासकार की प्रतिभा लिए था अतएव उसने जो कुछ लिखा वह पूर्ण दायित्व साधिकार तथा स्पष्टता से लिखा है। बीकानेर के राजाओं की विजयों का उसने जिस शानदार ढंग से वर्णन किया है र शासकों के गुणों का जिस निष्ठा के साथ गायन किया है उतनी ही ईमानदारी के साथ उसने उनके पराभवों और उनकी दुर्बलताओं पर भी कलम चलाई है। अपने वर्ण्य-विषय को उसने पूर्ण सजीवता के साथ चित्रित किया है। यदि हम यह कहें कि दयाळदास ने न केवल बीकानेर राज-वंश का ही वर्णन किया वरन उसने मध्यकालीन भारत का भी पूर्ण दक्षता से चित्रण किया है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। डॉ दशरथ शर्मा का दयाळदास के व्यक्तित्व पर दिया गया उल्लेख महत्वपूर्ण है—

On the whole Dayaldas Sindhayach presents one of the best pictures of medieval India of a people full-blooded and impulsive, sensitive to the best in Indian Culture as shown by their appreciation and patronage of fine rts and liter ture, yet in some ways politically immature for th y failed to sink their personal difference even in the face of th greatest threat to their independence. It was glorious to be great generals of the Mughals; it would have been more glorious still to be great generals of an independent and free India."

दयाळदास री ख्यात भाग २ भी राजस्थान प्राच्य ग्रन्थ माला के अन्तर्गत प्रकाशित डॉ दशरथ शर्मा द्वारा सम्पादित है जिसमें विद्वान सम्पादक ने दयाळदास द्वारा रचित ख्यात का वैज्ञानिक सम्पादन किया है। दयाळदास री ख्यात में राव श्री बीकोजी राव श्री नरोजी

दयाळदास री ख्यात भाग २, भूमिका पृष्ठ १७ से डॉ दशरथ शर्मा।

राव श्री सूरजकरणजी राव श्री जैतसी राव श्री कल्याणसिंघजी राव श्री रायसिंहजी राजा श्री दलपतसिंघजी राजा श्री सूरसिंघजी राजा श्री करणसिंघजी और महाराजा श्री अनूपसिंघजी तक का कालक्रम से वर्णन किया गया है। प्रत्येक राजा के जन्म से लेकर मृत्यु तक का वर्णन है साथ ही प्रत्येक की जन्म-कुण्डली देकर उनके जन्म व काल आदि की प्रामाणिकता प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक राजा के राज्य में घटित विविध घटनाओं का पूर्ण विवरण दिया गया है जिसके अन्तर्गत विविध विजयों विद्रोहों विवाहों आक्रमणों षड्यन्त्रों व पारस्परिक कलह का वर्णन है। मुगल बादशाहों के साथ इस राज वंश का क्या क्या और कैसा सम्बन्ध रहा उसका पूरा विवेचन इसमें ख्यात में अंकित है। साथ ही अकबर जहाँगीर, दारा शिकोह, मुराद और आलमगीर आदि बादशाहों की जन्म-कुण्डलियाँ भी दी गई हैं। राजाओं की दानवीरता संतति-परिचय के साथ-साथ युद्ध में काम आने वाले वीरों का नामाकन भी किया गया है। राजाओं की सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। सुगन देवी-दर्शन व पूजा-भाव आदि का उल्लेख भी प्रसंगानुसार मिलता है। इस प्रकार 'दयालदास री ख्यात' में राव श्री बीकोजी से लेकर महाराजा अनूपसिंघजी तक का इतिहास है।

दयालदास की वर्णन-शैली विषय के अनुरूप सरस प्रभावयुक्त भावमयी और प्रवाहपूर्ण है। उदाहरणार्थ युद्ध-क्रिया का एक प्रसंग दर्शनीय है—

> पीछें हिंसार री फौजदार सारंगखान कारें वार चढ़ियौ सु साहवें आयौ। तद कांधल री सारै साथ सु चढ़ सामा गया नै सारंगखान री साथ सिनीक आयौ। तद कांधल री घोड़ै सू कूदावता तंग तग पुलम चूमची टूट जावता सु तुड़ गया। तद कांधल री आपरा बेटा नू ग्रह साथ सारै ई सू कयौ के वे फौज री सू डी जावौ जिवरै हू तंग सारसू। तद कांधल री तंग सारण सू घोड़ै सू उतरिया। ग्रब साथ सारौ आयै है। जिस पारंगखान कांधल जी रै सोच पर बीड़ा उठाय नाखिया। तद साथ सू ग्रब कांधल रै बेटा सू बकी ग्रजियौ नहीं सु भाज नीसरिया। नै कांधल री घनै आदमी पगरा पेक रया। पीछें कांधल री कयौ 'जावौ रे कपूतां मैं तो थानू बापे रै नरोबै पातसाही रो कयौ हो। (दयालदास री ख्यात पृ १६ १७)

इसी प्रकार अन्यान्य राजाओं के शासन-काल में घटित घटनाओं के वर्णनों में दयालदास की अभिव्यक्ति विषयानुकूल भाषा-शैली की विविधता में प्रस्तुत हुई है। दयालदास का भाषा-ज्ञान अपूर्व था। राजस्थानी के साथ-साथ अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग विषय प्रतिपादन की सार्थकता सिद्ध करता है। ख्यात में गद्य को 'वचनका' कहा गया है। गद्य के साथ-साथ गीत दोहा कविता आदि छन्द भी प्रसंगानुसार रखे गये हैं जिनका अपना कलात्मक मूल्य तो है ही साथ ही चरित्र के विकास में भी यह पद सहायक हुए हैं। भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य भी है। लेखक की वर्णन-शैली परिमार्जित है तथा अभिव्यक्ति की क्षमता अपूर्व है।

ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से 'दयालदास री ख्यात' का महत्व अक्षुण्ण है। राव बीकाजी के बीकानेर बसाने के प्रसंग का उल्लेख राजस्थान की कई ख्यातों में मिलता है।

बीकानेर राजाओं के सम्बन्ध मुगल बादशाहों तास्सुकदारों और ठिकानेदारों से किस प्रकार रहे उनका यथातथ्य निरूपण इस ख्यात में है। प्रसिद्ध फरमानों का उल्लेख इस ख्यात के ऐतिहासिक पक्ष को विशेष व्यक्त करता है। जोधपुर और बीकानेर के सम्बन्ध में समय-समय पर हुए परिवर्तनों का उल्लेख बीकानेर के अन्य ठिकानों से सम्बन्ध तथा बीकानेर राजाओं द्वारा दबाये गये अनेकानेक विद्रोहों के दमन में नीति निपुणता आदि का विशद विवरण है। तत्कालीन सरदारों का पारस्परिक राग-द्वेष उत्कर्ष अपकर्ष की भावना राज्य-लिप्सा तथा अहंभाव आदि सामन्ती मनोवृत्ति का परिचय ख्यात में सुगमता से मिल जाता है। यह अवश्य है कि कहीं घटनाओं के वर्णनों में मुगलकालीन तवारीखों में उल्लिखित सन्-सम्वत व घटनाओं के सम्यक विवेचन मे कम अधिक अन्तर स्पष्ट है। वस्तुतः 'दयाळदास री ख्यात' बीकानेर के राजघराने की विशद और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक रचना है जिसमें राजस्थान के अतिरिक्त मुगल बादशाहों के संबंधों आदि पर नया प्रकाश पड़ता है। राजस्थान के सामन्तीकालीन समाज की अनेकानेक मान्यताओं और परम्पराओं का महत्वपूर्ण वर्णन भी इस ख्यात की विशेषता है। दयाळदास री ख्यात' बीकानेर राजवंश के इतिहास के साथ-साथ तत्कालीन भारतीय राजनैतिक और सामाजिक लीलाओं की महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि है।

इतिहासपरक ख्यात की परम्परा में 'दयाळदास री ख्यात' के अतिरिक्त जोधपुर री ख्यात राठौड़ां री मारवाड़ री ख्यात किसनगढ़ री ख्यात सीसोदिया री ख्यात भूतिवाड़ री ख्यात उदयपुर री ख्यात आदि राज वंशों से सबंधित ख्यात है। प्रत्येक ख्यात का प्रारम्भ आदिनारायण से लेकर तत्कालीन राजा के समय तक का दिया हुआ है जिस युग में कि ख्यात रची गई है। इन ख्यातों की रचना विशेषकर १८ वीं और १९ वीं शताब्दी तथा २० वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक होती रही है। इन ख्यातों के वर्णनों में कहीं-कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण घटनाओं की भरमार है तो कहीं-कहीं एकपक्षीय दृष्टिकोणयुक्त वर्णन भी मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन ख्यातों को अधिक प्रामाणिक नहीं माना जा सकता क्योंकि इतिहास की कसौटी पर कसने से अधिकांशतः वर्णन अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं। सामाजिक और भाषा-विकास की दृष्टि से अवश्य इन ख्यातों का महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थान के कतिपय राजकीय पुस्तकालयों में इन ख्यातों की अनेक नकलें मिलती हैं जिनमें क्षेपक अंश भी पर्याप्त मात्रा मे समाविष्ट हो गये हैं।

२ वारतापरक ख्यात—

वारतापरक ख्यात से हमारा तात्पर्य उन ख्यातों से है जिनमें न्यूनाधिक मात्रा में बातों का *संग्रह किया गया है अथवा किसी पूर्व घटना सबंधी बात* को चुन कर उसे लिपिबद्ध कर दिया गया है और तत्कालीन ख्यात-लेखक ने अपने विवेक-चातुर्य से अपने युग की घटनाओं को बातों का रूप देकर लिख दिया है। वारतापरक ख्यातों में अधिकांशतः अनुश्रुतियों और भाटों व रावों की पोथियों के माध्यम से प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया है। साथ ही तत्कालीन राजा के आश्रय में रहने के कारण ख्यात लेखक ने प्रशस्ति-शैली को अपना कर जो वर्णन तैयार की वे भी साथ में जोड़ दी गई हैं। 'मुंहता नैणसी री ख्यात' वारतापरक ख्यात का ज्वलन्त उदाहरण है।

मुहणा नैणसी जैसलमेर की ओर से आकर जोधपुर के राज्याश्रय में रहे थे। नैणसी ने अपने जीवन के यौवन-काल में उत्कर्ष के मध्य दिनों को देखा था तो जीवन के संध्या काल में राजनीतिक अपकर्ष की गहरी लीक भी उन पर खिंच गई थी। वह वीर सहृदय और मेधावी थे। उनकी बहुमुखी प्रतिभा और साहित्यिक चेतना ने उन्हें इतिहास की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया। युद्ध-नीति में वे जितने निपुण थे उससे कहीं अधिक कौशल उनकी कलम में था। सच्चे अर्थों में वे कलम के धनी थे। इतिहास के अध्येता होने के कारण ऐतिहासिक सामग्री को संकलित करने-करवाने की दिशा में उन्होंने बहुमूल्य कार्य किया। इतिहास संबंधी सामग्री उन्हें जहाँ से भी और जिस स्रोत से प्राप्त हुई उन्होंने उसे लिपिबद्ध किया। अधिकांशतः उनको रचना-संकलन में भाटों व रावों की पुस्तकों परम्परागत पीढ़ियों और वंशावलियों संबंधी सामग्री की विशेष सहायता प्राप्त हुई।

राजस्थान में ख्यात-रचना पद्धति को नैणसी ने नवीन रूप-विधान दिया। उन्होंने ख्यात का स्वरूप केवल राजवंशी क्रमबद्धता तक ही सीमित न रख कर उसे विविध वार्ताओं के संकलन की दृष्टि तक विकसित कर दिया। 'नैणसी री ख्यात' इसी संकलन का सुन्दर उदाहरण है। इस संबंध में यह भी कहा जाता है कि यदि 'नैणसी री ख्यात' की सभी वार्ताओं को क्रमबद्ध कर के रखा जाय तो वह पूरा इतिहास बन जाता है। पर वह इतिहास एक राज वंश का न होकर विविध राज वंशों ठिकानों राजपूतों तथा वीर पुरुषों का इतिहास ही बन सकेगा।

नैणसी री ख्यात' में वार्ताओं का स्वरूप केवल मनोरंजन करने वाली अथवा पाठकों को चमत्कृत कर नवीन लोक का सृजन करने वाली घटना-प्रधान वार्ताओं जैसा नहीं है अपितु ख्यात में ऐसी वारतायें हैं जिनमें राजस्थान के कतिपय राज वंशों का विवेचनात्मक वर्णन है राजाओं क्षत्रिय-वीरों और सामन्ती मान्यताओं का सम्यक निरूपण है जिसमें कईएक राज वंशों की वंशावलियां पीढ़ियां मितरें और इतिहास का स्वरूप-विधान है। ख्यात में राजस्थान के प्रसिद्ध राज वंशो से संबंधित वारतायें इतिहास और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से महत्त्व रखती है। मध्यकालीन भारत की राजनैतिक गतिविधियों का ख्यात में अपने ढंग का निरूपण किया गया है। मुगल बादशाहों और राजपूती गढ़ का जो वर्णन ख्यात में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। नैणसी की ख्यात में ऐसी घटनाओं और प्रसंगों का यत्र-तत्र उल्लेख है जिनका वर्णन अन्यत्र किसी इतिहास या तवारीख तक में देखने को नहीं मिलता। छोटी से छोटी घटना और बड़ी से बड़ी समस्या का विवरण ख्यात की प्रमुख विशेषता है। जहां ख्यात में सिद्धराज द्वारा रुद्रमाली प्रासाद के निर्माण की बात की गई है वहां चौलोदिया री ख्यात बूंदी रा धणियां री ख्यात अणहलवाड़ा पाटण री ख्यात सोढ़ां री बात वडगूजरां री ख्यात आदि ख्यात-वार्ते भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। संक्षेप में यदि हम कहे कि राजस्थान गुजरात मध्य-भारत दक्षिण और मुसलमानीन विविध घटना-प्रसंगों का जो वस्तु-निरूपण ख्यात में किया गया है वह इतिहास के विद्वानों और अनुसंधित्सुओं के लिए नवीन जानकारी देने वाला है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वस्तुतः 'नैणसी री ख्यात' इतिहास का अनमोल खजाना है। यही कारण है कि उन्हें विद्वान राजस्थान का अबुलफजल कहते हैं।

इतिहास के मर्मज्ञ होने के साथ-साथ नैणसी भाषा-शास्त्र के भी पारंगत विद्वान थे। वे बहुभाषाविद् कहे जा सकते हैं। 'नैणसी री ख्यात' में उनकी भाषा का वैभव खुल कर निखरा है। राजस्थानी भाषा के दोनों रूपों—साहित्यिक और लौकिक का सम्यक स्वरूप ख्यात में दृष्टिगत होता है। संस्कृत और अरबी-फारसी के कई शब्दों को नैणसी ने राजस्थानी कलेवर में प्रस्तुत कर दिया है। ख्यात की वर्णन-शैली कहीं कहीं चमत्कारिक और प्रवाहयुक्त है तो कहीं गंभीर कथन को इस सरस और सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि पाठक रसानुभव करने में समर्थ हो सकता है। नैणसी का गद्य नीरस और शुष्क गद्य नहीं है। ख्यात में गद्य की सरसता चमत्कारिकता और काव्यात्मकता का दर्शन सभी भांति किया जा सकता है। 'नैणसी री ख्यात' में लौकिक तत्वों का भी अद्भुत समन्वय है। लोक की धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं का उल्लेख यत्र-तत्र प्राप्त होता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है जिसमें अणहिलवाड़ा पाटण की स्थापना के संबंध में बात कही गई है—

> वनराज बडो रजपूत हुवो। तिको एक नवो सहर वसावण री मन धरै छै। इण पाटण री ठोड़ एक कोई पवाड़ियो अणहल नामै स्याणो आदमी हुतो। तिण एक तमासो दीठो हुतो। एकण गाडर भांसै नाहर दोड़ियो। गाडर भागै नाठी। इण पाटण री ठोड़ गाडर आई तरै नाहर सूं सामी मांड ऊभी रही। तिका बात अणहल दीठीहुती। तिको वनराज धरती देखतो फिरै छै तरै अणहल पवाड़ियो आय वनराज चावड़ा नूं मिळियो। कह्यो— "हूं थांनू सहर वसावण नूं इसड़ी ठोड़ एक बताऊं, जिको बडो सजीत नीड़ो हुवै। पिण थे मोनूं बोल दो। क्यूं सहर मांहै म्हारो नांव घालो। तरै वनराज बोल-वोल दिया। तरै अणहल गाडर नै नाहर वाळी बात कही। तरै हमैं पाटण वसै छै इण ठोड़ चावड़ा वनराज नूं दिखाई। वनराज ठोड़ देख बोहत राजी हुवो नै अणहलवाड़ो पाटण सहर रो नाम दियो।

(मुहता नैणसी री ख्यात भाग १ पृ. २५८ राज. प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित)

इसी प्रकार ख्यात में लौकिक उक्तियों का प्रयोग तो है ही साथ ही अनेकानेक लौकिक मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग ने ख्यात के भाषा-वैभव को एक विशिष्ट आभा और ओजस्विता प्रदान करती है। राजस्थानी भाषा शैली का परिमार्जित व साहित्यिक स्वरूप इस ख्यात की एक विशिष्टता है। राजस्थानी गद्य का प्रौढ़ रूप इस ख्यात में सुगमता से देखा-परखा जा सकता है। वस्तुतः 'मुहता नैणसी री ख्यात' भारतीय मध्य-युगीन इतिहास की एक ऐसी कड़ी है जिसके अभाव में मध्यकाल की ऐतिहासिक परम्परा की परिपूर्ण शृंखला नहीं बन सकती। क्या इतिहास क्या साहित्य क्या समाज और क्या भाषा सभी दृष्टियों से ख्यात का महत्व सर्वोपरि है।

वात-परक ख्यातों में नैणसी री ख्यात के अतिरिक्त कई एक ऐसी ख्यातनामा ख्यातें हैं जो इसी परम्परा में ली जा सकती हैं जिनमें किसी राज वंश के तीन-तीन चार चार राजाओं की बात की गई है। यथा—बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात—महाराजा सुजाणसिंहजी सूं महाराजा गजसिंहजी ताईं, ख्यात राठौड़ां री—महाराजा सरदारसिंहजी सूं विजयसिंहजी ताईं आदि। इन ख्यातों में प्रत्येक राजा के राज्य काल का वर्णन किया है।

पुत्रों घरबारों सन्धि-विग्रहों आदि का वर्णन है। जिनमें कहीं-कहीं तो क्रमबद्धता भी है तो किन्हीं में क्रम का कोई सिलसिला ही दृष्टिगत नहीं होता। वार्तापरक ख्यातों का राजस्थान में बाहुल्य है। इन ख्यातों की नकलें भी यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं जिनमें भाषा के विविध रूपों को देखा जा सकता है। एक ही नाम की ख्यात मे जो दो-चार स्थानों में उपलब्ध हो सकती है लिपिकर्त्ताओं की कृपावश मूल रूप से अधिक विकसित तो हो ही जाती हैं साथ ही क्रिया व सर्वनाम आदि में प्रान्तीयता का पुट भी समाविष्ट होना स्वाभाविक हो जाता है। अधिकांशतः इन वार्तापरक ख्यातों में राजाओं के पारस्परिक वैमनस्य षड्यन्त्र और विग्रह-विजयों का उल्लेख तो है ही साथ ही युद्ध में काम आने वाले वीरों की संख्या सती होने वाली रानियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राज्य-लिप्सा व्यक्ति को किन-किन कुचक्रों की सृष्टि करने मे प्रेरित करती है—यह इन ख्यातों के वर्णनों से जाना जा सकता है। तेस्सीतोरी ने अनेकानेक ऐसी ख्यातों का उल्लेख किया है जिनमें ख्यात बात विगत पीढ़ियां वंशावलियाँ आदि संग्रहीत हैं। गद्य के साथ प्रसंगानुसार कवित्त दोहों और गीतों का अद्भुत समन्वय इनमें मिलता है। ये गीत ख्यात लेखक की अपनी रचना भी होते हैं तो सुप्रसिद्ध चारणों की उक्तियों को भी इनमें स्थान दे दिया गया है। इस प्रकार वार्तापरक ख्यातें अपने विभव-वैभव की दृष्टि से अनेकता में एकता और एकता में अनेकता की गरिमा लिए हुए है। जिनमें ऐतिहासिक तथ्य कम पर लौकिक जनश्रुतियाँ और प्रशस्ति-गायन की कला का निखार समाविष्ट है। बात के रूप में ख्यात का निरूपण इनकी प्रमुख विशेषता है। 'नैणसी री ख्यात' इस परम्परा की प्रमुख रचना होते हुए भी अन्य रचनाओं से मौलिक भेद रखती है।

व्यक्तिपरक ख्यात—

व्यक्तिपरक ख्यातें राजस्थान में बहुतायत से प्राप्त होती हैं जिनमें मौलिक रचनायें तो कम हैं पर अधिकांशतः लिपिबद्ध या नकलें हैं। राजस्थान के किसी एक राजा के व्यक्तित्व की साधिकार प्रधानता व्यक्तिपरक ख्यातों की प्रमुख विशेषता है। विशेष कर यहां पर जब ख्यात-लेखन-परम्परा का प्रचार प्रसार जोर पकड़ने लगा तो प्रत्येक राजा ने अपने नाम और सम्मान को ऊंचा उठाने के लिए, अपने वंश की गौरव-वृद्धि के लिए जहां स्व वंश सम्बन्धी प्राचीन इतिहास को तो संकलित करवाया ही पर मुख्य रूप से अपने प्रतिष्ठ की राजाओं की दृष्टि में भी अपने व्यक्तित्व को विराट दिखलाने के लिए ख्यात लिखवाई। ख्यात-लेखकों ने भी अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में जम कर लिखा। उन्होंने हूमा को महाराणी कायर को महान विजेता तो बताया ही साथ ही उनकी पराजयों को भी विजयों से मंडित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि सभी ख्यात लेखकों ने एक-सी परम्परा का अनुसरण किया है पर विशेष रूप से छोटे-छोटे राजाओं ने जो ख्यातें लिखवाईं वह इसी भावना का प्रतीक हैं, जिसका प्रभाव कुछ बड़े राज वंशों के ख्यात-लेखकों पर भी पड़ा है। व्यक्तिपरक ख्यातों की उपलब्धि दो प्रकार की है—

१ क्रमबद्ध ख्यातों में से एक ही विशेष चरित्र (राजा) का वर्णन इच्छानुसार निकाल कर उसमें अपनी ओर से परिवर्तन कर देना—अनेक ऐसे ख्यात लेखक या लिपि-

पुत्रों, सरदारों सन्धि-विग्रहों आदि का वर्णन है। जिनमें कहीं-कहीं तो क्रमबद्धता भी है तो किन्हीं में क्रम का कोई सिलसिला ही दृष्टिगत नहीं होता। वारतापरक ख्यातों का राजस्थान में बाहुल्य है। इन ख्यातों की नकलें भी यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं जिनमें भाषा के विविध रूपों को देखा जा सकता है। एक ही नाम की ख्यात में जो दो चार स्थानों में उपलब्ध हो सकती है, लिपिकर्त्ताओं की कृपावश मूल रूप से अधिक विकसित तो हो ही जाती है, साथ ही क्रिया व सर्वनाम आदि में प्रान्तीयता का पुट भी समाविष्ट होना स्वाभाविक हो जाता है। अधिकांशतः इन वारतापरक ख्यातों में राजाओं के पारस्परिक वैमनस्य षड्यन्त्र और विग्रह-विजयों का उल्लेख तो है ही साथ ही युद्ध में काम आने वाले वीरों की संख्या सती होने वाली रानियां के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राज्य-लिप्सा व्यक्ति को किन-किन कुकृत्यों की सृष्टि करने में प्रेरित करती है—यह इन ख्यातों के वर्णनों से जाना जा सकता है। टेस्सीतोरी ने अनेकानेक ऐसी ख्याता का उल्लेख किया है जिनमें ख्यात बात विगत पीढ़ियां वंशावलियां आदि संग्रहीत हैं। गद्य के साथ प्रसंगानुसार कवित्त दोहों और गीतों का अद्भुत समन्वय इनमें मिलता है। ये गीत ख्यात लेखक की अपनी रचना भी होते हैं तो सुप्रसिद्ध चारणों की उक्तियों को भी इनमें स्थान दे दिया गया है। इस प्रकार वारतापरक ख्यात अपने शिल्प-वैभव की दृष्टि से अनेकता में एकता और एकता में अनेकता की गरिमा लिए हुए हैं। जिनमें ऐतिहासिक तथ्य कम पर लौकिक उद्भावनायें और प्रशस्ति-गायन की कला का निखार समाविष्ट है। बात के रूप में ख्यात का निदर्शन इनकी प्रमुख विशेषता है। 'नैणसी री ख्यात' इस परम्परा की प्रमुख रचना होते हुए भी अन्य रचनाओं से मौलिक भेद रखती है।

व्यक्तिपरक ख्यात—

व्यक्तिपरक ख्यातें राजस्थान में बहुतायत से प्राप्त होती हैं जिनमें मौलिक रचनायें तो कम हैं पर अधिकांशतः लिपिबद्ध या नकलें हैं। राजस्थान के किसी एक राजा के व्यक्तित्व की साधिकार प्रशंसा व्यक्तिपरक ख्यातों की प्रमुख विशेषता है। विशेष कर यहां पर जब ख्यात-लेखन-परम्परा का प्रचार प्रसार वेग पकड़ने लगा तो प्रत्येक राजा ने अपने नाम और सम्मान को ऊंचा उठाने के लिए, अपने वंश की गौरव-वृद्धि के लिए जहां स्व वंश सम्बन्धी प्राचीन इतिहास को तो संकलित करवाया ही पर मुख्य रूप से अपने प्रतिष्ठित राजाओं की दृष्टि में भी अपने व्यक्तित्व को विराट दिखलाने के लिए ख्यातें लिखवाईं। ख्यात-लेखकों ने भी अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में जम कर लिखा। उन्होंने मूल को महारानी कामर को महान विजेता तो बताया ही साथ ही उनकी पराजयों को भी विजयों से मंडित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि सभी ख्यात लेखकों ने एक-सी परम्परा का अनुसरण किया है पर विशेष रूप से छोटे-छोटे राजाओं ने जो ख्यातें लिखवाई वह इसी भावना का प्रतीक है, जिसका प्रभाव कुछ बड़े राज वंशों के ख्यात-लेखकों पर भी पड़ा है। व्यक्तिपरक ख्यातों की उपलब्धि दो प्रकार की है—

१ क्रमबद्ध ख्यातों में से एक ही विशेष चरित्र (राजा) का वर्णन इच्छानुसार निकाल कर उसमें अपनी ओर से परिवर्तन कर देना—अनेक ऐसे ख्यात लेखक या लिपि-

कारों की रचनायें प्राप्त होती हैं जिन्होंने इस प्रकार का कार्य किया। यथा धर्मसिंघजी री ख्यात मजसिंघजी री ख्यात जोधा रतनसिंघोत री ख्यात महाराजा भीमसिंघजी री ख्यात राव मालदेव री ख्यात आदि।

इन ख्यातों में लिपिकारों ने एक ही चरित्र को तो प्रधानता दी है, परन्तु उसमें कहीं-कहीं ऐसे क्षेपक प्रश भी जोड़ दिये हैं जिनमें इतिहास का अंश गु थसा पड़ गया है। इनमें सन-संवत और प्रमुख घटनाओं में अन्तर स्पष्ट है। सामाजिक और सामन्ती मनोवृत्ति का परिचय इस प्रकार के संकलन की एक विशेषता है। राजाओं की पारस्परिक द्वेष भावना और षड़यन्त्रों और लड़ाई झगड़ों का वर्णन इनमें खूब कर मिलता है। राजाओं द्वारा दान में दिए गये गांवों की विगतों का विशेष उल्लेख इनमें हुआ है। इस प्रकार इन ख्यातों में लिपिकारों ने अपने विशेष चरित्र की प्रशस्ति में जो उद्भावनायें अपनी ओर से की हैं उन्हें उनकी मौलिक सूझ-बूझ का प्रतीक कहा जा सकता है। इन ख्यातों की भाषा भी लिपिकारों की कृपा-दृष्टि से बहुत कुछ बदल गई है। कई एक ख्यातो में आधुनिकता का रंग भी चढ़ा हुआ है जिनमें हिन्दी उर्दू व राजस्थानी का अद्भुत समन्वय है। व्यक्तिपरक ख्यातों में कुछ ख्यातें भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के समय लिखी गई हैं जिनमें 'फिरंगी अमरेज गोरा' आदि शब्दों का प्रयोग हैं। इस प्रकार क्रमबद्ध इतिहास में से उठा कर किसी चरित्र को लिपिबद्ध करते समय लिपिकारों ने उनके चरित्र-विन्यास पर विशेष कृपा की है।

२ दूसरे प्रकार की व्यक्तिपरक ख्यातें केवल ख्यात लेखक ने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में लिखी है वह है। इस प्रकार की ख्यातें कालान्तर तक लिखी जाती रही है और जिनके हाथों में वह ख्यात' पड़ गई, उसने भी अपने ढग से उसमें लिख दिया है। तीन-तीन चार चार हाथों की लिपियां ऐसी ख्यातों में देखी जा सकती है। 'महाराजा तख्तसिंघजी री ख्यात में तीन चार लिपिकारों के हाथ की लिखावट है और यह ख्यात तीन रूपों में मिलती है—(१) आदि नारायण से तख्तसिंघजी के शासन काल तक का वर्णन (२) केवल तख्तसिंघजी के शासन काल का वर्णन (३) तखतसिंघजी के काल की कुछ प्रमुख घटनाओं का वर्णन। इस प्रकार की ख्यातों में ख्यात लेखक ने कुछ ईमानदारी से काम लिया है। अपने आश्रय-दाता के गुण-गौरव में मर्यादा का ध्यान भी रखा गया है और उनके परामर्शों का भी संकेत मिलता है। अन्य सभी विशेषतायें अन्य ख्यातों जैसी ही इनमें भी मिलती हैं। इस प्रकार व्यक्तिपरक ख्यातों का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से न्यून किन्तु तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक निरूपण के विचार से अधिक है।

स्फुट ख्यात—

स्फुट ख्यातों म उन सभी रचनाओं को लिया जा सकता है जिनमें विविध प्रकार टिप्पणियों का संकलन किया गया है जिन्हें ख्यात नाम से अभिहित तो किया गया है पर जिनमें ख्यात की मर्यादा का अंश भी नहीं है। बांकीदास री ख्यात' इसी प्रकार की रचना है।

बांकीदास स्वयं एक कवि या साथ ही उन्ह इतिहास के प्रति भी रुचि थी। इसी रुचि

के कारण उसने ऐतिहासिक सामग्री को संक्षिप्त विवरण के साथ लिपिबद्ध कर लिया था। उसकी बात छोटे-छोटे फुटकर 'नोटस्' के रूप में है जिसका कोई क्रम नहीं है। बांकीदास री ख्यात' नाम से पुस्तक राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मंदिर जयपुर से प्रकाशित हुई है जिसका सम्पादन श्री नरोत्तमदास स्वामी ने किया है। स्वामीजी स्वयं यह मानते हैं— 'लेखक को जब जो बात नोट करने योग्य मिली उसने तभी उसे नोट कर लिया। उसमें कोई क्रम नहीं है। क्रम से लगाने पर भी उससे शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं बनता। अधिकांश बातें दो-दो अथवा तीन-तीन पंक्तियों की ही है। पूरे पृष्ठ तक चलने वाली बात कोई विरली ही है। (बांकीदास री ख्यात प्रस्तावना पृष्ठ २)। स्वामीजी स्वयं जब ऐसा मानते है तो फिर पुस्तक का नाम 'ख्यात' न रख कर 'बांकीदास री टिप्पणियाँ अथवा नोट्स' रखा जाता तो अधिक समीचीन होता। पर 'ख्यात' नाम देकर सामान्य पाठक को भ्रम में डाल दिया गया है। स्वामीजी ने सम्पादन करते समय यदि 'ख्यात' शिल्प पर विचार किया होता तो शायद ऐसी गलती नहीं होती।

'बांकीदास री ख्यात' में २७७६ बातों का संग्रह है। ये बातें छोटे-छोटे फुटकर 'नोटों' के रूप में है। पुस्तक में अधिकांश बातें राजपूतों के इतिहास से सबंध रखती है। राठौड़ों से सबंधित बातायें बहुसंख्यक है। राजपूतों से सबद्ध बातों में उनकी शाखाओं और राज्यों के विविध विवरण दिये गये हैं। राजपूतों के अतिरिक्त मराठों सिक्खों मुसलमानों पिंडारों योरपियों बैरागियों और अंग्रेजों की बातों का स्थान है। ब्राह्मण और ओसवाल आदि जातियों और जैनों के गच्छों की बातें भी दी गई हैं। फिर धार्मिक भौगोलिक तथा प्रसिद्ध वस्तुओं की बात देकर अन्त में नीति सबंधी फुटकर बातें भी दी गई हैं। यह स्पष्ट है कि बांकीदास ने इन बातों का संग्रह बिना किसी क्रम से किया है इस कारण उनमें पुनरावृत्ति-दोष विशेष रूप से आ गया है। श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने तत्संबंधी रचना पर विचार करते हुए पुस्तक के महत्त्व को तो स्वीकार किया है पर साथ ही लिखा है— "परन्तु उसमें कोई क्रम नहीं है। एक बात मारवाड़ की है तो दूसरी गुजरात की और तीसरी कच्छ की। इस प्रकार एक महासागर सा ग्रन्थ है—एक राजा के तास्लुक की बातें सौ-पचास जगह आ जाती है।" पुस्तक के एक-दो उदाहरण देखिये—

बात संख्या २६६६— 'ईसवर निरंकुस है चाहे सो करें।" पृष्ठ २१३

बात संख्या २७६७—"नवमानव नाईं सू घर बस रहियो पर्छ न रहियो। पृष्ठ २१८

मुसलमानों की बात देखिये—बात संख्या २२१२— 'भजू मियां अमाऊ नजूम री किताबां में लिखियो हो—आखर जमाना रो पैगंबर मुसरसवार होसी।"

बात संख्या २२११—"सो मोहम्मद हुवो मक्का सू कुरेसी तीन सै तेरह मोहम्मद रै साथ मदीनै आया उवे सेख मुहजर कहाया।"

बांकीदास की इस पुस्तक में भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है। इसके माध्यम से कई एक नवीन जानकारी भी प्राप्त होती है। बांकीदास ने अपनी अद्भुत संग्राहक शक्ति से जो सामग्री संकलित की है वह मूल्यवान कही जा सकती है पर उस 'ख्यात' के रूप-विधान के अन्तर्गत ग्रहण नहीं किया जा सकता। स्वामीजी ने पुस्तक की भूमिका में बांकीदास के

जीवन पर तथा उनकी कृतियों का उल्लेख किया है जिनमें २६ कृतियां बांकीदास ग्रंथावली के तीन भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त अन्य दस अप्रकाशित कृतियों का उल्लेख कर के स्वामीजी ने लिखा है— 'पर इनका सब से महत्वपूर्ण ग्रंथ 'ख्यात' है जो अब प्रकाशित हो रहा है। (पृष्ठ ५ प्रस्तावना)। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि बांकीदास की प्रकाशित और अप्रकाशित कृतियों में 'ख्यात' का कोई जिक्र ही नहीं है। अतएव प्रस्तुत कृति को बांकीदास ने 'ख्यात' की दृष्टि से नहीं रचा था वरन् सूचनार्थ आई हुई फुटकर घटनाओं का संकलन मात्र कर लिया था। संकलित नोट्स को 'ख्यात' नहीं माना जा सकता। 'ख्यात' नाम से प्रकाशित या अप्रकाशित किसी भी रचना को हम 'ख्यात' ही मान बैठें—यह उचित नहीं है। तथापि हमने इस कृति को 'स्फुट ख्यात' की श्रेणी में ही रखा है। ऐतिहासिक घटनाओं सम्बन्धी जो तथ्य इस कृति में है वे महत्वपूर्ण हैं तथा डॉ. ओझा ने भी उन्हें विश्वस्त माना है। फिर भी इस कृति का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि १ ये बातें क्रमबद्ध नहीं हैं २ इन बातों में दिया गया वर्णन अधूरा है ३ पीढ़ियावली और वंशावली सम्बन्धी जो जानकारी दी गई है वह भी अपूर्ण और अक्रम है, ४ जिस राजा या ठिकाने का वर्णन दिया गया है वह भी मर्दिम है फिर भी विशेष तथ्यों के आधार पर कृति का महत्वपूर्ण स्थान है—ऐसा हम मानते हैं।

स्फुट ख्यातों के अन्तर्गत अन्यान्य ख्यातें भी रखी जा सकती हैं जिनमें—ख्यात जोधपुर री ख्यात बीकानेर री बीका री, सहरां री ख्यात ओसवालां री ख्यात कविराजा मुरारिदान री ख्यात दिल्ली रे पातसाह री ख्यात आदि महत्वपूर्ण हैं।

वस्तुतः राजस्थान के मध्यकालीन साहित्य में 'ख्यात' साहित्य का स्थान महत्वपूर्ण है। इतिहास साहित्य और भाषा-विकास की दृष्टि से इन ख्यातों का अपना स्थान है। ख्यात साहित्य की संक्षिप्त विशेषतायें इस प्रकार है—

१ मध्यकालीन राजपूतों और राज वंशों की सम्यक जानकारी
२ राजपूतों और मुगलों के सम्बन्ध
३ राजपूतों के ईर्ष्या-द्वेष और पारस्परिक कलह का चित्रण
४ सामन्तकालीन सामाजिक जीवन-दर्शन
५ सांस्कृतिक तत्वों का समावेश
६ लौकिक वार्तापरक मूल्य
७ क्रम और अक्रम का विधान
८ ऐतिहासिक प्रामाणिक सामग्री का चयन
९ गद्य और उपन्यास का महत्व
१० भाषा-शैली का स्वरूप
११ कविता दोहा गीत आदि का प्रासंगिक उपयोग
१२ प्रबन्ध-पटुता
१३ करकर मारण मरमरण का भाव
१४ लोकोक्तियों और मुहावरों का समावेश

१४ राजस्थानी गद्य की प्रांजलता

उपरोक्त इन बिन्दुओं का समावेश मध्यकालीन ख्यात साहित्य में मुख्यता से देखा-परखा जा सकता है। स्रोत और रूप दोनों ही दृष्टियों से 'ख्यात' का राजस्थान में ही नहीं भारतीय इतिहास और साहित्य में अमिट स्थान रहेगा—ऐसी हमारी मान्यता है।

राजस्थान के विभिन्न पुस्तकालयों में प्राप्त ख्यातों की अनुक्रमणिका

१—राजस्थानी शोध संस्थान रिसाला रोड जोधपुर

१ जूनी ख्यात राठौड़ां री
२ ख्यात जोधाजी सू
३ ख्यात बीकानेर री बीकाजी सू
४ किशनगढ़ री ख्यात
५ सहरां री ख्यात
६ ख्यात राठौड़ां री (आदि नारायण से जसवन्तसिंह प्रथम तक)
७ ख्यात राठौड़ां री (महाराजा अजीतसिंहजी से विजयसिंहजी तक)
८ ख्यात राठौड़ां री (तखतसिंहजी)
९ ख्यात अभैसिंहजी स भीवसिंहजी तक
१ तखतसिंहजी री ख्यात
११ जोधपुर रा राठौड़ां री ख्यात
१२ जोधवाळां री ख्यात
१३ ऐतिहासिक बातां

२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर।

१ जोधवाळां री ख्यात
२ तखतसिंहजी री ख्यात
३ अभयसिंहजी री ख्यात
४ अजीसिंहजी री ख्यात
५ राठौड़ां री ख्यात
६ जोधा रतनसिंहोत री ख्यात
७ सीसोदियां री ख्यात
८ अजीतसिंहजी री ख्यात
९ विजयसिंहजी री ख्यात
१ ख्यात सीसोदिया भीरमजी तक
११ बीकानेर री ख्यात

१२ महाराजा भीवसिंघजी री ख्यात
१३ कविराजा मुरारिदान री ख्यात
१४ राजपूत सीसोदियां री ख्यात
१५ पातसाहां री ख्यात
१६ धर्मसिंघजी री ख्यात
१७ रायपालजी री ख्यात
१८ जसवन्तसिंघजी री ख्यात
१९ भीमसिंघजी री ख्यात
२ अजीतसिंघजी री ख्यात
२१ गजसिंघजी री ख्यात
२२ राव मालदेव री ख्यात
२३ राव चन्द्रसेन मालदेवोत री ख्यात

३—पुस्तक प्रकाश जोधपुर
१ तखतसिंघजी री ख्यात

४—अनूप संस्कृत लाइब्रे री बीकानेर :
१ बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात
२ उदयपुर री ख्यात
३ जोधपुर रै राठौड़ां री ख्यात
४ बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात (महाराजा सुजाणसिंघजी सू महाराजा सर्दार सिंघजी ताई)
५ बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात—मूहताजी सू
६ बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात—सीढ़ीजी सू
७ मारवाड़ री ख्यात (३ भाग)

५—प्राच्य अभिलेखागार, बीकानेर
१ महाराजा विजैसिंघजी री ख्यात
२ महाराजा करणसिंघजी री ख्यात
३ महाराजा रामसिंघजी री ख्यात
४ राव जोगाजी राव सूजाजी सातलजी महाराजा गजसिंघजी बखतसिंघजी सुमेर सिंघजी मानसिंघजी सूरसिंघजी अजीतसिंघजी अभैसिंघजी सू आधी री ख्यात।
५ दिल्ली रै पातसाहां री ख्यात
६ उदयपुर री ख्यात
७ ख्यात भाटिया री
कोवडला री ख्यात
६ मुरारिदान री ख्यात

१—A Descriptive Catalogue of Bardic Historical Mss, I by Tessitori.

और स्वातन्त्र्योपासना के लिये विश्व इतिहास में सम्मानित हुये हैं। राष्ट्रीय एकता का मारल में सर्वत्र लोप हो गया था। राजनैतिक दासता के साथ-साथ इस्लाम धर्म भी अंगीकृत किया जाने लगा था। यह स्थिति अत्यन्त चिन्तनीय थी। चारण कवियों ने इस 'सांस्कृतिक और राजनैतिक आपद्-काल में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है। वीरत्व की पूजा स्वामी भक्ति और ईश्वर में अटूट आस्था इस जाति की स्वभावगत विशेषतायें हैं। यही भाव चारण कवियों के साहित्य में प्रतिबिम्बित है। 'शौर्य औदार्य देश प्रेम आत्माभिमान बलिदान त्याग ईश्वर-भक्ति आदि मानव हृदय के उदात्त भावों से यह साहित्य ओतप्रोत है।[1] ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में जो इस काल में लिखे गये थे जहाँ इतिहास की मूल्यवान सामग्री उपलब्ध होती है वहाँ तत्कालीन जातीय जीवन एकीभूत संस्कृति तथा डिंगल काव्य का अत्यन्त प्रांजल रूप प्रकट हुआ है। हिन्दू संस्कृति के रक्षक और मातृभूमि की स्वतन्त्रता के पुजारियों का ओजस्वी वाणी में प्रशस्ति-गान कर तथा पराजित जाति को नव-जीवन तथा शक्ति का उद्बोधन देकर इन कवियों ने राष्ट्रीय-कविता की धारा प्रवाहित की। यह चाहे आश्चर्यजनक लगे किन्तु सत्य है कि राष्ट्रीय कविता का उद्घोष सर्वप्रथम हमें चारण साहित्य में ही सुनाई देता है। बारहठ बारूजी सौदा [चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ] से डिंगल साहित्य के प्रारम्भ काल में राष्ट्रीय-कविता की जो धारा प्रवाहित होती है वह अमरणाजी बारहठ सूरायच टापरिया राठौड़ पृथ्वीराज दुरसा आढ़ा साहू माला आदि में अपनी परम्परा को अक्षुण्ण रखती हुई आगे बढ़ती है। दुरसाजी इस धारा के मूर्धन्य कवि हैं।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में दुरसा आढ़ा राजस्थानी साहित्य का पूर्व मध्यकाल की एक बहुत बड़ी देन है। यद्यपि इस काल में वीर, शृंगार, भक्ति और नीति के अनेक ख्याति-प्राप्त कवि हुये। कृष्णदास मीराबाई माधवानन्द ईसरदास पृथ्वीराज सांयाजी झूला प्रभृति कवियों का राजस्थानी साहित्य मे अपना स्थान है किन्तु दुरसा आढ़ा की साहित्यिक देन अपूर्व है। तथ्यों प्रमाणों और कवि की जीवन-सामग्री तथा कृतियों की सम्पूर्ण जानकारी के अभाव में दुरसाजी पर पूरा कार्य हो नहीं सका यह राजस्थानी साहित्य का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा अन्यथा कवि का सही मूल्यांकित स्वरूप हमारे सामने आ सकता था।

जीवन वृत्त—

दुरसाजी का जीवन वृत्त जन्म तथा मृत्यु-तिथि और साहित्यिक सृजन बड़े विवादग्रस्त है। इसका एक मात्र कारण यही है कि स्वयं कवि ने अपने सम्बन्ध में अन्तसाक्षी के रूप में अपवादस्वरूप ही लिखा। डॉ॰ मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है—"ये आढ़ा गोत्र के चारण थे। इनका जन्म सं॰ १५९२ में जोधपुर राज्यान्तर्गत धूंधला नामक

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ॰ हीरालाल माहेश्वरी पृ॰ ६६

[2] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ॰ मोतीलाल मेनारिया पृ॰ १७८

गाँव में हुआ" । गुजराती के विद्वान श्री शंकरदान जेठीभाई देथा[1] के मतानुसार इनका जन्म संवत् १५६६ में बीराएा (जोधपुर) में हुआ और स्वर्गवास संवत् १७ द में हुआ । डॉ जगदीश श्रीवास्तव ने डॉ मेनारिया का ही समर्थन किया है । मुहता नैणसी की ख्यात और अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर वे इनका जन्म सन् १५१५ ई में धूधला ग्राम में और मृत्यु सन् १६२५ ई में लगभग ९२ वर्ष की अवस्था में पांचटिया ग्राम में मानते हैं । श्री अगरचन्द नाहटा डॉ मेनारिया के मत से सहमत नहीं हैं । श्री ओझाजी और आसो पाजी के इतिहास ग्रंथों तथा अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने श्री देथा की मान्यता को अधिक सगत माना है ।

इनके पिताजी का नाम मेहाजी था । ये आढ़ा गोत्र के चारण थे । बाल्य काल में ही दुरसाजी मातृ पितृहीन हो गये । कहते हैं निर्धनता के कारण दुरसाजी के पिता ने इनके जन्म के पूर्व ही सन्यास ले लिया । धपढ़ो गाँव (जोधपुर) के ठाकुर प्रतापसिंह ने इनका लालन-पालन किया । इसके प्रमाणस्वरूप स्वयं दुरसाजी का लिखा एक सोरठा मिलता है—

मार्थे भागीवाह, जनम तसी ठ्याबर जिती ।
सोहड़ सूप चाताँह पालनहार प्रतापसी ॥

डॉ हीरालाल माहेश्वरी ने एक जन-श्रुति के आधार पर बताया है कि इन्हें किसी जैन जती ने[2] पाल-पोष कर बड़ा किया और पढ़ाया-लिखाया । स्वयं कवि का उपरोक्त सोरठा ही इस प्रमाण के रूप में लेना चाहिये और यही मानना चाहिए कि ठाकुर प्रतापसिंह ने ही इनका लालन-पालन किया ।

एक जन-श्रुति यह है कि दुरसाजी को अकबर के दरबार में आश्रय मिला था । इस जन-श्रुति का कविराज श्यामलदास भूरसिंह शेखावत डॉ उदयनारायण तिवारी जवेर चन्द मेघाणी शंकरदान जेठीभाई देथा डॉ कन्हैयालाल सहल डॉ सरयूप्रसाद अग्रवाल तथा डॉ मेनारिया आदि ने समर्थन किया है किन्तु इस सत्य को प्रमाणित करने वाली ऐतिहासिक सामग्री आज भी कहीं उपलब्ध नहीं हुई है । कवि की कृतियों में भी इस विषय को लेकर परस्पर विरोध है । अपने दो स्फुट गीतों में जो गीत दिये जाते हैं, इन्होंने दिल्ली के तख्त और बादशाह अकबर की मुक्त-कण्ठ से अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की है—

बाराणवजि मयरा (कै नूं) धरजण बाराणवजि
सरवण रोमणा (कै नू) कंस-संहार

---

[1] गुजराती नवजीवनी प्रथम भाग—श्री शंकरदान जेठीभाई देथा
डिंगल साहित्य—डॉ जगदीश श्रीवास्तव पृ १३

[2] राजस्थानी सबद कोस—श्री सीताराम लालस (भूमिका)

[3] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ माहेश्वरी पृ १८

साँसौ नाम हुमायूं समोभ्रम (तू)
अकबर साह कवण अवतार ॥ १
निपम साच मानव गत नाही
असपत कथ साँची अखवार
बैपख भ्रमर कै तू भ्रम—बेपख
गिरधारण कै तू गिर-धार ॥ २

किन्तु जब हम कवि के अन्य काव्य पर दृष्टिपात करते हैं तो कहीं भी किसी और अकबर की प्रशंसा में रचित काव्य सामग्री नहीं मिलती। कवि को डिंगल साहित्य में अमर करने वाली कृति 'विरद छिहत्तरी' में तो इसके विपरीत अकबर को बुरी तरह से कोसा गया है। उसके प्रति ऐसे कठोर शब्दों और भावों की अभिव्यक्ति इसमें हुई है जो कोई भी आश्रित कवि अपने आश्रयदाता के लिये प्रयुक्त नहीं कर सकता। अतः यह विषय हमें विवादग्रस्त ही मानना पड़ेगा कि कवि कभी अकबर के दरबार में आश्रित के रूप में रहे थे। राष्ट्रीय काव्य-धारा की सुरसरी को प्रवाहित करने वाले पुण्य-श्लोक दुरसाजी के व्यक्तित्व में यह विरोध उचित प्रतीत नहीं होता। निश्चित सत्य क्या है यह अभी तक शोध का विषय ही है। अकबर के दरबार में एक यशस्वी कलाकार के रूप में उनका आने-जाने रहना संभव है। यह भी संभव है कि विद्यानुरागी और कला-पारखी अकबर ने इन्हें सम्मान दिया हो। उनका अकबर के यहाँ राज्याश्रय विचारणीय है।

अकबर के सम्पर्क में आने के माध्यम को लेकर भी अभी निश्चित तथ्य प्राप्त नहीं हुये हैं। एक मान्यता यह है कि जब यह बगड़ी के ठाकुर प्रतापसिंह के यहाँ निवास कर रहे थे तब एक बार अकबर आगरे से अहमदाबाद जा रहा था। सोजत से लेकर, जो इस यात्रा में मार्ग पर पड़ता था, सूबोव तक की सारी व्यवस्था का भार प्रतापसिंह को सौंपा गया था। उन्होंने यह व्यवस्था भार दुरसाजी के कन्धों पर डाल दिया। इन्होंने बड़ी चतुराई से यह सुव्यवस्था की। यहीं अकबर से साक्षात्‍ हुआ और कहते हैं अकबर ने इन्हें 'लाख पसाव' तथा सवा का प्रमाण-पत्र दिया।

दूसरी मान्यता यह है कि संवत १६१५–१६ के आसपास यह स्वयं एक बार अकबर के अभिभावक बैरामखाँ से मिले थे। यह भेंट अजमेर में हुई थी। दुरसाजी पुष्कर-स्नान के लिये जा रहे थे और बैरामखाँ सार्वजनिक अजमेर आये हुये थे। बैरामखाँ के कर्मचारियों ने प्रारम्भ में यह भेंट नहीं होने दी। कहते हैं एक बार सन्ध्या समय बैरामखाँ बाहर भ्रमणार्थ निकले तब उसी मार्ग पर कुछ दूर खड़े होकर यह जोर जोर से निम्नांकित दोहा सुनाने लगे—

पाकर पार अधिर पर अमनी पर ज्यु नीर।
इसा कवि का दुरस पर है बहराम वजीर॥

दुरसाजी ने बैरामखाँ की प्रशंसा में उस समय निम्नांकित दोहे और कहे—

[illegible] ।
[illegible] ॥

पीर पराई मेटणा एह पीर का काम।
मेरी पीड़ा मेट दे बड़ा पीर बहराम॥
विभीषण कूं वारिधि तट भेटे जो एक राम।
अब मिळाया अकबर से दुरसा कूं बहराम॥

कहा नहीं सकता दुरसाजी पर तब क्या संकट था। वे बैरामखाँ से किस प्रकार की सहायता चाहते थे? क्यों चाहते थे? किन्तु यह प्रशंसा भी अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण है। इसे युग परम्परा ही मानना चाहिये। इस प्रशंसा-काव्य को सुन कर बैरामखाँ का दुरसाजी से प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। अपने डेरे पर बुला कर बैरामखाँ ने कवि को एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया और यह भी विश्वास दिलाया कि वे कवि को बादशाह से अवश्य मिला देंगे। कहते हैं अपने वायदे के अनुसार ठीक दो महीने पीछे बैरामखाँ ने दुरसाजी को अकबर से मिला दिया। अकबर की प्रशंसा में उन्होंने ओजस्वी गिरा में काव्य-पाठ किया और एक 'कोड़पसाव' प्राप्त किया।

इस सम्बन्ध में तीसरी मान्यता और है। जोधपुर के प्रसिद्ध कवि मनखाजी बारहठ तब अकबर के दरबारी कवि थे। कहते हैं मनखाजी ही इन्हें अकबर के शाही दरबार में ले गये। मनखाजी की इस उदारता के प्रति कवि ने अपनी कृतज्ञता निम्नांकित दोहे में प्रकट की है—

दिल्ली दरगह अम्ब-तरु ऊँची फळद अपार।
चारण लक्खी चारणा डाळ नमावणहार॥

इतिहास ग्रंथों की सामग्री से यह प्रकट होता है कि दुरसाजी केवल कवि ही नहीं थे वे तलवार के धनी भी थे। यह बात अनेक चारण कवियों के सम्बन्ध में कही जाती है और इतिहास में इसके प्रमाण भी हैं। चारण कवि हिन्दू संस्कृति, मातृभूमि और धर्म की रक्षार्थ रणभूमि में हँसते-हँसते अपने सिर भी कटवा देते थे। दुरसाजी ने भी चारण कवि-धर्म के अनुकूल युद्ध में भाग लिया था। सं १६४० में सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध सीसोदिया जगमाल की सहायता के लिये अकबर ने जोधपुर के रायसिंह चन्द्रसेनोत और दांतीवाड़ा के स्वामी कोलीसिंह के नेतृत्व में एक सेना भेजी थी। उस समय दुरसाजी भी रायसिंह के साथ थे। आबू के निकट दत्ताणी नामक स्थान पर भयंकर रक्तपात हुआ। रायसिंह, कोलीसिंह, जगमाल इत्यादि वीर मारे गये। दुरसाजी घायल हो कर युद्ध भूमि में गिर गये। राव सुरताण और अन्य सरदार जब उधर से निकले तो इन्होंने बड़ी ही करुण वाणी में कहा—मुझे मत मारो—मैं चारण हूँ। इस युद्ध में राव सुरताण की सेना का स्तम्भ देवड़ा समरा वीर गति को प्राप्त हो गया था। दुरसाजी को कहा गया कि यदि आप चारण हैं तो देवड़ा समरा की कीर्ति में कोई गीत कहें। तब उसी समय दुरसाजी ने निम्नांकित दोहा सुनाया—

धर रावाँ जस डूँगराँ कव पोताँ जस हाण।[1]
समरै मरण सुधारियो चहुँ थोकाँ चहुआण॥

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ मेनारिया पृ० १८२

इसका पाठान्तर इस प्रकार भी मिलता है—

> घर रावां जस डूंगरां दव पोतां सत्र हाण।
> समरै मरण सुधारियो चहुं थोकां चहुवाण ॥

इस दोहे को सुन कर राव सुरताण बहुत प्रसन्न हुये। वे इन्हें सम्मान सहित घर ले गये—पोळपात बनाया क्रोड़-पसाव और गांव दे कर कवि को विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की।

मैं ऊपर उल्लेख कर आया हूं कि कवि के सम्बन्ध में महाकवि बहुत कम सामग्री उपलब्ध हो सकी है अतः उनके जीवन के सम्बन्ध में विस्तार से प्रामाणिक सामग्री देना कठिन है। इनके पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में केवल इतनी ही सामग्री मिलती है कि इन्होंने दो विवाह किये थे। भारमलजी जगमलजी साधूजी और किसनाजी इनके पुत्र थे। यह प्रायः किसनाजी के पास ही रहा करते थे और पांचेटिया में सं १७१२ में इनका अवसान हुआ।

ये अनेक वीरों इतिहास प्रसिद्ध राजाओं और कवियों के समकालीन थे। बीकानेर के राजा रायसिंह सिरोही के राव सुरताण जोधपुर के राव चन्द्रसेन और मेवाड़ के राणा प्रताप इन्हीं के काल में हुये। डिंगल के प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज ईसरदास और साडू माला भी इनके समय में ही हुये। पृथ्वीराज की वेलि की प्रामाणिकता को लेकर जब प्रश्न उठा तो ये भी चार सम्मतिदाताओं में थे। इनकी सम्मति पृथ्वीराज के पक्ष में नहीं थी। किन्तु इनका द्वारा रचित एक गीत मिलता है जिसमें वेलि की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की गई है। संभव है इन्होंने अपना मत बाद में बदल लिया हो।

कहते हैं कवि के रूप में जितना धन यश और सम्मान दुरसाजी को प्राप्त हुआ उतना डिंगल के किसी कवि को प्राप्त नहीं हुआ। कवि के अतिरिक्त इनके व्यक्तित्व की अन्य विशेषतायें संभव है इसका कारण रही हों। अपने काल में यह बहुत ही लोकप्रिय हुये। दुरसाजी की एक पीतल की मूर्ति भी पांचेटिया गांव के अचलेश्वरजी के मन्दिर में सुरक्षित है। इससे कवि की ख्याति का पता लगता है।

कृतित्व—

जिस प्रकार दुरसाजी के जीवन वृत्त की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं होती उसी प्रकार उनके द्वारा विरचित सम्पूर्ण साहित्य का भी अभी पता नहीं लग पाया है। डॉ मोतीलाल मेनारिया डॉ जगदीश गुप्त श्री अगरचन्द नाहटा डॉ हीरालाल माहेश्वरी श्री सीताराम लाळस प्रभृति विद्वान इस विषय पर पृथक-पृथक मत रखते हैं। डॉ मेनारिया के अनुसार दुरसाजी ने तीन ग्रंथ—विरुद्ध छिहत्तरी किरतार बावनी और श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत लिखे। वे 'विरुद्ध छिहत्तरी' तो दुरसाजी की ही कृति मानते हैं किन्तु शेष दो ग्रंथों को ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में संदिग्ध मानते हैं। डॉ मेनारिया के अनुसार

राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ हीरालाल माहेश्वरी पृ १४९

मरुभारती (वरस ४ अंक ७ १९५६ जुलाई) में प्रकाशित श्री नाहटा का लेख

दुरसाजी ने स्फुट काव्य भी लिखा जो गीत कवित्त दोहा और सोरठा के रूप में राजस्थान में प्रचलित है।

डॉ जगदीश श्रीवास्तव ने डॉ मेनारिया के मत का ही समर्थन किया है। वे भी कवि की दो अन्य कृतियों—करतार बावनी और श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत को संदिग्ध मानते हैं। इसके अतिरिक्त डॉ श्रीवास्तव ने यह भी जानकारी दी है कि स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले वीरों की प्रशंसा में दुरसाजी ने अनेक वीर-गीत लिखे। महाराणा अमरसिंह (शासन काल सन् १५९६ १६१६) पर रचित उनके वीर गीत साहित्य की महितीय सामग्री है।

कवि के साहित्य-सृजन के सम्बन्ध में डॉ हीरालाल माहेश्वरी[3] द्वारा दी गई सूचनायें बहुत ही अमूल्य और महत्वपूर्ण हैं। उनकी धारणा है कि दुरसाजी की आठ बड़ी कृतियां हैं जिनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

१ विरुद छिहत्तरी २ किरतार बावनी ३ राव श्री सुरतांण रा कवित्त ४ दूहा सोलंकी वीरमदेजी रा; ५ भूलणा राव मैंरा रा ६ गीत राजि श्री रोहितासजी री ७ भूलणा राव श्री अमरसिंघजी गजसिंघोत रा ८ श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत।

अन्तिम कृति को डॉ माहेश्वरी भी संदिग्ध मानते हैं। उपरोक्त कृतियों के अतिरिक्त स्फुट काव्य के रूप में दुरसाजी की अनेक रचनायें संग्रहालयों में विद्यमान हैं—ऐसा भी उनका विश्वास है। कवि का कुछ स्फुट काव्य नैणसी तथा दयालदास की ख्यातों तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों में भी बिखरा हुआ मिलता है।

'राजस्थानी सबद कोस' के सम्पादक श्री सीताराम लालस[4] ने शब्द कोष की विस्तृत भूमिका में दुरसाजी के जीवन-परिचय के साथ इनकी कृतियों का परिचय भी दिया है और उनकी मान्यता है कि स्फुट काव्य के अतिरिक्त कवि ने केवल तीन ही कृतियां लिखी और वे हैं—विरुद छिहत्तरी किरतार बावनी व श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत। अन्तिम दो कृतियों के सम्बन्ध में श्री लालस भी सन्देह रखते हैं।

श्री अगरचन्द नाहटा का कहना है कि यद्यपि दुरसाजी दीर्घायु हुये किन्तु उन्होंने साहित्य-सृजन बहुत ही कम किया। डॉ मेनारिया और अन्य विद्वानों द्वारा 'किरतार बावनी' और 'श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत' की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में प्रकट

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ मोतीलाल मेनारिया पृ १८५–१८६।

डिंगल साहित्य—डॉ जगदीश श्रीवास्तव पृ १७

[3] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ हीरालाल माहेश्वरी पृ १४२

राजस्थानी सबद कोष—श्री सीताराम लालस

की गई शंकाओं का समाधान करते हुये श्री नाहटा[1] ने लिखा है कि 'भजपत्र जामनगर के इतिहास में कवि की प्रामाणिक रचना के रूप में प्रकाशित हो चुकी है। उनकी मान्यता है कि 'किरतार बावनी' की अनेक प्रतियाँ राजस्थानी साहित्य के विभिन्न संग्रहालयों में विद्यमान । गुजरात और बम्बई के जैन मन्दिरों और भण्डारों में भी इस कृति की प्रतियों का पता लगा है। जैन साहित्य मन्दिर पालीताणा से 'किरतार बावनी' की प्रति की प्रतिलिपि मँगा कर श्री नाहटा ने प्रकाशित भी करवाई है।

श्री सौभाग्यसिंह शेखावत[2] ने दुरसाजी की एक अन्य कृति का उल्लेख किया है। यह है झूलणा राजा मानसिंह रा। इस कृति में आमेर के प्रसिद्ध राजा मानसिंह के प्रताप पौरुष और कार्यों की प्रशंसा की गई है। विरुद छिहुत्तरी' 'किरतार बावनी' और 'अम्बाजी री भजगत' और 'झूलणा राजा मानसिंह रा' के अतिरिक्त श्री शेखावत ने कवि की अन्य रचनाओं के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कवि ने यद्यपि दीर्घायु प्राप्त की थी किन्तु साहित्य सृजन बहुत कम किया। संभव है समय परिस्थितियाँ और मनोदशा उनके अनुकूल नहीं रही हो। परिमाण से पृथक साहित्य की उत्कृष्टता का ही महत्त्व और मूल्यांकन होना चाहिये। दुरसाजी को अपने जीवन काल में जो धन यश और सम्मान मिला वह निश्चित रूप से उनके काव्य की उत्कृष्टता के आधार पर ही प्राप्त हुआ प्रतीत होता है। जिन कृतियो के सम्बन्ध में विद्वानों को सन्देह है उनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता की खोज की जानी चाहिये। कृतियों की भाषा ऐतिहासिक संदर्भ काव्य-शिल्प और कवि की भाव धारा की पृष्ठभूमि में तथ्यातथ्य का पता लगाया जा सकता है।

ऊपर जिन कृतियों का उल्लेख किया गया है उनमें विरुद छिहुत्तरी किरतार बावनी गूहा सोलकी वीरमदेवजी रा और झूलणा राव श्री अमरसिंघजी गजसिंघोत रा अपेक्षाकृत बड़ी रचनायें हैं। शेष बहुत ही छोटी हैं जिनमें १ से २ तक छन्द हैं। नीचे हम कवि की चार बड़ी रचनाओं का संक्षेप में परिचय दे रहे हैं।

विरुद छिहुत्तरी—

इस काव्य-कृति का रचना काल ई० सन् १५५५–१६५५ के मध्य में माना जाता है। यह काव्य प्रशंसा-काव्य है। इसमें स्वाधीनता प्रेमी हिन्दू संस्कृति के रक्षक राजपूती गौरव के प्रहरी वीर राणा प्रताप की प्रशंसा की गई है। अकबर के प्रति अत्यन्त भर्त्सना-पूर्ण शब्दो का प्रयोग हुआ है। अकबर और प्रताप के बीच में हल्दीघाटी और अन्य स्थानों पर होने वाले युद्धों का वर्णन भी इस काव्यकृति में प्रसंगवश मिलता है। यह कृति सोरठा

---

[1] मरुवाणी (१९५८ जुलाई) श्री अगरचन्द नाहटा

[2] शोध पत्रिका (सितम्बर, १९६) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत

छन्द में लिखी गई है और इसमें कुल ७६ छन्द हैं। सम्पूर्ण कृति में कवि ने वीर पूजा के भाव और राष्ट्रीयता को अभिव्यक्ति दी है। अकबर के कठोर सामन्ती काल में राष्ट्रीयता का यह उद्घाटन कवि की धारम-निर्भयता स्वतन्त्रता प्रेम और भारतीय संस्कृति में अटूट आस्था का परिचय देता है। मध्यकालीन भारतीय साहित्य में यह कृति अपना अद्वितीय स्थान रखती है।

किरतार बावनी—

यह रचना कब लिखी गई इसका अभी तक पता नहीं लग सका है। इसका विषय सृष्टि कर्ता (किरतार) की लीला का वर्णन करना है। ईश्वर की विराट शक्तियों के सम्मुख समस्त प्राणी जगत कितना विवश और असमर्थ है। मनुष्य अपने पेट की पूर्ति के लिये अनेक कर्तव्य-अकर्तव्य करता है। धर्म-कर्म और सामाजिक आचार के मिथ्यात्व को भी कवि ने इस कृति में चित्रित किया है। कवि ने इस कृति में प्रयुक्त छन्द को कवित्त कहा है किन्तु है यह वास्तव में छप्पय छन्द। 'बावनी' शीर्षक के अनुसार इसमें कुल ५२ छन्द होने चाहियें किन्तु अभी केवल ५१ छन्द ही प्रकाश में आये हैं।[1] भक्ति और नीति की यह बहुत ही प्रांजल रचना है।

दूहा सोलंकी वीरमदेजी रा—

इस रचना के सृजन काल का भी कहीं उल्लेख नहीं मिलता। यह भी वीर काव्य ही है और इसमें कवि ने वीरमदे सोलंकी की प्रशंसा में ६ छन्दों की रचना की है। वीर रस की अनन्य उत्कृष्ट निष्पत्ति इस कृति में हुई है।

झूलणा राव श्री अमरसिंघजी गजसिंघोत रा—

यह डिंगल के प्रसिद्ध छन्द 'झूलणा' में रचित वीर काव्य की कृति है। इसमें कवि ने १४ छन्दों में राव अमरसिंह गजसिंहोत की वीरता और भारतीय संस्कृति-प्रेम की प्रशंसा की है।

मूल्यांकन—

कवि दुरसाजी की यथावधि उपलब्ध कृतियों का परिचय देने के पश्चात् उनके कृतित्व के मूल्यांकन के लिये काव्य के वर्ण्य-विषय रूप और भाषा पर दृष्टिपात करना भी आवश्यक है।

दुरसाजी का काव्य-विषय प्रमुख रूप से अपने आश्रयदाता राजाओं और मातृभूमि की स्वतंत्रता तथा भारतीय संस्कृति की रक्षार्थ मुगल शक्तियों से जूझने वाले अन्य अनेक वीरों का कीर्ति-गान है। दुरसाजी हिन्दू-धर्म हिन्दू जाति और हिन्दू संस्कृति के अनन्य उपासक थे। अपनी कविता में उन्होंने तत्कालीन हिन्दू समाज की विपन्नावस्था और अकबर

---

[1] मरुवाणी (१९६६ जुलाई) श्री अगरचंद नाहटा का लेख—कवि दुरसाजी आढ़ा री किरतार बावनी

की कूटनीति का बड़ा ही सजीव वीरदर्पपूर्ण और चुभता हुआ वर्णन किया है।[1] इनकी कृतियों में माता पृथ्वी के प्रति हिन्दू संस्कृति के प्रति और मनुष्य के सम्मान के प्रति आदर का भाव प्रकट हुआ है। माता पृथ्वी के अपमान हिन्दू संस्कृति के पतन और मनुष्य के अनादर की जहाँ भी इन्हें प्रतीति हुई है वहाँ इन्होंने हृदय की सम्पूर्ण ईमानदारी के साथ उसकी भर्त्सना की है। अपने आश्रयदाताओं और अन्य वीरों में इन्होंने उन मानवीय गुणों को परिलक्षित किया है जो किसी पुरुष को मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं। वे पुण्य भावों के प्रतीक हैं—उनके कीर्ति-गान में मानव जीवन के सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् का कीर्ति-गान हुआ है।

कवि की पुण्य कृति 'विरुद छिहत्तरी' में राणा प्रताप और अकबर ये दोनों ही ऐतिहासिक पुरुष हैं किन्तु प्रतीकार्थ में प्रताप का यशोगान उन समस्त नर-पुंगवों का यशोगान है जो जीवनपर्यन्त मानवता के उद्धार के लिए आसुरी शक्तियों से जूझते रहते हैं और अकबर की भर्त्सना उन समस्त खूनी ताकतों की भर्त्सना है जो मानव की पावन स्वाधीनता को छीन कर उसे पशुवत् जीवन व्यतीत करने के लिये विवश करती हैं। हिंसात्मक शक्तियों के बल पर किसी जाति के धर्म और संस्कृति को लूटना प्रत्येक युग में निन्दनीय रहा है। दुरसाजी की आत्मा हिन्दुओं के पतन और अकबर की कपट नीति और आततायिता से चीत्कार कर उठी। 'विरुद छिहत्तरी' कवि के मनो-ताप का ओजस्वी प्रकाशन है। इसमें कहीं पर भी करुणा का स्वर नहीं है। प्रताप की प्रशस्ति के माध्यम से भारत की सम्पूर्ण स्वाधीनताप्रिय मानवता के ललकार का प्रखर स्वर इस कृति में अभिव्यक्त हुआ है। निम्नोक्त सोरठ कवि की भावभूमि को समझने में सहायक होंगे—

> अकल पुरस आदेस देस बचाय दयानिधे।
> बरणन कर विसेस पुहुव नरेस प्रतापसी॥
>
> थिर नृप हिन्दुसथान लातरगा मग लोभ लग।
> माता भूमी मान पूजै राण प्रतापसी॥
>
> आमा धमल उदार, भारत बरस भवान मुख।
> आतम सम आधार, प्रथमी राण प्रतापसी॥
>
> लोपै हीदू लाज सगपण रोपै तुरक सूं।
> आरज कुळ री आज पूंजी राण प्रतापसी॥
>
> अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हीदू तुरक।
> मेवाड़ो तिण मांह पोयण फूल प्रतापसी॥
>
> अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हीदू अवर।
> जागै जग दातार, पोहरै राण प्रतापसी॥

---

[1] डिंगल में वीर रस—पृ० ८१

पग ऊँचो गिरनार, नीचो आबू ही नहीं।
अकबर अघ अवतार, पुन्न अवतार प्रतापसी ॥

अकबर करै अफार, मद प्रचंड मारव मयै।
मारव माण पखंड अनुला राण प्रतापसी ॥

सुख हित स्याळ समाज हीन्दू अकबर वस हुआ।
रोसीलो मृगराज पजै न राण प्रतापसी ॥

रोकै अकबर राह ले हीन्दू कूकर नवा।
वीभरतो वाराह पातै वसा प्रतापसी ॥

अकबर घरम न माण हीन्दू घड़ चाकर हुवा।
दीठो कोई दीवाण करतो लटका कटहड़ै ॥

अकबर गैंगळ अच्छ, माजन सळ घूमै अमाव।
पंचानन पळ भच्छ, पटकै छड़ा प्रतापसी ॥

समणा कर संकाळ सातूळी भूखी भुवै।
कुळवट छोड कपाळ, पैड न देवै प्रतापसी ॥

चितवै चित चीतोड़ चिता अळाई लोचवर।
मेवाड़ो जग मोड़ पावन पुरस प्रतापसी ॥

मन री मन रै माहि अकबर रै रहसी हकस।
नरवर करिये नाहि पूरी राण प्रतापसी ॥

जिण रो जस जग माहि जिणरो जप जिन जीवणो।
नेड़ो अपजस नाहि राणावर जिणो प्रतापसी ॥

सफळ जनम सुरतार, सफळ जनम जग सूरमा।
सफळ जीम जपसार पूरतम प्रभा प्रतापसी ॥

करै खुसामद कूर, करै खुसामद कूकरा।
पुरस खुसामद दूर, पुरस अमोल प्रतापसी ॥

देसो धणी दिवाण धारा तीरथ में धसै।
देवा परम रस दान पुरट सरीर प्रतापसी ॥

अन्तिम दो सोरठा में कवि का समग्र व्यक्तित्व स्पष्ट हो गया है। खुशामद या तो मूर्ख करते हैं या कुत्तों के समान कायर व्यक्ति करते हैं। दुरसा मिथ्या प्रशंसा से सदव दूर रहता है। महाराणा प्रताप इस संसार में अमूल्य पुरुष हैं और दुरसा ने ऐसे ही पुण्य-पुरुष का गुणगान किया है। महाराणा प्रताप धारा-तीर्थ (तलवार की धार) में प्रवेश कर स्वर्गों के पथ मान रूपी जल से स्नान करते हैं। वे युद्ध रूपी धर्मक्षेत्र में अपने शरीर रूपी स्वर्ण का दान देते हैं। दुरसा ऐसे ही धर्मस्थिया का यशोगान करते हैं। अपनी 'कुमराणा राजा मानसिंह रा' कृति में भी दुरसाजी ने आमेर के राजा मानसिंह के प्रताप पौरुष और वीरता-

पूर्ण कार्यों की प्रशंसा की है। राजा मानसिंह यों राजपूती इतिहास में बड़े बदनाम रहे हैं। अकबर की अधीनता स्वीकार कर उन्होंने राजपूती गौरव को कलंकित किया है किन्तु क्योंकि दुरसाजी मानसिंह के समकालीन थे उन्होंने इनके व्यक्तित्व को निकट से देखा है। उनके वीरत्व का अभिनन्दन किया है तथा इनके गुणों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। इस कृति के दो अंश सहृदयों के अवलोकनार्थ नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

मांन बडा पचता हरा देवे बिरदाळा।[1]
तू आंबेर उजाळणा जगेण उजाळा॥
मल तुरंगम बखिये बाळी बेगाळा।
द्वारि मह मह हिन्दुवा भामड भुआळा॥
उवै धूरत्र भाग अहे छतरे कड़ाळा।
साहण समंद मनर वे समय विसाळा॥
याज यवेन्द्र वारिया जुवा बरसाळा।
गिड़ गिरधर बल पथा छांवे छत्राळा॥
सीस तुरकां हींदुआं नित्रसे मंगाळा।
वेती अकबर वाटियो वेती रखवाळा॥
छतीसे ठाकुर राइयां तू माल बडाळा।
मान बडा तुझ सुं, गिरवरण गुमाळा॥ १
राकस वंस निकंदणा एकोपति सीता।
मार अवार विसडणा एको आवीता॥
एको सेस सहारणा बरमेर सहीता।
एको गोकुल कन्हा गिर नख पईता॥
एको नवण सेवियें बग नवण किता।
एको सिसहुर नब बाके भखि भविता॥
एको रूप सुदर्शन रवि राह फुरिता।
एको नाहिहर उम्भ्रे मन बाड भरता॥
एको रिख भवखिया बिस सायर पिता।
इसती भल विभाष्णा एक सीह ममुता॥
एकण मान महाबळी संसारोह बीता॥ २

इस काव्य-कृति में दुरसाजी के हृदय की उदारता प्रकट होती है। गुण को गुण कहने में उन्हें कोई संकोच नहीं है। अकबर की अधीनता राजा मान ११ के चरित्र की बहुत बड़ी

[1] राजस्थानी शोध पत्रिका (१९६ सितम्बर) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत

कमजोरी रही है किन्तु उनमें एक वीर पुरुष के प्राय सभी गुण विद्यमान थे। कवि उनको कैसे विस्मृत कर दे ?

कवि की अन्य प्रबन्ध कृतियों और स्फुट काव्य का वर्ण्य विषय भी वीरों का प्रशस्ति गान ही रहा है। महाराणा प्रताप और मानसिंह के अतिरिक्त राव चन्द्रसेन नागौर के राव अमरसिंह अवसिंघोत वीरमदेव सोलंकी राव सुरताण आदि के पराक्रम दानशीलता और उत्सर्ग की इन्होंने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

प्रशस्ति-गान और राष्ट्रीय धारा के स्वर से पृथक कवि की भावभूमि का एक पक्ष और है जो यों तो उपरोक्त कृतियों में भी यत्र-तत्र प्रकट हुआ है किन्तु कवि की एक अन्य प्रसिद्ध कृति 'किरतार बावनी' का तो मूल विषय ही वह है। वह पक्ष है ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति का मानव जीवन में करुणा नीति और सदाचार का। इसमें प्रबन्धत्व नहीं है। सभी छन्द अपने विषय की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति करते हैं। जीवन-संघर्ष का इस कृति में अत्यन्त सजीव और करुणापूर्ण चित्रण हुआ है। पेट की पूर्ति के लिये मनुष्य को अनेक नैतिक अनैतिक कार्य करने पड़ते हैं। जीवन के अन्तर्विरोध को क[वि]ने अत्यन्त गहराई से समझा है। जीवन और मृत्यु, मिलन और वियोग आशा और निराशा भाव और अभाव आँसू और मुस्कान के विवर्तों में ग्रथित मानव-जीवन एक विराट शक्ति से नियमित है। सब कुछ उसी विराट कर्ता की इच्छा से होता है। इसी जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति दुरसाजी ने अपनी इस कृति में की है। हमारे सामाजिक चरित्र के अन्तर्विरोधों को भी अत्यन्त मार्मिक रूप में कवि ने चित्रित किया है। इस कृति के कुछ अंश द्रष्टव्य है।—

> रचना ब्रह्मरा रचे बहुत नर माहे बेसे।[1]
> प्रथम नीर पांयसे पूरि जोखम में पेसे॥
> किणही क काय कुनाम कोरि काजल री कंपे।
> उथन को आधार, जीव दुख किण मु जपे॥
> बल मचि नाम बूडे तरे कोइक विरलो ऊबरे।
> करतार पेट दुमरि कीया हो काम एह मानव करे॥
>
> रितु बरसाळा राति घोर मल्हार होय घण।
> बीज चमक्के बळ मेहभड़ मचि सघाघण॥
> चोर परथ निस चाल बार बनवत रै बेसे।
> भेदे पथर भीत पवन ज्यूं माहे पेसे॥
> धाम री धणी जिण ने ग्रहे चढ साजे सूली चरे।
> करतार पेट दुमरि कीया सो काम एक मानव करे॥

---

[1] मरुवाणी (१९५९ जुलाई) श्री अगरचन्द नाहटा

एक टुक कारणे मने घर घर भिखारी।
दीन वचन दाखवे मणे मुहिश धर भारी॥

मणरेवे मवत्त मने वे उत्तर मडा।
ठो ही रम रग ठेवि मावि मन मेले माडा॥

पिड रो मांग मुके घर सुषी मिला मरे।
करतार पेट कुमरि कीया सो काम एक मानव करे॥

नवमी सुंदरि नारि, महा मति रूप मनोहर।
निरखे सोमा नैन नवा समसीख होय नर॥

सोळ सजे सिणगार, सरस तिण देही सोहे।
मांणस केही मात देखि सुर नर मन मोहे॥

पहली पिया मेले मखम व्यापारी विरहो मवे।
करतार पेट कुमरि कीया सो काम एक मानव करे॥

इस प्रकार दुरसाजी के काव्य-विषय ने जीवन के व्यापक विस्तार को अपने में समेट रखा है। व्यक्ति समाज संस्कृति और प्रकृति सभी ने दुरसाजी के काव्य में अभिव्यक्ति पाई है। साहित्य की मर्यादाओं का बड़ी निष्ठा से उसमें अनुपालन हुआ है। दुरसाजी सामन्ती काल में हुये किन्तु आश्चर्य है कि इनकी वाणी को इस काल की दुष्प्रवृत्तियाँ दूषित नहीं कर सकी। रति और शृंगार का कहीं वर्णन नहीं वीरों की प्रशंसा में कहीं मिथ्यात्व नहीं अतिशयोक्ति की कहीं विद्रूपता नहीं।

जिस प्रकार दुरसाजी का काव्य-विषय प्राजल पुष्ट और जीवनदायी है उसी प्रकार उनका काव्यरूप भी अत्यन्त हृदयहारी और परिष्कृत है। डिंगल के लोक-प्रचलित छन्दों में इन्होंने काव्य रचना की। दोहा सोरठा छप्पय झूलणा और डिंगल गीत इनके प्रिय छन्द रहे हैं। वीर रस इनके काव्य का प्रधान रस है अतएव उपरोक्त छन्द बड़े अनुकूल रहे हैं। अपने छोटे आकार में ये छन्द हृदय को बींधे देने की शक्ति रखते हैं। 'विरुद छिहत्तरी' का एक-एक सोरठा इस सत्य का साक्षी है। बिहारी की सतसई के दोहों के लिये कही गई उक्ति— सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर। देखन में छोटे लगें घाव करें गंभीर। दुरसाजी के सोरठों और दोहों के लिये भी उतनी ही उपयुक्त है। इनके दोहों और सोरठों की भाषा और विषय का समन्वय इतना चतुराई से किया गया है कि इसे दुरसा जैसे डिंगल के काव्य शिल्पी ही कर सकते थे। इन दोहों और सोरठों में 'वैण सगाई' अलंकार का निर्वाह भी अत्यन्त कुशलता के साथ हुआ है। 'किरतार बावनी' में प्रयुक्त छप्पय छन्द में भी यत्र-तत्र कवि ने बड़ी ही सफलता से वैण सगाई का निर्वाह किया है। वैण सगाई के अतिरिक्त कुछ अन्य अलंकारों का प्रयोग भी दुरसाजी के काव्य में यत्र-तत्र मिलता है किन्तु डिंगल काव्य की परम्परा के अनुसार यह सारे प्रयोग स्वाभाविक हैं। कहीं पर भी कवि ने अलंकारों के प्रयत्नसाध्य प्रयोग नहीं किये। डॉ जगदीश श्रीवास्तव का यह मत 'डिंगल के कवि साधारणतया काव्य के स्वाभाविक स्वरूप को विकसित करने में विश्वास करते थे काव्य

को बाह्य उपकरणों द्वारा अलंकृत कर चमत्कृत करना कदाचित् वे अनावश्यक समझते थे।[1] ये सब दुरसाजी के काव्य के अलंकार पक्ष पर पूर्णरूप से सही हैं।

दुरसाजी के समस्त काव्य की भाषा बिल्कुल डिंगल है। वह शास्त्रीय न हो कर अत्यन्त सरस प्रवाहपूर्ण और जन-मानस के निकट है। पांडित्यपूर्ण भाषा लिखने का मोह कहीं भी प्रतीत नहीं होता। स्वाभाविक भावोद्रेक से निसृत प्रकृत वाणी में कवि ने अपने काव्य की रचना की है। कई स्थलों पर तो ऐसा लगता है जैसे इनका काव्य लोक-साहित्य ही हो। 'विरुद छिहत्तरी' के छोटों व 'किरतार बावनी' के छप्पयों में वाणी की यह प्राकृतिक सुन्दरता कई स्थलों पर देखी जा सकती है। मैं समझता हूँ कवि की अत्यधिक लोकप्रियता का एक कारण यह भी रहा है। जन-मानस को स्पर्श कर उसे प्रभावित करने की शक्ति जिस कवीश्वर की वाणी में होगी वह क्यों नहीं लोकप्रिय होगा?

दुरसा आढ़ा राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल के वास्तव में मूर्धन्य कवि हैं। हमारे साहित्य को उनकी अपूर्व देन है। चाहे उन्होंने परिमाणात्मक दृष्टि से बहुत ही कम साहित्य लिखा किन्तु उनके काव्य की उत्कृष्टता ही उन्हें राजस्थानी साहित्य में अमर करने के लिये पर्याप्त है। वह सम्भवतः मध्यकालीन भारतीय वाङ्मय के पहले कवि हैं जिन्होंने विदेशी शासन का निर्भीकता से प्रबल विरोध कर भारत की राजनैतिक एकता का जयघोष किया विदेशी सत्ता के हाथों मिटने वाली भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म की रक्षार्थ राष्ट्रवासियों का आह्वान किया। उनकी वाणी में लोक-भाषा की स्वाभाविकता और सारल्य के साथ लोकमानस को छूने का बल है। वे हमारे राष्ट्र-कवि हैं।

---

[1] डिंगल साहित्य—डॉ जगदीश श्रीवास्तव पृ ३१७

चारण कवि सायांजी झूला

श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य (वि सं १४६ से १६) मुख्यतः भक्ति शृङ्गार और वीर रस की त्रिवेणी के रूप में उपलब्ध होता है। राजस्थानी साहित्य की इसी त्रिवेणी में स्नात राजस्थान का लोक-मानस मध्यकालीन भारतीय इतिहास में गौरवमय आसन प्राप्त कर सका है। राजस्थानी साहित्य से ही संजीवनी शक्ति प्राप्त कर राजस्थानी वीर-वीरांगनाओं ने अपनी मान-मर्यादाओं की रक्षा के लिए अनोखा बलिदान करते हुए विश्व इतिहास में एक अद्वितीय आदर्श प्रस्तुत किया है। मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य के निर्माण में चारणों का विशेष योग है। न केवल परिमाण की दृष्टि से ही वरन् कला की दृष्टि से भी चारणी रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार की रचनाएँ चारणों द्वारा प्रस्तुत हुई हैं। मुक्तक में भी गीत साहित्य चारण कवियों की समस्त भारतीय साहित्य के लिये विशेष देन है। प्रस्तुत निबन्ध के आलोच्य कवि सायांजी झूला भी मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य के ही एक प्रमुख चारण कवि थे।

सायांजी का जन्म वि सं १६१२ में झूला शाखा के चारण गोत्र में माना जाता है। सायांजी ईडर के लीलछा नामक गाँव के निवासी स्वामीदास के दूसरे पुत्र थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम भामाजी झूला था। सायांजी के गुरु का नाम महन्त गोविन्ददासजी था।

सायांजी झूला ईडर के राव वीरमदेवजी के आश्रित रहे जिन्होंने इन्हें 'लाख पसाव' देकर सम्मानित किया। राव वीरमदेवजी की मृत्यु के उपरान्त सायांजी वीरमदेवजी के लघुभ्राता राव कल्याणमलजी के पास रहे जिन्होंने इनकी काव्य-कला पर प्रसन्न होकर सं १६११ में 'लाख पसाव' और एक गाँव कुवावा इन्हें प्रदान किया। सायांजी का देहान्त वि० सं १७ ३ में माना जाता है।

सायांजी झूला के जीवन-वृत्तान्त के विषय में कोई मतभेद नहीं किन्तु इनकी काव्य-कला के विषय में परस्पर विरोधी मत हैं—

(१) "प्रचलित एक प्रवाद के अनुसार मुगल सम्राट् अकबर ने महाराज पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'वेलि किसन रुकमणी री' सुनने के पश्चात् सायांजी कृत रुकमणी-हरण सुन कर पृथ्वीराज से कहा—पृथ्वीराज ! तुम्हारी 'वेल' को 'हरण' चर गया।" इस प्रकार अकबर ने 'रुकमणी-हरण' को 'वेलि किसन रुकमणी री' से श्रेष्ठ ठहराया।

राजस्थानी सबद कोस भाग १—श्री सीताराम लालस राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, भूमिका पृ १४४।

(२) डॉ. मोतीलाल मेनारिया के मतानुसार "'रुकमणी-हरण' में काव्यत्व का कहीं पता भी नहीं है। यह एक बहुत साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रंथ है। 'रुकमणी-हरण' की अपेक्षा सायांजी का 'नाग-दमण' पर्याप्त सजीव और प्रौढ़ता लिये हुए है।—इसमें कृष्ण की किशोरावस्था यशोदा के वात्सल्य गोपियों के प्रेम और कृष्ण-कालिय-युद्ध का चित्रोपम वर्णन है। डिंगल की प्रासादिकता और ओज का यह ग्रंथ एक अच्छा नमूना है।"[1]

(३) श्री सीताराम लाळस के मतानुसार 'रुकमणी-हरण' एक साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रंथ है। सायांजी का दूसरा ग्रंथ 'नागदमण' है।—ग्रंथ में विषयों के वर्णन की जो शैली कवि ने अपनाई है उसमें इसकी विशेषता अधिक बढ़ गई है। कवि ने कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन नागणी के साथ संवाद तथा कालिय-मर्दन का सजीव चित्रण उपस्थित किया है। ग्रंथ की भाषा प्रसादगुणयुक्त तो है ही तथापि विषयानुरूप वात्सल्य माधुर्य भाव मय विस्मय आदि भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति के कारण उसमें विशेष रस प्रवाह हो गया है।"[2]

(४) डॉ. हीरालाल माहेश्वरी के मतानुसार "'नागदमण' का विशेष महत्व उसके वर्णनों और संवादों के कारण है। ये बहुत ही पुष्ट और सजीव बन पड़े हैं। वर्णन ऐसे कि जिनसे सारा का सारा दृश्य अपने आस-पास के वातावरण के साथ साकार हो जाता है। इसी प्रकार संवादों में विशेषतया नागणी और कृष्ण के संवादों में माधुर्य वात्सल्य आश्चर्य मय उत्साह आदि भावों का एक साथ सुन्दर सामंजस्य मिलता है। ये बड़े फबते हुये और उपयुक्त हैं। सरल वर्णन और सुन्दर संवाद एक-दूसरे के साथ गुंथ कर पाठक की उत्कंठा बढ़ाते हैं और जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं। × × × 'रुकमणी-हरण' वीर-रस-पूर्ण एक वर्णनात्मक काव्य है,—गौण रूप से बीभत्स रस का वर्णन भी मिलता है। इसमें रसानुरूप शब्द-योजना और चित्रमय वर्णन स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं। 'नागदमण' की भांति 'हरण' में भी संवाद और विविध वर्णनों के प्रसंग प्रमुख हैं।"

इस प्रकार उक्त आलोचकों की दृष्टि में 'नागदमण' तो थोड़ी-बहुत काव्य-कला से पूर्ण है किंतु 'रुकमणी-हरण' में कतिपय आलोचकों को काव्य-कला के दर्शन नहीं हुए। 'रुकमणी-हरण' के अब तक अप्रकाशित होने और इसकी बहुत कम प्रतियाँ उपलब्ध होने से आलोचकों का इसके काव्य-सौन्दर्य से अपरिचित रहना स्वाभाविक है। प्रसन्नता का विषय है कि अब इस बहुचर्चित रचना का प्रकाशन राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की ओर से 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' में प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक के संपादन में हो रहा है। 'नागदमण' उक्त काव्य-कला-सम्बन्धी विवाद से मुक्त है किन्तु 'रुकमणी-हरण' पूर्णरूपेण विवादग्रस्त है। इस लिये 'रुकमणी-हरण' को काव्य-कला की कसौटी पर परखना आवश्यक हो गया है।

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य—हिं. सा. सम्मेलन पृ. १११।

[2] राजस्थानी सबद कोस भाग १—राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, पृ. १४४।

[3] राजस्थानी भाषा और साहित्य आधुनिक पुस्तक भवन ३०-३१ कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता ७ पृ. १८१

कवि ने अपनी कला का परिचय मंगलाचरण के अंतर्गत प्रारम्भिक छन्दों में ही दे दिया है। कवि लिखता है—

'सबद-अयाष महुस टंकसामी तर तर सकल यमा तस तामी।
महुण संसार तरख बनमासी बोधित हुं एक तुंबा-आली॥ २
बरीया ऊपर पत्थर डारे, ऊपर पत्थर सेन उतारे।
अमर अनुल वसो मत धारे, तुंबे बेठां केम न तारे॥ ३"

कवि ने इस रूपक में अपने काव्य को भवसागर तैरने के लिये 'तुंबा-आली' कहा है। ईश्वर के प्रताप से पानी पर पत्थर तैरने लगे और उनसे सेना पार की गई तो कवि ने एक सच्चे भक्त के नाते कहा है कि "तुंबे बेठां केम न तारे"। 'रुपमणी-हरण' की रचना में कवि का उद्देश्य भी भक्ति मात्र है जिसका कवि ने प्रस्तुत मंगलाचरण में संकेत किया है। एक भक्त का भगवान के प्रति अधिकार प्रकट करना ही उसकी भक्ति का परिचायक है। "और कवि तो जहाज में बैठ कर पार उतर गये अपने पार उतरने के लिये मैं 'तुंबा-आली' रख रहा हूं देखता हूं वह ईश्वर मुझ तुम्बे पर बैठे हुए को कैसे नहीं तारेगा ?" इस प्रकार कवि ने ग्रन्थ के प्रारंभ में ही उक्ति-वैचित्र्य और मार्मिक अभिव्यंजना की झांकी दे दी है।

'रुपमणी-हरण' प्रबन्ध ही एक वर्णनात्मक काव्य है क्योंकि इसमें कृष्ण-रुक्मिणी के विवाह का प्रसंग है। किन्तु 'रुपमणी हरण' का वर्णन कोरा वृत्त-कथन नहीं है। उदाहरण-स्वरूप इस काव्य का कृष्ण चरित्र-वर्णन ले सकते हैं जो छन्द संख्या ५ से २१ तक है। इसमें रुक्मैया के छन्दों में कवि ने 'व्याजस्तुति के रूप में अनूठे भाव व्यक्त किये हैं जिनमें कवि का सौन्दर्य-बोध और वचन-विदग्धता स्पष्ट परिलक्षित होती है। इस संबंध में द्रष्टव्य है कि महाराज पृथ्वीराज ने अपनी 'वेलि' में इस प्रसंग को सर्वथा छोड़ दिया है और उनका ध्यान मुख्यत रुक्मिणी के नख-शिख-वर्णन और वयःसन्धि वर्णन की ओर गया है। इसका कारण वास्तव में दोनों कवियों की उद्देश्य-भिन्नता है। वेलिकार का ध्यान मुख्यतः शृङ्गार की ओर है और 'हरण'-कर्ता ने कृष्ण चरित्र और वीररस को प्रधानता दी है। सायाजी झूला ने कृष्ण-चरित्र और बाललीला का वर्णन रुक्मैया के छन्दों में किया है जिससे एक विशेष काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि हुई है—

"मपरा बत्रीस देवीसमो ए मपण।
वरा वर घोरड पसु-नवेनत वण॥
प्रथम दही दुध मांपण दणी पत मली।
मांगणी मापता बांह पसें गली॥ ७

ताल में मात गीवाइ पड मड टली।
मेलयो वण। बरवाय माया मली॥
सोभ पूर उमगण तात महतारीया।
पुत्र सोअपो मले बाट पणहारीया॥ ८

माट जमुना तणे दीहुसो[को]लि बहा।
वाछ्लो पंमिरण महण माटी तणा॥

करम डालें पछी चीर मूंदे कमन।
मीरमें कमेरे नारि बैठी नमन ॥ ६

चीठ मेंत्रा पष्ो भाव तरण हीज बरस।
माडीमा फंद महीमारियां वाण मस ॥
रोक महीमारियां ताम्क मूका रहै।
मपण एरा वणा मोहीज बातां महै ॥ १

भक्त कवि ने कृष्ण को स्वयं उपालंभ नहीं देकर रुक्मैया के शब्दों में दिलवाया है। सूर ने गोपियों के मुंह से कृष्ण को खरी-खोटी सुनाई है तो सायांजी ने रुक्मैया को माध्यम बनाया है। सायांजी को इस विषय में प्रसंग भी सर्वथा अनुकूल प्राप्त हुआ है। रुक्मैया विविध प्रकार की दलीलों से अपने पिता को रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से नहीं करने के लिये सहमत करना चाहता है और फिर उन्हीं दलीलों के आधार पर शिशुपाल को लग्न पत्रिका भी भेज दी जाती है। भगवान् को ऐसे भक्तों का सामना कम ही करना पड़ता है।

काव्य का दूसरा पक्ष अथवा विशेष प्रसंग युद्ध का है। शिशुपाल अपने दल-बल सहित रुक्मणी से विवाह करने हेतु पहुँच चुका था। कृष्ण और उनके पीछे बलराम भी अपनी सेनासहित कनकपुर आ गये थे। इस प्रकार दोनों विरोधी दलों के एक ही स्थान पर एकत्र हो जाने और 'कन्या हेक पै वर दोय चढ़ीया चक्रे ॥१ १' के कारण युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। रुक्मणी की पूर्व सूचना के अनुसार कृष्ण अम्बिका-मन्दिर से रुक्मणी को ले जाने वाले थे। शिशुपाल और जरासन्ध भी पूर्ण सावधान थे और रुक्मणी की रतन के समान रक्षा कर रहे थे—

'जपे जरासिंध प बात जो जोवणी।
रापीयें रतन जिम जतन कर रुक्मणी ॥१ १

×

बींटम माम चक्र वेष चहुए चले।
वेहरा सहित सिसपाल चाले चले ॥
पैखतां पैखतां हैखतां पूखणी।
चाखतो कोट चौफेर लीधो चुणी ॥११७

उक्त वर्णन में "रापीये रतन जिम जतन कर रुक्मणी" और 'चाखतो कोट चौफेर लीधो चुणी' जैसी काव्यात्मक और मौलिक उक्तियों को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। आगे—

"भेटतां अम्बिका हुओ मन-भावीयो।
अतरीप पैलि रथ महमहण आवीयो ॥
दुसहणी भ्यालि बैसाड्यो देपीयो।
एवडा दल पण जिम आमेपीयो ॥११६"

रुक्मणी-हरण' का युद्ध-वर्णन काव्य का सर्वोत्कृष्ट प्रसंग है। यह प्रसंग छन्द स १२१ से

११४ तक वर्णित है। सेना के प्रयाण से आकाश धूल से भर गया जिसका संकेत कवि ने इन शब्दों में किया है—

"चक्कवे चक्कवी पूर रयणी जिया।
गेहणी छोड भरतार धूरें गिया॥
मैंण पुड ऊपडी पेह पेहां मची।
भापरी बधाणै नां उसपे भनमी॥११

कवि ने युद्ध-वर्णन के अन्तर्गत—

"वीर वैताल पँमाल री पोहणी।
भावीया भांहणे चाड आप आपणी॥
भवका उलका कालका अप्पणी।
जंबुका भीलका कालका जोगणी॥१४८

आदि वर्णन के साथ ही युद्ध सम्बन्धी बातों और उनके प्रभाव का भी निरूपण किया है—

"रड अमर भुतणा रणधूर भेक भई।
साम लेर गयां पांच सबदां गई॥
पेसरी भीमसण डीकमीरा सोभा।
साम कीया सबद धुंण बाद भांमण सोझा॥१५
बाज संग्राम पड रीम गेंणाइया।
छाजुगै छिंगुमें घाव छरणाइया॥
मूंछ म्या बांमरा बांमरी बाहली।
मीर आकासमा भूरमां भमकुली॥१५१

×

कोहोक हाको धमो लोक भर कांपीयो।
हुबके पन पायाल है कपीयो॥
नाम निशाभूवा बरस दृषे डोलडो।
पडहड्यो भांण आकासरो पोलडो॥१५३
बरस धूड ऊपडी रेण भाणो अमस।
पावस बाजीमां माम्मीयां उकरस॥
वहें जमवाण चकवाण छूटे वणा।
काट धूमड कोडड कर डकणा॥१५८

श्रीकृष्ण द्वारा हुए चक्र-प्रहार का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

"आपीया बांण सभाण मधुसुदनै।
बिसभर पडहड्यो भांण पडै बनै॥

झम्मझ नामी चकर सीस सामा झम्मण।
पतर भर जोगणी रगत काली पीमरण ॥ १७३

हहुहड़े डाक होय हाक होकार हरण।
घाय घूमें घुमें मडे मावण मडरण ॥
विसनरा चक्र पडे सर वेरीयां।
ढड़हड़े म्यास पग फोरण्णे कोरियां ॥ १७४

संवादों की छटा युद्ध-वर्णन में भी प्राप्त होती है—

"कहे जरसंघ तूं चोर मोसूं करी।
हुरी ससपालरी परी व्याव सें हुरी ॥
भरमीयो केम जरसंघ तू भ्रम भरी।
ए कहो मकरण मथुरा तणी मापरी ॥१७६"

युद्ध के अन्त में—

'किसन मूंक्यो हुकम आपरो भयत कर।
प्रवगुण तोई भगत गुण मान ऊपर ॥
फरे जरसिघ ससपाल बरण फाविमो।
ममम्यो बीरसी साथ मारावीयो ॥१८८"

कृष्ण के विजयी हो कर रुक्मिणी के साथ द्वारिका लौटने पर उनके स्वागत एवं द्वारिका की साज सज्जा का वर्णन भी कवित्वपूर्ण है—

"कांगरे कांगरे मोर कंमावीया।
पाट पाटंबरे हाट पेहराबीया ॥
मालीए मालीए हीर हाटक मणी।
जालीए जालिए गमरवी जोगणी ॥१६७
....गोखणे गोखसे जुवती गोखली।
चोहटे चोहटे हुए मोती चुरी ॥१६८ आदि तथा—
वाडीए वाडीए वाटका बनरे।
घ्रालपे कोकिला कंठ ऊंचे सरे ॥
मारये मारचे महमही मालणी।
चोसरे चोसरे मेल चढ़ें चोसरी ॥१६६"

कृष्ण-रुक्मिणी के विवाह-वर्णन के पश्चात् उनके समागम के विषय में सायांजी ने इतना ही लिखा—

"रुपमणी किसनरे रंग पूगी रमस।
रंग रस कहण को छेह वेतो रमरण ॥२१५

काव्य के अन्त में कवि ने कृष्ण की राज्यसभा और न्याय आदि के विषय में भी संकेत किया है—

"भैव आपार उदार मोटी भजा।
साज पावर सहे कुछ पमि सजा॥
केसरी कांन दे कर्म-क्रांमो करे।
माप भे मातियो मोहरे पाजरे॥२११

तेम मेमा चरे सिंह मुरही तटा।
सीह में बाकरी मीनड़ी मूषटा॥
तेम चरणा वरण सरस वसुदेव तणा।
मांडीयो स्याम हरणमती महमहण॥२२"

सायांजी झूला ज्योतिषशास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता मालूम होते हैं क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रयाण के समय होने वाले शुभ शकुनों का और शिशुपाल के प्रयाण के समय होने वाले अपशकुनों का विस्तृत वर्णन किया है। मध्यकालीन युद्ध विद्या राज-सभा-व्यवस्था वेष भूषा आदि का भी कवि को विशेष ज्ञान है जिसका सम्यक निरूपण 'रुक्मणी-हरण' में हुआ है।

सायांजी झूला उक्तियों और सवाद के तो मानो राजा हैं। 'नागदमण' की भांति 'रुक्मणी-हरण' में भी संवादों की छटा विशेष पठनीय है। एक ही छन्द में प्रश्नों और उत्तरों का सम्यक समावेश हुआ है। परिस्थिति और मनोविज्ञान के अनुकूल संवादों की रचना में सायांजी झूला जैसी सफलता बहुत कम कवियों को प्राप्त हुई है। रुक्मणी हरण की अनेक उक्तियां भी हमारा ध्यान बरबस आकर्षित कर लेती हैं। अवसर के अनुकूल संवादों की रचना एवं अवसर के अनुकूल प्रयुक्त उक्तियां साहित्यिक क्षेत्र में सायांजी झूला की स्थायी देन कही जा सकती है। कुछ उक्तियों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

'मामड़ी आपरी बांह एम गली।	छन्द सं	७
हैमरा फूमन सु जवत करूठ हुवे।		६७
कन्या हेक नै वर दाम घणीया करे।		१३
रापीये रतन जिम जतन कर रुपमणी।	,,	१६
चालतो काट चीफेर सीघो चुणी।	,,	११७
मेटती अबिका हुयो मन भावीयो।	,,	११६
मसम्यो वीरणी छाष मारणिया।		१६८ आदि।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सायांजी झूला कृत 'रुपमणी-हरण' काव्य-गुणों से युक्त एवं उत्कृष्ट रचना है। महाराज पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' वास्तव में एक उच्चकोटि का काव्य है किन्तु उसमें एक दोष यह है कि शृङ्गार के साथ ही विरोधी रस वीभत्स का समावेश किया गया है। सायांजी का 'रुपमणी हरण' ऐसे दोषों से सर्वथा मुक्त है। 'रुपमणी-हरण' का युद्ध-वर्णन सर्वाङ्ग सुन्दर एवं पूर्ण है और 'वेलि' के युद्ध-वर्णन की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। इसलिये इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सायांजी का 'हरण' पृथ्वीराज की 'वेलि' के युद्ध-वर्णन सम्बन्धी भाव को पार कर गया है।

कविवर हुकमीचंद खिड़िया

श्री सौभाग्यसिंह शेखावत

राजस्थान की पुनीत वसुन्धरा वीर प्रसविनी रही है। यहाँ की प्रकृति सदैव से ही कवि समाज के आकर्षण का केन्द्र रही है। वीरता की जननी राजस्थानी भूमि ने अपनी कोड़ में वीर पुरुष सती नारियों और वीर भावनाओं के प्रेरक कवियों का उन्मुक्त हृदय से लाड़ लड़ाया है। और यही कारण है कि यहाँ के वातावरण में वीर भावनाओं का स्वर गुञ्जित रहा है। वीर वातावरण के प्रसारक कवियों में चारण कवि एवं कवि राजपूत कवि मोतीसर कवि सेवक कवि और ढाढ़ी जाति के कवियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। किन्तु इस वातावरण के निर्माण में सर्वाधिक सेवाएँ चारण जाति की रही हैं। चारण समाज ने सहस्राधिक कवि रत्नों को उत्पन्न कर राजस्थान की कीर्ति और राजस्थानी साहित्य की श्रीवृद्धि के यज्ञ का अनुष्ठान किया। यही नहीं चारण समाज ने राजस्थानी वीर-वातावरण की सक्षम अभिव्यक्ति के लिए राजस्थान की काव्यभाषा डिंगल और उसके विशिष्ट रचना प्रकार गीतों की भी रचनाएँ कीं। डिंगल गीतों में राजस्थान का वीर हृदय शत-शत धाराओं में मुखरित हुआ है।

चारण जाति के डिंगल गीतकार कवियों में हुकमीचंद खिड़िया का उच्चतम स्थान है। यद्यपि अद्यतन प्राप्त गीतों से कवि मुक्तक गीतकार प्रकट होते हैं और उनके गीतों में युद्ध की वीरता स्वर-लहरी का नाद गूँजता है। इसके मूल में मुख्य कारण गीतकार के समय की राजस्थान की राजनैतिक परिस्थितियाँ ही अधिक रही हैं। मध्यकाल के कवि हुकमीचंद के सामने देश में व्याप्त अशान्ति मरहठों और राजाओं के पारस्परिक संघर्षों और राजनैतिक परिवर्तनों का वातावरण था। योद्धाओं राजनेताओं और स्वाधीन-चेता सामान्य जन का ध्यान एक मात्र अपने सुरक्षित देश की रक्षा स्वामित्व का धारण और आक्रान्ताओं की शक्ति का परिदमन करने पर आधारित था। डिंगल गीतों के आलोचकों ने डिंगल कवियों को आश्रयदाताओं के प्रशंसक और गीतों को व्यक्तिगत प्रशस्तिपरक काव्य कह कर उनकी महत्ता को सीमित करने का प्रयास किया है किन्तु गीत-आलोचकों ने गीतों के रचनाकाल के वातावरण की ओर से आँख मूँद कर ही ऐसा लिखा जान पड़ता है। डिंगल गीत-लेखकों ने समाज और राष्ट्र की तत्कालीन आवश्यकताओं तथा समय की मांग को ध्यान में रख कर योद्धाओं को उत्साहित करने के अपने कवि-दायित्व को निभाया है। जिन योद्धाओं पर आज डिंगल गीत उपलब्ध होते हैं वे एक आदर्श व्यक्तित्व के धनी तो थे ही पर साथ ही समाज के प्रतिनिधि और उसकी आकांक्षाओं एवं आदर्शों के रक्षक भी थे। आज की भाषा में वे समाज की भावनाओं के प्रतिनिधि नेता थे।

मध्यकालीन डिंगल कवियों में हुकमीचन्द उच्च कोटि के कवि स्वीकार किये जाते रहे हैं। उनके गीतों में समाज और प्रान्त की भावनाएं एवं मान्यताएं समाहित हैं। गुण की प्रशंसा और दुर्गुण की भर्त्सना करने की उनमें क्षमता थी। और यही कारण है कि उन्होंने निज काम के लिए बड़े से बड़े राजा का भी दरबार में गुणगान नहीं किया है।

व्यक्तिगत परिचय की दृष्टि से डिंगल के अन्य कवियों की भांति ही हुकमीचन्द का परिचय भी यथातथ्य एवं क्रमवार उपलब्ध नहीं है और न ही उनकी समग्र रचनाएं भी किसी एक स्थान पर संग्रहीत प्राप्त होती हैं। कवि द्वारा रचित गीतों के नायकों के समय काल के आधार पर कवि का रचना काल विक्रमाब्द १८ से १८६ के मध्य निश्चित होता है। प्राप्त गीतों के आधार पर ज्ञात होता है कि कवि का अधिक सम्पर्क विशेषतः शाहपुरा बूंदी और अन्त में जयपुर राज्य से रहा था। महाराजा ईश्वरीसिंहजी के निधन के बाद तो उनके उत्तराधिकारी महाराजा माधवसिंहजी प्रथम के राज्यारोहण पर ये जयपुर दरबार के कवि बन गये। महाराजा माधवसिंहजी ने कविवर को मालपुरा परगने का बन किया ग्राम सदा के लिए प्रदान कर सम्मानित किया। महाराजा माधवसिंहजी के स्वर्गवासी हो जाने पर उनके पुत्र महाराजा प्रतापसिंहजी जयपुर से भी इनका अति उत्तम सम्पर्क रहा। अनुश्रुति के आधार से खड़िया जाति के पुरुषों का मारवाड़ में खराड़ी ग्राम मूल-स्थान था। खराड़ी ग्राम के नाम से ही उनकी 'खिड़िया' जातीय सम्बोधन की प्रसिद्धि प्रचलित हुई मानी जाती है। किन्तु हुकमीचन्द का खराड़ी में बंट नहीं रहा। एक बार उन्होंने खराड़ी का अपना पैतृक भू भाग प्राप्त करने के लिए तत्कालीन जोधपुर नरेश विजयसिंहजी से प्रार्थना भी की। पर खराड़ी के अन्य भाइयों ने प्राचीन प्रमाण प्रस्तुत कर उनके उस दावे को प्रमाणित नहीं होने दिया। महाराजा विजयसिंहजी ने नवीन 'सासण' देना चाहा पर वह उन्होंने लेना स्वीकार नहीं किया। यद्यपि उन्हें इस अधिकार से वञ्चित रहना पड़ा। किन्तु 'सापुरस सिंह धाम लग ये विदेश चढ़ि-चढ़ि जाँहि' के अनुसार उन्होंने अपनी प्रतिभा और काव्य-बल से नवीन ग्राम प्राप्त किये। हुकमीचन्द ने अपने समकालीन सभी राजस्थानी नरेशों से सम्मान प्राप्त किया।

कवि के समय काल और तत्कालीन राजस्थानी योद्धाओं से उनके सम्पर्क एवं उनके अद्यतन प्राप्त साहित्य की परिस्थिति की दृष्टि से उनके गीतों की प्रथम पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत कर देना लाभप्रद सिद्ध होगा। और इस क्षेत्र में अन्वेषण करने वाले विद्वानों को इससे सहायता प्राप्त होगी तथा उनकी कतिपय अज्ञात रचनाओं की खोज-बीन के मार्ग में सरलता बढ़ेगी। प्राप्त गीतों की सूची—

१ बैठा बरसी प्रलोका मैवा तुमध्या तुरसी बाला
२ पथ्थे चढ़ाये हुए अमू चाहे मुनि वेम सिध पीए
३ हुका बाज बंबहर सहर होद वक्ष हिसोहक
४ चमे पाधोभ परवा पीम मीम ये पताक बाई
५ महाक्रोधवी मनीमा हुत हुचके नरिन्द माधो
६ धनक मेर भव उठप पंचा मचे उत्पत्त

४२ झोक्ष तोभ्मो मास्ती रेग रोक्यो भया नरिंद
४३ पंडी खाक मे पामंचा गूप कोंख पीका रचा पनै
४४ भिरंच भूप भू धा महा भीर नव मङ्किया
४५ भूपां भूप रोस मामठ प्याळा तूप रो कोपंगी बोम
४६ मठै सामया फूटियो सिंघ बारच क मोप पाया
४७ ईलु पावरो म भम्म सुरानाथ रो मलूठ माथ
४८ कड़ी बार्वता भरम्मा पीठ पमागां ऊमड़ी केत
४९ मर्ड माळ्यो पिनाकी भक उघाळ्यो रमापती
५ तू तो बजावे मणोई यू न बाजे एक हाथ ताळी
५१ घोपे भूपळ माकि भिळफ्फ्ल कामस्ति
५२ पमकारणं मवक पोत भक्सा पामपी
५३ मंबापुर थिर उवे भीत ऊन्नळ करणार्ण
५४ पातल भूप प्रमाण भुभि निजरां संभाळियो
५५ म्याव मधन बरियाम बाबुळी पड़ली बकड़ियो
५६ सबळां धामण छोब इळ मळ मोड़ा ऊमळ
५७ माव मळीनां हाक बाक मण माज मंबामळ
५८ मिरबका बिच रावमड़ रवि मंड सहुर का

डिंगल गीतों का बहुत बड़ा भाग वीर रस में पाया जाता है। हुकमीचंद के गीतों में भी वीर धारा प्रमुखता प्रवाहित हुई है। इनके गीत किसी वातावरण की झांकी न दिखा कर सचित्र वातावरण उपस्थित कर देते हैं। श्रोता एवं पाठक के सामने एक सजीव दृश्य घूमने लगता है। ऐसा जान पड़ता है कि नेत्रों के सम्मुख युद्ध लड़ा जा रहा है। श्रोता के हृदय में वीरता हिलोरें मारने लगती है। भुजाएँ फड़क उठती हैं और मस्तिष्क उत्साहमय वातावरण का अनुभव करता है।

वीर गीतों में हुकमीचंद के गीत बड़े सतोले और टकसाली गीत हैं। एक ही प्रसंग पर एक से अधिक गीत प्राप्त होते हैं फिर भी उनमें पारस्परिक भाव-साम्य होते हुए भी शाब्दिक पुनरावृत्ति नहीं मिलती है। यह कवि की रचना-प्रतिभा और शब्द कोष एवं प्रवीणता का द्योतक ही कहा जा सकता है। कवि ने अपने गीत-नायकों की उत्कर्षता प्रकट करने के लिए रामायण महाभारत और पुराण प्रसिद्ध श्रेष्ठ वीरों को उपमाओं के लिए चुने हैं। अपने समग्र गीतों में कहीं भी हीन उपमाएँ नहीं दी हैं। कवि वीर रस का सिद्ध कवि होने के अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र और तान्त्रिक विद्या एवं आध्यात्म विद्या का भी पूर्ण-ज्ञाता था और यही कारण था कि इनके गीत वेद काल की सीमा रेखा का उल्लंघन कर यथाविधि ख्याति अर्जित कर सके। डिंगल काव्य-पारखियों ने इनके वीर गीतों को पुरस्-भावक की श्रद्धा से विभूषित कर सम्मान प्रकट किया है—

घड़िये रा आखर बरा क्लक राड़ि गीत।
हुकमीचंद रा हाथिया गुरड़ बचां जिम गीत॥

भाषा भाव और शब्द-चयन आदि में इनके गीत विरद हैं। अन्य डिंगल गीत रचयि ताओं के गीत सुन्दर होते हुए भी इनकी समता करने में सहजता से सफल नहीं हो पाते हैं। हुकमीचंद के अनेक परवर्ती प्रसिद्ध कवियों में महादान मेहडू के गीत भी अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। किन्तु कवि-समाज ने दोनों के गीतों का अन्तर दर्शाते हुए लिखा है—

हेरवां गीत हुकमीचंद कहिया फेरवां गीत महादान फेके।

महादान के गीत कवियों की चर्चा के विषय रहे पर हुकमीचंद के गीतों की तुलना में वे यों ही फक हुए व्यक्त किये गये हैं। और यही नहीं हुकमीचंद के बाद कविया करणीदान महदान बख्ता खिड़िया बाँकीदास आसिया और महाकवि सूर्यमल जैसी प्रकाण्ड प्रतिभाओं की विद्यमानता में भी किसी आलोचक काव्य-हृदय के मुख से निकल पड़ा—

'गीत गीत हुकमीचंद कह्यो दूजै गीतड़ी गायो'

इस प्रकार मध्यकाल के कवि समाज में हुकमीचंद के गीतों की शीर्षस्थ गणना हुई है। कवि हुकमीचंद के देहावसान पर पद्महसिंह बारहठ रचित एक शोक गीत प्राप्त हुआ है, जिसमें हुकमीचंद के सम-सामयिक चारण जाति के अन्य विशिष्ट नर रत्नों का स्मरण करते हुए उनकी विशिष्टताओं को प्रकाशित किया है। कवि की रचना के प्रति कवि समाज का आदर और मान्यताओं के प्रकटीकरण के लिए गीत प्रस्तुत किया जा रहा है—

सागर सिद्ध कवेसर हुकमो नृपत महेस हुतो गुणवान।
चार पदारथ आद्या चारण उरा लिया पाछा भगवान॥ १
कविता संत ठाहिया महड़ कवि मिणता भारो वरण सिमार।
दूजी रतन अमोलक दीमा किरै मुलक लीधा करतार॥ २
आ बिन वरण रहणियो ऊणी जिण बिध सुखप निहूणो जीव।
पातां प्रीत करै तै पोस्या देवर बोल्या भला दईव॥ ३
पावस भरम रोहता जग पे हुव नृप मरम जोड़ता हाथ।
हरि यश वरण मधकरणा हिमक्री पूरण नहीं मिलसी कवि पात॥ ४

उपर्युक्त उदाहरणों से डिंगल कवि समाज में हुकमीचंद का स्थान निश्चित हो जाता है।

हुकमीचंद ने अपने गीतों को सरस बनाने के लिए कल्पना का पर्याप्त प्रश्रय लिया है। पर उनमें राजस्थान का मध्यकालीन इतिहास संस्कृति कला और अभिप्रेत वातावरण के अंकुर सरसता से समाहित हैं। डिंगल काव्य शास्त्र की मान्यतानुसार डिंगल गीत १२ प्रकार के हैं जिनमें भाव-अभिव्यक्तिकरण के विभिन्न नियम स्वीकार किये गए हैं। हुकमीचंद ने भी अपने गीतों में रचना प्रणाली के न्यूनाधिक रूप से सभी तरीकों को अपनाया है। कतिपय गीतों में तो एक ही भाव अक्षरान्तर से गुंजित रहा है पर अन्य प्रत्येक दूहाले में नवीन आवरण ओढ़ कर प्रयुक्त हुए हैं। इससे श्रोता तथा पाठक का आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता चला है।

काव्य शास्त्र की भाँति ही डिंगल का अलंकार विधान भी अपना महत्व ही है। अनुप्रासादि शब्दालंकारों के प्रयोग तो डिंगल में अनायास ही पाये जाते हैं। डिंगल की अपनी विशेषताओं में वयण सगाई—वर्ण मैत्री—अपनी विशिष्ट धरोहर है। हुकमीचंद के गीतों में यह अलंकार अपने सभी स्वरूपों में उपलब्ध होता है। इसी प्रकार रीति शास्त्र के आचार्यों द्वारा स्वीकृत जथाओं के विभिन्न प्रकारों का भी कवि के गीतों में सुन्दर प्रयोग परिलक्षित होता है। कवि हुकमीचंद डिंगल गीत काव्य के लब्धप्रतिष्ठित कवि थे। उनके गीतों में वीर रस की प्रबल धारा प्रवहमान हुई है। वीर धारा के साथ ही पृथ्वी प्रेम स्वातन्त्र्य प्रेम स्वामी धर्म सती धर्म शरणागत रक्षा कर्त्तव्य पालन परोपकार महिमा भक्ति महत्ता दानादि मानव के महत्तम गुणों का भी सम्यक वर्णन हुआ है। निवेदन के प्रमाण के लिए संक्षिप्त उदाहरण अवलोक्य हैं—

शरणागत रक्षा—

> जिसम उतराय बिसराय वंस ओवतां छत्रधराम रीभता माण छीजा।
> कहर कूनी सबळ साम रांखे कवण वीर तो बिन सरणसाम बीजा॥

शरणागत की रक्षा राजपूत का अभिन्न धर्म रहा है। राजस्थानी वीरों ने इस कर्तव्य के परिपालन को सहस्रों बार अपने जीवन की आहुति दे कर निभाया है।

धरती प्रेम—

राजस्थानी संस्कृति ने भूमि को वीरों की भोग्या माना है और इसीलिए 'वसुधा वीरां री वधू वीर तिका ही वींद' का सगर्व घोष किया है। इसी स्वरूप को सामने रख कर कहा है—

> काटी बखतेस भूप मोम बिका पांण कायां बायां पाण वळी भोम काटी वेत बांम।
> बांबां घारण वेतबाबू बावता विरोध वाटी धवा धूवा वीर पाटी सासतां धसम॥

वीर पति के जीवित रहते उसकी पत्नी को कौन अपमानित कर सकता है? और पृथ्वीपति की विद्यमानता में उस भूम्य कैसे भोग सकता है? इसी भाव को पढ़िये—

> धमस वाजि नाळा बरर चढावे भोम सा धरक बिन छोम सा मजर आवे।
> वीर निज बळावे वांम भोगिण बसा बसा क्या धूं रसा केमि आवे॥

उक्त नायिका रूपी पृथ्वी को उक्त कान्त रूपी नरेश ही विलसित कर सकता है। महाराजा माधवसिंह जयपुर पर कथित गीत का हवाला भी है—

> रंगे रुप टुंडिज्य रामचन्द्र राज सा गजे नौबत सिंहन नाद सिंह साथ सा।
> सची इम्द वेस विलसंत सुख साथ सा मही मुगधा तरण कंत महाराज सा॥

स्वामी-भक्ति राजस्थानी चरित्र का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। अपने स्वामी के राज्य संरक्षण के लिए जीवन की बाजी लगाना राजस्थान के लिए सामान्य घटना रही है। स्वामी भक्त सामन्त अपना धर्म स्वामी की भूमि का दलित किया जाना कैसे सहन कर सकता है? कवि के शब्दों में वर्णित है—

जुध मते माहंसी किसोरसाळ तीन नाम रूको भीनमाल कीम वर्ठा सूरो राण ।
दळा जोबाऐसवाळी नूं धप बाखमो ऊभो बाखमो पाड़िमा पर्छ उभयै जोभाग ॥

काव्य मे चमत्कार-प्रदर्शन का मुख साधन अलंकारों को माना है। अलंकारों से रचना में शक्ति-वैचित्र्य आ जाता है। डिंगल कवियो ने अपने प्रिय अलंकार वयण-सगाई के अतिरिक्त हिन्दी के विभिन्न अलंकारों का प्रयोग कर अपनी रचनाओं को मनोरंजक एवं रोचक बनाया है। हमारे कवि हुकमीचंद के गीतों में उपमा रूपक उत्प्रेक्षा और अनुप्रासादि काव्य-शास्त्र के बहुविध अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग पाये जाते हैं।

युद्ध-वर्णन में कवि हुकमीचन्द ने अपनी मौलिक सूझ को दर्शाया है। जैसे संस्कृत के मूर्धन्य कवि कालिदास बाणभट्ट आदि की युद्ध-वर्णन-शैली की जानकारी कवि को रही है ऐसा भासित होता है। युद्धार्थ सेना के प्रस्थान करते समय घोड़ों की पद-टापो से उठी हुई रज-राशि से आकाश का आच्छन्न हो जाना आदि का रघुवंश कादम्बरी आदि काव्यों में वर्णन मिलता है फिर यदि इसी परम्परा को विकसित करते हुए हुकमीचन्द ने अपनी रचनाओं में युद्ध-क्रीड़ा देखने के लिए सूर्य का रथ ठहरवा दिया और शेषनाग का फण एवं कूर्म की पीठ कसमसवा दी तो अनुचित क्या किया। अपने वर्णन को सजीव बनाने के लिए कवियों को कल्पना के सहारे छलांगें लगाने का अधिकार तो रहा ही है। तब फिर किसी की उत्कृष्ट कल्पना को अतिशयोक्ति के हथौड़े से छिन्न-विछिन्न करना क्या उचित कहा जायेगा ?

हुकमीचंद के गीतों में तत्कालीन राजस्थान की युद्ध-संस्कृति के उपकरण अस्त्रों के नाम उनके प्रयोग अश्वों और गजराजों की पाखरें, भूलें योद्धाओं की युद्ध-पोशाकें बाने आदि का अति अनूठा वर्णन पाया जाता है। आगे की पंक्तियों में कवि के गीत उद्धृत कर उनके काव्य-रसास्वादन का प्रसंग उपस्थित किया जा रहा है।

सीकर संस्थान के अधिपति राव देवीसिंहजी शेखावत और शाही सेनापति के मध्य श्यामजी की बाटू नामक स्थान पर भयंकर युद्ध हुआ। शेखावत योद्धाओं की मार से सेनापति मुरतजाखानी मंदेश भयभीत हो कर युद्ध-मैदान छोड़ भागा। इसी घटना को कवि के शब्दों में पढ़िये—

गीत

ताळे सूरके विहंगी मार्या बाज माग बयताळी
पमसा फूटके कपोसा मयम्मा पईल।
बरम्मा सूटके बग छूटके कोमडां बाण
भूटके सेपाणी देखो कूराणी मदेस ॥ १
बीपहाड़ डाक बंकी डमक कराळ बाजा
रोसंबी कराळ बाजा मैजा म्याळ रूप।
बाजा याळ मोरणी मजां मीथां रा चपाळ बाया
रूको मराताळ बाया प्रळ काळ रूप ॥ २

मत्तो जुध सत्रोवत्स्यां भारा मोम मोम मर्वे
          धीर बाज बंधे बोम नच्चे रा धाड़।
बामसत्स्यां होवां मंहे पख्काळा हुत बीर भूमे
          रामसत्स्यां रोवां मंहे हुमस्सा हस्सा राड़॥ ३

चम्महाक बाळी मंहे सीसाणी बाल्हाबाळी चमे
          चमन्ता ऊमळ बोळम नचाळी भड़ाक।
महासूरा भळी-भाळी ऊमाळी बाणाधा भेळ
          लोहधाळी बड़ा बीच छेहाळी लड़ाक॥ ४

धमि रंमे मत्थे तेम तावा पम्मे बच्छ तूटै
          कोल बाबा बमे बीम ममेकाळ कोप।
चंदवाळो डाळे लाखो भेवा बमे भळां बमू,
          ज्वाळ बंकी रमे जाळे रुद्रबाळो जोप॥ ५

रीम रीम हुवां बवां बारगां रमाड़े रंगा
          जोमणी नचाड़े चंगा चमाड़े सपूत।
तेम माड़ लाखो जोड़े-चाड़े बळां भाड़े तूही
          बिमाड़ बिधूसे पाड़े पठाणां बहून॥ ६

बळावोळ मही माठ भंजी बोलाहळां भाट
          आकास हूं पड़ी बाळे बीजळा प्रसाड़।
सोहा वाखवाड़ बाड़ तुरतां दिसी नूं भेजो
          जोस बाड़ मुरधरा प्रत्ती नूं बसै बाड़॥ ७

गीत में लाटानुप्रास की छटा तो भरी पड़ी है। किन्तु 'पाळी' और 'वाणा' शब्दों में यमक का प्रयोग भी अति सुन्दर हुआ है। इसी प्रकार महाराणा राजसिंह पर कथित गीत के पांचवें दोहाळे में प्रयुक्त 'कमळा' शब्द में यमक देखिये—

जुध बळ पराक्रम किय कमळा जसो
कमोदर कुसम कमळा जसा कूट।
सोम आयो जसो गीरवाणां संपी
वीर वढि विमाणां गयो वैकूंट॥

महाराजा माधवसिंहजी प्रथम जयपुर का 'सिंह शिकार' सम्बन्धी एक गीत उपलब्ध हुआ है। गीत में सिंहों की जातियां आकृति शिकारियों के क्रिया-कलाप और सिंहों की क्रियाओं आदि का कवि ने ओजस्वी चित्रण किया है। बीच-बीच में उत्प्रेक्षा अलंकार के नगीने भी बड़ी कुशलता से जड़े गये हैं। गीत का उदाहरण प्रस्तुत है—

हुवे हाथवां जोर सामूता घटा ज्यूं जोर साहूलके मगमके छोरसा घुता ऊठ्या मयंद।
तेज पत्थ धुता रूप नृप माधवेस तूही महावीर आकारसे विरच्या मयंद॥ १

दकारसण अनड़ अंजेवस अंम उमाहे, महाखिम समाहे भुमिन्द्र मुहेंडे ।
पहिसिसी मोड़ पमनाथ रसभरण भम विसी सम चोड़ सन तुहिन मुहेंडे ॥ १
भात कूम कसप चैसाह मद महाबळ महिन्द्र सामन्त्र महिन्द्र बजन्द्र बळ मीच ।
निर्मंथियो भवसव्लाप पंचम मको मीर बळ सबळ वसुधा मंडळ मीच ॥

विचानिक बचा के उदाहरण के लिए रावराजा रामचन्दासजी भाला देसवाड़ की तमचार पर कहा गया गीत प्रस्तुत है—

क्वाळा चेठ री वेहरी पंगी बीज मेघमाळा बारे भीम माळी कहरी कराळ मेसमाच ।
चंड पू वेहरी कनी उवग वसूळ चंडी मीर रामोदास हामी मेहरी बास्तास ॥ १
फूका सेस तामवाळी पबे प्रळकार फूटी मारचीस सायवाळी तूटी मसळकेम ।
चमीरोस रूम बाज भाचीत रसम्मा बारो तूमा करी बसारा बजाम रूम तंम ॥ २
तायणी भीमेसमणा मचाड़ पूळा तीड़ पवे बच-तोक झुक्का माकपती पांच ।
कळा बोच चच मान सिव मळा बळा कीत किना तो सग्राम बीका मूळ वेवांण ॥ ३
चाजुळी कुठार राम रुठे मायचाचा बाणे मरां सीस सायचाचा पंगी भाक ऊक ।
हिंदुपति चाचबाचा साळ सायचाचा हिये रायो रायचाचा बाळी तायचाचा रूक ॥ ४
सचावीच ईसचंडी फूक नाय चोस सोर बचहमा कमा कांत फरस्सी बुवार ।
बळा पू तोड़वा चेत बाग तो बापड़ूं बूटे हेके साच कूटे बागे हमाई हवार ॥ ५

महारावल पृथ्वीसिंहजी बांसवाड़ा और मरहठा सेना में हुए युद्ध का गीत बड़ा अनूठा है।
गीत पढ़िये—

खोळां अपटे रवगा बाखे पतगा फुवारा छूटे तारा मेंख मना तूटे उमंमा बवीप ।
तेग धारा तणां के भभंमा माथे मारा तूटे सतारा सेन सू पथा छूटे प्रवीसीन ॥ १
सळक्के मबीस धमा भूमोस ममावमेस चोळ रंमा मोड़के उंडावळ स चीर ।
चामां कामळ स चाची चोमा भावळ स बाया बावळ स हुत बापां रावळ स बीर ॥ २
लोहाळा गनीमा सू तस्णे मूळा बस्णे मागो मेमाखे ऊमाखे बाको बीमो भीमकोच ।
मामळ राकसा पाणां हणुमान भक ऊमो चामळ मारथां बाको गुडाकेस चोच ॥ ३
महाप्रळ काळ रह मच्च रूप् मचोळ मही गोमगी भरिम्राबाळ तोल सिव मीर ।
सू मवां दमोळ तोमें भासमान मकी बाराह हमम्मा विरोळ बकी दूसरो हमीर ॥ ४

रावराजा उम्मेदसिंह हाड़ा बूंदी और जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिंह के मध्य लड़े गए युद्ध पर कवि के दो गीत प्राप्त हुए है। गीत मे उम्मेदसिंह को सिंह और ईश्वरीसिंह को हाथी बता कर सुन्दर रूपक चित्रित किया है।

तोडे बेरहां मभीठ बागा बामां भाकारीठ तंत
माणा पीठ फेरता मरीठ फोजां भेद ।
दीपणी पणामा पुणा भामो दू डाहड़ो सामो
मनवां डैमतो मदा पीमड़ा उमेद ॥ १
कोमदे कधीस बीचा मूडे बमाको बत
मोमदे मैं पड़े तडे चामडे चोचास ।

भायो काळो बाथ भड़े भेळतो भसूरी भरणी
हाडा राव भाडे भड़े ठेलतो होवाय ॥ २
उमंगा वारियां भंगा निहुंगा तोलतो मालम
रोळतो निजंगा भेजां कीधां चोळ रंग ।
बापड़े ग्राजियो सीह डोहतो मतंगां बंगा
पमंगां डोहतो बंगां मोहतो पतंग ॥ ३
खेवतो भड़ोमा खेल भेसलो बाहतों खगा
मोख भू रेळतो भुजां उमाळिये सेल ।
चूकवेरां पेळतो भफेरां भड़ा हेरां चूक
ठेलतो पावेरां मेवाडवेरां धठेल ॥ ४
केवाणां उनागां वागां म्यानियां बाकड़े काळी
पाके बोह हाकड़े पगाम भड़ां मांग ।
पड़ीवारो बीर भयो जुधा रो भलपी राव
भूरो थंभी होवां भयो थंभी भड़ां भांज ॥ ५
बाजतां काहळां आंगी गाजतां भराड़ां बोम
पीठ फेर भाजतां ढुंढाड़ा छोड़े पांच ।
थंपी खेत डोह पांच रंपी ठेलि खेत थोड़े
रंपी तेग बीति ऊभो भाप रंपी राव ॥ ६

राजा उम्मेदसिंह शाहपुरा पर कथित बड़ा गीत तो अति प्रसिद्ध ही है। उम्मेदसिंहजी की वीरतासूचक एक निसाणी और दूसरे गीत भी अति ओजस्वी हैं। महाराजा ईसरीसिंह के विरुद्ध लड़े गए युद्ध पर लिखित गीत में तलवार प्रशंसा अवलोकनीय है—

भजां बूठो कपाळी तोपा बाहतो भकाळी भ्रात खेतां कपाळी चूंगे भाखड़ां लावोस ।
बका भूप ईसरेस काळीनाग सीसवाळी पटां बिहुंमेसवाळी जुहाळी पावीस ॥ १
आंगी फुकारां बाज पताको नासतो बेहा भड़ंगी धरहा काज भळळतो ऊमेद ।
महाजंग पड़ी जांगे वैसां रा ऊरेस मावे लुहाळी भाराथ बाळा बखमाल तेम ॥ २
मरा चूमळी भोम बेहा चू भासाव भखी भाकुळ वखस्नी पीठ कोम मार ऊक ।
बोराबार कुनीनाथ प्रवस्नी वीरोत बाळ बरस्नी राजपत्री डाढ़ डाराळ भ्रभूक ॥ ३
मामी तुम्ह हथा भ्रोकां ऊमेद भाईसी भूप भड़ाके समठां काळमीट मांय ।
नाराजां बगेत भा चुरबी ईसराणनाम मोटा तमी होम पैठो बांकी कोट मांय ॥ ४

इस प्रकार हुकमीचंदजी के सभी गीत एक से एक बढ़ कर हैं। एक अन्य गीत में युद्ध दृश्य का चित्र देखिये—

चोचट्टां चुमट्टां सुभट्टां बे भट्टां भट्टां
भाबट्टां विकट्टां भट्टां पाघट्टां केवांण ।
बेंगा घोरम गैचट्टा पैं उचट्टां पलट्टां बेके
डोह जट्टाजूट भट्टां छुट्टां भट्टां डांण ॥

कवि का समय घोर अशान्ति और युद्धों का काल था। आये दिन युद्ध के डंके बजते थे। युद्ध में प्राण देना वीर का परम कर्त्तव्य होता है। वह अपने प्राणों की आहुति दे कर भी वीर-धर्म का पालन करता है। उसका आदर्श रण-विजय या रण-मरण ही निश्चित होता है। ऐसे काल में जागृत कवि का जो कर्त्तव्य होना चाहिए, वही कर्त्तव्य कवि हुकमीचंदजी ने वीर योद्धाओं में उत्साह संचार कर पूरा किया है। कवि अपने कर्त्तव्य काव्य और उद्देश्य में सफल रहा है।

महाराजा मानसिंह

श्री मदनराज दौलतराम मेहता

जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह का जन्म विक्रम सं. १८३९ की माघ शुक्ला एकादशी को हुआ था। मानसिंह महाराजा गुमानसिंह के पुत्र थे तथा महाराजा भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात् विक्रम सं. १८६० में जोधपुर की राजगद्दी पर बैठे। महाराजा भीमसिंह के उद्धत स्वभाव के कारण जोधपुर का राज परिवार छिन्न था।[1] भीमसिंह ने अपने परामर्शदाताओं की सहायता से महाराजा विजयसिंह एवं गुमानसिंह की संतति को कष्ट पहुँचाने में कोई कमी नहीं रखी। इतिहासकार रामकरण आसोपा ने लिखा है, "मानसिंह जी को महाराजा विजयसिंहजी ने पूर्वाज्ञा से जालोर जागीर में दे कर जालोर भेज दिया था। भीमसिंहजी ने अन्य सबों को साफ कर के मानसिंहजी की तरफ ध्यान दिया। जालोर पर सेना भेजी गई। कई लड़ाइयां हुईं। परन्तु मानसिंह जालोर में अविचल डटे रहे।[2] सं. १८६० में महाराजा भीमसिंह की आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् मानसिंह जोधपुर के राज सिंहासन पर आरूढ़ हुये।

जालोर में महाराजा नाथ-पंथी साधुओं के सम्पर्क में आए। इस संबंध में एक किंवदंती प्रसिद्ध है—

एक दिन महाराजा को उदास देख कर जलंधरनाथ के पुजारी आयस देवनाथ ने कहा—'आप अभी जालोर दुर्ग से प्रस्थान न करें। आपकी विजय सुनिश्चित है। अंततः आप ही मारवाड़ के अधिपति बनेंगे।' आयस देवनाथ की भविष्यवाणी निकट भविष्य में ही सत्य सिद्ध हुई। महाराजा आयस से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने आयस देवनाथ को अपना गुरु मान कर अपने आप को उनकी सेवा में समर्पित कर दिया। कालान्तर में जोधपुर रियासत की राजनीति तथा महाराजा के व्यक्तिगत एवं राजनैतिक जीवन को नाथों ने बहुत प्रभावित किया। इतिहासकारों ने मानसिंह की नाथ भक्ति को अतिरंजनापूर्ण बताया है किन्तु मानसिंह के जीवन एवं कृतित्व के निष्पक्ष अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि वे पहले गुरु-विश्वासी एवं निष्ठावान नाथ-भक्त थे तथा बाद में जोधपुर रियासत के नरेश।

---

[1] Asopa History of the Rathors, Pp. 319

[2] आसोपा मारवाड़ का मूल इतिहास पृ. २४५

मुगल-पराभव के पश्चात् देश का राजनैतिक रूप विकृत होता जा रहा था जिसे देख कर मानसिंह बहुत असन्तुष्ट थे। व अंग्रेजों की कूटनीति से भी आशंकित थे। इस बात के पुष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं कि मानसिंह ने अंग्रेजों के भारत से निष्कासन के लिए एक देश-व्यापी मोर्चा संगठित किया था। पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह एवं दक्षिण के निजाम-उल-मुल्क का सहयोग प्राप्त करने में मानसिंह ने सफलता प्राप्त की थी। किन्तु दुर्भाग्य से महाराजा के एक मात्र युवा पुत्र छत्रसिंह के देहान्त से मानसिंह राजनीति से विरक्त हो गये। यहां यह उल्लेखनीय है कि मानसिंह के दीवान सिंघवी इंद्रराज ने मुहता अखैचन्द तथा बख्त के सहयोग से जालोर एवं मारवाड़ के सरदारों का अंग्रेजों के विरुद्ध नैतिक समर्थन प्राप्त किया था। कविराजा बांकीदास ने भी भारत के सभी नागरिकों को अंग्रेजों के विरुद्ध कमर कसने के लिये अपनी ओजस्वी कविता का गान किया।

राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त आपत्तिग्रस्त काल होते हुए भी मानसिंह के शासनकाल में साहित्य संगीत एवं कला का जो विकास हुआ वह विस्मयजनक एवं गौरवास्पद है। स्वयं मानसिंह साहित्य-मर्मज्ञ एवं तत्व-सम्पन्न व्यक्ति थे। काव्य दर्शन एवं इतिहास उनके परम प्रिय विषय थे। मानसिंह ने ब्रजभाषा डिंगल पंजाबी तथा संस्कृत में अनेकों उत्कृष्ट ग्रंथों का प्रणयन किया था। इतिहासकार म म पंडित विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने मानसिंह रचित २५ ग्रंथों का उल्लेख किया है। मिश्र बंधुओं ने 'मिश्र बंधु विनोद' (द्वि भाग) में मानसिंह रचित निम्न ग्रंथों का उल्लेख किया है—

१ नाथां रो जीलो, २ बिहारी सतसई टीका ३ जलंधरनाथजी रो चरित्र ४ नाथ चरित्र ५ श्री नाथजी रा दूहा ६ राग सार, ७ नाथ प्रशंसा ८ कृष्ण विलास ९ महाराजा मानसिंह री कथावली १० नाथजी की वाणी ११ नाथ कीर्तन १२ नाथ महिमा १३ नाथ पुराण १४ नाथ संहिता १५ राग विलास १६ संयोग शृंगार, १७ कवित्त सवैया दोहा १८ सिद्ध गंगा।

डॉ मोतीलाल मेनारिया ने मानसिंह रचित ग्रंथों की सूची में जिन ग्रंथों का उल्लेख किया है, उनमें कुछ एक मिश्र बन्धुओं की सूची से भिन्न हैं। मेनारियाजी द्वारा प्रस्तुत ग्रंथ-सूची इस प्रकार है—

१ नाथ चरित्र २ विद्वज्जन मनोरंजनी ३ कृष्ण विलास ४ भागवत की मारवाड़ी भाषा की टीका ५ चौरासी पदार्थ नामावली ६ जलंधर चरित्र ७ जलंधर चंद्रोदय ८ नाथ पुराण ९ नाथ स्तोत्र १० सिद्ध गंगा ११ प्रश्नोत्तर, १२ पद संग्रह १३ शृंगार रस की कविता १४ परमार्थ विषय की कविता १५ नाथाष्टक १६ जलधर नाम सागर, १७ तेज मंजरी १८ पंचावली १९ स्वरूपों के

Reu Glories of Marwar & the Glorious Rathors,
Pp 199-200

Freedom Struggle in Hyderabad.

कवत्त २० स्वरूपों के दोहे, २१ सेवा सागर, २२ नाम विचार, २३ आराम रोजमी २४ समान वर्णन।[1]

महाराजा रचित संस्कृत ग्रंथों का विवरण प्रस्तुत करते हुए भी आसोपा ने लिखा है– 'इनके (मानसिंह) रचे हुए संस्कृत भाषा के तीन ग्रंथों का पता चलता है।"[2]

१ मुण्डकोपनिषद् की टीका
२ नाथ चरित्र (अपूर्ण) २० श्लोक
३ नाथ संप्रोक्त (अप्राप्य—नाम सूची प्राप्य अनुमानतः १० श्लोक)

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त मानसिंह रचित सहस्रों गीत एवं भजन लोगों को कण्ठस्थ हैं। बीकानेर निवासी सेठ मोहताजी ने 'मान-पद-संग्रह' शीर्षक से मानसिंह के अनेकों पदों को कई भागों में प्रकाशित किया है। राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर के संग्रह में मानसिंह रचित शृंगार, भक्ति एवं नीति विषयक गीतों के दो बृहद् संग्रह उपलब्ध हैं। इन गीतों के प्रारंभ में राग रागिनियों का भी उल्लेख है।

मानसिंह ने अपनी रचनाओं में अपने अलग-अलग उप-नामों का उपयोग किया है। शृंगार-काव्य में 'रसीलेराज' नाथ संप्रदाय संबंधी अथवा योग संबंधी ग्रंथों में 'नृपमान' अथवा जोगिया तथा स्फुट रचनाओं में मान उप-नाम लिखता है।[3]

नाथ भक्त होने से मानसिंह ने अपनी अधिकांश रचनाओं में नाथ संप्रदाय के सिद्धान्तों एवं महत्व की चर्चा की है। संप्रदायगत रचनाएँ होते हुए भी मानसिंह की नाथ संप्रदाय संबंधी रचनाओं में निष्ठा और कल्पना का कहीं भी अभाव प्रतीत नहीं होता। मानसिंह ने जो अनुभव किया उसे उन्होंने पूर्ण निष्ठा के साथ अभिव्यक्त किया। उनकी कविता प्रभावशाली एवं भावपूर्ण है।

मानसिंह ने नाथ भक्ति संबंधी अपनी रचनाओं में गुरु-भक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया। उन्होंने सभी धर्मों एवं संप्रदायों का विवरण प्रस्तुत करते हुए गुरु-भक्ति को सर्वोत्कृष्ट बताया। उन्होंने लिखा है:—

परमारथ स्वारथ कलित नाना विधि अद्भुत।
कोटि-प्रकार गुरुमन्त्र बिन, निश्चय मिथ्या भूत॥[4]

उन्होंने योगी को सर्वोच्च गुरु माना तथा योग को सर्वोच्च पद।

जोगी परे न गुरु अवर परम नाम पर पंथ।
गुरु न परे न ग्यान लखि, ग्यान परे नहि ग्रंथ॥[5]

---

[1] मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य पृष्ठ २६२
[2] आसोपा मारवाड़ का मूल इतिहास पृष्ठ २८८
[3] भारतकार्यम पृष्ठ १७
[4] महाराजा मानसिंह कृत 'सिद्ध बना' पद २६ (हस्तलिखित प्रति)
[5] " " " 'सिद्ध गुरुप्रकाश' पद ४ (ह प्र)

मानसिंह ने अपने दार्शनिक-सिद्धान्तों का एक छप्पय में अत्यन्त सुंदर विवेचन किया है। उनके मतानुसार भक्ति के लिये भाव राज्य के लिए परम्परा मित्र के लिए मोह स्त्री के लिए शीस पुरुष के लिए पराक्रम ज्ञान के लिए गुरु, तथा निर्वाण के लिए नाथ परम आवश्यक हैं। उनका छप्पय इस प्रकार है—

> भाव बिना नहिं भक्ति मुक्ति बिन जोग न जांनहु।
> रीत बिना नहिं राज मोह बिन मित्र न मांनहु।
> सील बिना नहिं त्रिया पुरस नहिं बिना पराक्रम।
> गुरु बिन नहीं ज्ञान अलप अनुभव बिनु आगम।
> मृषि परंपरा संसार की सत्य प्रत बिनु जीव नहिं।
> उपदेस नहीं जोगी बिना नाथ बिना निरवाण नहिं ।।

महाराजा की अन्य रचनाओं में शृंगार, वीर, शांत एवं भक्ति रस से परिपूर्ण अनेक स्थल मिलते हैं। महाराजा काव्य-शास्त्र के पंडित थे। उनके सान्निध्य में ही भं उत्तमचंद ने 'अलंकार आशय' कवि मंछ ने 'रघुनाथ रूपक गीतां रो' तथा भं उदयचंद ने 'छंद प्रबंध' तथा 'छंद विभूषण' ग्रन्थों की रचना की थी। महाराजा की रचनाओं में दोहा सोरठा कवित्त छप्पय पद्धरी मनोहर, वेंकरी चौपाई आदि छंदों का बहुत प्रयोग हुआ है। वयणसगाई से तो उनकी प्रत्येक कविता अलंकृत है। एक दोहा द्रष्टव्य है:—

> मांझ्यां रा तारा मुकट सुख स्वारथ रा सार।
> साहब सिर रा सेहरा आतम रा आधार।।

मानसिंह गुणग्राहक शासक थे। उनके राजदरबार में पंडितों योगियों एवं कवियों का बहुत सम्मान था। साहित्य के सृजन एवं संरक्षण की दृष्टि से मानसिंह का शासनकाल स्वर्ण-युग था। महाराजा के आश्रय में अनेकों कवि रहते थे। यहाँ तक कि उनके राजनैतिक कर्मचारी भी काव्य रचना में निपुण थे। एक प्रसिद्ध प्रवाद के अनुसार महाराजा ने एक बार ६१ कवियों को सम्मानित किया था। इस संबंध में यह उक्ति आज भी प्रसिद्ध है

'इकसठ सासण आपिया माने धुमनाणी'

राजस्थानी शोध संस्थान के संग्रहालय में एक चित्र है जिसमें मानसिंह के समस्त हाथियों पर विराजमान अनेक कवियों को दिखाया गया है। इन कवियों के नाम इस प्रकार है.—

१ आसिया बांकीदासजी २ बारहठ अजबसिंह ३ आढ़ा जवानजी ४ महियारिया नवलदानजी ५ सांदू पीथोजी ६ सांदू चैनजी ७ राव सिवदानजी ८ सुरताण जिजोजी ९ मेहू मोकजी १ बारहट बनसीरामजी ११ बूगा चतरदानजी १२ आसिया बुधजी १३ कसमूर बैरजी १४ सांदू किरतरदानजी १५ बारहठ चोकडदानजी १६ रतनू केसरजी १७ माढ़ा मोकजी १८ माढ़ा सादूलजी रामजी १९ बारहठ ईसरदानजी २ भोमसो पुकोजी २१ बारहठ बल्लभदानजी २२ सेवग मनोहरदासजी २३ बारहठ रुपोजी।

इन कवियों के अतिरिक्त महाराजा के कुछ अंतरंग कवि-मित्र थे। कहा जाता है कि मानसिंह इन कवियों से अपने व्यक्तिगत कार्यों में परामर्श लिया करते थे। ये कवि थे— बांकीदास उत्तमचंद एवं गुमानसिंह। एक जनश्रुति के अनुसार एक बार मानसिंह एक सुंदरी पर मुग्ध हो गये। *सुंदरी सहज ही में मान त्यागने वाली नहीं थी। महाराजा उद्विग्न* थे। एक दिन उन्होंने अपनी मनोव्यथा अपने अंतरंग मित्रों के समक्ष व्यक्त की। यह निश्चय किया गया कि चारों मित्र सम्मिलित रूप से सुन्दरी के पास जायेंगे तथा मात्र एक पंक्ति में अपने विचार व्यक्त करेंगे। पूर्व निश्चयानुसार एक दिन ऐसा ही किया गया और प्रत्येक कवि ने अपने उद्गार इस प्रकार व्यक्त किए —

बांकीदास	बांक तजो बातां करो।
उत्तमचंद	उत्तम चित मति धारए।
गुमानसिंह	तज गुमान म्हे लहरी।
मानसिंह	मान कहे री मान।

मानसिंह ने प्राचीन साहित्य के संरक्षण के लिए 'पुस्तक प्रकाश' नामक एक विशाल ग्रंथागार की स्थापना की थी। 'पुस्तक प्रकाश' में विभिन्न विषयों की सहस्रों हस्तलिखित पाण्डुलिपियां एकत्रित की गई थीं। मुंशी हरदयालसिंह के अनुसार महाराजा मानसिंह ने लाखों रुपये व्यय कर बाहर से हस्तलिखित ग्रंथ मंगवाये थे। पुस्तक प्रकाश' में कुल ११६४ ग्रंथ संग्रहीत थे।[1]

संगीत एवं चित्रकला को भी महाराजा का प्रश्रय प्राप्त था। महाराजा स्वयं संगीतज्ञ थे। उन्होंने सोरठ मल्हार, बिहाग माड़ भटियार, माल ललित मालकोंस हिंडोल देवगंधार, भैरवी आसावरी सारंग काफी ठुमरी कल्याण केदार, बहार प्रभृति राग रागिनियों के आधार पर अनेकों सुंदर गीतों की रचना की थी। देश के दूर-दूर के गायक भी उनके दरबार में आते थे तथा अपनी कला का प्रदर्शन कर मनोवांछित पुरस्कार प्राप्त करते थे। संगीतज्ञों की भांति चित्रकारों को भी राजकीय सुविधाएं प्राप्त थीं। महाराजा का प्रश्रय प्राप्त कर चित्रकारों ने अनेकों उत्कृष्ट चित्रों का निर्माण किया। नाथ-सम्प्रदाय के क्रिया-विधान संबंधी बड़े-बड़े चित्र बनाए गये। इन चित्रों का मूल्यांकन करते हुए डॉ हजारीप्रसाद ने लिखा है कि इनसे नाथ सम्प्रदाय को समझने में सुविधा होती है। चित्रकारों ने रामायण दुर्गाचरित्र सूरजप्रकाश ढोलामारू आदि ग्रंथों से संबंधित अनेकों चित्रों का निर्माण किया।

कर्नल टॉड के शब्दों में मानसिंह धैर्य सहनशीलता एवं दृढ़ता के अनन्य प्रतीक थे। विद्वान इतिहास-विशारद एवं अद्वितीय राजनीतिज्ञ मानसिंह ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व

---

[1] मुंशी हरदयालसिंह : मजमूई हालात व इतिहास राज मारवाड़ १८८३, ८४६।

से साहित्य संस्कृति एवं समाज की महान सेवा की। मानसिंह के समकालीन कवि भण्डारी उदयचंद ने अपने 'मानमंडन विलास' ग्रंथ में महाराजा का यशोगान करते हुए ठीक ही लिखा है:—

जो नाथ भमल भवतार होई।
धरि नाम रूप नृप मान सोई।
गुण भविग बडा पण विद उदार।
बुध धीर क्षमा करणा भपार।
तप त्याग जोग भक्ति विख्यात।
साहस र टेक वय रहस बात।
नृप भवर जडप उद्यम समान।
नृप मान मान जाहर जहान।

मानसिंह का विक्रम संवत् १६ की भाद्रपद शुक्ला एकादशी को देहान्त हुआ।

परिशिष्ट

राजस्थानी शब्द कोश

सम्पादक

श्री सीताराम लालस

१ लगभग हजार-हजार पृष्ठों की चार बड़ी जिल्दों में प्रकाशित होगा ।

२ प्रथम भाग प्रकाशित हो गया है । मू ५) रु

३ संपादक ने तीस वर्ष के असाध्य परिश्रम से शब्दों का संकलन राजस्थानी के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों नवीन प्रकाशित पुस्तकों लोक-साहित्य लोक-गीतों बोलचाल की भाषा एवं आधुनिक राजस्थानी प्रकाशनों से किया है ।

४ इस कोष में कृषि एवं अन्य पेशों सम्बन्धी शब्द ज्योतिष वैद्यक धर्म दर्शन शकुन संबंधी शब्द गणित खगोल भूगोल प्राणी-शास्त्र संबंधी शब्द संगीत साहित्य भवन चित्र एवं मूर्तिकला संबंधी शब्द समाहित किये गये हैं ।

५ कोष राजस्थानी जीवन की सर्वांगीण गतिविधि का प्रामाणिक शब्दात्मक प्रतिबिम्ब है ।

६ राजस्थान की विभिन्न बोलियों के शब्द भी इस कोष में हैं, यथा मेवाड़ी हाड़ौती मारवाड़ी शेखावाटी मेवाती ढूंढाड़ी मालवी बागड़ी आदि ।

७ शब्द की संपूर्ण आत्मा को समझने के लिये प्रत्येक शब्द को इस प्रकार व्याख्यायित किया है— राजस्थानी शब्द उसका व्याकरण स्वरूप तत्सम् प्रति शब्द और जहां-जहां सम्भव हुआ वहां शब्द का धातु रूप महत्वपूर्ण शब्दों के अनेक पर्यायवाची शब्द क्रियात्मक अर्थों के स्थान पर राजस्थानी प्रयोग के उदाहरण क्रिया प्रयोगों शब्दों पर आधारित मुहावरे एवं कहावतें शब्दों के रूपभेद यौगिक शब्द अल्पार्थ महत्ववाची विलोम शब्द आदि कुछ मुख्य बातें हैं ।

८ कोष में लगभग दस हजार मुहावरे—कहावतों का अर्थसहित प्रयोग किया गया है । हजारों दोहों एवं पद्यांशों का प्रयोग उदाहरणों में किया गया है ।

९ राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं स्थानों धार्मिक सम्प्रदायों एवं उनके संस्थापकों उत्सवों एवं त्यौहारों जातियों एवं उनके रीति-रिवाजों पर यथास्थान प्रामाणिक टिप्पणियां दी गई हैं ।

१ कोष के प्रथम भाग के साथ लेखक द्वारा लिखित एक सुविस्तृत एवं विवेचनात्मक प्रस्तावना है जो शब्द कोष की आन्तरिक समस्याओं को समझने का उपक्रम करती है और राजस्थानी साहित्य व भाषा पर भी प्रकाश डालती है ।

परम्परा पर कुछ सम्मतियाँ

* परम्परा के विशेषांकों के रूप में आप जो इन दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन कर रहे हैं उससे हमें बड़ा सन्तोष होता है। यह कार्य बहुत महत्वपूर्ण है।

—डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी

* Your's is a unique contribution to the literature of Rajasthan and I congratulate you on the splendid achievements you have made.

—Dr K. L. Sahal

* राजस्थानी शोध-संस्थान के कार्य को मैं अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता हूँ। परम्परा द्वारा आप लोग राजस्थान के बारे में सभी हिन्दी मनीषियों का ज्ञान-वर्द्धन कर रहे हैं।

—डॉ रामविलास शर्मा

* आपके सम्पादन में परम्परा हिन्दी की अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवा कर रही है और उसे मैं हिन्दी के लिए गौरव-रूप मानता हूं।

—जयचन्द्र विद्यालंकार

* आप अपनी परम्परा के द्वारा राजस्थानी भाषा और साहित्य की जो सेवा कर रहे हैं वह अत्यन्त श्लाघ्य है।

—डॉ सत्येन्द्र

* परम्परा का स्थान हिन्दी शोध पत्रों में निस्सन्देह सर्वोच्च है।

— 'आजकल' मासिक

* परम्परा के साधारण संस्करण भी राज-संस्करण होते हैं।

— 'साहित्य'

* परम्परा हिन्दी साहित्य और विशेष कर राजस्थानी साहित्य की सम्यक् परम्पराओं का उद्धार कर स्वयं एक अनवद्य परम्परा बन गई है।

— 'सम्मेलन पत्रिका'

परम्परा के कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन

१ लोकगीत—मू १ रु (अप्राप्य)

राजस्थानी लोक गीतों का एक अध्ययन और परिशिष्ट में चुने हुए गीत

२ गोरा हटजा—मू १ रु (अप्राप्य)

अंग्रेजी साम्राज्य-विरोधी कविताओं का सकलन ऐतिहासिक टिप्पणियों सहित

३ डिंगल कोश—मू १२ रु. (अप्राप्य)

डिंगल के प्राचीन कोशों का संकलन

४ बातें रा सोरठा—मू १ रु.

बैठका सम्बन्धी राजस्थानी व गुजराती सोरठे तथा विवेचन

५. राजस्थानी बात संग्रह—मू ७ रु

राजस्थानी की प्राचीन चुनी हुई बातें तथा विवेचन

६ रसराज—मू १ रु.

शृंगार रस-सम्बन्धी राजस्थानी के चुने हुए दोहों का सकलन

७ मोति प्रकाश—मू १ रु

फारसी के ग्रन्थ मसनवी-ए-मोहसनी का राजस्थानी पद्यानुवाद

८. ऐतिहासिक बातां—मू १ रु.

मारवाड़ के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली प्राचीन बातें व विवेचन

९ राजस्थानी साहित्य का आदिकाल—मू १ रु.

आदिकालीन राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी विविध मत

१० सिन्धु सिरोमणि

राजस्थानी छन्द-शास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ

११ राठौड़ रतनसिंह री वेलि—मू १ रु.

प्रौढ़ राजस्थानी भाषा में रचित एक ऐतिहासिक काव्य कृति

परम्परा पर कुछ सम्मतियाँ

* परम्परा के विशेषांकों के रूप में आप जो इन दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन कर रहे हैं उससे हमें बड़ा सन्तोष होता है। यह कार्य बहुत महत्वपूर्ण है।

—डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी

* Your's is a unique contribution to the literature of Rajasthan and I congratulate you on the splendid achievements you have made.

—Dr K. L. Sahal

* राजस्थानी शोध-संस्थान के कार्य को मैं अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता हूँ। परम्परा द्वारा आप लोग राजस्थान के बारे में सभी हिन्दी मनीषियों का ज्ञान-वद्ध न कर रहे हैं।

—डॉ रामविलास शर्मा

* आपके सम्पादन में परम्परा हिन्दी की अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवा कर रही है और उसे मैं हिन्दी के लिए गौरव-रूप मानता हू।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

* आप अपनी परम्परा के द्वारा राजस्थानी भाषा और साहित्य की जो सेवा कर रहे हैं वह अत्यन्त श्लाघ्य है।

—डॉ सत्येन्द्र

* परम्परा का स्थान हिन्दी शोध पत्रों में निस्सदेह सर्वोच्च है।

—'आजकल' मासिक

* परम्परा के साधारण संस्करण भी राज-संस्करण होते हैं।

—'साहित्य'

* परम्परा हिन्दी साहित्य और विशेष कर राजस्थानी साहित्य की सम्यक् परम्पराओं का उद्धार कर स्वयं एक अनवद्य परम्परा बन गई है।

—'सम्मेलन पत्रिका'

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वार्षिक मूल्य दस रुपये

• प्रति भाग तीन रुपये

भाग पन्द्रह सोलह

सन् १९६३